मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

समर्पण

वेदके महान् मर्मज्ञ और

लेखनीके परम आलसी

श्री श्री श्री क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्यायके करकमलोंमें

सादर सस्नेह

भूमिका

"नम ऋपिम्य पूर्वजेम्य ।" (१०।१०।१५)

दो वर्ष पहले यदि कोई कहता, कि मै इस प्रकारकी एक पुस्तक लिखूगा, तो मुझे इस पर विश्वास नही होता। वस्तुत, ऐसी एक पुस्तकको अपनी या पराई किसी भी भापामें भी न पाकर मुझे कलम उठानी पडी। ऋग्वेदमे ही हमारे इतिहासकी लिखित सामग्री का आरभ होता है। जिस प्रकार एक ईश्वर झूठके साथ-साथ महान् अनिष्टोका कारण है, पर अनेक देवता सुन्दर कलाका आधार होनेके कारण अनमोल और स्पृहणीय है, उसी तरह वेद, भगवान् या दिव्य पुरुपोकी वाणी न होने पर भी अपने सास्कृतिक, वैज्ञानिक, ऐतिहासिक सामग्री के कारण, हमारी सबसे महान् और अनमोल निधि है। जिन्होने इसको रचा, और जिन्होने पीढियो तक कठस्थ करके बडे प्रयत्नसे इसे सुरक्षित रक्खा, वह हमारी हार्दिक कृतज्ञताके पात्र हैं।

जहा तक देश-विदेशके भापातत्वज्ञो और बुद्धिपूर्वक वेदाध्ययन करने वालोका सम्बन्ध है, ऋग्वेदके कालके बारेमे बहुत विवाद नही है। पर, जो हरेक चीजमे अध्यात्मवाद, रहस्यवादको देखनेके लिये उतारू है, वह अचिकित्स्य है, उनसे कुछ कहने की अवश्यकता नही। अपनी श्रद्धाके अनुसार वह अपने विश्वास पर दृढ रहें, उन्हे विचलित कौन करता है? लेकिन, आजकी भी तथा आनेवाली पीढिया और भी अधिक, हरेक बातको वैज्ञानिक दृष्टिसे देखना चाहेंगी। उनके लिये ही यह मेरा प्रयत्न है।

ऋग्वेद के जिज्ञासुओको अपनी कल्पना की सीमाओको जान लेना आवश्यक है। ऋग्वेद हमारे देशके ताम्र-युगकी देन है। ताम्र-युग अपने अन्तमें था, जबकि सप्तसिन्धु (पजाब) के ऋपियोने ऋचाओ की रचना की, जब कि सुदासने "दाशराज" युद्ध में विजय प्राप्त करके आर्यो की जन-व्यवस्थाकी जगह पर एकताबद्ध सामन्ती व्यवस्था कायम करनेका प्रयत्न किया।

सप्तसिन्धुके आर्योकी सस्कृति प्रधानत पशुपालोकी सस्कृति थी। आर्य खेती जानते थे, और जौकी खेती करते भी थे। पर, इसे उनकी जीविका का मूल नहीं, वल्कि गौण साधन ही कहा जा सकता है। वह अपने गौ-अश्वो, अजा-अवियो (भेड-वकरी) को अपना परम धन समझते थे। उनके खान-पान और पोशाकके ये सवसे वडे साधन थे। अपने देवताओको सतुष्ट करनेके लिये भी इनकी उन्हें वडी अवश्यकता थी। पशुधनको परमधन माननेके कारण ही आर्योको नगरोकी नही, वल्कि प्राय चरिष्णु ग्रामोकी अवश्यकता थी। इस प्रकार ऋग्वेदिक आर्योकी सस्कृति पशुपालो और ग्रामोकी सस्कृति थी। इन सीमाओ को हमें ध्यानमें रखना होगा।

ऋग्वेदके वारेमें निर्णय करते समय यह भी ध्यान रखने की वात है, कि ऋग्वेदिक आर्य केवल भारतसे ही सम्वन्ध नही रखते थे, वल्कि उनकी भापा और पूज्य भावनाओके सम्वन्धी भारतसे वाहर भी थे। वाहरके सवसे नजदीकके सम्वन्धी ईरानी थे। सौभाग्यसे उनके धार्मिक आचार-विचारोके जाननेके लिये अवेस्ता और पारसी धर्मके माननेवाले अव भी मौजूद है। तुलनात्मक अध्ययनसे मालूम होता है, कि वेद और अवेस्ताके माननेवाले अपनी भापा और धर्ममें एक दूसरेके वहुत नजदीक थे। ईरानियो के वाद दूसरे जो सवसे नजदीकके आर्योके विदेशी सम्वन्धी हैं, वह स्लाव जातिया है। स्लाव स्क्लाव (शक लाव) का ही अपभ्रश है। रूसी, उक्रइनी, वेलोरूसी, वुल्गारी, युगोस्लावी, चेकोस्लावी पोल—स्लाव जातिया—शकोकी ही सन्तान हैं। इन्होने अपने पूर्वजोके धर्मको आज से सात-आठ सौ वर्पो पहले छोड दिया। ईसाई धर्म स्वीकार करते समय इनके पूर्वजोको लिपिका ज्ञान नही था, और न उन्होने अपने पवित्र विश्वासो और देवताओके सम्वन्धमें अवेस्ता या वेद जैसे कोई प्राचीन सग्रह वनाये थे। जो भी पुराने साम या गाथायें रही होगी, वह ईसाई धर्म स्वीकार करते ही पुराने विश्वासके साथ नष्ट हो गई। पेरुन, सूर्य आदि स्लाव देवताओकी मूर्तियोका भी इतना पूरी तरह से ध्वस हुआ, कि सग्रहालयो में भी उनका पता नही मिलता।

ईरानियो और शकोके वाद लेत-लियुवानियो का सम्वन्ध नजदीकका है। यह दोनो भाषाए सगी वहनें और एक दूसरेके वहुत नजदीक है। इनसे भी सहायता मिल सकती थी, यदि पुराने पादरियोकी धर्मान्धता ने सर्वसहार करनेका व्रत न ले लिया होता। लियुवानी सोलहवी सदी तक अपने प्राचीन धर्मपर आरूढ थे। उनके देवताओमे वैदिक देवताओकी प्रतिध्वनि मिलती है। वावर-हुमायू या विद्यापति-जायसी-के समय तक लियुवानी अभी अपनी पुरानी सास्कृतिक निधियोको जोगाये हुये थे। पर, एक वार ईसाई धर्म स्वीकार कर लेनेपर वह अपने पुराने धार्मिक सम्पर्कको नष्ट कर देनेके लिये मजवूर थे। वहुत पीछे ईसाइयो ने सस्कृतिके मूल्यको समझा, और उनके भीतर सहिष्णुता ही नही, वल्कि अपनी और पराई सास्कृतिक निधियोकी रक्षाका ख्याल भी पैदा हुआ। भाषाकी दृष्टिसे लियुवानी वैदिक भाषाके उतना नजदीक नही है, जितना कि रूसी, पर, अपने व्याकरणमे वह वहुत अधिक प्राचीनता रखती है।

इसके वाद पश्चिमी युरोपकी प्राचीन—ग्रीक, लातिन—और आधुनिक जर्मन, फ्रेंच, अग्रेजी आदि भाषाओका सम्वन्ध वैदिक भाषाके साथ है। वेदके अर्थ करने में यह सभी भाषायें अधिकार रखती है। हमारी कितनी ही सस्कृत धातुओका प्रयोग प्राचीन या नवीन सस्कृत साहित्यमें नही मिलता, पर उनका आज भी उपयोग भारत के वाहर इन भाषाओमें देखा जाता है। उदाहरणार्थ दावना, सस्कृतमें नही प्रयुक्त होता, हमारी आजकी भाषाओमें यह मौजूद है, और रूसीमें भी दव्ल्यात मिलता है। सप्तसिन्धु केवल वेदमें ही नही मिलता, वल्कि अवेस्ता और ईरानी प्राचीन साहित्यमें भी हप्त-हिन्दू पाया जाता है, जो केवल सात नदियोंके लिये नही, वल्कि सातो नदियोवाले प्रदेश और वहा वसनेवाले लोगो के लिये भी इस्तेमाल होता रहा। जैमिनि वेदके वारेमें वडे कट्टरपथी है। उन्हें ईश्वर मान्य नही है, पर वह वेदको सर्वोपरि प्रमाण मानते है। वह भी शब्दोंके अर्थ करनेमें कितनी ही जगहोपर आर्योकी प्रसिद्धि छोडकर म्लेच्छोकी प्रसिद्धिको स्वीकार करते है—

"चोदित तु प्रतीयेताविरोधात्प्रमाणेन" (मीमासा १।३।६।१०)

आर्यों (भारतीयो) में कोई शब्दार्थ परम्परा लुप्त हो गई, इसलिये यहा वह नही मिलती, पर म्लेच्छोमें वह परम्परा मौजूद है, इसलिये उसे प्रामाणिक मानना पडेगा। वह इमके लिये पिक, नेम (आवा) आदि शब्दोका उदाहरण देते हैं।

हित्तित जाति मसोपोतामियामें उसी समयके आसपास रहती थी, जिस समय कि सप्तसिन्धुमें आर्य थे। नासत्य (अश्विनीकुमार), इन्द्र, वरुण, मित्र आदि देवताओको हित्तित्त भी पूज्य मानते थे। इसलिये ऋग्वेदिक आर्यों के सम्वन्धमें जो गुत्थिया पैदा होती है, उनके सुलझानेकी इजारेदारी हमारा साहित्य ही नही ले सकता।

आर्यों के आनेके समय भारतमे उनसे कही वढकर उन्नत एक प्राचीन सस्कृति मौजूद थी, जिसके अवशेप मोहनजोडरो और हडप्पा में पहिले मिले, और अव वह जमुना-गगा उपत्यका और सौराष्ट्र तक मिल रहे है। सप्तसिन्धुके आर्योंकी ग्राम-सस्कृतिसे यह नागरिक सस्कृति कही आगे वढी हुई थी। यदि आर्य अपनी पशुपाल सस्कृति और जीवनसे चिपटे रहनेका जवर्दस्त आग्रह न करते, तो वह तुरन्त इस नागरिक मस्कृतिके अधिकारी हो सकते थे। पर, अध्ययन करनेसे उनके जीवनका सम्पर्क इस सस्कृतिसे भी मालूम होता है। उसकी और भी कितनी ही चीजे उन्होंने स्वीकार की होगी। इस प्रकार ऋग्वेदिक आर्योके अध्ययनके लिये सिन्धु-उपत्यकाकी सस्कृति सहायक है।

आर्योकी सस्कृतिके पुरातात्विक अवशेप मिले, तो उनके द्वारा सप्त-सिन्धुके आर्योके जीवनको हम और अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं। चाहे ग्रामीण ही जीवन पसन्द करते हो, लेकिन आर्य सोम और अपने खाने-पीनेके रखने के लिये कितनी ही तरहके काठ, मिट्टी और तावेके वर्तनोको इस्तेमाल करते थे, सोने और रतनके आभूपण पहनते थे, तावेके हथियार इस्तेमाल करते थे। उनके अवशेप जरूर मिलने चाहिये। धूमिल मृत्पात्र आर्यों के साथ जोडे जाते है। यह रोपडमें भी मिले है, और कुरुक्षेत्रमें भी। यदि गगासे पूर्व इस तरहके मृत्पात्र मिलते हैं, तो वह ऋग्वेदके कालके वाद

भी मौजूद रहे, इसलिये उनपर सप्तसिन्धुके आर्योंके सम्बन्धमें एकान्तत विश्वास नही किया जा सकता। चाहे अभी हम उन्हें अच्छी तरह पा या पहचान न सके हो, लेकिन सप्तसिन्धुकी भूमिमें वह मिलेंगे जरूर। सप्त-सिन्धुका यद्यपि आधा ही अब भारतमें है, पर यह वह आधा है, जिसमें सप्तसिन्धुके आर्योंके सबसे प्रभुताशाली जन पुरु, तृत्सु, कुशिक रहते थे।

सिन्धु-सस्कृतिवालोंके अतिरिक्त एक और जाति सप्तसिन्धुके आर्योंके सम्पर्क और सघर्षमे आई, जिसे ऋग्वेद दास और दस्युके नामसे याद करता है। पर, जो फिर, किरात अथवा किलात-चिलात के नामसे सम्भवत उस समय भी प्रसिद्ध थी, और जिसके लोगो और भाषाके अवशेष अब भी हिमा-लयमे मिलते हैं। वह भी वैदिक आर्योंके इतिहासके ऊपर अपनी भाषा और अपने पुरातात्विक अवशेषो द्वारा प्रकाश डालनेकी अधिकारी है। हिमालयमें किरात अब थोडे रह गये है, लेकिन वह और उनके साथ रहनेवाले खश अब भी कितनी ही जगहोमें ऐसे सास्कृतिक तलपर मौजूद है, कि उनके जीवन और धार्मिक विश्वासोकी सहायतासे ऋग्वेदिक आर्योंके समझनेमे आसानी हो सकती है—विशेषकर वैदिक देवताओका आर्योंके साथ जिस तरहका सम्बन्ध था, वह कितने ही अशोमें अब भी हिमालयकी इन जातियो में मौजूद है।

ऋग्वेद स्वत प्रमाण है। उनके अपने क्षेत्रमें ऋचाये जितना अधिकार-पूर्वक कह सकती है, उतना कोई दूसरा नही बतला सकता। यजुर्वेद और सामवेदको लेकर वेदत्रयी माना जाता था। बुद्धके समय ईसा-पूर्व पाचवी-छठी शताब्दीमे तीन वेदोका स्पष्ट उल्लेख आता है। पर, ऋग्वेदकी तुलना करने पर सामवेद ऋग्वेदसे भिन्न नही मालूम होता। इसके २८१४ मन्त्रोमें ७५ को छोड कर बाकी सभी ऋग्वेद के है। सोमपान या सोमयागके समय गानेकी अवश्यकता थी। ऋग्वेदमें भी साम और अनेक प्रकारके उक्थो, स्तोमोका उल्लेख आता है। जैसे सूरसागरके सागरमेंसे बहुतसे पदोको गानेके स्वर आदिके साथ अलग सग्रह किया गया, वैसे ही सामवेदको ऋग्वेदसे अलग करके रखा गया।

यजुर्वेदकी वाजसनेयी संहितामें ४० अध्याय और १९८८ कडिका या मन्त्र है। यह गद्य और पद्य मिश्रित वेद है। पद्य भागमें अधिकतर ऋग्वेदकी ऋचायें ले ली गई हैं। जिस तरह साम गेय मन्त्रोंकी संहिता (संग्रह) है, उसी तरह यजुर्वेदमें ऋग्वेदकी बहुत सी ऋचायें तथा कितनी ही दूसरी रचनायें सम्मिलित करके यज्ञोंके उपयोगके लिए एक संहिता बना दी गई है। दर्श-पूर्णमास, अग्निष्टोम, वाजपेय, राजसूय, सौत्रामणि, अश्वमेध, सर्वमेध, पितृमेध आदि यज्ञोंमें उपयुक्त होनेवाले मन्त्रोंका यह संग्रह है। केवल अन्तिम (४० वा) अध्याय ब्रह्मज्ञानके लिये है, जिसे ईशावास्य उपनिषद् कहा जाता है। वेदके अन्तमें होनेके कारण इसे वेदान्त कहा गया, और आगे ब्रह्मज्ञान-सम्बन्धी इस और दूसरी उपनिषदोंके ऊपर विवेचनात्मक ग्रंथको भी वेदान्त कहा जाने लगा। ऋग्वेदके सोमपान आदि अनुष्ठानोंमें दिव्य और मानुष अंश मिले-जुले हैं। ऋग्वेद-कालके बाद यह विधि-विधान दिव्यताका रूप ले लेते हैं। उसी समय यजुर्वेदकी रचना हुई। कृष्ण यजुर्वेद शुक्ल यजुर्वेदसे भी पुराना माना जाता है। प्राय ईसा-पूर्व १००० से ईसा-पूर्व ७०० तक यजुर्वेद, अथर्ववेद और ब्राह्मणोंकी रचनाका समय है। ऋग्वेदके पीछेके इन ग्रंथोंसे भी ऋग्वेद और ऋग्वेदिक आर्योंके बारेमें सूचनायें मिलती हैं। लेकिन, साथ ही ऋग्वेदिक कालकी ऐतिहासिक सामग्रीको गडबड करनेकी जो प्रवृत्ति महाभारत, रामायण और पुराणोंमें मिलती है, उसका आरम्भ इसी समय हो चुका था। इसलिए उनके इस्तेमालमें बहुत सावधानी बरतनेकी जरूरत है।

यह अध्ययन अधूरा है। इसमें ऋग्वेदकी ऋचाओंके करीब छठे भागका उपयोग किया गया है, जिन्हें दो हजार तक किया जा सकता था। इससे अधिक ऋचायें शायद ही, ऐतिहासिक ज्ञान बढानेमें सहायक सिद्ध हों। ग्रंथमें उपयुक्त ऋचाओंको परिशिष्टमें अर्थ सहित दे दिया गया है, जो विद्यार्थियों और अनुसन्धानकर्ताओंके लिए उपयोगी साबित होगा। नाम और देवतासूची में भी कितनी ही उपयुक्त सामग्रीको सन्निविष्ट करनेकी

कोशिश की गई है। "हम और हमारे पूर्वज"में सास्कृतिक परिवर्तनके बारेमें कुछ आवश्यक तथ्य दिये जाते है।

हम और हमारे पूर्वज—आज हम अपने देशमें मानवको देखते है। उसके सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक जीवनसे भी परिचित हैं। उसका खान-पान, वेष-भूषा हमारे रोजमर्रेके उपयोगकी चीज है।, इसलिए हम उसको पूरी तौरसे जानते हैं। यह मान लेनेमें तो किसीको आपत्ति नही, कि हमारी हरेक बातमें परिवर्तन होता है। लेकिन, वह परिवर्तन कितना जबर्दस्त हुआ, इसे समझ पाना हमें मुश्किल मालूम होता है। इसके लिये सौ-सौ वर्षके बाद ऐतिहासिक काल और ज्यादा अन्तरसे प्राग्-ऐतिहासिक कालको यदि हम देखें, तो पता लगेगा, कि परिवर्तन अविश्वसनीय रहा। हम १९५६ को न ले १९५० ई० से पीछेकी यात्रा करते है। यहा १९५७ के सम्बन्धमें भी एक बात कह देनी जरूरी है। कितने ही अकल बेंच खाये हुए लोग यह समझते हैं, कि चूंकि १८५७ में अग्रेजोंके खिलाफ विद्रोह और १७५७ में पलासीकी विजयके बाद अग्रेजी राज्यकी स्थापना हुई, इसलिए हमेशासे '५७ का सन् हमारे लिये अनिष्टकर रहा है। लेकिन, १६५७, १५५७, १४५७ आदिके बारेमें कोई ऐसी बात हमारे यहा नही देखी जाती।

(१) १९५० ई०—१ अब हम पाषाण, ताम्र, लौह, बारूद, वाष्पके युगोंको पार कर परमाणु-युगमें है। वायुमण्डलपर हमारा अधिकार है। पाच-पाच सौ मील प्रतिघटेकी चालवाले विमान उसमेंसे इधर उधर दौड रहे हैं रेलों-मोटरोंकी तो बात ही नही करनी है। (३, ४) हमारी शासन-व्यवस्था गणतत्र है, हमारे गणराज्यके राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद राजधानी दिल्लीमें रहते हैं। (५) हमारे देशकी मुख्य सम्मिलित भाषा हिन्दी है, और भिन्न-भिन्न भागोंकी असमिया, बगला, उडिया, तेलगु, तमिल, मलयालम, कन्नड, मराठी, गुजराती, पजाबी, आदि साहित्यिक भाषायें है। इनके अतिरिक्त मैथिली, मगही, भोजपुरी, अवधी, ब्रज, मालवी, राजस्थानी, कौरवी, पहाडी आदि भाषायें भी साहित्यिक भाषायें है या होने जा रही है।

५. १५५० ई०—(१)हम लौह-युगके बारूद-उपयुगमें हैं। (३, ४) दिल्ली राजधानीमें शूरवंशी इस्लामशाह गद्दीपर है। (५) फ़ारसी राजभाषा है। (६) सामन्तवादी शासनमें दासताका अखण्ड राज्य है। (७) तोपें परमास्त्र हैं। (८) हिन्दू और इस्लाम दो प्रधान धर्म हैं। (९)लोग अधिकांश मांसाहारी हैं। खान-पानमें छूतछातका बहुत जोर है। रोटी-बेटी अपनी जाति और प्रदेशमें ही हो सकती है। (१०) जायसी हिन्दी साहित्य-गगनसे हाल हीमें लुप्त हुए हैं। (११) सामन्त-वर्गमें मिर्जयी और सुत्थन पुरुषोंकी और पायजामा-पेशवाज स्त्रियोंकी पोशाक है। यह है सन् १५५०।

६. १४५० ई०—(१) बारूद-युगका भारतमें आरम्भ है। (३, ४) राजधानी दिल्लीमें बहलोल लोदीका शासन है। (६) सामन्तवाद और दास-प्रथा हमारी सामाजिक व्यवस्थाके प्रधान रूप हैं। (७) तोप परमास्त्र है, लेकिन उसका प्रचार हमारे यहाँ अभी बहुत कम हुआ है। (८) हिन्दू अधिक और मुसलमान भी काफी हैं। (९) अधिकांश लोग मांसाहारी हैं। खानपानमें जबर्दस्त छूआछूत है। रोटी-बेटी जात और प्रान्तके भीतर ही हो सकती है। (१०) साहित्य-गगनमें कबीर अस्त हो चुके हैं। (११) वेष-भूषा उत्तरी भारतके सामन्तोंकी चौबन्दी, लम्बी मिर्जयी, कोंगा और पायजामा या धोती है। स्त्रियाँ अपनी-अपनी प्रादेशिक पोशाक-घाघरा-लुगडी, धोती, सलवार आदि पहनती हैं। हिन्दू-मुसलमानकी पोशाकमें उच्च वर्गमें भी अन्तर है। यह है सन् १४५०।

७ १३५० ई०— (१) युरोपमें बारूद के प्रचारका आरम्भ है, पर, हमारे यहाँ उसका प्रवेश नहीं है। हम शुद्ध लौह-युगमें है। (३, ४) दिल्ली राजधानी है, राजा मुहम्मद तुगलक है। (५) राजभाषा फारसी है। (६) सामन्ती शासन और दास-दासियोंका खुला क्रय-विक्रय हो रहा है। (७) तीर-धनुष और तलवार-भाला हमारे परमास्त्र हैं। (८) हिन्दू प्रधान धर्म है, मुसलमान भी विशेषकर पंजाब और दिल्लीके आसपास काफी है। (९) अधिकांश मांसाहारी है, छुआछूतका राज्य है। मुसलमान या अछूतके

हाथका पानी नही पिया जा सकता। रोटी-बेटी जाति और प्रान्तके भीतर ही हो सकती है। (११) मुसलमानोकी पोशाक चोगा और पायजामा है। उनकी स्त्रिया भी वही पोशाक पहनती हैं। हिन्दुओंके यहा सामन्तोमें चौबन्दी-सुत्थन और चौबन्दी-धोती है, स्त्रियोमें घाघरा-लुगडी या साडी। यह है सन् १३५०।

८ १२५० ई०—(१) लौह-युग है। (३, ४) दिल्ली राजधानीमें सुल्तान नासिरुद्दीन खिलजीका शासन है। (५) फारसी राजभाषा है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दास-दासियोका रवाज है। (७) तीर-धनुष हमारे परमास्त्र हैं। (८) हिन्दू धर्मकी प्रधानता है। बौद्ध भी हैं, और इस्लामका अभी प्रवेश ही हुआ है। (९) अधिकाश लोग मासाहारी हैं अछूत और मुसलमानके हाथका पानी नही चलता। रोटी-बेटी जाति और प्रान्तमें ही होती है। (११) मुसलमान सामन्त और उनकी स्त्रिया चोगा-पायजामा पहनते है। हिन्दू चौबन्दीके साथ सुत्थन या धोती रखते है। उनकी स्त्रिया घाघरा-लुगडी या दूसरी प्रादेशिक पोशाक पहनती हैं। यह है सन् १२५०।

९. ११५० ई०—(१) लौह-युगमें हैं। (३, ४) कान्यकुब्ज राजधानी है। महाराज गोविन्दचन्द गहडवारका शासन है। (५) सस्कृत राजभाषा है, और मध्यदेशी या अपभ्रश (पाचाली, कनौजी) भारतकी सम्मिलित और सम्भ्रान्त भाषा है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) हिन्दू धर्मके दो रूप ब्राह्मण और बौद्ध देशमें बहु प्रचलित हैं, जिनमें ब्राह्मण धर्मियोकी सख्या अधिक है। इस्लाम अभी पजाबमें ही थोडा-बहुत देखा जाता है। लेकिन, अफगानिस्तान हिन्दूसे मुसलमान हो गया है। (९) लोग अधिकाश मासाहारी है। छुआछूत और जात-पातका जोर है। पर, बौद्ध धर्म हिन्दू धर्मका अग होनेसे उसमें कुछ बाधक भी है। बाहरके किसी भी देशके बौद्ध अछूत नही माने जाते। रोटी-बेटी भी अपनी जातिके ब्राह्मण धर्मियो और बौद्धोमें हो जाती है। (१०) हर्ष कान्यकुब्जके महान् कवि अभी तरुण है। (११) पोशाक चौबन्दी और धोती है। स्त्रिया घाघरा-लुगडी ज्यादा पहनती है। प्रादेशिक पोशाक भी उनकी अपनी-अपनी है। कान्यकुब्जकी वेष-

भपा, खान-पान और चाल-व्यवहारको आदर्श माना जाता है। यह है सन् ११५०।

१० १०५० ई०—(१) हम लौह-युगमें हैं। (३, ४) कान्यकुब्ज राजधानी है। प्रतिहार वशका नाश हुआ है, देशकी स्थिति अस्त-व्यस्त है। (५) सस्कृत राज-सम्मानित भापा है। पर, पाचाली (मध्य-देशीया) अपभ्रश सारे देशकी सम्मिलित साहित्य और व्यवहारकी भाषा है। (६) सामन्तवादी व्यवस्था और दास-प्रथाका प्रचार है। (७) तीर-धनुप परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण और बौद्ध प्रधान धर्म हैं। (९) अधिकाश मासाहारी है। छुआछूतका खान-पानमे प्रचार है। अछूतको न छूते न उसके हाथसे पानी पीते हैं। बौद्ध-ब्राह्मण धर्मोमें रोटी-बेटीका कोई भेद नही है, पर, अपनी जाति और वर्गमें व्याह किया जाता है। (१०) साहित्य-गगनमें कविराज राजशेखर अस्त हो चुके हैं। (११) पोशाक पुरुषोकी चौबन्दी-धोती-सुत्थन और स्त्रियोकी घाघरा-लुगडी या साडी-अगिया सम्भ्रान्त मानी जाती है। यह है सन् १०५०।

११ ९५० ई०—(१) हम लौह-युगमे हैं। (३, ४) कान्यकुब्ज राजधानीमें महाराज देवपाल प्रतिहारका शासन है। (५) सस्कृत राजमान्य भापा है, पर पचाली (मध्यदेशीया) अपभ्रश साहित्य और व्यवहारकी सारे देशमें मान्य भापा है। (६) सामन्ती शासन और दास-प्रथा चल रही है। (७) तीर-धनुप परमास्त्र हैं। (८) ब्राह्मण और बौद्ध प्रधान धर्म है, जिनमे शैव और तान्त्रिक बौद्ध धर्म मुख्यता रखते हैं। पूर्वमें बौद्ध और पश्चिममे पाशुपतोकी सख्या अधिक है। (९) अधिकाश मासाहारी हैं, छुआछूत अछूतो और परधर्मी म्लेच्छो के साथ बरती जाती है। रोटी-बेटी अपने जाति-वर्गमें होती है। (११) चौबन्दी-धोती, सुत्थन पुरुषोकी और घाघरा, साडी, चुनरी, अगिया स्त्रियोकी पोशाक है। यह है सन् ९५०।

१२ ८५० ई०—(१) हम लौह-युग में है। (३ ४) कन्नौजमें राजा मिहिरभोज प्रतिहारका शासन है। (५) सस्कृत राज्यमान्य तथा मध्य-देशीया (कनौजी) अपभ्रश सर्वमान्य भापा है। (६) सामन्तवादी व्यवस्था

तथा दास-प्रथा चल रही है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) शैव और बौद्ध प्रधान धर्म हैं—पूर्वमें बौद्ध अधिक और पश्चिममें शैव अधिक हैं। (११) पोशाक पुरुषोकी चौबन्दी-धोती-सुत्थन और स्त्रियोकी साडी-घाघरा चुनरी-चौबन्दी-अगिया है। यह है सन् ८५० ।

१३ ७५० ई०—(१) लौह-युगमें है। (३) (४) कान्यकुब्जमें प्रतापी यशोवर्माका शासन है। (५) सस्कृत राजमान्य और मध्यदेशीया (पाचाली) अपभ्रश भारतकी साहित्य और व्यवहारकी सर्वमान्य भाषा है। (६) सामन्तवादी समाज है, जिसमें दासता निराबाध चल रही है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) शैव और बौद्ध प्रधान धर्म हैं—बौद्ध पूर्वमें और शैव पश्चिममें अधिक है। बौद्धोमें महायानका जोर है, तन्त्रयान भी ऊपर आ रहा है। (९) खाने-पीनेके सम्बन्धमें छूतछात हरिजनोके साथ मानी जाती है, बाकीमें उसका कम प्रभाव है। लोग मासभक्षी ज्यादा है, यद्यपि गरीबोको वह कभी ही कभी मिलता है। (१०) भवभूति और सरहपा साहित्य-गगनके सूर्य है। (११) चौबन्दी-धोती-सुत्थन पुरुषोकी और साडी-चौबन्दी-अंगिया स्त्रियोकी पोशाक है। यह है सन् ७५०।

१४ ६५० ई०—(१) लौह-युग है। (३) (४) कान्यकुब्ज राजधानी है। हर्षवर्धनके मरे तीन ही वर्ष हुए है, सिंहासनके लिये झगडा चल रहा है। (५) सस्कृत राजमान्य और पाचाली (मध्यदेशीया) अपभ्रश सर्वमान्य साहित्य और व्यवहारकी भाषा है। (६) सामन्तवादी व्यवस्था तथा दासप्रथा चल रही है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) बौद्ध और शैव-ब्राह्मण धर्मोकी प्रधानता है। पूर्वमें बौद्ध और पश्चिममें अबौद्ध अधिक है। (९) अधिकाश लोग मासभक्षी हैं। छुआछूत हरिजनोंसे बरती जाती है। विदेशियो के साथ भी छुआछूतका बर्ताव नही है। रोटी-बेटी अपनी जाति और प्रान्तमें अधिक होती है, पर अभी बाहरके लिये दरवाजा बन्द नही है। बाणको साहित्य-गगनमे अस्त हुए थोडा ही समय बीता है। (११) पोशाक पुरुषोकी (१०) चौबन्दी-धोती-सुत्थन और स्त्रियोकी साडी-अगिया-कचुकी है। यह है सन् ६५०।

चोगा-सुत्थन पुरुषोंकी, और स्त्रियोंकी साड़ी-कञ्चुकी है। यह है सन् १५०।'

२०. ५० ई०—(१) लौह-युग है। (३, ४) मथुरा राजधानी है। शक राजा बीम कदफिसका शासन है। (५) सौरसेनी प्राकृत भाषा सर्वमान्य भाषा है, जो पालिसे अभी-अभी अलग हुई है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दास-प्रथा चल रही है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण, बौद्ध प्रधान धर्म हैं, जिनमें बौद्धो का पलड़ा भारी है। (९) लोग अधिक मांसाहारी हैं। छूताछातका बर्ताव केवल हरिजनोंके साथ है। रोटी-बेटीमें वर्ण या देश-विदेशका विचार उठ सा गया है। (१०) साहित्य-गगनमें महाकवि अश्वघोष चमक रहे हैं। (११) पोशाक पुरुषोंकी धोती-चादर या शकीय चोगा-सुत्थन है, स्त्रियोंकी साड़ी-कञ्चुकी। यह है सन् ५०।

२१. ५० ई० पू०—(१) लौह-युग है। (३, ४) पाटलिपुत्र राजधानी है। शुग भूमिमित्रका शासन है। (५) मागधी-पालि सर्वमान्य भाषा है। (६) सामन्ती व्यवस्था तथा दास-प्रथाका चलन है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) बौद्ध और ब्राह्मण धर्मोंकी प्रधानता है। (९) मांसाहारी प्रायः सभी हैं। छूताछात सिर्फ अछूतोंके साथ बरती जाती है। ब्याहमें वर्णका ख्याल किया जाता है, जात या देशका नहीं। (११) धोती-चादर पुरुषोंकी और साड़ी-कञ्चुकी स्त्रियोंकी पोशाक है। स्त्रियां कभी-कभी साड़ीको दो टुकड़ोंमें उत्तरीय और अन्तर्वासकके तौरपर पहनती हैं। यह है सन् ५० ई० पू०।

२२. १५० ई० पू०—(१) लौह-युग है। (३, ४) पाटलिपुत्रमें शुगवंशी महाराजा पुष्यमित्रका शासन है। (५) संस्कृतको मान्यता देनेकी कोशिश की जा रही है, पर मागधी-पालि सर्वमान्य भाषा है। (६) सामन्ती व्यवस्था तथा दास-प्रथाका चलन है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) बौद्ध और ब्राह्मण धर्मोंकी प्रधानता है। (९) मांसाहारी प्रायः सभी हैं। छआछूत सिर्फ हरिजनोंके साथ बरती जाती है। ब्याहमें वर्णका ख्याल ज्यादा है, देशी और विदेशीका विचार नहीं किया जाता। १० महावैयाकरण पतञ्जलिकी तूती है। (११) पुरुष अन्तर्वासक और उत्तरीय पहनते हैं,

स्त्रियोंकी भी यही पोशाक है। दोनों केशोंके जूडेपर पगडी (उष्णीष) बाधते है। यह है सन् १५० ई० पू०।

२३ २५० ई० पू०—(१)लौह-युग है।(३, ४) पाटलिपुत्रमे देवाना-प्रिय प्रियदर्शी राजा अशोकका शासन है। (५)मागधी-पालि सर्वमान्य भाषा है।(६)सामन्ती शासन व्यवस्था और दास-प्रथाका चलन है।(७) तीर-धनुष परमास्त्र हैं।(८) बौद्ध, ब्राह्मण, जैन धर्म हैं, जिनमें ब्राह्मण धर्म प्रधान है। (९) लोग मासाहारी है। छूआछूत बहुत कम है। ब्याहमें भी देश-कुलका ख्याल न करके "स्त्रीरत्न दुष्कुलादपि" को माना जाता है। (११)पोशाक स्त्री-पुरुष दोनोकी अन्तर्वासक और उत्तरीय है। दोनो लम्बे बालोंको सिरपर जूडा बनाकर पगडी (उष्णीष) बाधते है। यह है सन् २५० ई० पू०।

२४ ३५० ई० पू०—१ लौह-युग है।(३, ४) पाटलिपुत्र राजधानी है। महानदका शासन है। (५) मागधी-पालि सर्वमान्य भाषा है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दासप्रथा चल रही है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण धर्मकी प्रधानता है। जैन और बौद्ध धर्म अपने प्रभावको बढा रहे है। (९) लोग मासाहारी है, खान-पानमें छूआछूतका विचार नही सा है। ब्याहमें देश-कुलकी कडाई नही है। (११) पोशाक स्त्री-पुरुष दोनोकी उत्तरीय-अन्तर्वासक और लम्बे केशोको जूडा बनाकर पगडी है। यह है सन् ३५० ई० पू०।

२५ ४५० ई० पू०—(१) लौह-युग है। (३, ४) पाटलिपुत्र राजधानी है। शिशुनाग वशीय राजा उदायीका शासन है। (५) मागधी-पालि सर्वमान्य भाषा है। (६) सामती व्यवस्था और दास-प्रथाका चलन है। (७) धनुष-बाण परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण धर्मकी प्रधानता है। जैन, बौद्ध, आजीवक आदि भी कुछ-कुछ फैलने लगे है। (९) मास भक्ष्य है। छूआछूतका विचार बहुत कम, सो भी चाण्डालोंके साथ है। ब्याहमें भी बन्धन वर्णका ही अधिक है। (११) पोशाक उत्तरीय, अन्तर्वासक, जूडायुक्त उष्णीष(पगडी)स्त्री-पुरुष दोनोकी है। यह है सन् ४५० ई० पू०

२६ ५५० ई० पू०—(१) लौह-युग है। (३, ४) सारा देश एक राज्य नही है। राजगृह और वैशाली प्रधान राजधानिया हैं। राजगृहमें बिन्दुसारका शासन है, और वैशालीमें गणराज्य। (५) कोसली-पालि भाषाकी प्रधानता है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दास-प्रथा चल रही है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण धर्मकी प्रधानता है। आजीवक, निर्ग्रथ, बौद्ध धर्मोंके प्रचारका आरम्भ है। (९) सभी मासाहारी है। छूआछूतका विचार नही सा है। व्याहमें देश-जातिका नही वर्गका ख्याल ज्यादा है। (१०) भारतीय दो महान् विचारक बुद्ध और तीर्थकर महावीर काम कर रहे हैं। (११) पोशाक स्त्री-पुरुष दोनोकी उत्तरीय, अन्तर्वासक और उष्णीष है। यह है सन् ५५० ई० पू०।

२७ ६५० ई० पू०—(१) लौह-युग है। (३, ४) अलग-अलग राज्य और राजधानिया हैं, जिनमें कोसलकी राजधानी श्रावस्ती प्रधानता रखती है। (५) कोसली-पालि अधिक व्यापक भाषा है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दासता प्रचलित है। गणराज्य और राजतन्त्र दोनो प्रकारके शासन है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र हैं। (८) ब्राह्मण धर्मकी प्रधानता है। (९) छूआछूत-का विचार नही सा है। व्याहमें वर्गका विचार किया जाता है। लोग मास-भोजी हैं। (११) पोशाक स्त्री-पुरुष दोनोकी उत्तरीय-अन्तर्वासक और उष्णीष है। यह है सन् ६५० ई० पू०।

२८ ७५० ई० पू०—(१) लौह-युग के आरम्भिक दिन है। (३, ४) कुरु-पाचाल देशकी सास्कृतिक और राजनीतिक प्रधानताका समय है। (५) छन्द (वैदिक) भाषा का ऊपरी (आर्य) वर्गमें अधिक प्रचार है, लेकिन द्रविड भाषा भी काफी बोली जाती है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दास-प्रथाका चलन है। गणो और राजाओ दोनोंके शासन चल रहे है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण धर्म और वैदिक कर्मकाण्ड आर्योमें चलते हैं। दूसरे द्राविड, किरात देवताओको मानते हैं। (९) सभी मासाहारी है। वर्णका विचार बहुत कडा है। आर्य अपनेसे भिन्न जातिके लोगोके साथ व्याह करनेके विरुद्ध है। (१०) उपनिषद्के महान् ऋषि याज्ञवल्क्यका यह समय है। (११)

पोशाक अन्तर्वासक, उत्तरीय और उष्णीष स्त्री-पुरुष दोनोकी है। आर्य ऊनी वस्त्रोको ज्यादा पसन्द करते है। यह है सन् ७५० ई० पू०।

२९ ८५० ई० पू०—(१) लौह-युगका अभी-अभी अरम्भ हुआ है। (३, ४) कुरु जनपदकी प्रधानता है। (५) छन्द (वैदिक) भाषा आर्योकी और प्राचीन द्रविड और किरात भाषा दूसरोकी है।(६) गण और राज दोनो तंत्र चल रहे है। दास-प्रधान सामन्ती समाज है। (७) परमास्त्र तीर-धनुष है। तीरके फल अब तांबेकी जगह लोहेके बनने लगे है। (८) वैदिक धर्म आर्योंमें और दूसरोमें अपने-अपने धर्म प्रचलित है। (९)वर्ण-भेद उसी तरह घोर है, जिस तरह दक्षिणी अफ्रीका और दक्षिणी युक्तराष्ट्र अमेरिकामें आज देखा जाता है। (११) पोशाक ऊपर द्रापि (एक तरहका चोगा) और नीचे अन्तर्वासक है। आर्य ऊनी वस्त्र ज्यादा पहनते हैं। स्त्री-पुरुषोकी पोशाकमें कोई अन्तर नही है। दोनो अपने लम्बे बालोको समेटकर उष्णीष बाधते है। यह है सन् ८५० ई० पू०।

३० ११५० ई० पू०—(१)हम अब तीन सौ वर्ष पीछे जाते है। ताम्र-युग है।(३, ४) सप्तसिन्धु (पंजाब) में भरत जनके राजा सुदासकी तपी है। (५) वैदिक(छन्द)भाषा आर्योकी भाषा है, दूसरोकी किरात और द्रविड भाषायें। (६) जन-व्यवस्थासे अभी-अभी आर्य सामन्ती व्यवस्थामें आये है। अनार्य बहुत भारी संख्यामें उनके यहा दासके तौरपर काम करते हैं।(७)तांबेके फलवाला तीर और धनुष परमास्त्र है। (८)आर्योंमे वैदिक देवताओकी पूजा होती है। किरातो और द्रविडो(मोहनजोदडो वासियो) मे अपने शिश्न या दूसरे देवता मान्य है। (९) सभी मासाहारी है। आर्य-अनार्य और काले-गोरेका भारी भेद है। दोनोका सशस्त्र संघर्ष अभी खतम नहीं हुआ है। (१०) ऋषि वसिष्ठ और विश्वामित्र महान् कवि और राजनीतिज्ञके तौरपर विराजमान है।(११)द्रापि, अन्तर्वासक और उष्णीष स्त्री-पुरुषोकी पोशाक है, जो ऊन या चमडेके होती है।

३१ १४५० ई० पू०—तीन सौ वर्ष और पीछे जाते है। (१)ताम्र-युग है। (३, ४) सिन्धु-उपत्यकापर पाच आर्य जनोका शासन स्थापित हो

गया है। (५) आर्य प्राचीन वैदिक भाषा बोलते है। हिमालयके पहाडोमें किरात और नीचे प्राचीन द्रविड या आर्य भाषा चलती हैं। हिमालयके किरातो में जन-व्यवस्था और दूसरोमें सामन्ती या जन-व्यवस्था है। दासताका अखण्ड राज्य है। (७) ताम्रफवलवाले तीर और धनुप परमास्त्र है। (८) वैदिक और प्राग्-द्रविड या किरात देवता अपनी-अपनी जातियोमें पूजे जाते है। (९) सभी मासाहारी है। भयकर वर्णभेदका प्रचार है—जहा तक आर्यों और अनार्योंका सम्वन्ध है। द्रविडोमें वर्गभेद है। (११) पोशाक आर्योंकी द्रापि, अन्तर्वासिक और उष्णीष स्त्री-पुरुष दोनोकी है, जो ऊन और चमडेकी होती है। किरात शायद चमडे और ऊनकी लम्वी चादरें पहनते है। प्राग्-द्रविड कपासके अन्तर्वासिक, उत्तरीय और शायद उष्णीष भी व्यवहार करते हैं। यह है सन् १४५० ई० पू०।

३२ १५५० ई०पू०—(१) ताम्र-युग है। (३, ४) सिन्धु-उपत्यकामें द्रविड सामन्तोका शासन है, जिनकी राजधानिया मोहनजोदडो, हडप्पा आदि है। (५) भाषा मैदानमें प्राग्-द्रविड है और हिमालयके पहाडियोमें प्राग्-किरात। (६) प्राग्-द्रविडोमें दासतायुक्त सामन्ती व्यवस्था है, किरातोमें जन-व्यवस्था है। प्राग्-द्रविडोमें आर्थिक स्वार्थोंने वर्ग स्थापित किये है। प्राग्-किरातोमें पितृसत्ताक या जन-व्यवस्था है। (७) धनुष और तावेके फल लगे तीर परमास्त्र है। (८) प्राग्-किरात और प्राग्-द्रविड देवता पूजे जाते हैं। (९) सभी मासाहारी हैं। (१०) प्राग्-द्रविड कपासके अन्तर्वासिक, उत्तरीय पहनते है, और किरात चमडे या ऊनकी लम्वी चादरें जाडोमें पहनते है, नही तो नगे रहते है।

३३ २५५० ई० पू०—(१) अभी-अभी ताम्र-युगका आरम्भ हुआ है। (३, ४) उत्तरी भारतमें प्राग्-द्रविड जाति कही कही वसती है। हिमालयके पहाडोमें कश्मीरसे आसाम और आगे तक किरात जाति जहा-तहा है। (५) दोनो अपनी-अपनी भाषा वोलते है। (६) प्राग्-द्रविड पितृसत्ताक जन-व्यवस्थामें है, और प्राग्-किरात उनसे भी पीछे हैं। (७) पत्थरके हथौडे और तीरपर चकमक-पत्थरका अभी भी प्रयोग है,

कभी-कभी तावेंके टुकडे भी जोडे जाते है। तीर-धनुप ही परमास्त्र हैं। (११) पोशाक सिर्फ जाडेके लिए चमडे या ऊनकी पहनी जाती है, नही तो अधिकतर स्त्री-पुरुप नगे रहते है। जीविकाका साधन खेती और शिकार दोनो है।

३४ ३०५० ई० पू०—(१)और भी पाच सौ वर्प पीछे जानेपर हम नव-पापाण-युगमें है। (३, ४) भारतके भिन्न-भिन्न भागोमें भिन्न-भिन्न जन रहते हैं। किरात पहाडो और तराईके जगलोमें तथा मुण्डा और निपाद मैदानी घोर जगलोमें निवास करते हैं।(५) किरात, मुण्डा, निपाद भापाओ के प्राचीन रूप लोग बोलते हैं। (६) पितृसत्ताक जन-व्यवस्था है। (७) शिलामुख वाण और धनुप परमास्त्र है।(८)मृतात्माओ और वृक्षो-पशुओ को लोग पूजते है। (९) भक्षाभक्ष्यका कोई परहेज नही है। मासाहार प्रधान खाद्य है। अन्न खेतीसे उत्पन्न होने लगा है, पर उसका उपयोग कम है। (११) सिर्फ जाडेके लिये चमडेका व्यवहार करते है, नही तो स्त्री-पुरुप नगे रहते है।

३५ १००५० ई० पू०—(१)हम और सात हजार वर्प पीछे जाते है। अब ऊपरी पुरापापाण-युगमें है। (३, ४)किरात और निपाद जातिके थोडे से लोग भारतके जगलोमें जहा-तहा मिलते है। (५)वह अपनी-अपनी भापा बोलते है, जिसका शब्दकोश कुछ सौ शब्दोंसे अधिक नही है। (६) मातृसत्ताक व्यवस्था है, सम्पत्ति और श्रम सामूहिक है। (७) छिले हुए पत्थरके हथियार—कुल्हाडे, छुरे आदि—ही परमास्त्र है। (८) मृतको और भयप्रद वस्तुको सतुष्ट करनेकी मनुष्य कोशिश करता है। (९) केवल शिकार का मास और जगलके फल जीविकाके साधन है। (११) जाडेंमे बचनेके लिये आदमी चमडे और आगका इस्तेमाल करता है। हिंसक जन्तुओको भगानेमें भी अग्नि सहायक है।

पिछले १२००० वर्पोमें भारतमें मानव समाजका विकास इस प्रकार हुआ है, उसे हम यहा तालिकामें दे रहे हैं—

युग	काल	राजधानी	राजा	भाषा	व्यवस्था
१	२	३	४	५	६
लौह	४५० ई०	पटना	कुमारगुप्त	माग०	सा० दा०
,,	५५० ,,	कन्नौज	ईशानवर्मा	मध्यदेशीय अपभ्रंश	,,
,,	६५० ,,	,,	अर्जुन	,,	,,
,,	७५० ,,	,,	यशोवर्मा	,,	,,
,,	८५० ,,	,,	मिहिरभोज	,,	,,
,,	९५० ,,	,,	देवपाल	,,	,,
,,	१०५० ,,	,,	प्रतिहार	,,	
,,	११५० ,,	,,	गोविंदचद	,,	,,
,,	१२५० ,,	दिल्ली	नासिरुद्दीन	पारसी	,,
,,	१३५० ,,	,,	मुहम्मद तुगलक	,,	,,
बारूद	१४५० ,,	,,	बहलोल लोदी	,,	,,
,,	१५५० ,,	,,	इसलामशाह	,,	,,
,,	१६५० ,,	,,	शाहजहा	,,	,,
,,	१७५० ,,	,,	अहमदशाह	,,	,,
वाष्प	१८५० ,,	कलकत्ता	अगेज	अगेजी	पूंजीवाद
परमाणु	१९५० ,,	दिल्ली	राजेन्द्रप्रसाद	हिन्दी	,,

परमास्त्र	धर्म	छुआछूत	कवि (काल)	वेष
७	८	९	१०	११
लौहतीर	ब्रा० बौ० जै०	छुआछूत	कालिदास	चोगा-चौवदी
"	"	"	(अजन्ता)	धोती-सुत्थन
"	"	"	०	"
"	"	"	भवभूति	"
"	"	"	०	"
"	"	"	राजशेखर	"
"	"	"	०	"
"	"	"	हर्ष	चौवदी-धोती
		जातपात		
"	हिंदू-इस्लाम	"	०	चोगा-सुत्थन
"	"	"	०	"
तोप	"	"	कबीर	"
"	"	"	जायसी	"
"	"	"	०	"
"	"	"	०	"
रेल (१८५३) तार	" ईसाई		गालिब	"
परमाणुबम, विमान	शिथिल	शिथिल	निराला	कोट-पैन्ट

मसूरी
१२-५-१९५६

राहुल सांकृत्यायन

विषय सूची

परिशिष्ट १

भाग १

भौगोलिक

अध्याय १

सप्तसिन्धु

§१ आर्यों का आगमन

आर्यों के रक्तसम्बन्धी पडोसी ईरानी 'स' का उच्चारण 'ह' किया करते थे, इसलिए सप्त-सिन्धुकी भूमिमें आ बसे अपने भाइयोंके देशको वह 'हप्त हिन्दु' कहा करते थे, जिसका ही संक्षेप 'हिन्द' हुआ। पश्चिमके देशोंके उस समयके सरताज ग्रीसके निवासी 'ह' का उच्चारण करनेमें असमर्थ हो उसकी जगह 'अ' बोलते थे, इस प्रकार हिन्दु इन्दु या इन्द बन गया, जो ही हमारे देश का नाम आज सर्वत्र प्रचलित है। ऋग्वेदमें 'सप्तसिन्धु' नाम अनेक बार आया है, कही वह सात नदियोंके अर्थमे और कही सातो नदियोकी भूमि के लिए। देश या जनपद के नाम उस समय जन (कबीले) के नाम पर पडते थे, इसलिए उसे बहुवचन में बोलते थे। यह क्रम बुद्ध के समय और कितना ही पीछे तक रहा। पालि मे 'कोसल में,' 'काशी में' की जगह 'कोसलेसु' (कोसलोमें), 'कासीसु' (काशियोमें) कहा गया है। अपेक्षाकृत नवीन ऋषि हिरण्यस्तूपने अपनी ऋचामें सविता (सूर्य) की महिमा गाते हुए कहा है—"सविता ने दाता को श्रेष्ठ रत्न (धन) देते सप्त-सिन्धुओ को प्रकाशित किया"[१] (१।३५।८)।

सप्त सिन्धु, सातो नदियो या आर्य जनोंके बारेमें कुछ कहने से पहले उस स्थिति के बारे में कुछ कहना है, जिसमें आर्य ऋग्वेद-काल में थे।

आर्य भारत मे बाहर से आए, यदि यह न माना जाए, तो आर्य की भाषा पश्चिमकी जिन भाषावालो से अपना एक पारिवारिक सम्बन्ध बत-

लाती है, उन्हें भी भारत से गया मानना होगा। इसके कारण और अनेक समस्याएँ उठ खडी होगी, जिनका समाधान अतिकठिन है। अधिकतर यह ख्याल आर्य और हिन्दी-युरोपीय भाषाओ एव तत्सम्बन्धी दूसरी सामग्रियो की ओर पर्याप्त ध्यान न देने के कारण ही होता है। उसीके कारण हमारे इतिहासवेत्ता कलियुग और महाभारत कालकी धारणा बनाकर इतिहासको हज़ारो वर्ष पीछे ले जानेकी कोशिश करते है। वस्तुत क्षुद्र - एसियामे हित्तितो, ग्रीस में यूनानियो और ईरान मे ईरानी-आर्योंके प्रवेशके समय पर ध्यान देनेसे आर्योका भारत मे प्रवेश ई० पू० १५०० से पहले नही मालूम होता। और ऋग्वेद के पुरातनतम प्रसिद्ध ऋषि भरद्वाज, वसिष्ठ और विश्वामित्र[२] तो उससे बहुत पीछे, कम-से-कम ३०० वर्ष पीछे, हुए।

§२ उसके पीछे ऋग्वेद

काफी काल बीते बिना उनके उच्चारण मे वह भारी परिवर्तन नहीं हो सकता, जो कि ऋग्वेद मे देखा जाता है। भारती आर्य हिन्दी-युरोपीय वंशकी पूर्वी या शतम् - शाखाके अन्तर्गत आते हैं, जिसमें ही रूसी आदि स्लाव और ईरानी भी सम्मिलित है। ईरानी और स्लाव मूर्धन्य वर्णो (टवर्ग आदि) का उच्चारण कर नही सकते, जबकि ऋग्वेद की प्रथम ऋचा में ही[१] (१।१।१) 'अग्निमीळे' में ळ आ गया है। आर्यो के मुंह मे इन मूर्धन्य वर्णो का उच्चारण सप्त-सिन्धुके पुराने निवासियो—मोहन-जोदडो, हडप्पा के लोगो—के घनिष्ठ सम्पर्कके कारण ही हुआ। ईरानी आर्य अपने मूल स्थान 'आर्याना वेइजा' का स्मरण रखते थे, पर भारतीय आर्य उसे भूल गए थे, यह ऋग्वेद के मौन - धारण से मालूम होता है। इसमें यह भी कारण हो सकता है, कि उनका प्रसार बीच के स्थानो को छोड कर नही हुआ, इसलिए उन्हें मूल-स्थान से निर्वासित होनेका ख्याल नही हो सकता था। आखिर ऋग्वेदिक आर्यो के सब से पश्चिम में रहने वाले पक्त, भलान आदि जन भारत के पश्चिमी द्वार खैबर और

बोलान के काफी पीछे तक बसे हुए थे। उनके भी पश्चिम आर्य जन रहे होंगे, पर प्रकरण में न आ सकने के कारण ऋग्वेद के ऋषि उनका नाम-स्मरण नही कर सके।

ऋग्वेदके ऋषियो का उद्देश्य इतिहास लिखना नही था। वह अपने देवताओ और दाताओ को प्रसन्न करना चाहते थे। इसी के सम्बन्ध से कितनी ही ऐतिहासिक और भौगोलिक बाते वहाँ आ गई है। इसमे शक नही, उन्ही के कारण ऋग्वेद का मूल्य अनर्घ हो जाता है। उसके इस मूल्य की तुलना बाकी तीनो वेदो से भी नही की जा सकती, महाभारत और पुराण आदि तो इस काल के सम्बन्ध के ज्ञान में अत्यन्त दरिद्र तथा अविश्वसनीय है। ऋग्वेद के काल पर ऋग्वेद स्वयं सर्वोपरि प्रमाण है। और कही जो भी उस काल के सम्बन्ध की बात ऋग्वेद के विरुद्ध आये,उसे ज़रा भी देर किए बिना त्याज्य समझना चाहिए। कितने ही आजकल के ऐतिहासिक दोनो क समन्वय करनेकी कोशिश करते है, जिसका परिणाम एक गलतीके लिए सात गलती करना होता है। दिवोदास और सुदास पिता-पुत्र ऋग्वेदके सर्वोपरि नायक है। वह तृत्सु-भरत जनके प्रतापी राजा थे, जिनकी सीमा पर परुष्णी—आज की रावी—बहती थी। सिन्धु पार के रहने वाले आर्य-जन पक्थ, भलानस, अलिन, विषाणि और उनके सिन्धु इस पारके पडोसी शिव एक बार तृत्सुओ पर आक्रमण करने के लिए परुष्णी (७।२२।२) के तट तक पहुँच गए थे, और बडी कठिनाई से भगाए जा सके। परुष्णी तट पर रहने वाले इन राजाओ को महाभारत ने गगा तट के पञ्चाल (काम्पिल्य-कन्नौज और रुहेलखण्ड) का राजा बना दिया है। ऐसी ऐतिहासिक गडबडी के ठीक करने का प्रयत्न करना व्यर्थ है। जब ऋग्वेदिक इतिहास के बारेमें महाभारत की यह हालत है, तो पुराण दस कदम और आगे जाएँ, तो क्या आश्चर्य? इसका यह अर्थ नही, कि उनका कोई ऐतिहासिक मूल्य नही। पीछे के काल के बारे में वह प्रामाणिक सामग्री प्रदान करते है, मानवतत्वआदि सम्बन्धी अनुसन्धान में भी उनसे सहायता मिल सकती है।

§३ ऋग्वेद परमप्रमाण

ऋग्वेदके रूप मे उस समय के सम्बन्ध की अत्यन्त मूल्यवान् सामग्री हमारे पास है। प्राय तीन हजार वर्षों से इस निधि को हमारे पूर्वजो ने भरसक जरा-सा भी परिवर्तन किए बिना रक्षित रखा। पर यह सामग्री दिवोदास और सुदास के काल के पीछे ले जाने मे असमर्थ-सी है। प्राग्-आर्य कालीन इतिहास लिखित सामग्री के बिना भले ही हो, और वह ऐसा नही है, क्योकि मोहनजोडरो और हडप्पा में हजारो ऐसी मुहरें मिली है, जिन पर अक्षर उत्कीर्ण है, पर हम उन्हें अभी पढने में असमर्थ हैं। लिखित सामग्रीके न पढे जाने पर भी हमारे इन दोनो प्राचीनतम नगरो से इतने प्रचुर परिमाण में मानव-जीवन की सामग्री प्राप्त हुई है, कि हम उसे खूब जान सकते है। ताम्र-पीतल युगमे होते हुए भी सिन्धुवासी लोग धन-धान्य-सम्पन्न भव्य अट्टालिकाओ में स्वच्छतापूर्वक रहते थे। नागरिक स्वास्थ्य और सफाई के नियमो के पालन मे वह अपने आजके उत्तराधिकारियो से कही आगे थे। वह सुन्दर कपास के कपडे पहनते थे, जबकि उनकी जगह लेने वाले आर्य गरम देश में भी सदा ऊनी और चमडे की पोशाक ही पहनते रहे। मोहनजोडरो-हडप्पा (सिन्धु) की सभ्यता का अन्तिम उत्कर्ष काल ई० पू० २५०० माना जाता है। उसके हजार वर्ष बाद आर्यो का प्रवेश उनकी भूमि में हुआ और उससे कम-से-कम तीन सौ वर्ष बाद (१२०० ई० पू०) भरद्वाज-वसिष्ठ-विश्वामित्र आदि ने अपनी ऋचाएँ (पद) रची। आर्यो और सिन्धु के पुराने निवासियो के संघर्ष का परिचय ऋग्वेद मे देवो और असुरो के युद्ध की प्रतिध्वनि के रूप में ही मिलता है। तब ने दिवोदास-सुदास के काल (ई० पू० १२००) तक का इतिहास अन्धकारावृत है। उसके लिए हमे पुरातात्विक उत्खनन पर ही भरोसा करना पडेगा।

इस काल की पुरातात्विक सामग्री भी विरल ही मिल सकती है, क्योकि भारत मे प्रवेश करने वाले आर्य चाहे जो जैसे कुछ अनाजो का नाम जानते हो, पर थे वह पशुपाल और घुमन्तू। ऐसे लोगो पर नागरिक जीवन का प्रभाव

देर से पडता है, यह हमें चगेजखान के मगोलो के उदाहरण से मालूम होता है। मध्य-एसियामे भी एक सप्त-सिन्धु, इलि-चु आदि सात नदियोकी उपत्यकाओ में था। यही रूसी भाषामें आज का सेमि-रेच्ये (सात नदी) प्रदेश है, जो जान पडता है, प्राचीन कालसे चले आते नामका अनुवाद मात्र है। तेरहवी सदी के प्रथम पाद मे मगोलो के आक्रमण के पहले इस प्रदेश में बहुत से समृद्ध ग्राम-नगर थे। पशुपाल मगोलोंके लिए उनका उपयोग नही था, इसलिए उन्होने लोगो के खेतो को चरागाहो मे बदल दिया। उस समय के यात्रियो ने कितनी ही बस्तियाँ देखी, जिनकी दीवारें अभी भी खडी थीं, उनके बाहर मगोलो के तम्बू लगे हुए थे और उनके पशु पहले के खेतो के स्थान पर बनी चरागाहो मे चर रहे थे। घुमन्तू आर्यों ने भी अपने विरोधियो के साथ इससे बेहतर सलूक नही किया होगा। मगोलो के तम्बुओ के समूह को ओर्द (उर्दू) कहा जाता था। आर्य अपने निवासो के समूह को ग्राम कहते थे, जिसका अर्थ भी समूह ही है। शायद ताम्रयुग के अन्तिम काल के लोगोंके लिए, जिसमें कि ऋग्वेदिक आर्य रहते थे, ऊनी या सूती कपडो के तम्बू क्षमता के बाहर की चीज थे। उस समय प्राकृतिक जगलो से भरे देश मे घास-लकडी की बनी झोपडियाँ अधिक सस्ती थी। इनका एक यह भी लाभ था, कि यहाँ की वर्षा में वह तम्बुओ से अधिक उपयुक्त थी। आखिर, सप्त-सिन्धु की वर्षा मध्य-एसिया की तरह नाम मात्र की नही थी। ऐसी झोपडियो वाले प्राचीन आर्य ग्रामो के अवशेष हडप्पा या मोहनजोडरो की तरह के नही हो सकते। तीन, साढे तीन हजार वर्षो को पार कर हमारे पास तक पहुँचने वाली उनकी सामग्री बहुत कम ही हो सकती है। ऐसी सामग्री पञ्जाब मे ही मिल सकती है। दिवोदास-सुदास के काल मे भी आर्य अभी नागरिक नही हो सके थे। उनके धन उनके अश्व और गाएँ ही थी, जिनके लिए वह अपने देवताओ से प्रार्थना किया करते थे।

आर्यो के बहुत-से जनो के नाम ऋग्वेद मे मिलते हैं, पर जिस तरह बुद्ध-काल के सोलह जनपदो की भूमिको हम आज भी जान सकते है,

वही वात सप्त-सिन्धुके जनपदो के वारे मे नही है। वैदिक काल के वाद, जनो के नामो को सप्त-सिन्धुकी भूमि पर से जान वूझ कर मिटा दिया गया। जो पाँच प्राचीन जन[१] (१।१०८।८)—पुरु, यदु, तुर्वश, अणु, द्रुह्य—सप्त-सिन्धु के प्रधान स्वामी थे, उनका वहाँ फिर पता नही लगता। उस समय के छोटे-छोटे जनो में एक पक्त जन अव भी मौजूद है, जिसके वशज आज पक्तूनिस्तान की माँग कर रहे हैं, और जिसके कारण आज कल अफगानिस्तान और पाकिस्तान मे तनातनी चल रही है। दूसरे जन भलान का नाम वोलन दर्रेके साथ लगा हुआ है। उस समय पक्त इतने विशाल क्षेत्र मे नही रहे होगे। जनोकी वृद्धि स्वाभाविक सन्तान के द्वारा ही नही होती, वल्कि कभी-कभी छोटे या निर्वल जन किसी वडे और शक्तिशाली जन मे विलीन हो जाने को अपने लिए श्रेयस्कर समझ वैसा कर लेते हैं, यह हमे मध्य-एसियाके अवारो, तुर्कों और मगोलोके इतिहास से मालूम होता है। सप्तसिन्धु के आर्यजनोमे भी ऐसा ही हुआ होगा। सप्त-सिन्धुकी नदियोके नामो मे भी ऐसा देखा गया। जिस परुष्णी पर इन्द्र[२] (४।२२।२) की विशेष कृपा थी, वह आज रावी (इरावती) कही जाती है। असिक्नी वदल कर चनाव (चन्द्रभागा) हो गई। विपाट् (विपाश्) जिसने कभी विश्वामित्र की सुन्दर स्तुति[३] (३।३३।१८) को सुनकर सुदास की सेना के लिए रास्ता दे दिया था, उसका नाम व्यास ऋषि के साथ जोड दिया गया। वितस्ता अव जेहलम है। हाँ, सिन्धु अव भी सिन्धु है। शुतुद्रि का पुराना नाम सतलुज में अव भी मौजूद है। सातवी नदी सरस्वती अल्पपरिचित-सी घग्घरकी शाखा मात्र रह गई है, जो कुरुक्षेत्र से होकर वहती है। सातो नदियो को भरद्वाज ने[४] (ऋ ६ ६१ १०) 'सप्तस्वसा सरस्वती' (सात वहने सरस्वती) कहा है। सरस्वती घग्घर मे मिलकर उसी नामसे कुछ दूर जा राजस्थान के रेगिस्तान मे लुप्त हो जाती है। उसकी सूखी धाराका पता वहुत दूर वहाँ तक मिलता है, जहाँ से चनाव - सतलुजका सगम कुछ ही मील रह जाता है, और सिन्धु भी वहुत दूर नही रह जाती।

हो सकता है, सरस्वती ऋग्वेदके काल मे जाके सीधे सिन्धु मे मिलती हो, पर वह हिमालय की हिमानियो से निकलने वाली नदी नही है, जैसी कि उसकी दूसरी छ बहने। घग्घरकी तरह उसकी दोनो शाखाएँ मरकण्डा और सरस्वती भी सिवालिक की तराई से निकलने-वाली छोटी नदियाँ है, जो वर्षाके जलको पाकर ही दो महीने इतरा के चल सकती है। ऋग्वेदमें तराई से निकल कर रेगिस्तान तक जानेवाली नदी का नाम सरस्वती था। जिस क्रम से तीनो नदियो के नाम सतलुज से पहले आये है, उससे जान पडता है,[9] (३।२३।४) मारकण्डा का नाम आपया था, और घग्घर का दृपद्वती।

सप्त-सिन्धुकी भूमि सात बहनो सरस्वतीसे सीची जानेवाली धरती है। इस प्रकार आर्य जनो की भूमि सरस्वती (अम्बाला जिले) मे सिन्धु उपत्यका तक फैली हुई थी। ऋपित्रयमे वृद्धतम भरद्वाजने यमुना का भी नाम लिया है, पर वह सीमान्त की नदी थी। अन्तिम ऋषियोमें से एक प्रियमेधकी सन्तान सिन्धुक्षित्ने[10] (ऋ १०।७५।६) गगाका नाम भी दिया है, पर न वह सप्त-सिन्धुकी नदी थी, न उसे उस समय कोई प्रतिष्ठा प्राप्त थी। यह भी उल्लेखनीय बात है, कि आज की यह सर्वपुनीत नदी अपने अनार्य (सम्भवत किरात) नामसे प्रसिद्ध है। ऋग्वेदमे गगा का नाम सिर्फ एक बार यही नदी-सूची में आया है। यह सूची बहुत महत्त्वपूर्ण है, इसमे शक नही। इसमे गगासे लेकर अफगानिस्तान के पहाडो तककी नदियोके नाम क्रमश पूरब से पच्छिमकी ओर गिनाये गये है—गगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री, परुष्णी (रावी), असिक्नी (चनाव), मरुद्वृधा, वितस्ता (जेहलम), आर्जिकीया, सुषोमा, तृष्टामा, रसा श्वेत्या, सिन्धु, कुभा, गोमती, क्रमु, मेहत्नु। सुषोमा शायद रावलपिण्डी की तराई मे निकल कर अटक से काफी नीचे सिन्धु में जाकर गिरने वाली छोटी नदी सोहान है। सोहान हमारे इतिहास की एक पुनीत नदी है, क्योकि इसकी ऊपरी उपत्यका हमारे देश के उन चन्द स्थानो मेंसे है, जहाँ खुशालगढ और मक्खड मे पुरापाषाण युगके

नदीके ऊपरवाले प्रदेशका नाम मालूम होता है, जो आर्जिकीयाके क्षेत्रमें पडता था।

सप्तसिन्धुकी दक्षिणी सीमा राजस्थानकी महामरुभूमि थी। मरुको वेदमें धन्व कहा गया हैं, पर इस महाधन्वका वहाँ स्पष्ट वर्णन नही मिलता। मध्य-एसिया के घुमन्तुओकी तरह आर्य व्यापार (पण्य) और व्यापारियो (पणियो) को घृणाकी दृष्टिसे देखते थे (२।२४।६) [१]। पर, उन्हें पता था, कि व्यापारके लिए समुद्रमें नावें चलती हैं।[२२] (६।५८।३)। सिन्धु उस समय नदियोका साधारण और सिन्धुनदका विशेप नाम था। अर्ण (अर्णव) भी नदियोको कहते थे। पीछे इन शब्दोका प्रयोग समुद्रके लिए किया जाने लगा। पर, महासागरको तव भी समुद्र कहते थे। सप्तसिन्धुसे वडी-वडी नावें सिन्धुनद होकर ही समुद्रमें पहुँचती होंगी। निम्न-सिन्धु उपत्यकामें आर्य जरूर गये। वही उनके प्रतिद्वन्द्वियो का महान् नगर था, जिसके भव्य ध्वसावशेप आज मोहन-जो-डरोके नामसे प्रसिद्ध है। निम्न-सिन्धु सप्तसिन्धुके भीतर था, यह कहना मुश्किल है। वहाँ किसी परिचित जनका वसना निश्चित नही मालूम होता। चाहे सप्तसिन्धुके भीतर यह भाग न गिना जाता हो, पर वह ऋग्वेदिक आर्योंके अधीन था और उस के रास्ते पणनके लिए जानेवाले पणि आर्योकी नजरमे हीन होते हुए भी उनके लिए पशु और अन्नसे भी महार्घ धनको प्रस्तुत करते थे। उनकी सहायता विना आर्य न "निष्कग्रीव" हो सकते थे, न "रुक्मवक्ष" (छातीपर सोना झुलानेवाले)।

पणि आर्योंके पुराने तथा दक्षिण दिशाके शत्रुओमेंसे थे, जिनके साथके सघर्प ऋग्वेदके समयमे वहुत पूर्व ही समाप्त हो चुके थे। अव उनके सघर्प जिन शत्रुओसे हो रहे थे, वह पहाडके निवासी अर्थात् हिमवन्तवासी किरात थे।

अध्याय २

आर्य-जन

§१. सिंधु-सभ्यता

ऋग्वेद उस समय नही अस्तित्व मे आया, जबकि आर्य पहले-पहल सप्तसिन्धुमें आकर बसे। आर्योका सप्तसिन्धु में छा जाना शान्तिपूर्वक नही हुआ। अपने से अधिक सभ्य तथा नागरिक होनेसे अपेक्षाकृत मृदुल-प्रकृति वाले प्रतिद्वन्द्वियोसे उनका खूनी सघर्प १५०० ई० पू० के आस-पास हुआ था। हडप्पा की खुदाईमें ऐसे निर्मम हत्याकाण्डका प्रमाण मिला है, जिसका उल्लेख मोर्टिमोर ह्वीलर ने अपनी पुस्तक[१] 'इण्डस् सिविलिजेशन' में किया है। ऋग्वेदमे इन्द्र-वृत्र के युद्ध के रूपमें इसकी बहुत क्षीण-सी प्रतिध्वनि आती है, जिसे फिर इन्द्र-शम्बर के युद्ध से मिलाया गया है। सभी जनयुगीन जातियोकी तरह आर्य-पुरोहित अपनी सभी बडी-बडी सफलताओ का श्रेय अपने देवता को देना चाहते थे, इसीलिए, अपने भरतो और दूसरे आर्य-जनो के साथ मिल कर पहाड (जलन्धर खण्ड) के किरात राजा शम्बर से अनेक जबर्दस्त लडाइयां लडते ४० वर्ष बाद दिवोदास विजयी होने में सफल हुआ, उसका सारा श्रेय उस काल का पुरोहित-वर्ग (ऋषि) अपने आराध्य इन्द्र को देना चाहता है। ऋग्वेद के इन स्थलोको पढने से मालूम होता है, कि पराक्रमी दिवोदास महान् इन्द्र के एक हथियार से बढ कर कुछ नही था।

---

१ Indus Civilization—M Wheeler, Cambridge History of India, appendix

यह वतला चुके हैं, कि ऋग्वेदके ऋषि भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र तथा उनके यजमान दिवोदास, सुदास आर्यों के सप्तसिन्धु में प्रवेश करने से वहुत पीछे पैदा हुए थे, इतना पीछे जवकि उनकी भापा में मूर्धन्य उच्चारण वाले टवर्ग, और ळ जैसे रूपान्तर का सन्निवेश हो चुका था, और प्रथम सघर्ष की वहुत ही क्षीण-सी स्मृति रह गई थी। उच्चारण तक में परिवर्तन आना वतलाता हैं, कि विजेताओंका अपने विजितोंके साथ कहाँ तक घनिष्ठ सम्वन्ध हो चुका था। ऐसी घनिष्ठता के पक्षपाती न उनके ऋपि थे, न जन-साधारण, पर आर्योंके लिए मजवूरियाँ भी थी। उन्हें काम करने के लिए दास चाहिये थे। उनको अपने भूतपूर्व शत्रुओ के कितने ही विलास-साधनो को अपनाने में एतराज़ नही था। आर्यों ने वस्तुत सिन्धु की पुरानी सभ्यता को ध्वस्त करने, समाज के चक्र को उल्टे घुमाने की कोशिश की थी। वह अपने साथ लाए घुमन्तू जीवन को ही वरकरार नही रखना चाहते थे, वल्कि नगरो और नागरिक जीवन से ससार-विजेता चगेज़ के मगोलो की तरह ही घृणा करते थे। उनके विजेता दिवोदास और सुदास के किसी नगर या राजधानी का उल्लेख नही मिलता। अश्वो और गायो को ही अपना परम धन मानने वाले वह नगरो में रह कैसे सकते थे? अश्व-गो-पालक आर्योंने कैसी सस्कृतिका स्थान लिया था? सिन्धु-सभ्यता के धनियो के पास मोहन-जो-डरो जैसे भव्य नगर थे, जिसके वारे में एक अग्रेज़ लेखक ने लिखा है— "मालूम होता है, हम आज कल के लकाशायर जैसे किसी नगरके ध्वसो से घिरे खडे हैं।" वहाँ, उत्तरसे दक्खिनकी ओर जानेवाली सडक इतनी चौडी थी, जिसपर पहियेवाली सवारियाँ और पादचारी मज़े में चल सकते थे। नगरको एक सुव्यवस्थित योजना के अनुसार वनाया गया था। सडकें ९ से ३४ फट तक चौडी थीं, जिनमें से कोई-कोई आधी मील तक ऋजु चली गईं थी। वह एक दूसरे को समकोण पर काटती चौरस्ता वनाती थी। प्रत्येक वीथी और सडक पर सार्वजनिक उपयोग के कुँए थे। अधिकाश घरोंमें अपने निजी कुँए और

नहान - कोट्ठक थे। पानीके निकलने के लिए नालियाँ और मोरियाँ इस तरह लगाई गई थी, जिससे कितने ही आजकलके नगरोको भी ईर्ष्या हो सकती है। अमीरो, व्यापारियो, शिल्पियो और मजदूरो के मुहल्लो को उनके ध्वसो को देखकर बतलाया जा सकता है। नगर देखने मे 'एक लोकतान्त्रिक पूँजीवादी नगर' सा दीख पडता है। मकान अधिकतर पक्की ईंटोंके बने थे, जो आकार-प्रकार में आजकल की ईंटो-सी और रगमे मटमैली लाल सूर्ख थी। उनका जोड इतना बारीक है, कि उसमे बारीक चाकू के फल को घुसाना मुश्किल है।

हरेक घर बहुत सुखद और स्वच्छ था। सबसे छोटे घरोंमे दो कमरे थे, और बडे-बडे घर तो महल जैसे थे। बीच में ईंटो से बिछा आँगन था, जिसके किनारे कमरे, उनके द्वार और खिडकियाँ थी। मुख्य दरवाजा सडक की ओर खुलता था। हरेक घरका नहान-कोट्ठक सडक के पास होता था। नीचे की ही मजिल में नही कोठो पर भी नहान-कोट्ठक थे। पाखाना शायद छत पर होता था, जैसा कि पञ्जाब के पुराने घरो मे देखा जा सकता है। यह भी पता लगता है, कि शहर मे सडको पर रात को दीपक जला करते थे।

लोग गेहूँ और जौ की खेती करते थे। धान, तिल और मटर भी पैदा की जाती थी। कम-से-कम पिण्ड-खजूर के फल उनके खानेमें था। झीलो, नदियोकी ताजी मछलियो के अतिरिक्त वे गाय, बकरी, भेड, सूअर, मुर्गी ही नही कछुए और घडियाल के मांस को भी खाते थे। भैंस, हाथी और ऊँटकी हड्डियाँ भी वहाँ मिली है, अर्थात् वे बैल, भैंस, हाथी और ऊँट का इस्तेमाल जानते थे।

वे सूती-ऊनी कपडे पहनते थे। आम तौर से एक कपडा धोती की तरह पहना जाता और दूसरा उपरने या चादर के तौर पर जनेऊ की तरह दाहिना कन्धा खुला रखकर। स्त्रियोकी पोशाक भी पुरुषो की तरह ही थी। वे कुषाणोंके आने से पहले तक की हमारे यहाँ की स्त्रियो की तरह सिर को पगडी या कपडेमे ढाँक कर रखती थी। पुरुषोंके बाल लम्बे

होते थे, जिनको माँग फाड कर रखा जाता था। मूँछ छँटी और दाढी छोटी या छँटी रखते थे। स्त्रियोको सोने, चाँदी, ताँवे, पीतल और मिट्टी-पत्थरके जेवरो से वहुत प्रेम था। पुरुप कडा, कण्ठमाला और अँगूठी पहनते थे, केशो का चूडाभूपण भी उन्हें प्रिय था। स्त्रियाँ मुखचूर्ण और काजल ही नही शायद अधरराग का भी इस्तेमाल करती थी।

घर के सामान मे ताँबे या पीतल की सूइयाँ, कुल्हाडा, आरा, हँसिया, चाकू, मछली की वन्सी आदि का इस्तेमाल होता था। नाप-तोल के सावनोसे पता लगता है, कि वे उनका विभाजन आजकल के रुपयों की तरह सोलह मे करते थे।

लडने के लिए उनके पास ताँवे या पीतल के फरसे, भाले, कटार, तलवार थे। धनुप-बाण भी थे, जिनमे फल ताँवे-पीतलके होते थे। ताँवेकी पतली चादरोसे कवच वनाना भी वे जानते थे। गदाएँ उनकी पत्थर की थी।

सोने-चांदी, दूसरी धातुओ और रत्नो के लिए उनका सम्वन्ध मैसूर, कारमीर, पूर्वी भारत ही नही, मध्य-एसिया और पश्चिमके देशो से भी था। उनकी नावे समुद्र मे चलती थी, और मसोपोतामिया ही नही शायद मिस्र से भी वह व्यापारिक सम्वन्ध रखते थे। उनके ऊँचे वर्ग में पुरोहित, योद्धा और व्यापारी थे। व्यापारियो का ऐश्वर्य और प्रभाव कम नही था। पुरोहितो और योद्धाओ का प्रभाव आर्यो की विजय के बाद कम हो गया होगा, पर व्यापारी तव भी अपना महत्त्व रखते थे। पणि कहकर आर्य उनकी लोलुपता को घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। पणि शब्द मालूम नही किस भापा का है, आर्य-भापाका शायद नही है। यद्यपि सस्कृत मे पण् धातु क्रय-विक्रयके लिए आता है, पर इसका अभाव भारत के वाहर की स्ववशीय भापाओमें वत-लाता है, कि यह उधार लिया हुआ है।

फाग्री सिन्धु-सभ्यता का समय २८००–२५०० ई० पू० मानते हैं, ह्वीलरके अनुसार यह समय २३००–१५०० ई० पू० हैं, अर्थात् उसका अन्त और आर्योका आगमन एक ही समय होता है।

हम देख चुके, आर्यो ने कैमी सभ्यता और भौतिक जीवन के नष्ट करने का प्रयत्न किया था। वस्तुत, अश्वको छोड वह कोई नई चीज़ देने मे असमर्थ थे। मोहन-जो-डरो, हडप्पा तथा ऐमे ही कितने और नगरो के सहार के वाद सप्त-सिन्धुकी विजित भूमि को पशुपाल आर्य-जनोने आपस मे बाँटकर उसे गोचर-भूमि मे परिणत कर दिया। वहुत मे नगर वीरान हो गए। गाँवोके भी वहुत-मे लोग पूर्व और दक्षिण की ओर भाग गए। जो रह गए, उन्हें विजेताओने दाम या कमकर वना लिया। मोहन-जो-डरोकी भूमि किसी अल्पपरिचित आर्य-जन ने मँभाली, इमीलिए उसका नाम ऋग्वेद मे नही मिलता। प्रवान जनो ने मिन्वु मे पूर्व की भूमि पर अविकार किया। जहाँ जो जन वमा, उम भूमि या जनपद का नाम उस जन के नाम पर पटा। जनो का नाम भी पहले किमी पूर्वज या प्रवान व्यक्ति के नाम पर ही पडा होगा। पर, प्राचीन आर्य-जनो के ऐमे नामकरण का पता लगाना मम्भव नही है। कुरु (कोरोश्), मद्र (मेद)जैमे ईरान मे भी प्रचलित नाम वतलाते है, कि कुछ आर्य-जन अपने इम नाम मे भारत मे वाहर भी प्रमिद्ध रहे। मिन्वु - विजय के ममय के उनके नामोका पता नहीं है। ऋग्वेदके ममय आर्यो के पाँच जन मुख्य थे। सारी आर्य-प्रजा को वल्कि पञ्चजेन, पञ्चचर्पणि, पञ्चक्षिति कहना वतलाता है, कि शायद वह पहले पाँच ही जनो में विभक्त थे। लेकिन ऋग्वेद के जनो की सख्या एक दर्जन मे भी अधिक है, जिममे यह निश्चय करना मुश्किल है, कि इनमे मवसे पुराने जन कौन रहे होगे।

यदि मूल आर्य-जन-जिन्होने सिन्धु-विजय किया था-पाँच थे, और अव उनकी मख्या एक दर्जन, तो यह इमी वातको वतलाता है, कि तव तक आर्योको आए काफी ममय वीत चुका था। यह भी उल्लेखनीय वात है, कि ऋग्वेदके प्रमुख आर्य-जन निम्न मिन्धु या उमके पासके इलाके मे—जहाँ मोहन-जो-डरो और हडप्पा है—नही रहते थे, वह मिन्धु मे ही नही वितस्ता (जेहलम्) और असिक्नी (चनाव) मे

भी पूर्व रहते थे। पांच जनो में सबसे प्रतापी पुरु लोग सप्तसिन्धु के पूर्वी छोर पर बसे हुए थे, जो यही बतलाता है, कि ऋग्वेद के समय में ही आर्यों का प्रतापकेन्द्र पूर्वकी ओर काफी दूर हट गया था। ब्राह्मण-उपनिषत्-काल (ई० पू० सातवी सदी) मे यह और भी पूर्व की ओर हटकर पश्चिमी उत्तरप्रदेश (कुरु-पञ्चाल) में पहुँच गया, जहाँ से अगली शताब्दी मे (बुद्ध से थोडा पहले) काशी-कोसल और उससे अगली शताब्दी मे मगध पहुँचकर हमारे ऐतिहासिक काल से मिल गया।

§२ आर्य-जन

१. पाच जन

(१) पुरु—यह जन ऋग्वेद-काल से कुछ पहले एक जन के रूप में, जान पडता है, परुष्णी (रावी) के पूर्व में रहता था। ऋग्वेद के समय इसकी कई शाखाएँ हो चुकी थी, जिनमे भरत, तृत्सु और कुशिक का नाम हमें मालूम है। कुशिक के नेता विश्वामित्र सुदास के परम - समर्थक थे। भरतो की एक शाखा तृत्सु थी। भरतो के मुखिया वध्र्यश्व, दिवोदास और सुदास—तीनो पितामह, पिता और पुत्र थे। दिवोदास-सुदास को पुरु-भरत भी कहा जाता था, और वह तृत्सु के भी मुखिया थे। इससे जान पडता है, अभी इन जनो में उतना बिगाड नही हुआ था। पीछे मूल जन पुरु अपनी शाखा भरतजन से इतना हट चुका था, कि दाश-राज्ञ युद्ध में उसने भरतो का नही बल्कि उनके शत्रुओ का साथ दिया।

भरत कभी परुष्णी (रावी) के तीर पर रहते थे, पर आज उनके नाम पर हमारा सारा देश प्रसिद्ध है। सिन्धुने यदि भारत से बाहर हमारे देश को अपने नाम पर प्रसिद्ध किया, तो देश में परुष्णीके तीर - वाले भरतोने अपना नाम हमारे देशको दिया। पुरुओ की भरतो द्वारा पराजय मे वसिष्ठ का भी हाथ था। उन्होने कहा है' (७।८।४) अग्नियो ने भरत की (प्रार्थना) सुनी, युद्ध मे पुरुओ के विरुद्ध खडे हुए। दाशराज्ञ युद्ध

का वर्णन करते समय (७।१८।१३)-वह फिर दुष्ट वचन वोलनेवाले पुरुओ को युद्धमें पराजित करनेके लिए इन्द्र की प्रशसा करते है। पुरुओके साथ तृत्सुओका ऐसा वुरा सम्वन्ध दिवोदासके समय नही था। दिवोदास के पुत्र परुच्छेप ऋषि ने[1] (१।१३०।७) वल्कि[2] दिवोदास को मूल-जन के सम्पर्क के कारण पुरु कहा है। पर किमी समय दिवोदास का पुरुओ से झगडा भी हो गया[1] (७।८।४)। पुरुओ के तीन राजाओ के नाम ऋग्वेद में मिलते हैं—पुरुकुत्स, तत्पुत्र त्रसदस्यु, तत्पुत्र कुरुश्रवण। कुरुश्रवण नाम से यह भी पता लगता है, कि भावी कुरु-वश का विकास पुरुओ मे हुआ।

(२) यदु—ऋग्वेद का यह एक ऐमा जन है, जिसका पीछे भी पता लगता है। मथुरा का यदुवश कृष्ण के कारण प्रसिद्ध है। करौली के राजा व्रज में ही है, जो सम्माननीय यदुवशी माने जाते है। जैसलमेर के भाटी भी यादव है, और उनसे अपना सम्वन्ध जोडनेवाले नाहन (सिरमौर) के पर्वतीय राजा भी यादव कहे जाते हैं। मुसलमानो द्वारा ध्वस्त देवगिरि (दौलताबाद) महाराष्ट्र का एक शक्तिशाली राज्य भी यादव था। इस प्रकार मथुरा, राजस्थान, हिमालय ही नही सुदूर दक्षिण तक यदुओ का विस्तार रहा, पर ऋग्वेद-कालमें वह मप्त-सिन्धुमें ही और नोभी काफी पश्चिममे रहते थे। पुरु तो घरके ही शत्रु थे, पर पिता-पुत्र दिवोदास और सुदास को मबमे अधिक मघर्ष यदु और तुर्वश जनो से करना पडा था। तुर्वश और यदु की जोडी थी, जिसमे इनके कुल या स्थान की घनिष्ठता मालूम होती है। वहुत-मे स्थानो में मगलकामना या नाशकामना में इन दोनों जनो का नाम साथ आता है। अगस्त्य (शायद घनिष्ठके भाई) ने एक स्थान पर[4] (१।१७४।९) इन दोनो के लिए इन्द्र से मगलकामना करते हुए कहा है—"इन्द्र, तुम तुर्वश और यदु का पालन और मगल करो।" सव्य आगिरस ने भी[1] (१।५४।६) इन्द्र से प्रार्थना की है—"शतक्रतो, तुमने नर्य, तुर्वश, यदु की रक्षा की, तुमने तुर्वीति की (रक्षा की)।" कण्व के पुत्र वत्स भी तुर्वश-यदु की मगलकामना करते

हैं[६] (८।७।१८)—"(मरुतो), क्योंकि तुमने तुर्वश-यदुकी, धनेच्छुक (मेरे पिता) कण्वकी रक्षा की, धनके लिए मैं (भी) तुम्हारा ध्यान धरता हूँ।" यदुओ और तुर्वशो के पुरोहित कण्व और उनके पुत्र वत्स आदि थे, इसलिए वह अपने यजमान की अमगल कामना कैसे कर सकते थे? लेकिन इससे उल्टा वसिष्ठ चाहते हैं[७] (७।१९।६८)—"मघवन्, अतिथिसेवक (सुदास) की भलाई करनेवाले हो, तुम तुर्वश और यादव को पराजित करो।"

(३) तुर्वश—ऋग्वेद में तुर्वश का नाम वरावर यदु के साथ आता है। दोनो के पुरोहित कण्व, तत्पुत्र वत्स और उनके वशज थे। भरतो और पुरुओ ही ने नही अनार्य शत्रुओका मुकावला किया था, वल्कि इन्होने भी उन्हें पराजित कर पञ्च जनो मे नाम कमाया था। अत्रि (ऋग्० पाँचवें मण्डल के रचयिता) और उनके वशज वैसे पुरुओ के पुरोहित थे, जो सतलुज से पूरव में रहते थे, पर अवस्यु आत्रेय यदु-तुर्वश के भी प्रशसक थे[८] (५।३१।८)—"इन्द्र, तुमने यदु और तुर्वश को इच्छापूरक (सुदुघा) जल (या नदियाँ) प्रदान किए।" भरतो के पुरोहित होने से भरद्वाज तुर्वशो की सफलताओ का गान नही कर सकते थे। उन्होने सृजयो के हाथ तुर्वशो की पराजय का उल्लेख किया है[९] (६।२७।७)—"उस (इन्द्र) ने सृजय के हाथ मे तुर्वश दे दिये।" भरद्वाज वृहस्पतिके पुत्र थे। वृहस्पतिके दूसरे वशज शयु इन्द्रकी स्तुति करते तुर्वश-यदुका गुणगान करते हैं[१०] (६।४५।१)—"वह तरुण इन्द्र हमारा सखा है, जो तुर्वश और यदु को दूर (पच्छिम) से अच्छी तरह लाया।"

तुर्वश और यदु भरतोके प्रतिद्वन्द्वी थे, जिनके मुखिया दिवोदास और सुदास थे। उधर सृजयोंसे तुर्वशोकी पराजय वतलाती है, कि वह इनकी भूमिके नजदीक रहते थे। जान पडता है, ये दोनो जन शतद्रु (सतलुज) और परुष्णी (रावी) के निचले भागोमें नदीके दोनो तरफ ऐसी जगह वसते थे, जहाँ से सतलुज-व्यास (विपाश्) के वीच वसनेवाले सृजयोकी भूमि पास पडती थी। शयुके कहनेसे मालूम होता है, कि पहले ये दोनो जन

कही दूर (शायद सिन्धु के पास) रहते थे, जहाँ से आकर वह इस भूमिमे वस गए। यद्यपि वह उसी इन्द्रके "लाए हुए थे", जिसके भक्त भरत और सृंजय जन भी थे, पर उनका स्वार्थ एक दूसरेका अविरोधी नही था। भरतोने जब अपनी प्रभुता सारे सप्तसिन्धु पर फैलाकर उसे एकतावद्ध करना चाहा, तो उनका सबसे अधिक मुकावला तुर्वशो और यदुओने किया।

(४) द्रुह्यु—पच जनोमेसे एक इस प्रतापी जनके पुरोहित भृगु थे। कुत्स आंगिरस अपनी एक ऋचा" (१।१०८।८) में आर्योके दोनो प्रधान देवताओ—इन्द्र-अग्निकी महिमा गाते उनके वास-स्थान अथवा उपासकके तौर पर पाँचो जनोका नाम लेते कहते है—"हे इच्छापूरक, इन्द्र-अग्नि जो तुम (दोनो) यदुओमें, तुर्वशोमें, द्रुह्युओमे, अनुओमें, पुरुओमें रहते हो, वहाँसे आकर तैयार किए हुए (हमारे) सोमको पियो"। यदु-तुर्वशके वाद और पास-पासमे द्रुह्यु-अनुके जनपद थे। सभी पाँचो जन इन्द्र और अग्निके भक्त थे। द्रुह्यु, पुरुओ और तृत्सुओके जैसे वलशाली थे, यह शयु वार्हस्पत्यकी निम्न उक्ति" (६।४६।८) से मालूम होता है—"हे मघवन्, तृत्सु, या द्रुह्यु अथवा पुरु जनमें जो कुछ वल है, उसे अमित्रोको युद्धमें हरानेके लिए हमें दो"। लेकिन वसिष्ठ अपने यजमान सुदासके इन प्रतापी शत्रुओको फूटी आँखो भी नही देख सकते थे। दाशराज युद्धमे सुदासके इन प्रतिद्वन्द्वियोको भारी हानि उठानी पडी, यह वसिष्ठकी निम्न ऋचाओ" (७।१८।६७१२, १४) से मालूम होता है—"धनके लिए तुर्वशोने, भृगुओ और द्रुह्युओने (इन्द्रके) सखा (सुदासका) मुकावला किया—(६)। "श्रुत कवष, वृद्ध और द्रुह्युको वज्रवाहु (इन्द्र)ने पानी (नदी) मे डुवो मारा" (१२)। "गाय (छीनने) की इच्छावाले अनुओ और द्रुह्युओंके छियासठ हजार छियासठ वीर (मरकर) सो गए,—" (१४)। इससे मालूम होता है, अनुओ, द्रुह्युओ और पुरोहित कुलवाले भृगुओने मिलकर सुदासपर आक्रमण किया था। शायद वह सीमान्तकी नदी (परुष्णी, रावी) को पारकर भरतोकी भूमिमें आगए थे। नदीके पास लडाई हुई, जिसमें हारकर भागते हुए उनके श्रुत कवष जैसे मुखिया नदीमे डूव गए और रणक्षेत्रमें उनके छियासठ हजारसे

अधिक आदमी मारे गए। द्रुह्यु और अनुकी भूमि परुष्णी (रावी) के पश्चिम वितस्ता (जेहलम्) तक फैली थी। द्रुह्यु ओंके उत्तरमे अनु और दक्षिणमें तुर्वश लोग रहते मालूम होते हैं। स्थानका निर्देश ऋचाओमें नही मिलता। किस पानीमे इतने सरदार डूब गए, इसका भी उल्लेख नही मिलता, पर दाशराज्ञ युद्धके पश्चिमी जनोंने परुष्णीको पकडकर एक बार सुदासकी स्थिति भयानक बना दी थी, यह हम पक्थोंके प्रकरणमे बतलाएँगे, जिससे परुष्णीके पश्चिम ही द्रुह्यु ओका निवास माना जा सकता है।

(५) अनु—यह आर्योंके पाँच प्रधान जनोमें एक तथा द्रुह्युओंका जोडीदार था। छियासठ हजार मारे जानेवालोमें इनके वीर भी रावीके किनारे सदाके लिए सो गए थे। अनु कितने महत्त्वशाली थे, यह अवस्यु आत्रेयकी एक ऋचा[१४] (५।३१।४) से मालूम होता है, जिसमें उन्हें इन्द्रके रथका निर्माता बतलाया गया है। तुर्वशोंके पुरोहित कण्वके वंशज देवातिथिका तो अपने यजमानोंकी तरह अनुओंके प्रति विशेष पक्षपात मालूम होता है। वह कहते हैं[१५] (८।४।१)—"इन्द्र यद्यपि (तुम्हें) पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण (चारो ओर) से आदमी आह्वान करते हैं, लेकिन तुम तुर्वशो और अनुओंके लिए अधिक बुलाए जाते हो।" पर सौ जादू जाननेवाले (शतयातु) वसिष्ठ[१६] (६।६२।९) झूठे (द्रोघवाक्) अनुओंके ऊपर अश्वि देवता-युगलका हथियार गिरवाना चाहते हैं।[१७]

२. अन्य जन

इन पाँच मूल जनोके अतिरिक्त और भी कुछ जनोका उल्लेख ऋग्वेदमे मिलता है। उनमें कितने ही सिन्धु और असिक्नी (चनाब) के बीचके भी थे, जिन्होंने सुदासके विरुद्ध हथियार उठाए थे। पर उनसे अधिक उन जनोंके निवासका पता मिलता है, जो सिन्धुके पश्चिममें रहते थे। इनमें पक्थोका नाम पहले आता है।

(६) पक्थ—सुदासकी महत्त्वाकांक्षाको असफल करनेके लिए जिन दस राजाओ (जनो) और दूसरे कितने ही आर्यजनोंने तलवार उठाई थी,

उनमें पक्थ भी थे। पक्थ जन अब भी पख्तून (पठान) के नामसे सिन्धुके पश्चिममे काबुल तक बसा हुआ है, यद्यपि उनके बारेमें यह नही कहा जा सकता, कि वह केवल पक्थोंके वंशज है। शायद अलिन, गन्धारि, विषाणि और भलानस भी आजके पख्तूनोंके रूपमें हमारे सामने मौजूद है। पक्थ अश्विद्वयके उपासक आर्य थे। कण्वपुत्र सोभरिने[१७] (८।२२।१०) इन जमुर्य देवताओंकी प्रार्थना करते हुए कहा है—"जिन (प्रेरणाओ) से तुमने पक्थकी, अध्रिगुकी और बभ्रुकी रक्षा की, उनके साथ हमारे पास जल्दी आओ, (और) व्याधिग्रस्त की चिकित्सा करो।" सुदासके इन विरोधियो का उल्लेख करते हुए वसिष्ठ कहते है[१८] (७।१८।७-९)—"पक्थ, भलान, अलिन, विषाणी, शिव (जब) आए, तो तृत्सुओंके नेता आर्य की गाये युद्ध करके (बचा) ले आए। दुष्टो, भूलोने परुष्णी (रावी) को आ पकडा।"

(७-९) भलान, अलिन, विषाणी—उपरोक्त ऋचामे दाशराज्ञ युद्धके एक प्रमुख नेता वसिष्ठ पक्थोंके साथ इनका भी नाम लेते है, अत ये पक्थोंके पडोसी जन होगे। भलान नाम अब भी बोलान दर्रेके नामसे सुरक्षित है, इससे जान पडता है, कि बाकी दो जन भी सिन्धु पारके लोग थे।

✓ (१०) शिव—यह शायद पीछेका शिवि देश वाला जन था, जो सिन्धुके इस पार जेहलम् (वितस्ता) से पश्चिम रहता था, और जिनके नाम वाला एक अभिलेख शोरकोटमें मिला है। सुदासके प्रतिद्वन्द्वी ये दस राजा मिलकर लडे थे, जिसके कारण वह युद्ध दस राजाओंके युद्ध (दाशराज्ञ-युद्ध) के नामसे ऋग्वेद और पीछेके ग्रथोमें प्रसिद्ध हुआ।

इनके अतिरिक्त सुदासके शत्रुओमे निम्न जन या व्यक्ति भी गिनाए गए है, जिनमेंसे दो-तीन को छोड बाकीके लिए यह कहना मुश्किल है, कि यह नेता थे, या जन—

(११) शिम्यु (जन), (१२) श्रिवि (जन), (१३) मत्स्य (जन), पीछे यह जन आधुनिक जयपुरवाले प्रदेशमें रहता था।

(१४) वैकर्ण (व्यक्ति ?), (१५) कवष, (१६) देवक मन्यमान, (१७) चायमान कवि, (१८) सुतुक, (१९) उचथ, (२०) श्रुत, (२१) वृद्ध, (२२) मन्यु, (२३) पृथु, (ये सब व्यक्ति)। सबसे बलवान् जन था (२४) भरत, जो कि पुराने पुरुओकी एक शाखा थी, यह हम बतला आए ह। भरतोकी शाखा तृत्सु थे। दिवोदास और सुदास भरत भी कहे गए हैं, और तृत्सुओंके उन्नायक भी। यद्यपि एक समय तृत्सुओंसे सुदासकी खटपट भी देखी जाती हैं, पर उससे उनका और तृत्सुओका घनिष्ठ सम्बन्ध असिद्ध नही होता।

इन एक दर्जन आर्य जनोमें पाँच बहुत पुराने थे। यह पाँचो भी एक ही जगहके स्थायी निवासी नही थे, यह शयु बार्हस्पत्यके इस कथन" (७।४५।-१) से मालूम होता हैं—इन्द्र उन्हें सुदूर पश्चिमसे (परावत) लाया था।

अथर्व ऋग्वेदसे पीछे (प्राय ई० पू० सातवी-आठवी सदी) की कृति है, उसमे पूरबमें अग-मगधसे पश्चिममे बाह्लीक (बलख) तक के देशोके नाम मिलते हैं, जैसे—अग, अन्तदेश, गन्धार, धन्व (मरुभूमि), पटूर, बह्लिक, मगध, मघ, मुजवत्, रुम (मरु), रुशत्, विक्षर, सोन्त देश। ऋग्वेदमें निम्न देशोके नाम भी आते हैं—

(१) उदव्रज (पानी और गोचर भूमिवाला देश, शायद कागडा मे नूरपुर के पास)।
(२) कीकट (यह मगध नही, सप्तसिन्धु के पास ही कोई देश था।
(३) क्रुत्वन्।
(४) गाग्य (गगावाला प्रदेश, जो पीछे कुरुदेश कहलाया)।
(५) गुगु (शायद कोई आर्य-भिन्न देश)।
(६) दुर्ग (?)
(७) यक्षु (गगा-यमुनाके बीच गाग्य देशमें ही किसी आर्य-भिन्न जनका देश)।

(८) रुशम (?)
(९) वेतसु (?)
(१०) सरस्वतीवत्, सारस्वत (कुरुक्षेत्रकी सरस्वतीके पासका देश)।
(११) सिन्धु (निम्न सिन्धवाला देश)।

अथर्ववेदके समयमें आर्योकी पहुँच अग और मगध तक अर्थात् बगालकी सीमातक हो गई, पर ऋग्वेदमे वह सप्तसिन्धु तक ही रहते थे, यही उनके जन अपना स्वतन्त्र पशुपाल जीवन विताते थे।

भाग २

सामाजिक, आर्थिक

अध्याय २

वर्ण और वर्ग

§१ वर्ण (रंग)

ऋग्वेदिक आर्योंके काल (ई० पू० १२००-१०००) मे भारतमें चार जातिया मुख्यत वसती थी, जिनमें कोल या कोलारी (निपाद, आस्ट्रिक) सप्तसिन्धुसे बहुत दूर रहते थे, इसलिए उनमे उस समय आर्योंका कोई सबध नही था। आर्योंके घनिष्ट सम्पर्क और सघर्पमे आनेवाले (१) मोहनजोडरो और हडप्पाकी सभ्य जाति—द्रविड और (२) कश्मीरसे आसाम और आगे के पहाडो तथा तराईमे वसनेवाली जाति किर या किरात (मोन्-ख्मेर) मुख्य थी। आते ही आर्योंको नागरिक द्रविडोंसे पहले भुगतना पडा। फिर सप्तसिन्धुमें छा जानेके बाद जब वह हिमालयकी तराई और उसके भीतर घुसने लगे, तो उनका सघर्प किरोंसे हुआ। ऋग्वेदिक आर्योंका वास्ता किरातो और उनके नायको शम्बर, चुमुरि आदिसे पडा था, यह भी हम बतलाने वाले हैं। द्रविड और किरात दोनोंमें ऋग्वेदने कोई भेद नही किया और दोनो हीको कृष्णचर्म, कृष्णयोनि या कृष्णवर्ण कहा है। यद्यपि किरात कृष्ण नहीं, वल्कि पाण्डुवर्ण मगोलायित थे। उनके चेहरेमें द्रविडोंसे काफी अन्तर था। आज भी तिब्बती और मुण्डा मनुष्य के चेहरेको देखकर यह भेद स्पष्ट जाना जा सकता है। आर्योंने दोनोको कृष्ण, दस्यु या दास कहा। किसी भी विजेता जातिको, यदि वह विजितको अपना साझीदार नहीं बनाती तो, वर्णभेद कायम रखना पडता है। आज दक्षिणी अफरीकामें विशेष तौरसे और अफ्रीकाके दूसरे भागोंमे सामान्य तौरसे यह वर्णभेद देखा जा

रहा है। आजके वैज्ञानिक और जन-जागृतिके युगमें यदि यह अन्धेरखाता, चल सकता है, तो आजसे सवा तीन हजार वर्ष पहलेके बारेमें कहना ही क्या है ?

१. आर्य-वर्ण

ऋग्वेदमें आर्योके वर्णका सविवरण निर्देश नही है, पर अपने देवताओका जो रग-रूप उन्होने वर्णन किया है, वह उनका अपना ही रग हो सकता है। मनुष्य अपने देवताको भी अपने रूपमें देखता है। "यदन्न पुरुषो ह्यत्ति, तदन्न तस्य देवता" (जो भोजन आदमी खाता है, वही उसका देवता भी खाता है), इतना ही नही, बल्कि साथ ही यह भी कहना चाहिए "यद् रूप पुरुषो भवति, तद् रूपा तस्य देवता" (जिस रूपवाला आदमी होता है, उसी रूपवाला उसका देवता होता है)। इस तरह अग्नि, इन्द्र आदिका जैसा रग-रूप ऋग्वेदमें वर्णित है, वही उनके भक्तोका भी था। यह भी ख्याल रखना चाहिये, कि ऋग्वेदिक आर्योसे छ शताब्दियो बाद हुये बुद्ध और हजार वर्ष बाद हुए महाभाष्यकार पतजलिके समय आर्योका जो वर्ण उल्लिखित है, वह भी इसी बातको बतलाता है। आर्य अपना विशेष रग रखते थे। पतजलिने (महाभाष्य २।२।६ में) लिखा है—"गौर शुच्याचार कपिल पिगलकेश इत्येनान् अभ्यन्तरान् ब्राह्मण्ये गुणान्कुर्वन्ति" (गोरा शुद्ध आचारवाला, कपिल, पीले केशवाला इन्हें ब्राह्मण होनेके गुण बतलाते हैं)। यह स्पष्ट है, कि ब्राह्मणका जो जो रूप-रग पतजलिने बतलाया है, वह अपवादरूपेण नही था, क्योकि उसके बाद वर्णके सम्बन्धमें बौद्धो और ब्राह्मणोका जो विवाद हुआ, उसमें ब्राह्मणके इस रग-रूपको प्राकृतिक कहकर वर्णव्यवस्थाको स्वाभाविक साबित करनेकी कोशिश की जाती थी। बुद्धके रगको सुवर्ण-वर्ण और आँखोंके रगको अलसीके फूलके रगका अभिनील बतलाया गया है। अपेक्षाकृत नवागन्तुक और दूसरोंके साथ रक्त-सम्मिश्रण न करनेके लिये उतारू ऋग्वेदिक आर्योका रग जरूर कपिल, केश पीले (पिगल) और आँखोका रग बुद्धकी तरह प्राय अभिनील रहा होगा।

(१) केशोंका रग—ऋषि इपने ऋग्वेद (५।७।७)[१] में अग्निकी मूंछ-दाढी (श्मश्रु) के वारेमे कहा है—"वह पीले दाढीवाले शुचिदात-युक्त वडे और अप्रतिहत वलवान् है।" अगिरस-गोत्री वरुने इन्द्रके श्मश्रु और केशके वारेमें [२](१०।९६।८) कहा है—"जो पीले श्मश्रु, पीले केशवाला पत्थर सा दृढ है।" विश्वामित्रने [३](३।२।१३) अग्निके केशोको भी पीला कहा है—"हम उन विचित्र गतिवाले हरित पिंगल केशवाले सुप्रकाशमान अग्निसे नवीन धनके लिये प्रार्थना करते है।" गोतम राहूगण [४](१।७९।१) के अग्नि भी "हिरण्यकेश (सुनहले केश), मेघ विखेरनेवाले कम्पक, वायुकी तरह शीघ्रगामी, शुभ्र प्रकाश-युक्त है।" हरिकेश और हिरण्यकेशका एक ही अर्थ है, यहा यह स्पष्ट हो जाता है, क्योकि अग्निको पहले हरिकेश कहा गया, और इस मन्त्रमें उसीको हिरण्यकेश कहा गया। यहा पीलेके लिये हरि (हरित) शब्दका प्रयोग किया गया है। सस्कृतका हरित और फारसी जर्द, रूसी ज्रोल्त, अग्रेजी गोल्ड एक ही मूल शब्दके भिन्न-भिन्न रूप है। अभारतीय हिन्दू-युरोपीय भाषाओमे इसका अर्थ अव भी पीला लिया जाता है। यद्यपि पीछे सस्कृतमे इसका वह अर्थ नही लिया गया परन्तु ऋग्वेदके कालमें अभी उस मूल अर्थका त्याग नही हुआ था। इन्द्र और अग्नि दोनो ऋग्वेदिक आर्योके परमपूज्य देवता है। दोनोकी दाढी-मूंछका पीला होना उनके भक्तोकी दाढी-मूंछके पीले होनेको वतलाता है। यदि अग्निकी शिखाओंके स्वाभाविक रग पीले होनेसे उसे अनिवार्य समझा जाय, तो इन्द्रके लिये वह वात नही कही जा सकती। इन्द्रका रूप तो सवल आर्य पुरुषका रूप था।

भरद्वाजने[५] (६।२९।६) इन्द्रकी नासिका या मुखको हरि (पिंगल) कहा है—"इस प्रकार हरित शिप्रवाले इन्द्र सु-आह्वान योग्य है, जो उपस्थित या अनुपस्थित होनेपर स्तोताओको धन देते है; और इस प्रकार वह उत्तम वल-युक्त प्रकट हो दस्युओका हनन करते है।"

वसिष्ठके कथनानुसार[६] (७।३३।१) आर्योका रग श्वेत था। वह अपने कुलवालोंके वारेमें कहते है "कर्मपूरक दक्षिणकी ओर जूडा रखनेवाले श्वेत

वसिष्ठ-सन्ताने मुझे प्रसन्न करती हैं। मैं यज्ञसे उठते कहता हूँ, कि वह मुझसे दूर न जायें।" वसिष्ठने ही मरुत् देवताओंके बारेमे कहा है" (७।५९।-११) "स्वय वलि कवि सूर्यसी त्वचावाले मरुतो, मैं यज्ञको पसन्द करता हू।" सूर्य-त्वक् अर्थात् सूर्यके समान चमडेके रगवाला का अर्थ अत्यन्त गौर वर्ण ही है। अत्रिकी सन्तान अपालाने इन्द्रकी स्तुति करते हुए' (८।८०।७) कृतज्ञता प्रकट की है—"सौ यज्ञ करनेवाले रथके छिद्र और शकटके छिद्रको मूँदनेवाले इन्द्र, तुमने अपालाको सूर्यत्वक् बनाया।" अपाला किसी चर्मरोग से पीडित थी, जिससे मुक्त होनेका इसमें सकेत है।

पिशग हिरण्य या हरित वर्णको ही (पिगल) भी कहते है। गृत्समदने' (२३।१०) पुत्रकी कामना करते हुए कहा है—"त्वष्टा हमें पिशगरूप सुभर आयुष्मान् क्षिप्रकारी देव-भक्त वीर सन्तान दे। देवोका अन्न हमारे पास और आये।"

(२) **शरीर**—इन्द्रका शरीर आर्योके सबसे शक्तिशाली वीरके शरीर जैसा था। उसके वर्णनसे हमें सप्तसिन्धुके किसी पहलवानका सकेत मिलता है। ऋषि इरिन्विठ'[*] (८।१७।८) ने इन्द्रके शरीरके बारेमें कहा है—"बडी ग्रीवा, पुष्ट उदर, सुन्दर बाहुवाले इन्द्र भोजनसे प्रसन्न हो शत्रुओ को मारते हैं।" प्रगाथ कण्व-पुत्रने भी[१२] (८।५३।७)—"वृषभ, युवा, तुविग्रीव (बडी ग्रीवा) न झुकनेवाला इन्द्र है। कौन उसकी सपर्या (पूजा) करता है?"

ऋग्वेदके इन उद्धरणोंसे आर्योके शरीर और वर्ण (रग) का पता लगता है। उनके प्रतिद्वद्वियोके शरीर-लक्षणका पता भी ऋग्वेदकी कितनी ही ऋचाओंसे मिलता है।

२. अनार्य-वर्ण

विश्वामित्रने आर्योके प्रतिद्वद्वियोंके बारेमें कहा है[११] (३।३१।२१) 'शत्रुनाशक गोपति गायें हमें दे। दीप्तिमान् तेजसे कालो (कृष्णो) को

नष्ट करे। सत्यसे अंगिरा सन्तानको गायें दें। उसने सारे दरवाजोंको बन्द कर दिया।"

आंगिरस शुनहोत्र-पुत्र गृत्समदने[१] (२।२०।७) आर्योंके शत्रुओंके बारेमें कहा है—"शत्रुनाशक दुर्गध्वंसक इन्द्रने कृष्णयोनि (काले दास) सेनाओंको नष्ट किया। मनुष्यके लिये पृथिवी और जलका जन्म दिया। वह यजमानकी इच्छा पूरी करे।"

§२ वर्ग

१ दास-दासियाँ

पराजित शत्रु स्त्री-पुरुषोंमें बहुतोंको विजेता दास-दासी बना कर काम लेते थे, यह दास-प्रथा के समय सर्वत्र देखा जाता था। हमारे देशमें दास-प्रथाका अन्त १९ वीं शताब्दीके दूसरे पादमें हुआ। ऋग्वेदिक कालमें, जब कि विजेता और विजितके रंग-रूप और स्वार्थोंमें भारी भेद था, दास-प्रथा और भी क्रूर रही होगी, यह निश्चित है। वालखिल्य सूक्तों[१४] (१४। (८।८।३) में पृषध्र ऋषिने इन्द्रसे प्रार्थना की है—"मुझे सौ गदहे, सौ भेड और सौ दास दो।" आर्य अपने शत्रुओंको भी दास और दस्यु कहा करते थे। उनको ही लेकर क्रय-विक्रय होनेसे ले पुरुषोंका नाम पीछे दास पड गया। यहां ऋषिने सौ दासोंकी जो कामना की है, वह जातिसे भी और कार्य से भी दास होते, यह निश्चित है। ऋषि गृत्समदने इन्द्रकी प्रार्थना करते[१५] (२।२।४) कहा है—"हे इन्द्र, हम तुम्हारे शुभ्र बलको बढाते हैं। हाथोंमें शुभ्र वज्रको धारण करते शुभ्र हो बढते तुम सूर्यसे अपने तेज द्वारा दास लोगों (दास विशः) को पराजित करो।" इसी ऋषिने फिर[१६] (२। १२।४) कहा है—"जिसने इस विश्व (सारे) को बनाया, जिसने दास-वर्णको निकृष्ट (नीच) और गुहावासी बनाया, जो व्याधिकी तरह आर्य पुष्ट धनको देता है, लोगो, वही वह इन्द्र है।" वामदेव गौतमने भी उन्हींके बारेमें कहा है[१७] (४।२८।४) "हे सोम, तुम्हारी मित्रतासे युक्त हो इन्द्रने तुम्हारी सहायतासे मनुष्यके लिये सुख (जल) प्रवाहित किया, दस्यु (अहि)

को मारा, सप्तसिन्धुको प्रेरणा दी। ढँके हुए छिद्रोको खोला।" कण्व गोत्री या कण्व-पुत्र ऋषि सोभरिको पुरुकुत्स-पुत्र राजा त्रसदस्युने पचास वधुये दी थी। वधूका मूल अर्थ बादी है, यद्यपि वह बहूके अर्थमें भी ऋग्वेदमें प्रयुक्त हुआ है, किन्तु इस स्थल[18] (८।१९।३६, ३७) पर दासीके लिए ही इस्तेमाल हुआ है—"पुरुकुत्स-पुत्र अतिमहान् स्वामी (अर्य) सच्चे मालिक त्रसदस्युने मुझे पचास वधुये दी।" सुवास्तु (स्वात) नदी के तटपर तीन-सत्तर (२१०) काली गायोके लानेवाले पतिने धन दिया।"

(आजीविका)

आर्योका मुख्य धन गाय-घोडे और भेड-बकरिया थी। वह कुछ खेती भी करते थे, क्योकि जौका सत्तू और रोटी उनके आहारमे शामिल थे। अधिक धनी और प्रभुताशाली आर्य अपने पशुपालन और कृषिमे दासो और दासियोंसे सहायता लेते थे। आखिर पचास-पचास दासियो और दासोको लेनेका प्रयोजन क्या हो सकता था? पर, साधारण स्थितिके आर्य अपने ही कृषि और पशुपालन कर लिया करते थे। आर्योको पहननेके लिये कपडो की भी अवश्यकता थी, जो ऊन या चमडेके होते थे। सप्तसिन्धुकी गर्मी उस समय भी कम असह्य नही रही होगी, पर वह ऊनकी पोशाक पसन्द करते थे। इसे आदत कहना चाहिये, नही तो सिन्धु-उपत्यका के निवासी उनसे पहले ही सूती कपडोको पहनते थे। आज भी गडेरिये लोग कडी धूपमे कम्बलको ओढे अपनी भेडोको चराते है। कहते है कम्बल तरावट देता है। यही बात सप्तसिन्धुके आर्य भी कहते होगे। उनके घरोमे कपडे बुने जाते थे। कपडे बुनने और दूसरे कामोके बारेमे आंगिरस-गोत्री ऋषि शिशु[19] (९।११३।१-४) ने कहा है—"हमारे और दूसरोके भी अनेक प्रकारके कार्य है। तरखान (बढ़ई) अपना काम चाहता है, वैद्य रोगकी चिकित्सा करता है, ब्राह्मण सोम छाननेवाले यजमान को चाहता है। इन्द्रके लिये सोम परिस्रुत हो (छाना) जाये।

"पुरानी औषधियो, पक्षियोंके पखो द्वारा अश्म (धातु)के हथियारो
[illegible] तोडनेवाले कमार सोनेवाले आदमीको चाहते है ॥२॥

"मैं कवि हूँ। मेरा पुत्र वैद्य है। मेरी कन्या पत्थरकी चक्की चलाने-
वाली है। धनकी कामना करनेवाले नाना कर्मोवाले हम गौओकी तरह
एक गोष्ठमे रहते है ॥३॥

"वाहक घोडे अच्छे रथको, पासवाले मन्त्री (उप-मन्त्री) हसनेको,
गुरुपेन्द्रिय रोम-युक्त भग्न स्थानको, मेढक जल-युक्त सरको चाहता है ॥४॥

यहा वैद्य, ब्रह्मा (पुरोहित) कमार, कारु (कवि), पिसनहारी और
उपमत्रीके कामोका उल्लेख है।

२. चार वर्ण

डा० वटेकृष्ण घोष ऋग्वेदकी भाषाके वारेमे कहते है*—"सव मिलाकर पहले नौ मण्डलोकी भाषा एक समान है, यद्यपि पहलेकी वोलीके भेदोका असर, विशेषकर र और ल के वारेमें मिलता है।" दसवें मण्डलको सभी विद्वान् भाषा और दूसरे विचारोसे भी पीछेका मानते है। पहले नौ मण्डलोमें चारो वर्णोका नाम नही मिलता है, पर दसवें मण्डलमे इसका स्पष्ट उल्लेख आया है[1] (१०।९०।१२)—"इस (पुरुष)का ब्राह्मण मुख है राजन्य (क्षत्रिय) दोनो वाहु। जो वैश्य है, वह उसकी जाघ है, और पैरोंमे शूद्र उत्पन्न हुआ।" ब्राह्मण या पुरोहित ऋग्वेदिक आर्योके आरम्भिक कालमें भी रहे, लेकिन वह लडाईमे दूसरोकी तरह ही भाग लेते थे। भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्रके पुत्रो और कुलवालोने दिवोदास और सुदासके अनेक युद्धोमें शस्त्र चलाये। ब्राह्मणो और राजन्यमें वैसा भेद उस समय नही था, जो उपनिषद्-काल और पीछे देखा जाता है, अथवा जो इस पुरुष-सूक्तमे मिलता है। विश् प्रजा या लोकका पर्याय था। इसमे सारी आर्य जाति शामिल थी। राजाको विशापति (विशोका स्वामी) कहते थे। विश्से उत्पन्न वैश्य शब्दको नये अर्थोमें

---

*The Vedic Age, P 336

वहुत पीछे इस्तेमाल किया जाने लगा, जिसे ही हम यहा पाते है। शूद्रसे दास वर्णका मतलव है, जो कि पहले आर्योके प्रतिद्वन्द्वी और पीछे उनके शासित या दास वन गये। चारो वर्णोकी कल्पना पीछे हुई, यह साफ मालूम होता है। पहलेकी आर्य प्रजामे, चाहे व्रह्म (व्राह्मण) हो या राजन्य (क्षत्रिय), उनके रोटीवेटीका कोई भेद नही था। पर, जव चारो वर्णोकी कल्पना हो गई, तो उसके साथ ऊच-नीचका भाव भी आने लगा। उसके साथ ही धन और भोगमें उनके भागको कम-वेशी माना जाने लगा। इस विपमतासे वैमनस्य वढना आवश्यक था। वैमनस्यको हटानेकी इच्छा न आर्य ऋपियोको हो सकती थी, और न वह हटाया जा सकता था। तो भी आर्योके भीतर समानता और भेदभावको हटानेका प्रयत्न वह जरूर करते रहे। ऋग्वेदके अन्तिम सूक्त[१] (१०।१९१) में सवनन ऋपि इसीकी ओर ध्यान दिलाते है

[१]"तुम साथ चलो, साथ वोलो। तुम्हारे मन साथ सोचे। जैसे कि पूर्वकालके देव एकमत हो उपासना (भोग) करते थे।।२।।

"इन (आर्यजनो) का मन्त्र एक सा हो। समिति एक सी हो, चित्त-सहित मन एक सा हो। एक से मन्त्रको तुम्हारे लिये मै आमन्त्रण करता हू। एक समान हविमे तुम्हारे लिए हवन करता हू ।।३।।

"तुम्हारा अध्यवसाय समान हो, तुम्हारे हृदय समान हो। तुम्हारा मन समान हो, जिसमें कि तुम्हारा सुन्दर सगठन हो ।।४।।"

यह अनेक वार वतला चुके है, कि ऋग्वेदिक ऋपियो का काम आर्योका सामाजिक या राजनैतिक इतिहास लिखना नही था। उनका उद्देश्य था देवताओको प्रसन्न करनेके लिये स्तुतिया और विधि-विधान वनाना। दूसरी वातें वहा आनुपगिक रूपसे ही आई है। पर, जिस सामाजिक और आर्थिक स्थितिमें आर्य थे, उससे उनके जीवनके अनेक अगोपर प्रकाश पडता है। आर्यों और आर्य-भिन्नो—द्रविडो और किरातो—में भारी आर्थिक-सामाजिक भेद था। विजेता और स्वामी होनेके कारण सवमे अधिक सम्पत्ति और भोगको आर्य अपने लिये चाहते थे, और वचे-खुचेको

ही दूसरे पा सकते थे। पणि व्यापारी थे--पणि शब्दसे ही वणिक या वनिया शब्दकी उत्पत्ति हुई है। ये सम्पत्तिशाली थे। व्यापार भी उनके हाथमें था, और उनके पास गायें भी बहुत होती थी। पणियोकी गायोको लूटना आर्य अपना धर्म समझते थे। इसके लिये बहानेकी भी जरूरत नही थी। यह सरमा और पणियोके सवादमे हम देखेंगे। यदि सर्वस्व-हरण कर लिया जाता, तो व्यापार हो ही नही सकता था। इसीलिये आर्य पणियोकी पूंजी और उनके व्यवसायके साधनोका हरण करना नही चाहते थे। उन्हे सोनेकी जरूरत थी। मणि और रत्न की भी कदर उनमें बढी थी। ये चीजें पणियो द्वारा ही मिल सकती थी। इसलिये पणियोकी रक्षा करना भी वह अपना कर्तव्य समझते थे। पणि भी उदारतापूर्वक आर्य ऋषियोको दान देते थे, यह भी हम देखेंगे।

२. पराजित

पणि जिस जाति—द्रविड—के थे, उसके सभी लोग ऐसे सौभाग्य-शाली नही थे। उनमे कितने ही आर्योकी कृपापर कृषक या शिल्पी-रहकर जीवन-निर्वाह करते थे, कितने ही आर्योके दास-दासी बने थे। पर्वत गुहावासी शम्बरकी लोग—किरात—नरनारी सभी लडने मरनेको तैयार थे। उन्हे आर्योकी पकडसे बाहर जानेका सुभीता भी था। कागडेकी उपत्यका और पासके पहाडोपर आर्योके साथ जो खूनी संघर्ष चला था, और दिवोदास चालीस साल की लडाईके बाद ही शम्बरका सहार कर सका, इसीके कारण किरात पराजित हुये। उस वक्त जो भी युद्धबन्दी हाथ आये होगे, वह दास- दासी बन गये होगे, इसमें भी सन्देह नही। पर, द्रविडोकी तरह किरात एक जगह रहनेके लिये मजबूर नही थे। उनके उत्तर और भी दुर्गम पर्वत, वहाकी चरागाहें और हरी-भरी उपत्यकायें मौजूद थी। शबर-वशी उधर हट सकते थे, और वैसा ही हुआ भी। किर (किरात) लोग कागडेके निचले पहाडोमें किरग्राम (वैजनाथ) जैसे नाम छोड गये है। आज उनका पता कागडाने

शताधिक मील दूर लाहुल, मलाणा (कुल्लू) और कनौरमें मिलता है। इसलिये आर्योंके पास जो दास-दासी थे, वह अधिकतर द्रविड जातिके ही रहे होगे, किरात वहुत कम, इसमें सन्देह नही।

४ उत्पीडन और वर्ण-विभेद

आर्थिक तौरसे पराजितोका भीपण शोपण तो होता ही था, सामाजिक तौरसे भी उन्हें वहुत हीन समझा जाता था। गृत्समदने मान लिया था, कि देवताओने ही नही उन्हें अधर (नीच) वर्णका वना दिया है। आर्योको रक्त-सम्मिश्रणका डर कितना था, इसका अन्दाज हमे अमेरिकाके नीग्रो और श्वेतागोसे लग सकता है। अमेरिका सारी दुनियामे स्वतत्रता और समानताकी ढोल पीटता है, पर वहा चिरागके नीचे अन्धेरा है। विश्व-विद्यालयोमें काले छात्र गोरोके साथ पढ नही सकते। किसी गोरी तरुणीका सम्वन्ध यदि नीग्रोसे हुआ समझा जाता, तो गोरे स्वय कानूनको हाथमें लेकर उसे जला देते है। ऐसे खूनी काण्ड वहा हर साल हुआ करते है। दक्षिणी अफ्रीकाके गोरे तो इस वातमे और भी निर्लज्ज तथा क्रूर है। अपनेसे चौगुनी-पचगुनी सख्यावाले अफ्रीकियोको वह मनुष्यरूपी पशु मानते है। उनको अपने घरो और वस्तियोंके पास नही रहने देना चाहते। रेलो और सवारियोमें कालोको अलग रखते है, जीविकाके साधनोको कमसे कम देकर उन्हे अछूत वनाये हुए है। वर्ण-भेदके यह दो रूप हमारे सामने युक्त- राष्ट्र अमेरिका और दक्षिणी अफ्रीकामें मौजूद है। आर्योने वर्ण-भेदकी खाईको सुदृढ रखनेकी कोशिश की। यद्यपि वर्ण—रग—का इस तरहका भेदभाव हमारी जातियोमें आज विल्कुल नहीं मिलता। ब्राह्मण भी कोयलेसे काले मिलते है, और शूद्र या अछूत अच्छे खासे गोरे। एक सा साफ-सुथरा कपडा पहनाकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रके लडकोको खडा कर दिया जाये, तो कोई उन्हें नही वतला सकता। इतना होनेपर भी पुराने शास्त्रोकी दुहाई देकर पुराने नीच-ऊँचके भेदको कायम रखनेकी कोशिश की जा रही है। इसका वुरा परि-णाम हमारी तीन-चौथाई जनताको भोगना पड रहा है। वडे वर्ण या जातिका

मतलब है सम्पत्तिका स्वामी होना, और छोटे वर्ण या जातिका अर्थ है सम्पत्तिसे वंचित होना। सम्पत्तिसे वंचित होनेका मतलब है, मनुष्यताके दूसरे अधिकारोंसे भी वंचित होना। सम्पत्तिके न होनेपर शिक्षा और संस्कृतिकी सुविधा नहीं रह जाती। हरेक देशमें विजेता और विजित के सम्बन्ध कटु होते हैं, पर यदि उनमें वर्ण-भेद, जाति-भेद न हो, तो कुछ समय बाद दोनोमें एकता स्थापित हो जाती है, सम्बन्ध अच्छे हो जाते हैं। हमारे देशमें ऐतिहासिक कालमें यवन (ग्रीक), शक, श्वेत-हूण आये। उनके प्रति आरम्भमें कुछ भेदभाव जरूर रक्खा गया, लेकिन रंगका सवाल नहीं उठ सकता था, क्योंकि नवागन्तुक वर्ण-सम्पत्तिमें आदिम आर्यों जैसे थे, जिनके रूप-रंग, नख-शिखको हमारे यहाँ बराबर सौन्दर्यकी कसौटी माना जाता रहा। इसीलिए यवन-शक उच्च वर्णके लोगोंमें मिल गये और उन्हें अछूत या सम्पत्तिहीन नहीं बनाना पड़ा।

तीव्र वर्ण-भेदके ख्यालसे आर्य अपने दास-दासियोंके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करनेके विरोधी थे। पर, दास-दासियोंके श्रमका वह कैसे त्याज्य कर सकते थे? दक्षिणी अफ्रीकाके गोरे भी कालोंके श्रमसे लाभ उठानेसे बाज नहीं आते। सिन्धु-उपत्यकावासी भौतिक संस्कृतिमें आर्योंसे बहुत आगे बढ़े हुए थे। मोहनजोडरो जैसे ताम्र-युगके भव्य नगरके निर्माण करनेवाले उनके शिल्पी, अपने कला-कौशल तथा शिल्पसे आर्योंके लिये लाभदायक थे। इस लाभसे वह अपनेको वंचित नहीं करना चाहते थे। कपड़ा बुनना, चिकित्सा करना, हथियार बनाना आदि कुछ शिल्प आर्योंको भारतमें आनेसे पहले ही मालूम थे। उन्होंने सिन्धु-उपत्यकावासियोंके अधिक विकसित शिल्प भी कुछ सीखे। उससे भी अधिक उन्हीं द्वारा काम करवा कर लाभ उठाया। पर, खान-पानकी जो छूत-छात पीछे पैदा हुई, उसका अस्तित्व उस कालमें था, यह कहना मुश्किल है। जहाँ तक उत्तर भारतका सम्बन्ध है "शूद्रा संस्कर्तार" (शूद्र पाचक हैं) बराबर माना जाता रहा। रोटी-पानीमें शूद्रोंसे नहीं, बल्कि अतिशूद्रोंसे भेद बरता जाता रहा, जिसका कारण वर्ण नहीं, बल्कि अधिक गन्दे समझे जानेवाले काम थे। यह बिल्कुल

सम्भव है, कि ऋग्वेदिक आर्योंके धनी परिवारोमें दसियाँ भोजन बनाती थी। उनके हाथके खाने-पीनेमें किसी को एतराज नही था। छूत-छातका रवाज आर्योमें क्रमश: बढा। सूत्र-ग्रन्थोमें शौचके लिए जल लेनेका विधान नही है। गुरु-कुलसे सुशिक्षित होकर निकले स्नातकको वहाँ सूखे काठ इस्तेमाल करनेकी बात कहनेका मतलब यही है, कि अभी जलकी प्रथा नही चली थी। कच्चे-पक्के खाने और उसके छू जानेका भाव उस युगमें नही हो सकता था। ऊनके वस्त्रको पवित्र माननेकी भावना भी ऋग्वेदिक आर्योंकी ही देन है। आर्योंका कपासके वस्त्र न व्यवहार कर ऊनी वस्त्रको अपनाना दोनो वस्त्रोके प्रति दो प्रकारके भावोंके पैदा करनेका कारण हुआ। कालान्तरमें ऊनको शुद्ध मान लिया गया, और कपासको अशुद्ध। सूती कपडेको बदल कर खाना खाने या रसोईमें जाना चाहिए। पर ऊनी कपडा स्वत पवित्र है। कश्मीरमें सर्दीके कारण गीला चौका लगाना सुखद नही है, वहा ऊनी लोई चौकेका काम देती है और ऊनी कपडेसे ढँके घडेका पानी या भात मुसलमानके हाथमें पडकर भी अशुद्ध नही होता। किसी समय बैलके चमडेको भी ऊनके समान शुद्ध माना जाता था। कल्प-सूत्रोमें (पारस्कर) वर-वधूको बैलके चमडेपर बैठा कर मधुपर्क देनेका विधान है। गायके चर्मकी शुद्धता पीछे जाती रही, पर मृगछाला अब भी शुद्ध-पवित्र माना जाता है। यह आर्योंके चमडेकी पोशाक होने के कारण ही।

अध्याय ४

खान-पान

§१ खाद्य

१ मास

ऋग्वेदिक आर्य कृषि भी करते थे, लेकिन उनका सबसे वडा धन गौ-अश्व, अज-अवि था, इसीलिए उनमें शायद ही कोई ऐसा हो, जो मास न खाता था। वडे-वडे ऋषियोके लिए भी आतिथ्य करनेके वास्ते मास अत्यावश्यक चीज थी। पीछेके धर्म-सूत्रकारोने तो कहा—"नामासो मधुपर्को भवति"* (विना मासका मधुपर्क नही हो सकता)। अतिथिके सत्कारके लिए जो खाद्य तैयार किया जाता, उसे मधुपर्क कहते थे। ऋग्वेदके वाद ब्राह्मण-काल (८०० ई० पू०) मे भी मास आर्योका प्रधान भोजन था, और इसके टोटके-टोने भी प्रचलित थे। वृहदारण्यक (६।४।१८) में वतलाया गया है, कि यदि कोई इच्छा करे, कि मेरा पुत्र पण्डित, प्रसिद्ध, सभा-समाजवाला हो, और ऐसी वाणी वाले, जिसे लोग सुनना चाहें, तथा वह सारे वेदोको पढे, पूरी आयुको प्राप्त होवे, तो माताको चाहिए, कि घी-सहित साड या वैलके मासवाला ओदन पकाकर खाये।

"य इच्छेत् पुत्रोमे पण्डितो विगीत समितिगम शुश्रूपिता वाच भापिता जायेत, सर्वान् वेदा अनुब्रवीत, सर्वमायुरियादिति, मासोदन पाचयित्वा सर्पिष्मन्त अश्ननीयताम् ईश्वरी जनयितवा औक्षेण वाऽऽर्पभेण वा।"

---

* आश्वलायनगृह्यसूत्र १।२४

कोई सन्देहकी गुंजाइश न रहे, इसके लिए शंकराचार्य अपनी टीकामें कहते हैं—"मांस-मिश्रमोदनम्। तन्मांसनियमार्थमाह—औक्षेण वा मांसेन। उक्षा सेचनसमर्थं पुंगवस्तदीय मांसम्। ऋषभस्ततोऽप्यधिकवया तदीय-मार्षभं मांसम्।" अर्थात् मांस वयस्क बैल या उससे अधिक आयुके बैलका होना चाहिए। गोमांसके प्रति आज चाहे जितनी जुगुप्सा हो, पर प्राचीन-कालमें इसके प्रति यह भावना नहीं थी। बुद्ध-कालमें भी यह बहुप्रचलित भक्ष्य था। मज्झिमनिकाय (३।५।४) में आता है—

"जैसे चतुर गोघातक या गोघातकका शागिर्द गायको मार कर गाय काटनेके तेज छुरेसे गायके भीतरी मांस और बाहरी चमड़ेको नुकसान पहुँचाये बिना गायको काटे—जो जो वहाँ भीतर विलिम, स्नायु, बन्धन है, उसे तेज छुरेसे छेदन करे, काटे .। छेदन कर काट कर , बाहरी चमड़ेको झाड़ फटकार कर, उसी चमड़ेमें उस गायको ढाँक कर यह कहे—'यह गाय पहिलेकी तरह ही इस चर्मसे युक्त है'।"

गोमांस काट कर गोघातकके चौरस्तेमें बेचनेके लिए राशि करके रखने का भी उल्लेख मिलता है। गौ काटनेके लिए जो स्थान होता था, उसे गोघातक सूना कहते थे। वहाँपर हड्डियोंकी लालचसे कुत्ते प्रतीक्षा करते रहते थे। मज्झिमनिकायमें (२।१।४) है—

"गृहपति, जैसे भूखसे अति-दुर्बल कुक्कुर गोघातकके सूना के पास खड़ा हो। चतुर गो-घातक या गोघातकका अन्तेवासी उसको मांस-रहित लोहूमें सनी हड्डी फेंक दे। तो क्या मानते हो, गृहपति! क्या वह कुक्कुर उस हड्डी को खाकर भूखकी दुर्बलताको हटा सकता है?"

गाय काटनेके छुरेको गोभिकर्तन कहते थे (मज्झिमनिकाय २।४।५)। ऋग्वेद (१०।७९।६) में ऋषिने कहा है "निपर्वशश्चकर्त गामिवासि" (जैसे तलवार पोर-पोर गायको काटे)। यह भी उसी बातकी तरफ इशारा है। बहुत पीछे यदि सातवीं-आठवीं सदीके भवभूति अतिथिके लिए बछिया मारनेकी बात कहते हैं, तो वह अवश्य अपने समयके प्रतिकूल हैं, परन्तु जहाँ तक प्राचीनकालका सम्बन्ध है, यह बिल्कुल साधारणसी बात थी। जैन

आगमके "उपासगदसा" से भी इस बातकी पुष्टि मिलती है। वहाँ एक सेठानी ने अपने पीहरसे दो गायके बच्चो (गोपोतक)का मास मँगवाया था। वस्तुत आर्योंके आनेसे ईसवी-सन्‌के आरम्भ तक यह भक्ष्य इतना प्रचलित था, कि उसके बारेमें अधिक कहनेकी अवश्यकता नही। लेकिन, सबसे अधिक प्रिय माम आर्योंका मोटा भेडा और बकरा था। भेडेके लिए ऋग्वेद[1] (१०।२७।१७) में कहा गया है "पीवान मेपमपचन्त वीरा" (मोटे मेपको वीरोने पकाया)।

उस कालमें घोडेका मास भी भक्ष्य था, और उसके पके सोधे मासको आर्यजन बहुत चावसे खाते थे। दीर्घतमा ऋपि कहते हैं[2] (१।१६२।१२) जो घोडेको अच्छी तरह पका देखते हैं और उसकी सुगन्धको बखानते हैं, और जो घोडेके मास भोजन का सेवन करते हैं। (ये वाजिन परिपश्यन्ति पक्व य ईमाहु सुरभि निर्हरेति। ये चार्वतो मासभिक्षामुपासते)।

यह पहले ही बतलाया जा चुका है, कि ऋग्वेदका काम इतिहास या सामाजिक जीवनका चित्रण करना नही है। वहाँ देवताओकी प्रशसाके प्रसगमें ही कही-कही दूसरी बातें आती हैं। उनमे यह मालूम ही होता है, कि प्रधान तौरसे मासभोजी आर्य गौ, अश्व, अजा, अविका न माम खाते थे। मछली खाते तो जरूर होगे, पर ऋचाओमे उसका उल्लेख नहीं है।

कई तरहका गोरस भी उनका प्रधान भोजन था। घृत तो मुख्य था ही, पुरोडाश[3] (४।२४।५) भी उनका और उनके देवताओका प्रिय खाद्य था, जो शायद दूध और किसी अन्नको मिलाकर बनाया जाता था। पीछे तो खीरका यह पर्याय हो गया, लेकिन, ऋग्वेदमे चावलका कही उल्लेख नही है, अधिकतर जौका नाम आया है। हो सकता है, जौकी दलियाको दूधमें पकाया जाता हो, जिसे वह पुरोडाश कहते थे। विश्वामित्र[4] (३। २८।२) भी पुरोडाशके पकानेकी बात कहते है। दूध या दही मे एक तरहका भोजन अशिर तैयार किया जाता था, जिसका उल्लेख बहुत जगहो पर हुआ है—[5] (१।१३४।६, ३।५३।१४, ८।२।१०,११, ९।७५।५, ८९ ७१ १०।४९।१०, ६७.६) अशिर कई तरह के होते थे, जैसे गवाशिर,

दध्याशिर। गवाशिर[६] (३।४२।१,७) और दध्याशिर[७] (५।५१।७) दोनो भोजन सोम और दूध-दहीके योगसे अथवा दूध-दही और दूसरी चीजोंके मिश्रणसे बनते थे। एक जगह[८] (८।७७।१०) क्षीरपाकका उल्लेख है। आजकल खीरपाक दूधमें पके चावलका ही दूसरा नाम है। उस समय क्षीरके साथ पका हुआ दूसरा अन्न जौ हो सकता था। पशुपालनकी प्रधानता रखनेवाले आर्योंके भोजनमें मास और गोरसकी प्रधानता थी। मासमें मसालेका उपयोग बहुत पीछे हुआ। लहसुन-प्याजका इस्तेमाल होता था, इसका भी कोई पता नही। घीमे तलने या बघाडनेको छोडकर और तरहका कोई मसाला उस समय उपयोगमें नही आता था। नमकका पहाड सप्तसिन्धुकी भूमि में था, इसलिए वह सुलभ था। हो सकता है, उसका इस्तेमाल किया जाता हो। आगमे भूनकर मासको खाना यह कृपि-युगसे पहले भी प्रचलित था। इस समय तो अब पकानेके लिए उखा (हडिया) का उपयोग होने लगा था[९] (१।१६२।१३), इसलिए उबले मासको भी खाया जाता था। "सुरभि पक्व मास" से भी इसी बातकी पुष्टि होती है।

२ अन्न

अन्नका अर्थ पुराने कालमें भोजन होता था, लेकिन धान्यकी प्रचुरताके कारण अब अन्न अनाजके अर्थमें भी प्रयुक्त होता है। तभी तो एक जगह[१०] (१०।१४६।६) कहा गया है—"बहवन्नामकृपीवला" (किसान-रहित बहुत अनाजवाली)। इससे किसान और अनाजका सम्बन्ध निश्चित है। "धाना, करभ, अपूप"[११] (८।८०।२) धाना, करभ[१२] (३।५२।१,७), करभ[१३] (६।५६।१, ५।७।२) के उल्लेख भरद्वाज, विश्वामित्र और वामदेव जैसे प्राचीन ऋषियोंने अनेक बार किये है। धाना भुने हुए अनाजको कहते हैं, आज भी उसे दाना कहा जाता है। करभ सत्तूका नाम था, और अपूप रोटीको कहते थे। आजकल पूआ या मालपूआ यद्यपि एक खास तरहके बहुत स्वादिष्ट घृतपक्व भोजनको कहते हैं, लेकिन ऋग्वे-

दिक आर्योका अपूप कण्डेपर या मिट्टीके तवेपर पकाई रोटी होगी। कृपिके आरम्भिक युगमें तन्दूरकी रोटी मध्य-एसियामें अनौके लोगोंको मालूम थी, और तन्दूर आज भी सप्तसिन्धुकी रोटियोंके लिए प्रसिद्ध है। हो सकता है, आर्य लोग तन्दूरी रोटियाँ पकाते हो। इनके अतिरिक्त सक्तु[१५] (१०।७१।२)का भी उल्लेख हुआ है, जो करभका ही दूसरा नाम था। सत्तूको छानकर इस्तेमाल करते थे, जैसा कि "सक्तुमिव तितउना" मे मालूम होता है। भोजन बनानेके लिए इस्तेमाल होनेवाली चीजोंमें उलूखल (ओखल)[१६] (१।२८।१), तितउ (छलनी), एक प्रकारकी हाँडी चपाल[१६] (१।१६२।६) और उखाका उल्लेख हुआ है। हो सकता है, इससे अधिक भी पात्र रहे हो। कमसे कम मोहनजोडरोमे इस्तेमाल होनेवाले पात्रोंको तो आर्य अपने सामने देख रहे थे।

आर्य कृपि भी करते थे, यह कृपीवल (किसान) (१०।१४६।६) मे ही मालूम होता है। भूमि क्षेत्र और अरण्यमें विभक्त थी[१७] (६।६१। १४), जिनमे क्षेत्रोंमे वह जौकी खेती करते थे, और अरण्य पशुओंके चरानेके काम आते थे। जाडे मे वनोंके पत्ते झड जाते थे—"हिमेव पर्णा मुपिता वनानि"[१८] (१०।६८।१०)। आजकल इसे ऊँचे पहाडोंमें ही देखा जा सकता है। सप्तसिन्धुके कमसे कम मध्य और पूर्वी भागमें इतना जाडा नही होता था, कि हिमकालमें वृक्षोपर पत्ते न रहे। उनके गिरनेका समय जाडोंके अन्तमे आता है। पत्तो और घासोंकी पशुपालोंको बडी अवश्यकता थी, इसलिए ऋतु-अनुसार जो परिवर्तन आते थे, उसकी ओर उनका ध्यान जाता था।

उनकी खेतीमे जौकी प्रधानता थी। खेतोंको वह बैलोंमे जोतते थे—"गोभिर्यव न चर्कृपत्"[१९] (१।२३।१५ जैसे बैलोंमे जौके खेतको जोता जाये)। खेतीके लिए नहरोंका भी इस्तेमाल करते थे। ये नहरें छोटी नालियाँ होंगी, जिनको कुल्या[२०] (५।८३।८) कहते थे। आजकल भी पहाडोंमें इन्हे कूल या गुल कहते है। हल (लांगल) का भी जिक्र[२१] (४।५७।४) वाम देव ऋपिने किया है, और उन्होने ही जोती हुई हराई सीता[२२] (४।

५७।४) और फाल[१] (४।५७।८) का जिक्र किया है। लागलमें आजकल लोहेका फाल इस्तेमाल करते हैं। उस समय लोहा अज्ञात था ताँबेका फाल भी लग सकता था, लेकिन ताँबा अभी महार्घ धातु थी। इसलिए फाल भी लकडीका रहा होगा, हाँ, अपेक्षाकृत कडी लकडीका,

फल भी आर्य लोगोका भक्ष्य था। वह तो कृषि और गोपालनसे अपरिचित जातियोके लिए भी जगलमे सुलभ था। आर्य "स्वादो फलस्य जग्ध्वाय"[४] (१०।१४६।५, स्वादिष्ट स्वादु फलके खाने) की वात कहते है। फलको अधिक स्वादु वनानेका काम आदमीने कृत्रिम रूपसे किया। जगली फल सयोगसे भले स्वादु निकल आये, नही तो अधिकतर वह स्वादिष्ट नही होते, यह हम जगली सेव, नास्पाती, अगूर या जगली जामुन, शरीफे, आम आदिको देख कर जानते है। फलोको स्वादिष्ट वनानेके लिए वगीचोंके लगानेकी जरूरत थी, जिसका उल्लेख ऋग्वेदमें ही नही, वल्कि काफी पीछे तक नही मिलता। आर्य लोग जगलोमे स्वत उगे वृक्षोंके ही स्वादु फलोपर सन्तोष करते होगे। पक्व फल वृक्ष[५] (३।५४।४) का भी उल्लेख देखा जाता है। आर्योके भोजनमें फल भी शामिल थे। जिन्हे वह सुखा कर रख सकते थे, और दूसरे समयमे भी इस्तेमाल करते रहे होगे। पञ्जावकी भूमिमें कौन से फली वृक्ष प्राकृतिक रूपमे मौजूद थे, इनकी गिनती करना मूश्किल है। आम रहा होगा, जामुन भी होगी, करौंदे, कुँदरू जैसे फल भी रहे होगे, केलाके होनेमें सन्देह है, क्योंकि उसे अधिक वर्षाकी जरूरत है। कटहल-वडहल अव भी पञ्जावमें दुर्लभ फल है। जगली वेर जरूर रही होगी।

§२ पान

गोरस-सम्बन्धी पान अर्थात् दूध, दही, छाछ उनके सवसे प्रिय और सुलभ थे, जैसाकि अव भी पञ्जावमें देखा जाता है। सत्तू खानेमें दहीका इस्तेमाल जो पीछे देखा जाता है, वह उस समय भी रहा होगा। वहुत अधिक गायोके रखनेसे छाछ या दही वहुत अधिक पैदा होता होगा। पनीर की शकलमें

सुखाकर रखनेका रवाज था, या नहीं, इसके वारेमें नही कहा जा सकता। पिछले कालमें पनीरकी तरहकी ही एक गीली-सी चीज आमिक्षाका उल्लेख मिलता है। आर्य मधु [१] (१०।१०६।१०) से सुपरिचित थे वल्कि वह इस खाद्यसे वहुत पहलेसे परिचित थे, क्योकि आर्योंके दूरके सम्वन्धी रूसियोंके पूर्वज भी इसे जानते थे, यह दोनो भाषाओमें मधु और मेदुके एक-से नामसे मालूम होता है।

१ सोम

आर्योंका सवसे प्रिय पेय सोम था। सोमका उल्लेख ऋग्वेदके सारे नवे मण्डल और सैकडो दूसरी ऋचाओमें हुआ है। सोम कोई ऐसी पेय चीज नही थी, जो कि दुर्लभ होनेके कारण वहुत कम लोग ही उसे पी सकते हो। उसके घडेके घडे (चमू) भरे रहते थे [१०] (९।२०।६)। सोम छननेमें छना जाता था। छना हुआ (सुत) साम उस समयके आर्यों का वहुत प्रिय पान था। सोम उनके लिए दिव्य वस्तु था। ऋषि मधुच्छन्दा कहते है [८] (९।१।१)—"स्वादिष्टया मदिष्टया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुत।" (इन्द्रके पीनेके लिए छाने हुए हे सोम, स्वादिष्ट और मदिष्ठ धारासे क्षरित होओ)। सोमपान स्वादिष्ट भी होता था। स्वादु ही नही, वल्कि अत्यन्त स्वादु और मदिष्ट भी। कहते है [९] (८। ४८।३)—"अपाम सोम अमृता भवेम' (हमने सोम पिया और अमर हो गये)। सोम दुर्लभ अमृत सजीवनीका नाम नही था। सोम घडोंके घडे तैयार किये जाते थे,—"सोम चमूषु" [१०] (९।२०।६)। मदिर सोम [११] (८।२१।५) आर्योंका नित्य-प्रतिका पान था। सोम-यागमें विशेष तौरसे पीनेका विधि-विधान पीछे हुआ। हम देख चुके है, कि पके घोडेके मासकी तारीफ सोधा-सोधा कह कर आर्य लोग करते थे, यह मास केवल अश्वमेध यज्ञ तक ही सीमित नही था। इसी तरह मदिर-सोमका पान केवल सोम-याग तक ही सीमित नही था। शामके वक्त नृत्य और पानगोष्ठी आर्योंके स्वच्छन्द और सुखी जीवनका एक अभिन्न अग थी। उस समय घडो सोम की जरूरत होती थी।

सोमको भाँग वतलानेपर पुराणपन्थी चौंक उठते हैं। प्राचीनोंने उसके वारेमें वहुत सी गप्पें उडाई हैं। चन्द्रमाका भी नाम सोम है, इसलिए सोमको उनके साथ जोड कर कहते हैं—सोमलता चन्द्रमाकी तरह एक-एक अश वढती पूर्णिमाको अपनी पूरी ऊँचाई पर पहुँचती है, उसके वाद घटते-घटते अमावस्याको अत्यन्त खर्व हो जाती है। कोई वनस्पति ऐसी देखने में नही आती। सूर्यके प्रकाश या हाथके स्पर्शसे छूई-मूई हो जानेवाली लाजवन्तीका हमें पता है। ऐसे भी वनस्पति मालूम हैं, जो कीडो-मकोडोको अपने विशेष स्थानपर पकड कर भख जाते हैं। लेकिन, कला-कला वढने-घटनेवाली वनस्पतिका हमें पता नही है। यह भी नही कहा जा सकता, कि साढे तीन हजार वर्ष पहले जो वनस्पति इतने परिमाणमें मौजूद थी, कि उसका घडो रस तैयार किया जा सके और अव वह विल्कुल उच्छिन्न हो जाये। वस्तुत सोमके साथ धीरे-धीरे जिन सैकडो दिव्य गुणोको जोड दिया गया, वह भाँगमें नही है। भाँग कितनी ही जगहोमें अधिक उपजनेवाली वेहया वनस्पति है, जिसको लोग भाड झोकनेके काममें लाते हैं, इसलिए दिव्य सोम यही भाँग है, इसे वह कैसे माननेके लिए तैयार हो सकते थे? पर, सोम है वस्तुत भाँग। तिव्वतमे आज भी उसे "सोमराजा" कहते हैं। पठान लोग भाँगको "ओम" कहते हैं, जो सोमसे होम होकर वना है। सोममें दूध और मधु मिला कर सोमरस तैयार किया जाता था। दूधिया भाँग अपने स्वादके लिए हमारे यहाँ प्रसिद्ध है ही। अगर पता न हो, तो सामने रख देनेपर आदमी लोटा भर भाँग पी सकता है। भाँगकी माजून उस समय नही वनती थी, जिसकी खोयेवाली वर्फी अपने स्वादके लिए प्रसिद्ध है। एक वार खतरेको न जानकर इन पक्तियों के लेखकने कई वर्फियाँ खा डालीं, जिसका दण्ड हफ्तो भुगतना पडा था। सोमको वहुत स्वादिष्ट वनाते थे, उसकी स्वादिष्ट धाराकी वडी ख्याति थी। और मदिर होनेसे वह गम-गलत करनेके लिए किसी भी नशीली चीजसे कम नही था।

आर्य स्वास्थ्यप्रेमी थे। पशुपालनका जीवन परिश्रमका जीवन होता है। फिर आर्योको सैनिकका जीवन भी विताना पडता था, इसलिए दुर्वल

आदमियोंकी उनके यहाँ कदर नहीं हो सकती थी। इन्द्र उनके इष्टदेवता पौरुषके आगर थे। उनके लिए कहा गया है" (८।१७।८)—"तुवि-ग्रीव वपोदर सुबाहु "(पुष्ट गर्दन चर्बीदार पेट और सुन्दर भुजाओंवाला)। चर्बीवाला पेट अर्थात् तोंदको शायद इन्द्रके प्रौढ़ होनेके ख्यालसे कहा गया है, नहीं तो आर्य-तरुणोंका आदर्श तुंदिल शरीर नहीं हो सकता। हाँ, मोटी गर्दन और बलिष्ट भुजाके साथ विशाल छातीको वह पसन्द करते थे, जैसाकि गुप्तकालकी मूर्तियों और अजन्ताके चित्रोंमें देखा जाता है। भरद्वाज के बुढ़ापेका चित्र ऐतरेय ब्राह्मण (३।५।४९) में मिलता है, जहा वह दुबले लम्बे और श्वेतकेश (कृश, दीर्घ, पलित) बतलाये गये है। तरुणाईमें वह पलितकेश नहीं सुवर्णकेश रहे होंगे, लम्बे होंगे और मासल, पर छरहरा बदन रहा होगा।

आर्योंका खानपान बहुत पुष्टिकर और स्वास्थ्यकर था। सप्तसिन्धुकी गर्मियाँ उस समय भी असह्य रही होंगी, लेकिन अब १५ पीढ़ियोंसे रहते वह उनके लिए सह्य हो गई होंगी। पञ्जाब (सप्तसिन्धु) आजकी तरह हीं तब भी अधिक स्वास्थ्यकर रहा होगा। सत्तू-रोटी और मास-गोरसका उस समय कोई अभाव नहीं था। कृषि और गोरक्ष्य ही उनकी जीविकाके साधन थे, गौओ की लूटसे भी कभी-कभी आमदनी हो जाती थी। पर, अब सारी सप्तसिन्धु भूमि उनको अपनी थी, आर्य-भिन्न लोग भी उनके अधीन थे, इसलिए वह तीन शताब्दियों पहलेकी तरह अपने लिए भी लूटकी छूट नहीं कर सकते थे। उनके कर्मठ जीवनको कायम रखनेके लिए उत्तरके पहाड़ोंके शम्बर और उसकी जातिवाले शत्रु मौजूद थे।

२. सुरा

सुरा भी आर्य पीते थे, यद्यपि उसे सुपान नहीं मानते थे। इसके बारेमें अध्याय १४ में हम लिखेंगे।

भाग ३

राजनीतिक

अध्याय ५

ऋग्वेद के ऋषि

§१ प्रधान ऋषि

यदि इन्द्र, अग्नि आदि अमानुप तथा कल्पित नामोको छोड भी दिया जाय, तो भी ऋग्वेदके ऋषियोकी सख्या साढे तीन सौ से कुछ ऊपर है। इनमें सबसे पुराने अगिरा, रहूगण, कुशिक है, परन्तु उनके एकाव ही मन्त्र मिलते हैं। उनके बाद सबसे पुराने तथा प्रधान ऋषि एक सूक्तमें साथ आये है, जो क्रमश भरद्वाज, कश्यप, गोतम, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि और वसिष्ठ हैं। यदि ऋग्वेदके दसो मण्डलोंके क्रमके अनुसार देखा जाय, तो द्वितीय मण्डलके गृत्समद, तृतीय मण्डलके विश्वामित्र, चतुर्थ मण्डलके वामदेव, पञ्चम मण्डलके अत्रि, पष्ठ मण्डलके भरद्वाज, सप्तम मण्डलके वसिष्ठ और आठवें मण्डलके कण्व प्रधान मालूम होते है। प्रथम, नवम और दशम मण्डलोमें किसी एक ऋषि या उसके कुल-गोत्रकी प्रधानता नहीं है। बौद्ध त्रिपिटकके दीघनिकाय के तेविज्जसुत्त (१।१३)मे और दूसरे स्थानोंमे भी मन्त्रोके कर्ता मन्त्रोंके प्रवक्ता दस ऋषि गिनाए गए हैं—अष्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, जमदग्नि, अगिरा, भरद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप और भृगु। इनमें वामक नाम का कोई ऋषि नही मिलता, बाकी सबके मन्त्र ऋग्वेदमें मिलते है, और वामदेव, विश्वामित्र, भरद्वाज तथा वसिष्ठ तो सबसे अधिक मन्त्रोके कर्ता है। यदि मन्त्रोकी अधिक सख्याके क्रमके अनुसार देखा जाय, तो सबसे अधिक—१०३ सूक्तो—के कर्ता वसिष्ठ हैं। उनके बाद दूसरे हैं—भरद्वाज ६०, वामदेव ५५, विश्वामित्र ४८, गृत्समद

४०, कक्षीवान् २७, अगस्त्य २६, दीर्घतमा २५, गोतम २०, मेधातिथि २०, श्यावाश्व १५, कुत्स १४, मधुच्छन्दा १०, प्रस्कण्व ९, पराशर ५, जमदग्नि ५। कम सूक्तोंके कर्ता किन्तु कुछ महत्त्व रखनेवाले ऋषि हैं—कवप ४, बृहस्पति २, हर्यत १, अपाला १, अष्टक १, कुशिक १ और सुदास १। ऋग्वेदकालीन आर्यजनोंके पुरोहित निम्न ऋषि थे—

पुरोहित	जन	प्रदेश
१ भृगु	द्रुह्यु	(परुष्णी-असिक्नीके बीच)
२ अत्रि, गृत्समद (पञ्चम मण्डल)	पुरु	(विपाश्-शुतुद्रिके ")
३ भरद्वाज (षष्ठ मण्डल)	दिवोदास, सुदास (भरत)	(परुष्णी-विपाश्के ")
४ वसिष्ठ (सप्तम मण्डल)	सुदास (भरत)	(परुष्णी-विपाश्के ")
५ विश्वामित्र (तृतीय मण्डल)	सुदास (भरत)	(परुष्णी-विपाश्के ")
६ दीर्घतमा मामतेय	भरत-तृत्सु	(परुष्णी-विपाश्के ")
७ कण्व (अष्टम मण्डल)	तुर्वश, यदु	(परुष्णी-असिक्नीके ")

अधिक मन्त्रोंके रचयिता और ऐतिहासिक महत्त्व रखनेके कारण आर्यजनोंके इन पुरोहित-ऋषियोंको प्रधानता देनी पड़ेगी, जो उमरमें छोटे-बड़े हो सकते हैं, पर समकालीन हैं। इनमें भी भरद्वाज, वसिष्ठ और विश्वामित्रका सबसे अधिक महत्त्व है। यह शम्बर-युद्ध फिर राजा सुदास के दाशराज्ञयुद्धके समय मौजूद थे। वसिष्ठ और विश्वामित्रने बरू संघर्षमें मुख्य तौरसे हाथ बटाया था। "दाशराज्ञयुद्ध" का काल ईसा-पूर्व १२००के करीब है और आर्य सप्त-सिन्धुमें ई० पू० १५०० में आए, अर्थात् तबसे विश्वामित्रके काल तक आर्योंकी चौदह-पन्द्रह पीढ़ियाँ बीत चुकी थी

जब हम ऋषियोंके पूर्वजोंको देखते हैं, तो किसीकी पीढ़ी अपने परदादासे आगे नहीं जाती। भरद्वाज के पिता बृहस्पति, पितामह लोकनामा और

प्रपितामह अंगिरा थे। कण्वके पिता घोर और पितामह अंगिरा थे। कश्यपके पिता मरीचितक का ही नाम हमें मालूम है। गोतमकी भी एक ही पीढी अर्थात् पिता रहूगणका पता मालूम है। अत्रिके पिताका भी नाम निश्चित मालूम नही है। विश्वामित्रकी चार पीढी—अर्थात् पिता गाथी, पितामह कुशिक और प्रपितामह इषीरथ—मालूम हैं। वसिष्ठ और उनके भाई अगस्तके पिता मित्रावरुण बतलाए गए हैं, यदि वह मनुष्य नही देवता हैं, तो इसका मतलब है, कि उनके पूर्वजोमें किसीका नाम मालूम नही है। भृगुके पिता वरुण थे। इस प्रकार चार पीढी अर्थात् एक शताब्दी अथवा ई० पू० १३००से पहलेके किसी ऋषिपूर्वजका पता नही हैं। पीछेकी ओर देखते हैं, कि इन ऋषियोकी परम्पराओंको काफी सुरक्षित रखनेकी कोशिश की गई है। यह आश्चर्य की बात हैं, पूर्वजोकी स्मृति क्यो नही कायम रखी गई। लेकिन आश्चर्य करनेकी कोई जरूरत नही। आर्य जब सप्त-सिन्धुमे आए, तो घुमन्तू जीवन बिताते थे, अभी वह जनयुग—कबीलाशाही—से बाहर नही आए थे। गाय-घोडो और भेडोको पालना उनकी जीविकाका मुख्य साधन था। यदि कृषि करते थे, तो नामात्र ही। उनके उपयोगके लिए अन्न जुटानेवाले पराजित सिन्धुवासी मौजूद थे। लेकिन जीवन तथा विलासकी बहुत-सी सामग्रियोको स्वीकार कर वह सामन्तयुगीन संस्कृति और आर्थिक जीवनमे अछूते कैसे रह सकते थे? सामन्तवादकी ओर बढनेके लिए जनयुगकी दीवारोको तोडना आवश्यक था, अर्थात् भिन्न-भिन्न जनो (कबीलो)को एकताबद्ध करना था। एकताबद्ध करनेके प्रयासका अन्तिम परिणाम "दाशराज्ञयुद्ध" हुआ था।

इस पृष्ठभूमिमे देखनेपर मालूम हो जाएगा, कि ऋषियोकी जो पहले की तीन-चार ही पीढियाँ हमे मालूम होती हैं, उसका कारण यही है, कि तभीसे वह जनयुगसे सामन्त-युगकी ओर दृढ कदम रखने लगे। जिस तरह ऋग्वेदके प्रधान तीन ऋषियोंसे पहलेके ३०० वर्षोका आर्योका इतिहास हमें अन्ध-काराच्छन्न मालूम होता हैं, वैसे ही उसके बाद—जहाँ तक ऐतिहासिक साहित्यिक-सामग्रीका सम्बन्ध है—फिर तीन सौ वर्षो तक अन्धकार छा

ऋषियों के वंशवृक्ष—

ई० पू०						
१२७५			अंगिरा			
११५०	लोकनामा		घोर		...	वरुण
१२२५	बृहस्पति		कण्व		....	भृगु
१२००	भरद्वाज	प्रस्कण्व	वत्स	मेघातिथि	अजीगर्त	यमदग्नि
११७५	गर्ग				शुनःशेप	

इषीरथ				१२७५
कुशिक		रहूगण	पिजवन	१२५०
गाथी	मित्रावरुण	गौतम	वध्र्यश्व	१२२५
विश्वामित्र	वसिष्ठ, अगस्त्य	वामदेव	दिवोदास	१२००
मधुच्छन्दा	शक्ति		सुदास	११७५
	पराशर, गौरवीति			११५०

जाता है। ऋग्वेदके ऋषि सप्तसिन्धुके ऋषि थे। उस वक्त आर्योका निवास और प्रभुता क्षेत्र सप्तसिन्धु अर्थात् सरस्वतीसे लेकर सिन्धुकी उपत्यका तकका देश (हरियाणा, पञ्जाब और पख्तूनिस्तान) था। तीन सौ वर्ष वाद यजुर्वेद, अथर्ववेद, ऐतरेय, शतपथ ब्राह्मण जैसे प्राचीन ग्रन्थ मिलते है। इन ब्राह्मणोके कर्ता ऐतरेय महीदास और याज्ञवल्क्य उस समय पैदा हुए, जबकि सप्तसिन्धु नही कुरु-पञ्चाल (पश्चिमी उत्तर-प्रदेश) आर्योका गढ बन चुका था और उनका प्रभाव पूर्वमें विदेह (उत्तरी विहार) और दक्षिणमें भोज (मध्य नर्मदा उपत्यका) तक पहुँच गया था। यदि इन तीन सौ वर्षों की वाते अविच्छिन्न रूपसे प्राप्त होती, तो मालूम होता, कि आर्य सप्तसिन्धुसे पूर्वकी ओर किस तरह वढे ?

सप्तसिन्धुमे प्रवेश करनेकी वातका भी हमारे साहित्यमे कोई उल्लेख नही मिलता। हमें उसके वारेमें तुलनात्मक भापा-विज्ञान और नृतत्व से मदद लेनी पडती है। फिर एकाएक कूदकर तीन सौ वर्षो बाद हमे दिवो-दास और सुदास तथा उनके पुरोहित भरद्वाज, वसिष्ठ आदि एव उनके सघर्पोका पता लगता है। इसके वाद फिर इतिहासकी सरस्वती लुप्त होकर तीन सौ वर्प वाद ब्राह्मणोके रूप मे हमारे सामने आती है। तब हमे कुरु और पञ्चालके समृद्ध जनपद और राज्य दिखाई पडते है, तथा इसी समय उपनिपद्के रूपमे आर्य-विचारक जनयुगीन देवमालासे अपनेको ऊपर उठाते दिखाई पडते है।

प्रधान ऋपियोके राजनीतिक जीवनके सम्वन्धमें हम उनके यजमानोके सघर्पके वर्णनमें वतलाएँगे। वह वस्तुत केवल धार्मिक नेता (पुरोहित) और कवि (कारु) मात्र ही नही थे, वल्कि अपने लोगो के प्रधानमन्त्री तथा सेनानायक भी थे। यदि बुढापेके कारण युद्धमे सीधे भाग नहीं ले सकते थे, तो अपनी तरुण सन्तानो और वशजोको उसमे शामिल होनेके लिए आह्वान करते थे। उनकी स्तुतियो और देवताओकी कृपासे उनके यजमानोको सफलता नही मिली, वल्कि उनके शक्तिशाली कुल-तरुणोकी तलवारो और धनुप-वाणोने सफलता में सहायता की।

१. भारद्वाज

रचनाके ख्यालसे ६० सूक्तोंके रचयिता वृहस्पतिके पुत्र भरद्वाजका ऋग्वेदके ऋषियोमे दूसरा नम्बर आता है। वह सुदास के पिता दिवोदासके पुरोहित थे। यदि आर्यजनोंके आपसी संघर्षमें वसिष्ठने सुदासकी बड़ी सहायता की थी, तो भरद्वाजका हाथ सुदासके पिता दिवोदासकी सफलताओं में कम नही था। ऋग्वेदका छठा मण्डल उनका और उनके वंशजोंका मण्डल है, जिसमें ऋषिने दिवोदासकी सफलताओंका वर्णन किया है। इनका अपना मोटो था "तरें हम तरें तेरी रक्षासे हम तरें"[1] (५।१।१२)[2] (६।१५।१५ आदि)। दूसरा वाक्य जो इनकी ऋचाओंमें दोहराया जाता है, वह है—"हम अच्छे वीरोंके साथ सौ सर्दियोंतक आनन्दपूर्वक रहें"[3] (७।४।८, ७।२४।१०)। इन्होने आधे दर्जन से अधिक स्थानोंमें "अद्रोघ-वाच" (अमिथ्यावादी) शब्दका प्रयोग किया है[4] (६।५।१, ६।६।१२ आदि)।

दिवोदासका उल्लेख इनकी बहुत-सी ऋचाओंमे मिलता है, किन्तु सुदासका कही नही है। तब मर गये होंगे या सुदासके लिए अमंगल कामनाएँ की हो इसलिये उन ऋचाओंका संग्रह नही किया गया। लोभ, द्वेषमें यह पुराने ऋषि-पुरोहित अपने आजके वंश-धरोंसे बहुत ऊपर नही थे इस-लिए जिस सुदास ने उनको राजपुरोहित पदसे दूधकी मक्खीकी तरह निकाल बाहर किया, उसके लिए वह अमंगल-कामना नही करेंगे, यह नही हो सकता। ऋग्वेदमें संगृहीत ऋचाएँ मुख्यत ऋषि-पुरोहितोंके इष्टदेवताओंकी महिमा-वर्णन करनेके लिए हैं। भरद्वाजके देवता असफल साबित हुए, फिर असफलताके प्रदर्शन के लिए उनकी की गई स्तुतिको क्यो सुरक्षित किया जाता?

भरद्वाज अध्यात्म-शक्तिके कायल नहीं थे। उन्होंने प्रार्थनाकी थी "अश्मा भवतु नस्तनू" (हमारे शरीर पत्थरके हो ६।७५।१२)[5]। इनके यजमान दिवोदास और सारे आर्यजनोंका प्रबल शत्रु शम्बर नामक दस्यु-राजा था। वह विपाश् (व्यास) और परुष्णी (रावी) के बीचके

वर्तमान कागडावाले पहाडका राजा था और जैसा कि हमने अन्यत्र वतलाया है, वह द्रविड (सिन्धु) जातिका नही वल्कि किरात (मगोलायित) जातिका था। उसके सौ पहाडी दुर्ग थे, जिनमे १९वी सदी तक शत्रुओके दात खट्टे करनेवाला कागडा जैसा कोई किला (पुर) शायद इसी स्थान पर था। आयसी (तावे जैसी दृढ) के स्थान पर दूसरी जगह अश्मन्मयी (पत्थर जैसी दृढ) पुरियों (किलो) का भी जिक्र आया है। ये पहाडी किले पत्थरके रहे होगे। शम्वरके अलावा चुमुरि, धुनि, शुष्ण, अशुष, पिप्रु, नाम वाले दूसरे आर्य-विरोधी असुर राजाओका उल्लेख भरद्वाजने किया है। यह भी पहाडी राजा तथा शम्वरके सहयोगी थे। इसमे शक नही कि सवसे प्रवल शत्रु शम्वर था। भयकर युद्धोके नेता-पुरोहित भरद्वाज यदि वर्म (कवच), धनु, ज्या, इपुधि (तर्कश), रथ, घोडे, परशु (फर्से) जैसे युद्धके साधनोका वर्णन करें, तो यह स्वाभाविक ही है।

क्षेत्र और अरण्यका भी उल्लेख भरद्वाज करते है [१](६१।१४), जिससे पता चलता है, कि आर्योको खेतो और जगलो दोनोसे काम था। खेतोमे वे जौ और दूसरे अनाजोकी थोडी-सी खेती करते थे, जिससे करम्भ (सत्तू) वना कर दही से खाते थे। पर, उनका प्रधान भोजन दूध और मास था, जिसके लिए एक-एक परिवारके पास हजारो गाये होती थी। इस प्रकार खेतोसे भी अधिक चरागाहोकी उनको अवश्यकता थी। घोडे इस वक्त युद्ध और साधारण सवारीके अत्यन्त उपयोगी जानवर थे और उनके मांसका उपयोग भी होता था। दिवोदासके पुत्र सुदासमे वसिष्ठने अश्वमेध यज्ञ कराया था (ऐतरेय ८।४।२१)। अश्वमेध यज्ञका यही सवसे पुराना उल्लेख है। चायमान अभ्यावर्ती राजाने दो हजार गायें दान दी थी। गोदान उस समय अधिक हुआ करता था, आर्य ऋषि प्रभूत गौओं और अश्वोकी कामना करते थे। भरद्वाजने दिवोदासकी सोम-गोष्ठियोमे सह-भागी होनेका वर्णन किया है [७](६।१६।५)। उस समय सोमपान इतना साधारण था, कि उसे सोमयाग कह कर दिव्य पूजाका रूप देनेकी अवश्यकता नही थी।

दिवोदासके पिता वध्र्यश्वने आर्योंमें कबीलाशाहीका अन्त करके उन्हें एकताबद्ध करनेका श्रीगणेश किया था, जिसको उसके सुपुत्र दिवोदासने आगे बढाया। इसमें सबसे बडे विरोधी यदु और दुर्वश दो आर्यजन थे। दिवोदासने उनको दबानेमें सफलता पाई। उसने ६० हजार दासों (असुरों) का सहार किया था। बार्हस्पत्य भरद्वाजने सात बहनें सरस्वती '(६।६१।१०), तटोंको तोडनेवाली सरस्वती' (६।६१।२) का भी उल्लेख किया है। दासोंकी सात पुरियोंको पुरुकुत्स (पुरुओंके राजा कुत्स) ने ध्वस्त किया था'°(६।२०।१०)। इससे मालूम होता है, कि भरतोंके राजा दिवोदासके ही कृपापात्र नही थे, बल्कि दूसरे जनोंमें भी भरद्वाज क मान था। बृहस्पति देवताका भी नाम है। भरद्वाजके पिता यदि बृहस्पति देवता थे, तो इसका अर्थ यही हुआ, कि उनके पिताके नामका पता नही है। पर ऋग्वेदके ऋषियोंकी अनुक्रमणीको देखनेसे मालूम होता है, कि इनके पिता बृहस्पति लोकनामा ऋषिके पुत्र और अगिराके पौत्र थे। अगिराके एक और पुत्र घोर थे। अगिराकी सन्तानोंमें तिरश्ची, हिरण्यस्तूप, वसुश्रुत श्रुतकक्ष भी थे। तिरश्चीके ऋजिश्वा और सुमित्र दो बेटोंके ऋषि होनेका पता लगता है। लेकिन अगिराके घोर और लोकनामा दोनो पुत्रोंकी सन्तानें ही अधिक ख्याति-प्राप्त हुईं। घोरके पुत्र कण्व थे, जिनके वत्स, मेधातिथि, प्रस्कण्व, प्रगाथ जैसे प्रसिद्ध ऋषि पुत्र थे। प्रगाथके कई पुत्र ऋषि थे। अगिराके प्रपौत्र भरद्वाज भी योग्य पुत्रों और सन्तानोंके लिए सौभाग्यशाली थे। उनके पुत्र गर्ग, ऋजिश्वा, शिरिम्बिठ ऋषि हुए।

२ वसिष्ठ

इन्होंने दूसरे सभी ऋषियोंसे अधिक सख्यामें (१०३) सूक्त रचे हैं। इनके बाद इनके प्रतिद्वन्द्वी भरद्वाजका नम्बर आता है, जिनके ६० सूक्त मिलते हैं। यह माना जा सकता है, कि इन ऋषियोंने जिन्दगीमें जितनी ऋचायें रची, सभी को उनके वशज इकट्ठा नहीं कर सके। आखिर रचनाकालसे कम से कम दो सौ वर्ष बाद (ई० पू० १,०००) ऋचाओंका सग्रह किया गया, और सो भी लिपिबद्ध करके नहीं, बल्कि केवल श्रुतिके

रूपमें कठस्थ करके; लिपिवद्ध करनेंमे और कई शताब्दियाँ वीती। लिपिवद्ध होनेंके वाद भी वेदपाठी अभी तक अपने-अपने वेदोको स्वर-सहित कठस्थ करके रखते हे। आधुनिक युगमें यह डर है, कि वेदपाठियोकी सख्या का जिस प्रकार ह्रास होता जा रहा है, उससे सौ-दो सौ वर्ष वाद शायद उनका मिलना मुश्किल हो जाय।

वसिष्ठके पिताका नाम मित्रावरुण देवता वतलाया जाता है। इनके सहोदर अगस्त्य मुनि थे। वसिष्ठके चित्रमह, मृलीक दो और पुत्रोका भी नाम और उनकी रची ऋचाये मिलती हे, पर उनके पुत्रोंमें प्रधान और शायद ज्येष्ठ भी शक्ति थे। इनके दो पुत्र पराशर, गौरवीति भी ऋग्वेदके ऋपि हे। पराशरको व्यास या कृष्णद्वैपायनसे मिलानेकी कोसिश नही करनी चाहिए। ब्राह्मणोके पिछले साहित्य—महाभारत, रामायण और सवसे अधिक पुराणोमें इन ऋपियो और उनके समकालीन राजाओकी वशावलियो—मे वहुत गडवडी की गई है।

ऋग्वेदके सातवे मडलके ऋपि वसिष्ठ हे। एक-एक मडलके प्रधान ऋपि और भी हे। लेकिन उनमें और वसिष्ठमे यह भेद है कि जहा दूसरे मडलोकी रचनामें उन ऋपियोके पुत्र-पौत्रोका भी काफी हाथ है, वहा वसिष्ठ सातवें मडलके सभी १०४ सूक्तोके कर्ता हे। उनके पुत्र शक्तिकी रचना ३२ वाँ और कुमार ऋपिके १०१-१०२ वें सूक्त सदिग्ध रूपसे वतलाये जाते है। वसिष्ठके मत्रोकी सवसे महत्ता यह है, कि इनकी रचना द्वारा तत्कालीन इतिहास और भूगोल पर जितना प्रकाश पडता है, उतना दूसरे किसी भी ऋपिकी रचनासे नही पडता। इनका तकियाकलाम "यूय पात स्वस्तिभि सदा न" (तुम स्वस्तिके साथ सदा हमारी रक्षा करो) है, जिसको उन्होंने एक दर्जनसे अधिक वार अपने मत्रोमें दोहराया है। आर्यो और उनके ऋपियोकी तरह वसिष्ठके भी सवसे वडे आराध्य देवता इन्द्र थे। उसके वाद मित्र, सूर्य, अग्नि, विश्वेदेव, वरुण, अश्विद्वय, उषा, सरस्वती थे। जिस तरह आज शैव लोग मरने पर कैलाशवासी वननेकी इच्छा रखते हैं वैष्णव लोग वैकुण्ठके, कुछ कृष्णभक्त गोलोकवासी वननेकी इच्छा से भी

रे जाते है, उसी तरह उस समय आर्य मरनेपर इन्द्रलोकमें जानेकी इच्छा खते थे।

ऋग्वेदके वाद यद्यपि कालक्रममे साम, यजु और अथर्व-वेदोका नम्वर ाता है, पर जहा तक इतिहासका सम्वन्ध है, उनमे हमें अधिक सहायता नही मलती। उसके वाद प्राचीन ब्राह्मणोका नम्वर आता है। ऐतरेय ब्राह्मण ऋग्वेदका अपना ब्राह्मण है। ब्राह्मणोका काम मत्रोकी व्याख्या करना नही ।। ब्राह्मण (ब्रह्म-सम्वन्धी) ग्रथ है, ब्रह्मसे अभिप्राय यज्ञ या मत्रका है। ाह यज्ञोकी भिन्न-भिन्न क्रियाओ और उनमें वेद-मत्रोके विनियोगकी वात तलाते है। ऐतरेय ब्राह्मणमे आवे दर्जन जगहो पर वसिष्ठका नाम आया ; एक (७।३।१६) से मालूम होता है, कि एक यज्ञमें विश्वामित्र होता, ामदग्नि अध्वर्यु, वसिष्ठ ब्रह्मा, अयास्य उद्‌गाता थे। इसी यज्ञमें सुयवसका ुत्र अजीगर्त एक पुरोहित था। लालची अजीगर्तने तीन सौ गौवोंके ोभमें अपने पुत्र शुन शेपको खुद तलवारसे काट कर वलि देना स्वीकार किया। पुत्रने ऐसे वापसे पिंड छुडानेके लिए विश्वामित्र को अपना पिता नाना चाहा और उनकी गोदमे जाकर वैठ गया। अजीगर्तने विश्वामित्रसे कहा—"ऋषि, मेरे पुत्रको मुझे दे दो।"

—"नही, देवोने इसे मुझे दिया है।" उन्होने शुन शेपका नाम वदलकर देवरात वैश्वामित्र रख दिया। अजीगर्तने पुत्रसे प्रार्थना की—

"हम दोनो (माता-पिता) तुझे वुलाते है। तू आंगिरस-गोत्री अजीगर्तका पुत्र ऋषि है। हे ऋषि, तू अपने वाप-दादोंके घरको मत छोड। हमारे पास आ जा।"

शुन शेपने कहा—"मैंने तेरे हाथमें वह चीज (तलवार) देखी है, जो शूद्र भी नही लेता। हे आंगिरस, तूने तीन सौ गायोको मुझसे वढकर समझा।"

अजीगर्तने कहा—"तात, मै अपने किये पर दुखी हूँ। मै उसका निवारण करता हूँ। मै सौ गायें तुझे देता हूँ।"

शुन शेपने कहा—"जो एक वार पाप कर सकता है, वह दूसरी वार भी

कर सकता है। तू शूद्रतासे मुक्त नही है। जो पाप तूने किया है, वह किसी प्रकार निवारित नही हो सकता।"

विश्वामित्रने बीचमें कहा—"हाँ, निवारित नही हो सकता। यह सुयवस-का पुत्र जब हाथमें तलवार लिये मारनेको तैयार था, उस समय बडा भयानक लगता था। इसलिए तू अपनेको उसका पुत्र मत समझ, मेरा पुत्र होजा।"

ऐतरेयके इस उद्धरणसे पता लगता है कि वसिष्ठ, विश्वामित्र, जमदग्नि, अयास्य, अजीगर्त तथा शुनःशेप एक कालमें मौजूद थे। दूसरे वाक्य (७।५।३४) से मालूम होता है, कि एक यज्ञविधिको वसिष्ठने सुदास पैजवनको बतलाया था। आठवी पंजिका (८।४।२१) में एक बडी महत्त्व-पूर्ण सूचना मिलती है—"इन्द्रके इसी महाभिषेकसे वसिष्ठने पैजवन सुदास का महाभिषेक किया और उसने पृथ्वी भरमें विजय पाई और अश्वमेध-यज्ञ किया।" उसके पिता दिवोदासके सम्माननीय पुरोहित भारद्वाजने क्यों नही सुदासका अभिषेक किया? वसिष्ठने क्यो किया? दिवोदासका एक पुत्र प्रतर्दन भी था, जिसे पीछे हुए काशिराज प्रतर्दनसे एक नही करना चाहिए। खानदानी पुरोहितको छोडकर दूसरे पुरोहितको स्वीकार करना यही बतलाता है, कि दोनो भाइयोमें पिताके सिंहासनके लिए झगडा था। प्रतर्दन शायद बडा लडका था। दिवोदासकी गद्दी पर भरद्वाजने उसे अभि-षिक्त किया। चन्द्रगुप्त (गुप्त-वंशी) की तरह सुदास अपने पिताका योग्यतर अधिकारी था। दोनो भाइयोमें झगडा हुआ। भरद्वाजने प्रतर्दन का पक्ष लिया, पर सुदासकी पीठपर वसिष्ठ जैसा चतुर और बहुवग-वाला पुरुष था। ऐतरेय ब्राह्मणमें साफ बतलाया गया है, इस ऋषिने "इन्द्रके महाभिषेकसे पैजवन सुदासका महाभिषेक किया।" यद्यपि स्वयं ऋग्वेदमें प्रतर्दन और वसिष्ठके झगडेका वर्णन नही है, और न यही बतलाया गया है, कि सुदासको गद्दी पानेमें अपने भाईसे मुकाबला करना पडा। पर ऐतरेय ब्राह्मणके कथनका वहाँ कोई विरोध नहीं मिलता, बल्कि वसिष्ठ का सुदासका पुरोहित बनकर दाशराज्ञयुद्धमें सफलता प्राप्त करनेके लिए सब कुछ करना, इसकी पुष्टि करता है।

सुदासके पिता दिवोदासने वसिष्ठके अनुसार [१](७।४।७) सौ आयसी पुरियोका नाश किया था। वसिष्ठको इसका अभिमान था, कि भरतोके प्रताप को बढानेमे मेरा सबसे बडा हाथ है—"दण्डसे (पिटती) गौओकी तरह पहले भरत लोग (अनाथ) शिशु जैसे तथा परिच्छिन्न थे। वसिष्ठ उनके पुरोहित हुए, तो तृत्सु बने लढेगे।" [२](७।३३।६) भरतोकी सफलताओका वसिष्ठने अपने सातवे मण्डलमे कई जगह वर्णन किया है। भरतोने पुरु लोगोको अभिभूत किया [३](७।८।४) सुदासके साथ संघर्ष मे द्रुह्युवो और अणुओंके ६६ हजार आदमी मारे गये [४](७।१८।१४)। तृत्सुओने जमुनाके परे भेद, अज, शिग्रु और यक्षु लोगोको परास्त किया [५](७।१८।१९)। ये अनार्य जन मालूम होते है। वसिष्ठने अनार्य लोगोको "शिश्नदेव" (लिंगको देवता माननेवाले) वतलाया है [६](७।२१।५)। वसिष्ठके एक कथनमे मालूम होता है, कि दाशराज्ञयुद्ध सिन्धुके तीर पर हुआ था, जहा पर इन्द्रने सुदासकी रक्षाकी, अर्थात् सुदास विजयी हुआ [७](७।३३।३)।

पौराणिक युगने वसिष्ठको वेश्या-पुत्र कहा गया है। देव-(जन युगीन) कन्याये सदा कुमारिया रहती है उनका प्रणय स्थायी नही होता है, इसलिए उन्हे देवगणिका भी कहा जाता है। वसिष्ठको मैत्रावरुण (मित्र और वरुणकी सन्तान) और उर्वशीमे उत्पन्न बतलाया गया है [८](७।३३।११)। अप्सरासे वसिष्ठका उत्पन्न होना भी उल्लिखित है [९](७।३३।१२)। देवता या देवकन्यासे उत्पन्न होनेका मतलब यही है, कि पीछेके लोगोको वसिष्ठके माता-पिताका नाम नही मालूम था। यातुधान, यातुमावान (जादूगर) [१०](७।१०४।१५, ७।१।१५) का वर्णन वसिष्ठने किया है। झूठके लिए दरोग शब्द फारसीमे आज भी प्रयुक्त होता है, वसिष्ठने "द्रोघवाच" [११](७।१०४।१४) का प्रयोग किया है। वसिष्ठ और अगस्त्य पीछेके साहित्यमे भाई बतलाये जाते है, जिसकी पुष्टि ऋग्वेदके एक मत्र [१२](७।३३।१०) से होती मालूम होती है। वसिष्ठके जीवनकी सबसे बडी घटना और सफलता दाशराज्ञयुद्धमे सुदासकी विजय अर्थात् सप्तसिन्धुके बिखरे हुए आर्यजनोको एकताबद्ध करना है। "दस राजाओने मिलकर

सुदाससे लडाई की" [13](७।८३।७)। तृत्सुओके देशमे दाशराज्ञ (युद्ध) में सुदासके लडनेका भी उल्लेख है (७।८३।७-८)।.

३ विश्वामित्र—

यद्यपि गाथीके पुत्र कुशिकके पौत्र और इषीरथके प्रपौत्र, विश्वामित्रकी ऋचाओंसे अधिक सख्या रचनावाले गोतमपुत्र वामदेव है, किन्तु विश्वामित्रका महत्त्व वसिष्ठ और भरद्वाजके समान है, इसलिए हम उनको यहा ले रहे है। यह ऋग्वेदके तीसरे मण्डलके ऋषि है। विश्वामित्र और वसिष्ठका जो वर्णन हम रामायणमें पाते है, उसका ऋग्वेदसे कोई सम्बन्ध नही है, और वह ऐतिहासिक तथ्य नही, बल्कि पौराणिक कल्पना मात्र है। इन्द्र, वरुण, बृहस्पति, पूषा, सविता, सोम, मित्र आदि देवताओकी इन्होने स्तुति की है, और ३३३९ देवो (३।९।९) ० ३३ करोड नही ३३ देवताओका उल्लेख सबसे पहले इन्होने ही किया—"त्रिशत त्रीश्च देवान्" [14](३।६।९, ३।२४।३०)। अपने साथी यमदग्नि [15](१०।१६७।११३) और अपने वश कुशिक (लोगो) [16](३।२६।१२) का इन्होने उल्लेख किया है। पुरविये कुशिक सख्या और प्रभुत्वमे बढे-चढे थे, इसीलिए शायद सुदासको अपने अभिषेक करनेवाले तथा दाशराज्ञयुद्धमे परमसहायक वसिष्ठकी ओरसे मुंह मोडकर विश्वामित्रकी ओर मुंह फेरना पडा। उस मनस्वी कार्यार्थी राजाके लिए एक उपकारक पुरोहितको छोडकर दूसरे पुरोहितको अपनाना स्वाभाविक था। इस तोताचश्मीको देखकर वसिष्ठके पुत्र शक्तिने विरोध किया, लेकिन प्राण गँवानेके सिवा उन्हें कोई लाभ नही हुआ। नदियोंको थाहमें लानेका दावा वसिष्ठने भी किया है [17](७।१८।५ "सुदासे अर्णासि गाधानि अकरोत्"), और विश्वामित्रने भी। विश्वामित्रने व्यास और सतलुजको गाधा (थाहवाली) होनेके लिए सवाल-जवाबमे जो प्रार्थना की है, वह ऋग्वेदकी बहुत सुन्दर ऋचाओमेंसे तथा अच्छा काव्य है। नदियोके भी दिलको हिला देने वाली कविता वसिष्ठने नही विश्वामित्रने ही की थी। इसके कुछ अश निम्न प्रकार है— [18](३।३३)

विश्वामित्र—"विपाश् और शुतुद्री जल-सहित पर्वतोंके पाससे बन्धन-मुक्त घोडियोकी तरह अट्टहास करती बछडोंके चाटनेकी इच्छावाली शुभ्र गो-माताओंकी तरह समुद्रकी ओर दौड रही है।" ॥१॥

"हे दोनों नदियो, इन्द्र द्वारा प्रेरित, स्तुतियोंकी सुननेवाली तुम रथियों-की तरह स्वच्छ समुद्रकी ओर जा रही हो। साथ-साथ चलती ऊर्मियोंसे बढी हुई हे शुभ्रो, दोनो पास-पासमे चल रही हो।॥२॥

मेरे सौम्य वचनको (सुननेके) लिए मुहूर्त्त भर अपनी दौड मे रुक जाओ। कुशिकका सुत विशाल नदियोका आह्वान मै मनकी बात के लिए कर रहा हूँ" ॥५॥

नदियां—"वज्रहस्त इन्द्रने पर्वतका हनन कर हमारे लिए नदियोंकी परिधि खोदी। सुपाणि सवितादेव हमे ले जा रहा है। हम उनकी आज्ञामे विस्तृत होकर जा रही हैं"॥६॥

विश्वा०—"ठहरो बहनो, (उस) कवि की बात सुनो, जो कि दूरसे बैलके रथ पर आया है। थोडा नीची होकर सुपारा हो और (रथके) अक्षमे नीचेके जलवाली नदी बन जाओ" ॥९॥

नदियां—"कवि, दूरसे अनस्-रथ द्वारा आये तेरे वचनको हम सुनती हैं। दूध पिलानेकी इच्छा वाली स्त्री, या पुरुषके लिए युवतीकी तरह हम तेरे लिए निम्न हो जाती हैं" ॥१०॥

विश्वा०—"प्यारियो, यदि सग्राममे गायोंके इच्छुक तथा इन्द्र-प्रेरित भरत तुम्हें तर जाये, तो इनके लिए मै तुम्हें यज्ञ-योग्य मानकर स्तुति करूँगा" ॥११॥ गो-इच्छुक भरत लोग (नदी) पार हो गये। विप्रने नदियों-की सुन्दर स्तुति की ॥१२॥

विश्वामित्रने सुदासको बडा किया, सिन्धु (नदी) को स्तम्भित किया "(३।५३।९) और सुदासके पीछेकी विजयोंमें बडी सहायता की। अपने समकालीन दोनो ऋषियोंकी तरह इनका भी एक मोटो था, जिसे इनकी अनेक रचनाओंमे" (३।१।२३, ३।७।११, ३।१५।७, ३।२३।५, ३।२३।५) दोहराया गया है—"स्यात्र सूनुस्तनयो विजावा अग्ने सा ते

सुमतिर्भूत्वस्मे", जिसके अनुसार वह पुत्र-पौत्रोको सतान और सुमति (सुस्तुति) वाले होनेकी प्रार्थना करते थे।[११] (३।३०।२२)। उनको विश्वास था कि "विश्वामित्रका यह वचन भारत जनकी रक्षा करेगा।"[१२] (३।५३।१२)।

तीन सौ गायोके वदले वेंचकर मारनेके लिए तलवार उठाए अपने पिता अजीगर्तको छोडकर शुन शेपने किस तरह विश्वामित्रका पुत्र वनना स्वीकार किया, इसका उल्लेख हम पहले कर आए हैं। वामदेव यद्यपि गोतमके पुत्र थे, लेकिन ऐतरेय ब्राह्मणसे मालूम होता है, कि विश्वामित्रके सूक्तोका उन्होंने प्रसार किया (ऐ० ६।४।१८)। ऐतरेयके अनुसार विश्वामित्र सवका मित्र था (६।४।२०), लेकिन वडे-वडे युद्धोका समर्थक कैसे सवका मित्र हो सकता था? हाँ, शुन शेपकी प्राणरक्षा जिस तरह विश्वामित्रके कारण हुई थी, उससे मालूम होता है, कि नर-वलिको वह मान्य नही समझते थे। विश्वामित्रके सौ पुत्रोकी वात सदेहास्पद है। हो सकता है, इसमे उनके पुत्रो, पौत्रो और प्रपौत्रोको भी गिन लिया गया हो। पर मधुच्छन्दा, ऋषभ, रेणु और ऋत ऋषि उनके पुत्र मालूम होते हैं। पौत्रोमें मधुच्छन्दाके पुत्र अघमर्पण और जेता तथा ऋतके पुत्र उत्कील भी ऋषि हैं। 'ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखा है—"विश्वामित्रके सौ पुत्र थे। ५० मधुच्छन्दा से वडे और ५० छोटे। (शुन शेपका गोद लिया जाना) वडोको अच्छा नही लगा। तव विश्वामित्रने उनको शाप दिया—'तुम्हारी सन्तान अभक्ष्यभक्षी हो जाए।' इस प्रकार आन्ध्र, पुड्र, शवर, पुलिंद आदि दस्यु लोग विश्वामित्रकी सन्तान हैं। लेकिन मधुच्छन्दा और उसके पचास भाइयोंने कहा—"हमारे पिता जो कुछ कहेंगे, हम उसीको मानेंगे। हम तुझ (शुन शेप) को ज्येष्ठ मानते हैं। हम तेरा अनुसरण करेंगे। विश्वामित्र इस उत्तरसे प्रसन्न हो गये। उन्होने निम्न मन्त्रोंसे पुत्रोके लिए स्तुति की—

मेरे पुत्रो तुम पशु और सन्तानमे फूलो-फलो।
तुमने मेरा कहा मानकर मुझे पुत्रवान् वनाया।
हे गाधिकी सन्तानो, देवरातके सरक्षण मे तुम पुत्रवान् होगे

वह तुमको सत्यके मार्गपर ले चलेगा।

हे कुशिक-सन्तानो, वीर देवरातके अनुचर बनो।

यह तुम्हारा पथ-प्रदर्शक और हमारी विद्याका दायभागी होगा।

विश्वामित्रके सब सच्चे पुत्र और गाथी के पौत्र जो देवरातके साथ हुए,

उनको धन, यश और कीर्तिकी प्राप्ति होगी।" (७।३।१८)

यद्यपि ऐतरेय ब्राह्मणने शुनःशेपको देवरात वैश्वामित्र प्रख्यापित करनेकी कोशिश की है, पर ऋग्वेदके ऋषि शुनःशेप आजीगर्तके नामसे ही प्रसिद्ध है।

४ वामदेव

गोतमके पुत्र वामदेव शायद वसिष्ठ, विश्वामित्रकी अगली पीढीके ऋषि थे, पर उनकी प्रतिष्ठा इन तीन महान् ऋषियोंमें कम नही है। विश्वामित्रके सूक्तोका वामदेवने प्रसार किया, इसे हम अभी बतला आए है। अपनी ऋचामे वामदेवने "गोतमात्पितु"[1] (गोतम पिता से ४।४।११) और "मामतेय"[2] (ममताका पुत्र ४।४।१३) का उल्लेख किया है, जिससे वामदेवके पिताका नाम गोतम मामतेय जान पडता है। वामदेवने कही नाम और कही बिना नाम दिए दिवोदास और उनके पुत्र सुदासकी सफलताओका वर्णन किया है। अतिथिग्व दिवोदासने सौ पुर जीते[3] (४।२६।३)। ये सौ पुर (किले) आयसी थे[4] (४।२७।१)। दिवोदासके लिए सौ अश्मन्मयी पुर इन्द्रने जीते[5] (४।३०।२०)। युद्धमे ३० हजार दास मूछित हुए। परुष्णी (भरतोकी नदी रावी) पर इन्द्रने कृपा की[6] (४।२२।२)। इन स्थलो पर वामदेवने भरतो और उनके राजाकी महिमा गाई है। सहदेवपुत्र कुमार सोमक,[7] (४।१५।७-९), सृजयोका राजा देववात, वैदथी ऋजिश्वा, आर्जुनेय कुत्स इन राजाओकी भी वामदेवने प्रशसा की है। हो सकता है, इनमेसे कुछ उनके समकालीन और दाता हो। ५० हजार कृष्णो (काले असुरो) के मारे जानेका भी उल्लेख वामदेवने किया है[8] (४।१६।१३)। अग्निकी (चनाब) का भी

उल्लेख उनकी ऋचा [४१](४।१७।१५) में हुआ है। इनके समय आर्योंमें यह मशहूर था, कि, प्रात कालकी देवी उपा जब आकाश में गमन कर रही थी, तो विपाश् (व्यास) नदीके तीर उसका शकट गिर गया [४२](४।३०।११)। दासो मे कौलितर शम्बरका उल्लेख इन्होने किया है [४३](४।३०।१४-१५)। तुर्वश और यदु दोनो प्रभावशाली आर्यजनोका भी उल्लेख हैं। "कृपतु लागल" (४।५७।४), "सीता सुफला "(४।५७।६-७), "फाल" [४५](४।५७।८), हलके जोतने, हलकी हराइयोके सुफल होने और हलके फालोका जिक्र करके वामदेवने आर्योंमे कृपिके प्रचारका उल्लेख किया है। मुस्कुराती हुई सुन्दर स्त्रियाँ [४६](योपा कल्याण्य स्मयमाना ४।५८।८) में उन्होने सुन्दरियोका उल्लेख कया है। वामदेव और नोवाके पिता गोतम और पितामह रहूगण थे। वामदेवके-पुत्रोमे मूर्धन्वा, वृहद्दिव और वृहदुक्थ ऋपियोका नाम मिलता है।

§२ अन्य ऋपि

५, गृत्समद

यह शौनकके पुत्र थे। शौनकके तौरपर उल्लेख इनका [४७](९।८६।४६-४८) हुआ है। शायद यह अत्रिके वशज थे। [४८](२-८-५) दिवोदास और शम्बरके सघर्पका इन्होने भी उल्लेख किया है। दिवोदासने ९९ पुरो (किलो) को जीता [४९](२।१९।६), शम्बरकी सौ पुरियाँ ध्वस्त हुई [५०](२।१४।६-७), शत्रु कृष्णयोनि (काली जातियाँ, दास) थे [५१](२।२०।७)। शम्बरके अतिरिक्त स्वस्न, शुष्ण, अशुप, व्यस, पिप्रु, नमुचि [५२](२।१४।५), चुमुरि, धुनि [५३](२।१५।९), कुयव [५४](५४।२।१९।६)जैसे दास-राजाओका भी इन्होने उल्लेख किया है। "पहाडके वासी शम्बरको चालीसवें वर्पमें पकडा, [५५](२।१२।११) यह उल्लेख वामदेवने किया है, अर्थात् चालीस वर्प तक पराक्रमी शम्बर आर्योंके हाथ नही आया था। भेडके ऊनीवस्त्रमें छाने हुए सोम कलशोमे रखे है [५६]("सोमो मेप्य पुनान कलशेपु

सीदति" ९।८६।४७) के कथनसे मालूम होता है, कि सोमको पीम और घोलकर ऊनी कपडेके छन्नेमें छानकर कलशोमे रक्खा जाता था।

६ कक्षीवान्

यह दीर्घत्तमा औचथ्यके पुत्र थे। पीछेकी परम्परा वतलाती है, कि दीर्घतमा और गोतम एक ही व्यक्तिका नाम है। कक्षीवान्ने गोतमका उल्लेख [57](१।११६।९) किया है, पर उसमे यह नही मालूम होता, कि गोतमका इनमे पैतृक सम्वन्ध था। भरद्वाजका इन्होने दो वार और अत्रिका दो वार उल्लेख किया, पर उसमे इन्हें भरद्वाज या अत्रिके वशका नही कहा जा सकता। दिवोदासका इन्होने भी उल्लेख [58](१।११६।१५, १६, १८, में) किया है। सौ पतवारोवाली नौका ("नौ शतारित्रा) [59](१।११६।५) का इनका उल्लेख वतलाता है, कि समुद्रगामी पोत उस वक्त सप्तसिन्धुमें भी देखे जा सकते थे। विश्पला (१।११७।७, ११) घोषा [60](१।११७।७, ११) जैसी मेधाविनी आर्य महिलाओका भी उल्लेख इन्होने किया है। सिन्धुतटवासी राजा,भाव्यने पुरोहितको बहुत-सा दान दिया था[61] (१।१२६।१-४, ७)। इसमे शायद कक्षीवान्को भी कुछ प्राप्त हुआ। गन्धारकी भेडो ("गान्धारी अविका" (१।१२६।७) के उल्लेखसे मालूम होता है, कि वर्तमान पख्तूनिस्तान की भेडें अपने कोमल ऊनके लिए उस समय भी प्रसिद्ध हो चुकी थी। गोतम और दीर्घतमा यदि एक ही होते, तो गोतमके पुत्र वामदेव और नोधाके साथ इनका भी नाम आना चहिए था।

७. अगस्त्य

मित्र-वरुणके पुत्र तथा वसिष्ठके भाई अगस्त्य ऋग्वेदके २६ सूक्तोंके रचयिता है। इनकी रचनाये प्रथम मण्डलके १६५-१९१ सूक्तोंमें आती है। अपनी ऋचाओमें वसिष्ठका इन्होने उल्लेख नही किया है, यद्यपि अपनी पत्नी लोपामुद्रा [62](१।१७९।४) का नाम दिया है। प्रसिद्ध आर्यमहिला विश्पला [63](१।१८२।१) का इन्होने जिक्र किया

है और तुर्वश-यदु आर्यजनो का भी ६४ (१।१७ ।९), पर उनके सघर्षो के वारे में कुछ नही कहा है । तुर्वश-यदु आदिके साथ सुदासका जो दाशराज्ञयुद्ध हुआ था, उसके सारथी यदि इनके सगे भाई वसिष्ठ थे, तो उसकी कुछ प्रतिध्वनि अगस्त्यकी रचनाओमें आनी चाहिए थी, पर उसका पता नही लगता। करम्भ (सत्तू) तथा लाभकारी तृण, शर, कुशर, दर्भ और मूजका इन्होने जिक्र किया है [65] (१।१८७।१०, १।१९-१।३)। अगस्त्यके नाम पर जो कथाये पुराणोमें मिलती है, उनका ऋचाओमे कही भी आभास नही मिलता। वह पर्वतोके गुरु थे, अन्तिम जीवनमे दक्षिणापथको चले गए, इसका भी कही पता नही है। उलटे यह "पचक्षिति' (आर्योके पाँच जनो) मे चिपके रहनेवाले मालूम होते है [66] (१।१७६।३)।

८. दीर्घतमा

उचथ्य के पुत्र दीर्घतमा २५ सूक्तो के कर्ता है। औचथ्य [67] (१।१५८।२,४) और मामतेय दीर्घतमा [68] (१।१५८।१) के उल्लेख से मालूम होता है, कि इनके माता-पिता का नाम उचथ्य और ममता था। दासो का उल्लेख इन्होने भी किया है [69] (१।१५८।५)। वीरो का उल्लेख करना [70] (१।१४०।१२) वतलाता है, कि इन्हें भी युद्ध मे दिलचस्पी थी। घोडे के पक्व सुगधित मास [71] ("वाजिन पक्व सुरभि मासम्" १।१६२।१२) से पता लगता है, कि घोडे का मास खाया जाता था। यज्ञ में मारे गए घोडे के वारे मे ये कहते है "न म्रियते वाजी" [72] (घोडा नही मरता १।१६२१)

९ गोतम

रहूगण के पुत्र गोतम वीसेक सूक्तो (प्रथम मण्डल ७४९३) [73] (१७८।५।७४) [74] (१।१८०।१६) [75] (१।८३।४।५) [76] (१।८४।१,१८) [77] (१।९१।१२), [78] (१।९३।४) के कर्ता है।

१० मेधातिथि

कण्व के पुत्र मेधातिथि २० सूक्तो के कर्ता हैं। अपने खानदान वालो को "कण्व लोग" (कण्वास) के तौर पर इन्होने याद किया है" (१।१४।२,५)। आर्जुनेय कुत्स का आभार इनके ऊपर था" (८।३।१६)। इनको मेध्यातिथि भी कहा जाता है" (८।१।८,११)। मेधातिथि के पिता कण्व, पितामह घोर और प्रपितामह अंगिरा थे।

११ श्यावाश्व

१५ सूक्तो के कर्ता अत्रि के पुत्र (या सन्तान) श्यावाश्व भी प्रसिद्ध ऋषि है। इन्होने सुन्दर दान देने वाले अर्हत्" (५।५२।५) शब्द का प्रयोग किया है। उस समय अर्हत् शब्द का मुक्त-पुरुष अर्थ नही लिया जाता था, जैसा कि पीछे बौद्धो और जैनों में हुआ। सप्तसिन्धु के भूगोल के जानने मे इनकी ऋचाएँ बडी काम की है। इन्होंने सप्तसिन्धु के पूर्वी छोर पर वहती यमुना" ((५।५२।१७) का उल्लेख किया है। उनके सबसे पश्चिम में बहने वाली कुभा (काबुल), क्रमु (कुर्रम), सिन्धु (सिन्ध) और सरयू (सिन्ध के पश्चिम की कोई नदी) का भी जिक्र किया है। एक जगह सुदास का भी नाम लिया है" (५।५३।२)। अत्रि के वंशजो में ये सबसे बडे ऋषि थे।

१२ कुत्स

१५ सूक्तो के कर्ता यह अंगिरा के पुत्र (या सन्तान) थे। इन्होंने अपनी ऋचाओं मे कुत्सका उल्लेख कई जगहो पर किया है" (१।१०४। २, १।१०६।६)। अर्हत् (१।९५।१) का, दान-राजाओं में शुष्ण, पिप्रु, वृत्र और शम्बर का भी उल्लेख किया है" (१।१०३।८)। कहा है, शुष्ण असुर की दो स्त्रियां थी" (१।१०४।३)।

१३ मधुच्छन्दा

विश्वामित्र के पुत्र तथा अपने पिता के भक्त मधुच्छन्दा दस सूक्तों के कर्ता है। मुष्टिहत्या" (१।८।२) का उल्लेख इन्होंने किया है और

स्वादिष्ट और मदिष्ट सोमका भी"[९] (९।१।१)। इनके पुत्रो में जेता और अघमर्पण दो ऋषि हुए हैं, जो एक-एक सूक्तो के रचयिता हैं।

१४ प्रस्कण्व

कण्व के पुत्र इस ऋषि ने दस सूक्त रचे हैं। अपनी ऋचाओ में इन्होने कण्व का उल्लेख आधे दर्जन से अधिक स्थलो मे किया है। अग्नि, अगिरा जैसे ऋषियो तथा तुर्वश पक्थ जनो का भी उल्लेख किया है। इनके उल्लिखित दशव्रज और गोशर्य सम्भवत सप्तसिन्धु के पश्चिमोत्तरी भाग में कोई स्थान थे। "सिन्धूना तीर्थे"[१०] (सिन्धुओ के घाट पर १।४६।८) के कहने से हम सिन्धु नद का नाम नही ले सकते, क्योकि उस समय सिन्धु शब्द नदी का भी पर्याय था। प्रस्कण्व घोडे, भेड, आदमी, नारी और गाय की मगल कामना करते हैं—"श न करत्यर्वते मेषामेष्ये नृभ्यो नारिभ्यो गवे"[११] (१।४७।६)। सुदास और तुर्वश-जन का जिक्र इन्होने किया है। तुर्वशो और यदुओ के कण्व और प्रस्कण्व पुरोहित थे, जिनका खूनी सघर्ष सुदास के साथ हुआ था। मुमकिन है पिता-पुत्रो ने अपने यजमानो की विजय के लिए इन्द्र से कामना की हो, पर विजय उनके शत्रु सुदास की हुई, इसलिए उन ऋचाओ के सग्रह करने की अवश्यकता नही समझी गई।

दस और उसके ऊपर सूक्तो के कर्ता ऋषियो के बारे मे हमने यहाँ कहा। ऋषियो की सख्या साढे-तीन सौ से ऊपर है, यह हम बतला आये हैं। अन्य ऋषियों में शुन शेप अजीगर्त-पुत्र, पराशर शक्ति-पुत्र और अत्रि नौ-नौ सूक्तों के रचयिता हैं। वसिष्ठ के पोते पराशर सप्तसिन्धु के ऋषि थे, उन्हें कुरु-पचाल काल में नही लाया जा सकता। मेधातिथि के पिता तथा घोर के पुत्र काण्व, एव मरीचि के पुत्र कश्यप आठ-आठ सूक्तो के रचयिता है। सोभरि कण्व, प्रगाथ काण्व और जमदग्नि ने पाँच-पाँच सूक्त रचे हैं। ऋषियो मे एक अपाला आर्यनारी भी है, जिसका एक सूक्त ऋग्वेद (८।८०) मे मिलता है। प्रार्थना करने पर देवताओ ने

इसके चर्मरोग को हटाकर इसे सूरज जैसी चमडे वाली बना दिया। आर्यनारियो मे पतियो से द्वेष करने वाली भी थी, इसका उल्लेख अपाला ने किया है[१२] (८।८०।४)। वृद्ध के उल्लेख किए दस ऋषियो में विश्वामित्र-पुत्र अष्टक का सिर्फ एक सूक्त (१०।१०४) मिलता है, जिसमें सप्तसिन्धु की सात नदियो, नौ शाखा नदियो और नव्वे नालो का उल्लेख किया गया है--"सप्तापो नवति स्रोत्या नव च स्रवन्ती"[१] (१०।१०४।८)। कई ऋषियो के पूर्वज वरुण-पुत्र भृगु, इषीरथ-पुत्र कुशिक के एक-एक सूक्त मिलते है और कण्व-वंशज वत्स का भी एक सूक्त है। सप्तसिन्धु से १८-१९ शताब्दियो बाद वत्स की वास्तविक स्थिति का कितना अज्ञान हो गया था, इसका पता हमे "हर्षचरित" मे वर्णित वत्स के जन्म आदि के बारे मे बाण के कथन मे मालूम होता है।

अध्याय ६

दस्यु

§१ सिंधु-जाति (पणि)

सिन्धु-उपत्यकामें प्रवेश करनेके समय जिस जातिसे घुमन्तू आर्य घोड़-सवारोंका मुकाबला हुआ था, वह वस्तुत सिन्धु-उपत्यकाकी बहुत सस्कृत जाति थी, जिसके नगरोंके अवशेष मोहनजोडरो, हड़प्पामें तथा जिसकी सस्कृतिके चिह्न दक्षिणमें गुजरात और पूर्वमें यमुना-उपत्यका तक मिले हैं। यदि वह पूर्वमें और दूर तक मिले तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। पर, ऋग्वेदिक ऋषि अपने जिन भयकर प्रतिद्वन्द्वियोका उल्लेख करते हैं, वे मैदानके सिन्धु-सस्कृतिवाले—द्रविड—नहीं थे, बल्कि वे पहाड़ोंमें रहते थे। उनके किले (पुर्) पत्थरोंके बने (अश्मन्मय) होते थे। इन किलोंके तोड़नेमें आर्योंको लोहेके चने चबाने पड़े। सिन्धु-जाति के साथ आर्योंके सघर्षका समय ई० पू० १,५०० और पत्थरोंके किलोको तोड़नेका समय अर्थात् ऋग्वेदके प्राचीनतम ऋषियोंका काल, उससे तीन सौ वर्ष बाद है, जबकि मण्डूक-प्लुति (गेंढककुदान) करके नहीं, बल्कि सर्प-गतिसे क्रमश बढते हुए आर्य सारे सप्तसिन्धु (जमुनासे सिन्धु पारकी भूमि) तक फैल गये। मोहनजोडरो और हड़प्पा जैसे ताम्र-युगीन भव्य नगरोंके विजेता होनेपर भी आर्य घुमन्तू उनमे बसनेके लिए तैयार नही हुए। ये गौ, अश्व चराने वाले लोग घरोंके झुण्डो या ग्रामोमे रहते थे। उनके ग्राम स्थायी नही थे। जिन लोगोकी जीविका गायो-घोडो, अज-अवि (भेड-बकरियो) के पालन पर निर्भर हो, तथा जिनको धाना और करम्भ (सत्तू)के लिए थोड़े-से जौकी जरूरत हो, वह एक जगह सालभर ठहरनेके लिए कैसे तैयार हो सकते थे?

ये भी मध्य-एसियामे शक, हूण, अवार और तुर्क घुमन्तुओकी तरह घोडेके वालोके तम्बुओमे ही अपना गुजर-बसर करते। लेकिन उसमें सबसे बडी बाधा भारतकी वर्षा थी, जिसके लिए घास-फूसकी झोपडियाँ अधिक अनुकूल और सस्ती थी।

सिन्धु-जातिके लोगोकी मुठभेड आर्योंके साथ पहले हुई। यह निश्चय है, कि उन लोगोने आसानीसे हथियार नही रखा होगा। पर, ऋग्वेदके कालमें वे मुख्य प्रतिद्वन्द्वी नही थे। आर्य सिन्धु-जाति और अपने पहाडी दोनो प्रतिद्वन्द्वियोको कृष्ण (काला) या कृष्णयोनि और अपने सभी प्रतिद्वन्द्वियोंको दास या दस्यु कहते थे। एक थोडा-सा भेद जरूर मिलता है। प्रतिद्वन्द्वियोमे पणि प्रतिद्वन्द्वी नही, बल्कि दुवार गायें थे जो अपने धनके लिए बहुत प्रसिद्ध थे। उनके पास भी बहुत गाये थी। कभी-कभी उनसे झडप भी होती थी, लेकिन वह ऐसी नही होती, जिसके लिए आर्य अधिक चिन्तित होते। सिन्धु-जातिके प्रतिनिधि यही पणि थे।

पणि—पणिसे ही पणन (बेचना), पण्य (विक्रेय वस्तु), आपण (बाजार) और वणिक (बनिया) शब्दोका सम्बन्ध है। यह नाम शासनसे वंचित पर श्रेष्ठतर संस्कृतिके धनी सिन्धु जातिके लिए अधिक उपयुक्त था। राज्यसे वंचित होनेके बाद दासतासे बचे लोग कृषि और वाणिज्यसे ही अपनी जीविका कमा सकते थे, जिनमें वाणिज्य अधिक लाभदायक था। ऋग्वेदमे पणियोका उल्लेख बहुत स्थानोंमें है। इनका जिक्र करने वालोंमें भरद्वाज, वसिष्ठ, दीर्घतमा औचथ्य, गोतम राहूगण गृत्समद, हिरण्यस्तूप, अजितदेव जैसे प्रसिद्ध ऋषि हैं। सबसे वृद्ध भरद्वाजका कहना है, कि अग्नि पणियोंके धनको हरण करता है' (६।१३।३)। कुत्सका पणियोंसे झगडा हुआ था, जिसके बारेमें भरद्वाज कहते हैं (६।२०।४) इन्द्र, तुम्हारे कृपापात्र वनि (कुत्स)से सैकड़ों पणि भाग गये। आर्य ऋषि केवल सीनाजोरीसे ही पणियोंका धन हरण नहीं करते थे, बल्कि उनको प्रभावित करके भी काम निकालना चाहते थे। भरद्वाजने ही कहा है' (६।५३।३) हे पूषा, न देनेकी इच्छा करने वालेको दान करनेके लिए प्रेरित करो, पणिके मनको मृदु

करो। फिर कहते हैं[४] (६।५३।५) पणियोके हृदयको फाड दो, हमारे वसमें कर दो, आरासे पणिके हृदयको छेद दो। भरद्वाजके समकालीन ऋपि वसिप्ठ भी पणियोके साथ शाम-दाम दोनो नीतिके पक्षपाती थे। वह कहते हैं[५] (७।९।२) सुयज्ञ अग्निने पणियोका दरवाजा खोला। पणि श्रद्धाहीन अयज्ञ वकवासी हिंसावादी है। उन दस्युओको अग्नि दूर करता है[६] (७।६।३)। इसी कालके ऋपि उचथ्य-पुत्र दीर्घतमाका कहना था[७] (१।१५१।९) हे मित्रावरुण, सिन्धुओने तुम्हारे देवत्वको नही पाया और न पणियोने। पीछेकी परम्पराके अनुसार दीर्घतमा ही अन्धे-से आंख-वाले होनेके वाद गोतमके नामसे प्रसिद्ध हुए, परन्तु यह ऋग्वेदके प्रतिकूल है। दीर्घतमा उचथ्यके पुत्र थे और गोतम राहूगण के। इन दोनोके सूक्त भी अलग-अलग हैं। गोतम की भी दृष्टि पणियोके गायो के ऊपर थी[८] (१।९३।४) हे अग्नि-सोम, तुम दोनोने पराक्रमसे पणिसे गायें छीनीं। अपने शत्रुओकी गायो या धनका अपहरण करना, मुपना (चुराना) आर्यो और उनके देवताओके लिए कोई वुरी वात नही थी।

यही नही, ऋपि गृत्समद[९] (२।२४।६)के कहनेके अनुसार अत्यन्त गुह्य (गुहा)-स्थानोमे निहित पणियोकी निधिको भी आर्य ज्ञानियोंने प्राप्त किया था। पणि धनी होनेके साथ अदित्सु (देनेके अनिच्छुक) हो, यह कोई नई वात नही थी। वनियोके स्वभावके अनुसार वह कुछ अधिक कञ्जूस होते थे, जो अतिथि-सेवी अर्ध-घुमन्तू आर्योकी प्रकृतिके विरुद्ध वात थी। हिरण्यस्तूप[१०] (१।३३।३) इन्द्रको पणियोकी मनोवृत्ति न धारण करनेकी प्रार्थना करते हैं—हे इन्द्र, वहुत-सा धन देते पणि मत होना, हमसे अधिक लाभ नही चाहना। पणियोके लिए भी "वनिया अपने वापका नही होता' वाली कहावत थी। कक्षीवान्[११] (१।१२४।१०) चाहते हैं, कि पणि विना जागे ही सोये रहें। पणियोके धन और गायकी अभिलाषा-हरेक आर्य करता था, इसलिए उनका सोये रहना अपहारकोके लिए अनुकूल था। सवरण[१] (५।३४।७) के अनुसार इन्द्र पणियोसे अन्न मुपने (चुराने)के लिए जाते हैं और यजमानोमे वांटते हैं।

ऋजिश्वा[११] (६।५१।१४) के कहनेके मुताबिक भोजन-सम्पन्न पणिको ोम नष्ट करे, क्योंकि वह वृक (भेडिया) है। असित देवल[१२] (९।२२।७) ोमसे प्रार्थना करते हैं, कि तुम पणियोंसे वसु (धन) और गायोंको े लो। दिवोदास-पुत्र परुक्षेपके सुपुत्र अनानत सोमसे प्रार्थना करते हैं[१] (९।१११।२) तुमने पणियोके धनको हथियाया।

बन्धु किसी राजासे कहते हैं[१६] (१०।६०।६) राजन् दो लाल घोड़ोंको रथमें जोड़ो और दान न देने वाले सारे पणियोंपर आक्रमण करो। शयु [१७](६।४५।३१) के समय पणियोंका सर्दार बृबु गंगाके विस्तृत कछारकी तरह ऊँचे स्थानपर रहता था। बृबु जानता था, कि पणियोंपर गजब ढोनेकी प्रेरणा यही ऋषि देते हैं, इसलिए उसने बृहस्पति-पुत्र शयुके साथ ऐसी उदारता दिखलाई कि वह मगन हो बृबुकी प्रशंसा करने लगे[१८] (७।४५।३१–३३)। बृबु जिस भूमिमें रहता था, वही गंगाकी कछारकी तरह ही विस्तृत नहीं थी, बल्कि उसका हृदय भी उतना ही विशाल था। उसने वायुके वेग से धावित होते हजार गायोंका भारी दान तुरन्त किया। शायद शयु ही उसकी उदारतासे लाभान्वित नहीं थे, बल्कि अनेक कारु (कवि, ऋषि) हजारों गायें देने वाले, हजारों प्रशंसाके पात्र बृबुका यशोगान करते थे।

पणियोंके साथ आर्योंके सम्बन्धके बारेमें ऋग्वेदके दसवें मण्डलमें एक पूरा सूक्त[१९] (१०।१०८) है, जिसमें पणि और सरमाका संवाद दिया हुआ है। सरमा देवताओंकी कुतिया थी, किन्तु यहाँ वह आर्योंकी हिंसापूर्ण लुन्धक मनोवृत्तिका प्रतिनिधित्व करती है। इन ऋचाओंके रचयिता (ऋषि) पणिगण और सरमाको बतलाया गया है, जिसका मतलब यही है, कि असली रचयिताका नाम अज्ञात है। यह मनोरञ्जक वार्तालाप इस प्रकार है—

पणिगण—सरमा, क्या इच्छा करके तुम आई? रास्ता बहुत दूरका है, जिसपर से नजर पीछे नहीं फेंकी जा सकती। हमारे पास क्या है? कैसे तुमने रास्तेकी नदियोंके जलको पार किया॥१॥

सरमा—हे पणियो, मै इन्द्रकी दूती होकर तुम्हारे निधियोकी चाह मे डोलती हूँ। तुमने बहुत सग्रह किया, इसके लिए आई। जलने मुझे बचाया, मै नदियो के जलको पार करती हुई आई ॥२॥

पणि—सरमा, कैसा इन्द्र है, जिसकी दूती होकर तुम दूरसे आयी ? वह इन्द्र आवे, हम उसे मित्र मानेंगे। वह गायोको लेकर हमारा गोपति बने ॥३॥

सरमा—मै नही जानती (कौन है) जो उसे हरा सकते है, जिसकी कि दूती बनकर मै दूरसे आयी हूँ। गहरी नदियाँ भी उसको नही रोक सकती। हे पणियो, उस इन्द्र द्वारा निहत होकर तुम सो जाओगे ॥४॥

पणि—हे सुभगे सरमा, आकाशके अन्तिम भागसे जिनकी इच्छा करती आई हो, उन गायोको बिना युद्धके कौन छीन सकता है ? हमारे आयुध तीक्ष्ण है ॥५॥

सरमा—पणियो, तुम्हारे वचन सैनिकोके से नही है, तुम्हारे शरीर पापी है। आनेका मार्ग अप्रचलित है। कही बृहस्पति तुम्हे सकटापन्न न कर दे ॥६॥

पणि—सरमा, हमारी निधि पर्वतोसे सुरक्षित, घोडो, अश्वो, गायो और वसुओ (धनो)से पूर्ण है। सुरक्षक पणि उसकी रक्षा करते है। हमारे स्थानमे तुम व्यर्थ ही आई ॥७॥

सरमा—यहाँ सोममे मतवाले अयास, आगिरस, नवगु जैसे ऋषि आयेगे। वह इन गायोको छीन ले जायेगे। फिर पणियो, तुम्हारा यह वचन बकना भर है ॥८॥

पणिगण—हे सरमे, देवताओने डरकर तुम्हें यहाँ भेजा। हम तुम्हें अपनी बहिन (स्वसा) बनाते है, तुम मत जाओ। हे सुन्दरि, हम तुम्हें गाये देंगे ॥९॥

सरमा—मैं न भ्रातृत्व जानती, न स्वसृत्व (भगिनीपन)। इन्द्र और घोर-अगिरावशी जानते है, जिन्होने गायकी इच्छासे मुझे सुरक्षित भेजा, मैं आई। पणियो, यहाँसे दूर भाग जाओ ॥१०॥

पणियो यहाँसे, बहुत दूर भाग जाओ। गाये बाधासे कष्ट पा रही है, जिन निगूढ गायोको बृहस्पति, सोम, सोम पीसनेवाले पत्थर और विप्र ऋषि प्राप्त करें।

पणि बेचारोकी उस समय क्या स्थिति थी, यह इस सवादसे स्पष्ट मालूम होता है। यह ठीक उसी दृश्य को हमारे सामने उपस्थित करता है, जो १९वी शताब्दीके पूर्वार्ध तक मध्य-एसियाके ग्राम-नगर निवासियो की उत्तरी घुमन्तुओके सामने थी, जो कि लूटके धनको धर्मार्जित धन समझते थे।

§२ शम्बरीय पहाड़ी

ऋग्वेदिक आर्योके असली शत्रु शम्बर और उसके पहाडी लोग थे। शम्बर दिवोदासका प्रतिद्वन्द्वी था। उनसे पहले ही उसके पहाडी लोगोने आर्योके बढावको रोकने के लिए सघर्ष छेडा था। इन पहाडियो को आर्य दास और दस्यु नाम से पुकारते थे। पणियो के लिये भी यह नाम इस्तेमाल होता था, जो कि सिन्धु जातिके थे। ऋग्वेदके ऋषियोका उद्देश्य व्यवस्थित इतिहास लिखनेका नही था, वे कभी-कभी ही इन बातोका जिक्र करते हैं। यह आशा नही रखनी चाहिए, कि वहा हमें सिन्धु-जाति और पर्वतीय जातिके स्पष्ट परिचायक वाक्य मिलेंगे। तो भी उस समयकी स्थिति देखनेसे बातें स्पष्ट हो जाती हैं।

पणि राजनीतिक सघर्ष छोड चुके सिन्धु-जातिके ही लोग थे। अब तलवार पहाडियोने उठायी थी। शम्बरके पास भी अजेय पर्वतीय दुर्ग थे, जिनको दिवोदासने नष्ट किया। दिवोदासका जन पुरुओकी शाखा भरत था, जिसे त्रित्सु भी कहते थे। परुष्णी (रावी) इनकी पश्चिमी सीमा थी, जिसके किनारे तक पहुँचकर सुदासके समय एक बार पक्थो (पठानो) और दूसरे पश्चिमी आर्यजनोने त्रित्सुओकी हालत बुरी कर दी थी। पूर्वमें त्रित्सुओ की सीमा पर शुतुद्रि (सतलुज) और विपाश् (ब्यास) नदियाँ थी। पश्चिममें पक्थो, भलाननोके पास पश्चिमी पहाड जरूर थे, लेकिन भरतोके पासमें सिर्फ कागडा ही का पहाड था। इसलिए जिस पहाडी जातिने आर्योको लोहेके

चने चबवाये, वह कागड़ाके पहाड़ोकी ही होगी। लेकिन, वहाँके आजके खश या हिन्दी-आर्य निवासियोको हम तीन हजार वर्ष पहले ताम्र-युगकी जाति नही कह सकते। तब यहाँ कौन जाति रही होगी? क्या सिन्धु-जातिके ही लोग यहाँ भी रहते थे? इन पहाड़ियोके लिए भी कृष्ण और कृष्णयोनि (काला) शब्द यही बतलाता है कि शायद वह भी मोहनजोड़रो-हड़प्पाके निवासियोके भाई-बन्द थे। लेकिन यह भिन्न जातिके थे, इसे समझना आसान हो जाता है, यदि हम ताम्र-युगके हिमालयके किरातोपर विचार करते है।

§३ मोन्-ख्मेर (किरात)

किसी समय सारे हिमालयमें किरात लोग बसते थे। पश्चिममें चम्बासे लेकर पूर्वमें आसामके नागा लोगोकी भूमितक और आगे बर्मा-थाई होते हिन्द-चीन तक इस जातिका पता आज भी लगता है। आजकलके विद्वान् सस्कृतके किरातोको मोन्-ख्मेरके नामसे पुकारते है। किर या किरात जाति का उल्लेख ऋग्वेदमें नही मिलता, पर इन पहाड़ोमें उस समय केवल यही जाति निवास करती थी। आज इस जातिके अवशेष या तो तिब्बतकी सीमा के पास रह गये है या तराईके कितने ही स्थानोमे। पश्चिमसे जितना ही पूर्व चले, उतनी ही इनकी सख्या बढती जाती है, और पूर्वी नेपालको तो आज भी किराती देश कहते है। किरात लोग चीनी, मगोल, तिब्बती जातिसे सम्बध रखते है, लेकिन यह सम्बन्ध बहुत दूरका है, वैसे ही जैसा हिन्दी आर्योक पश्चिमी यूरोपीयोके साथ। किरात या मोन्-ख्मेरके मुखोपर मगोलायित मुख-मुद्रा होती है, इसलिए तिब्बती सीमापर बच रहे मोन्-ख्मेरोको कितने ही विद्वान् भी तिब्बती समझ बैठते है, साधारण लोगोकी तो बात ही क्या?

कितने ही मोन्-ख्मेर है, जो अपनी भाषा छोड़ बैठे है, कुछ ने अपनी मुख-मुद्रा को भी अल्पसख्यक होनेके कारण खो दिया, तो इसमें आश्चर्यकी बात नही। कितने ही अबभी अपनी भाषा बोलते है। ये लोग है,

चम्बाके लाहुली, लाहुलके निम्न भागोंके निवासी कुल्लूके मलाणा गाँवके वासी, ऊपरी सतलुजके किन्नर या कनौर, माणा-नीतीके मारछा, अस्कोट (अल्मोड़ा)के राजी या राजकिरात, पश्चिमी नैपालके मगर, गुरुंग, मध्य नेपालके तमंग, नेपाल उपत्यकाके नेवार, पूर्वी नेपालकी तीनो किराती जातिया —लिम्बू, याखा, राई—सिकिमके लेपचा, आसामके नागा आदि। गणना और महाभूतोंके कितने ही नाम इनकी बोलियोमे तिब्बतीसे मिलते-जुलते है, लेकिन कितने ही शब्द इनके स्वतन्त्र है। पानीके पर्याय ती शब्दको ले ले। यह चम्बासे नागा पर्वतोंतक एक-सा चला गया है। नेवार लोग यद्यपि पानीके लिए इस शब्दको इस्तेमाल नही करते, लेकिन मासके पानीके लिए वह ला-ती (मास-जल) कहते है, जिससे पता लगता है, कि ती का प्रयोग उनके यहाँ भी रहा है। बदरीनाथसे कैलासकी ओर जाते वक्त एक निर्जन पड़ावका नाम ती-पानी है। यहाँ हिन्दी और किरात दोनो भाषाओंके एक ही अर्थके वाचक दो शब्दोंको रख दिया गया है। ये जातियाँ ऐसी है, जो अब भी किरात-भाषा बोलती है, और कितने ही जगहो पर इन्हे किरात कहा भी जाता है। लेकिन कुछ किरात ऐसी भी है, जो अपनी भाषा छोड़कर पहाड़ी या तिब्बती भाषा बोलने लगे। तिब्बती भाषा-भाषियोंके बारेमें कहना मुश्किल है, क्योंकि दोनोंकी मुख-मुद्रामें मे कोई अन्तर नही है। तो भी यह हमे मालूम है कि तिब्बती लोग ईसाकी सातवी सदीके उत्तरार्धमे पश्चिमी मानसरोवर और नैपालके हिमालयोकी ओर बढे। वह यहांके पुराने लोगोंको मोन्‌पा और उनके देशको मोन्-युल (मोनदेश) कहते थे। काठमाण्डूसे सीधे उत्तरकी तिब्बती सीमान्तके भीतरके इलाकेको आज भी मोन्-युल कहा जाता है।

यह मोन शब्द बर्माके पुराने वासिन्दोंके लिए भी इस्तेमाल किया जाता था। इन्हीं मोन् और कम्बोडिया (कम्बुज) के ख्मेरको लेकर विद्वानोंने मोन्-ख्मेर नामको गढा है। जान पडता है, स्पितीके लोग भी पहले मोन् (किरात) थे। गंगोत्रीसे ऊपर नेलगके रहने वाले भी मोन् है, यद्यपि वह आज मोन् (किरात) भाषा नही बोलते। नीती-माणा के तोल्छा आज

भी पहाडी भाषा बोलते है, उसी तरह अल्मोडाके मिलमवाले भी। पर इनके चेहरे-मोहरे किरातोसे है। ये किरातोके ही अवशेष है। नेपालमें जो मोन्, या अधिक दक्षिणमे खस भाषा बोलने वाली बहुसख्यक लोगोमें बसे है, वे धीरे धीरे अपनी भाषा को भूल गये।

किरात या मोन् लोगोकी एक शाखा हिमालयके नीचे तराईमे बसती है, जिसे थारू या भोग्ना कहते है। थारू लोग हरद्वार या जमुना से पश्चिम नही पाये जाते, पर उनके ताम्र-युगीन पूर्वज जम्मू तक रहे हो, तो कोई आश्चर्य नही। आज थारू नैनीतालकी तराईसे दरभगाकी उत्तरवाली तराई तक मिलते है, जिनसे पूर्वके मेची, कोच आदि भी मोन् है। थारू लोग अपने दक्षिण वाले सबसे नजदीकी पडोसियोकी भाषा बोलते है—उनमें मैथिली, भोजपुरी, अवधी भाषाएँ प्रचलित है। लेकिन उनके चेहरे पर मगोलायित मुख-मुद्रा की छाप बतलाती है, कि वे अपने दक्षिणी पडोसियोमें से नही है।

ऊपरके कथनसे मालूम हुआ, कि हिमालयमें मोन् या किरात जातिके लोग अब भी रहते है। यह अवश्य है, कि पश्चिममें उनकी सख्या कम होती गई है। इसका कारण यही है, कि वहाँ उनकी भूमिमे दूसरे लोग जबरदस्ती घुस आये। इस प्रयत्नका श्रीगणेश ऋग्वेदिक आर्योने कागडाके पहाडी किरातोके दुर्गोको छीन कर किया। कागडा जिलेमें केवल कल्लू सब-डिवीजनकी मलाणा-उपत्यकामे किरात बोली बोलने वाला मलाणा एक बडा-सा गाँव है। वह भाषामें जरूर किरात है, किन्तु आसपासके खसोके समुद्रमें एक छोटा-सा द्वीप कैसे जातीय तौरपर अपनेको अछूता रख सकता था? मिलमवाले मुख-मुद्रासे मोन् होते भाषामे खस है, उससे उलटे मलाणा वाले मुख-मुद्रासे खस होते भाषासे मोन् है। खास कागडामे न अब किरात मुख-मुद्रा मिलती है, और न किरात भाषाका कही पता है। लेकिन स्थानोके नामोमें उसका पता जरूर लगता है। बैजनाथका ऐतिहासिक मन्दिर जिस गाँवमें है, उसे यद्यपि आजकल बैजनाथ कहते है, किन्तु दसवी-ग्यारहवी शताब्दीके शिलालेखमें उसे किरग्राम (किरातोका ग्राम) कहा गया है। बैजनाथ तराई से बहुत दूर भीतर नही है।

परुष्णी, विपाश्-शुतुद्रिके बीच भरत त्रित्सुओकी भूमिके पडोसके पहाडी कागडाके लोग ही हो सकते थे और वे उस समय किरात थे। किरात काले नही, कुछ पीले रङ्गके होते है। ऋग्वेदिक आर्योने क्यो पणियोकी तरह इन्हें भी कृष्ण कहा, इसका कारण समझना आसान है। ऋग्वेदिक आर्य रङ्ग-रूपमें यूरोपियनोकी तरह गोरे थे, उनके लिए यह दोनो ही काले हो, तो कोई आश्चर्य नही।

पणियोकी तरह किरात जनोके धन-वैभवने आर्योको अपनी ओर खीचा होगा, इसकी सम्भावना कम है। उस समय यद्यपि पहाडोमे भी जगल और अच्छी चरागाहें थी, लेकिन पञ्जाबकी चरागाहो और जङ्गलोका वह मुकाबला नही कर सकती थी। तो भी आर्योकी सख्या और उनके गो-अश्वोकी वृद्धि ने उन्हे उत्तरकी तरफ बढनेके लिए मजबूर किया, फिर पशु-पाल मोनो और आर्योका झगडा शुरू हो गया। आर्य बलपूर्वक पहाडके नीचे रहने वाले मोनोको भगानेमें सफल हुए। यह इससे भी साबित है कि सप्तसिन्धु—जमुनासे सिन्धु पार तककी भूमि—के उत्तरकी पहाडी तराईमे कही भी थारू जैसी मगोलायित जाति नही मिलती। लेकिन इसे मोन् चुपचाप बर्दाश्त कैसे कर सकते थे? आखिर वह भी पशुपाल, घुमन्तू और लडाकू लोग थे। उन्होने भी बदला लेने के लिए आर्यग्रामोपर आक्रमण शुरू किया होगा। अब आर्य आगे बढे बिना रह नही सकते थे। फिर मोनोके पहाडी दुर्गोमे यही शम्बर युद्ध था, जिससे उन्हे पाला पडा।

अध्याय ७

आदिम आर्य राजा

प्रागैतिहासिक काल होते भी ऋग्वेदके आदिम ऋपियो—भरद्वाज, विश्वामित्र, वसिष्ठ—के समकालीन राजाओ दिवोदास और उसके पुत्र सुदासके समयमें पहुँचकर हम देश-कालके वारेमें कल्पनामें टँगे नही रहते। भीतरी और उससे भी अधिक वाहरी हिन्दू-युरोपीय जातियोकी भापा और दूसरी सामग्रियोके आधार पर आर्योके सिन्धु-उपत्यकामें दाखिल होनेका समय ई० पू० १५०० ठीक मालूम होता है। ऋग्वेदके ऋपि इस कालसे इतने वाद हुए, कि अपने प्रथम पूर्वजोके वारेमे वह वहुत कम वतला सकते है। ऋग्वेदके ऋपियोने अपनी ऋचायें इतिहास या ऐतिहासिक पुरुपोके अमर करनेके लिए नही वनाईं। वह मुख्यत पुरोहित थे, और अपने देवताओके रिझानेके लिए ही इन ऋचाओको उन्होने रचा था। जहाँ-तहाँ विखरी हुई यजमानोकी प्रशसाओसे अनुमान होता है, शायद इस तरहकी और भी ऋचायें रही हो। लेकिन, अन्तमें तो ऋचाओका लक्ष्य देवताओको प्रसन्न करना ही था, इसलिए ऋपियोके उत्तराधिकारी अपने पूर्वजोकी हर तरहकी ऋचाओके कण्ठस्थ रखनेके लिए तैयार नही हो सकते थे। ऋग्वेदके समकालीन राजाओ दिवोदास, त्रसदस्यु आदिको देखनेसे उनकी दो तीन पीढियो तकका ही पता लगता है।

ऋग्वेदके सवसे पुराने पाँच जन (कवीले) थे—द्रुह्य, अनु, यदु, तुर्वश और पुरु। सम्भव है इन जनोके नाम अपने किसी पूर्वज नेताके ऊपर पडा हो। उज्वेकोकी तरह घुमन्तू जातियोमे ऐसा अकसर देखा जाता है, और सप्तसिन्धुके आर्य घुमन्तू थे। यही क्यो ? उनके ऋग्वेदकालीन उत्तराधिकारी

भी अर्ध-घुमन्तू थे, जिनके ग्राम वस्तुतः गौओं और अश्वोंके सुविधाके ख्यालसे तत्कालीन उपयोगके लिए इकट्ठे बसे घरोंके समुदाय थे। वहीं पासमें वह कुछ जौकी खेती भी कर लिया करते थे। इन्हीं पाँचो जनोंकी प्रधानता थी। इसीलिये पीछे पञ्चजन शब्द मनुष्यका पर्याय माना जाने लगा। पाँचो जनों मे सबसे पूर्वमें पुरु लोग बसे हुए थे। ऋग्वेदके समयमें इनकी कुशिक, भरत, तृत्सु आदि कई स्वतन्त्र शाखाएँ हो गई थी, जिनमे कुशिक जमुनाके करीब सरस्वती-उपत्यकामे बसे हुए थे। सीमान्तपर विरोधियोंका भारी डर था, इसलिए वहाँ आर्योंके वही जन टिक सकते थे, जो संख्या और बल मे अधिक थे। पुरु जन ऐसा ही था। पीछे इसी पुरु जनमें कुरु पैदा हुए, जिन्होंने जमुना और गंगाकी उपत्यकाओंमे अपने प्रभुत्वका विस्तार किया, लेकिन, यह ऋग्वेदसे पीछेकी बात है।

ऋग्वेदकालीन राजाओंके पहलेके राजाओंकी ओर जब हम ध्यान देते है, तो पाँच ही प्रभावशाली राजा पाते हैं—मनु, पुरूरवा, नहुष, ययाति और मन्धाता। पुरूरवाका सम्बन्ध सम्भवतः पुरु जनसे था। मनुकी प्रजा होनेसे मनुष्य आदमियोंका वाचक समझा जाता है। वेदमें नाहुषी प्रजासे मनुष्य-साधारणका अर्थ लिया जाता है, जिससे नहुषकी विशेषता सिद्ध होती है।

१ मनु

ऋग्वेदमें मनुका नाम ३१ स्थानोंमें आया है, लेकिन उनमें से कुछ जगहोंमें वह उन प्राचीन राजाका वाचक नहीं है। वस्तुतः ऋग्वेदसे पहलेके तीन सौ वर्षके कालमें सिर्फ तीन-चार राजाओंका नाम मिलना राजाओंकी दुर्लभताको ही बतलाता है, जिसका अर्थ यह है, कि अभी राजतन्त्र नहीं जनतन्त्र का बोलबाला था। मनुका नाम लेने वाले ऋषियोंमें भरद्वाज, गोतम और कुत्स जैसे अत्यन्त पुराने ऋषि हैं। वामदेव भी उसी समयके ऋषि हैं, जिन्होंने मनुका उल्लेख किया है। दिवोदासके पुत्र या वंशज परुच्छेपने भी मनुका जिक्र किया है। गृत्समद, सदापृण, कश्यप भी

उनका नाम लेते हैं। मनु देवताओंके भक्त थे, यह ऋचाओंसे मालूम होता हैं, और वैसे भी समझा जा सकता हैं। सदापृण ऋषिके कहने¹ (५।४५।६) से मालूम होता है, कि मनुने विशिशिप्रको जीता था। यह पता नही लगता कि विशिशिप्र आर्य शत्रु था या अनार्य ? अनार्य होने पर वह उत्तरके पहाडो (कागडा-जम्मू)का निवासी था, या मैदानका? पिता या पितरके तौर पर मनुका अंगिरस गोत्री कुत्स और गृत्समदने उल्लेख किया है। कुत्सके कहे अनुसार² (१।१४।२) पिता मनुने रुद्रकी पूजा की ? गृत्समदके अनुसार ³(२।३३।।१३) पिता मनुने मरुत् देवताओंकी औषधि स्वीकार की। घुवस्यु वान्दन (१०।१००।५)भी मनुको "हमारे पिता" कहते हैं। भरद्वाज ⁴(६।२१।११)के अनुसार अग्नि देवताने मनुको दासोंके ऊपर किया। दास आर्य-भिन्न सप्तसिन्धुके या पासके पहाडोके, निवासी थे, यह हमे मालूम ही है, कश्यप मारीच¹ (९।९२।५) कहते है, कि पवमान सोम देवताने दस्युसे मनुकी रक्षा की। इन कथनोंसे पता लगता है, कि दासों या दस्युओंके साथके संघर्षमें सफलता प्राप्त करनेपर ही मनुकी महिमा बढी। इतना तो निश्चित ही है, कि मनु आर्योंके प्रथम या सबसे अधिक प्रभावशाली राजा थे। पर उनका राज्य सप्तसिन्धुमें कहाँ था, यह कहना मुश्किल हैं।

२. पुरूरवा

अंगिरा गोत्रीय हिरण्यस्तूप ऋषि ¹(१।३१।४) के अनुसार अग्निने मनुके लिए द्यौ (स्वर्ग) को बनाया, पुरूरवाके लिए सुकृत (सुकर्म, स्वर्ग) सुकृत्तर हुआ। पुरूरवा वीर था, इसका उल्लेख ऋग्वेदमें है। वह एक रङ्गीला राजा था। अप्सरा उर्वशीके साथ उसका प्रेम कुछ ऐसी रोमाञ्चक घटना थी, जिसे ऋग्वेदके संग्रहकर्ता नही भूल सके। यह प्रेम-गाथा वास्तविक घटना हो, तो कोई आश्चर्य नही। पर तब उर्वशी अप्सरा नही मानवी होगी। हो सकता है, वह किसी ऐसे पराक्रमी जनकी कन्या रही हो, जो पुरूरवाके प्रभावको नही मानता था। दोनों प्रेमी हृदयोंको अग्नि-परीक्षासे गुजरना पडा था। पुरूरवा अपनी प्रेमिकाके हृदय पर अधिकार

प्राप्त करनेमें सफल हुआ, लेकिन सदाके लिए नही। इसीका वर्णन ऋग्वेदके दसवें मण्डल[1] (७।१०।९५)में है। यह सूक्त पुरूरवा और उर्वशीके संवादके रूपमें है, और जो ऋचायें जिसके मुँहसे कहलवाई गई हैं, उनको उसीकी रचना बतलाया जाता है। यह ऋग्वेदके उन थोडे से सूक्तोंमें है, जो बहुत सरस हैं। हम यहाँ कुछ ऋचाओंको देते हैं—

पुरूरवा—हे जाया, हे घोरे (निष्ठुर), मन इधर कर ठहर, हम आपसमें बात करें। यदि हम दोनो मन्त्रणा न करेंगे, तो आनेवाले दिन हमारे सुखके नही होंगे ॥१॥

उर्वशी—इस हमारी बातसे क्या? प्रथम उषासी मैं तेरे पास आई हूँ। हे पुरूरवा, फिर अपने घर चला जा। वायुकी तरह मैं दुर्लभ हू॥२॥

पुरूरवा—तेरे बिना मेरे तूणीरसे बाण नही फेंका जाता, श्री नही मिलती, सैकडो गायोंको मैं जीत कर नही ला सकता, वीरो-रहित मेरे कार्य शोभते नही, न (मेरे) योद्धा नाद करनेकी सोचते हैं॥३॥

उर्वशी—हे उषा, यदि वह उर्वशी श्वसुरको धन देनेकी इच्छा करती, तो पासके घरसे शयन-घरमे जाती और दिन-रात आराममे रहती ॥४॥

हे पुरूरवा, दिनमे तीन बार मुझे तुम दण्डसे पीटते थे। मेरा किसी सौतसे झगडा नही था। मेरे ही घरमें तुम आते थे, तब तुम हे सुवीर, मेरे (अभिन्न) अंग थे ॥५॥

जब पुरूरवा पैदा हुआ, उस समय देवपत्नियाँ आईं, बहने वाली समर्थ नदियोंने उसे पालापोसा। हे पुरूरवा, भारी रणमें दस्युओंकी हत्याके लिए देवोंने तुम्हारा संवर्धन किया था ॥७॥

पुरूरवा—जब पुरूरवा मानुष होकर अमानुषियोंको सेवन करनेके लिए बढा, तो वे हरिनीकी तरह या रथमें जोते अश्वोंकी तरह भयभीत होकर भागी ॥८॥

जब (उसने) मरणधर्मा होने अमृताओंसे सम्पर्क करनेके लिए उनके पास जानेका प्रयत्न किया, तो वे अन्तर्धान हो गईं। उन्होंने शरीरको नहीं दिखाया, क्रीडा करते अश्वोंकी तरह भाग गई ॥९॥

विजलीकी तरह चमक धारण करती जो उर्वशी मेरी कामनाओंको पूरा करती थी, जिसने (मेरे लिए) सुजात मानुप-पुत्र जना, वह उर्वशी उसे दीर्घायु करे ॥१०॥

उर्वशी—हे पुरूरवा, तू ने रक्षाके लिए (उसे) ऐसे पैदा किया, मेरे में ओज धारण किया। जानते हुए मैंने तुझे कहा था। उस मय मेरी वात तूने नही सुनी, (अव) क्यो व्यर्थ वोलता है ॥११॥

पुरूरवा—पैदा हुआ पुत्र (तेरी) इच्छा करेगा। क्या जानते हुए वह आँसू नही गिरायेगा? स्नेहयुक्त पति-पत्नीको कौन वियुक्त करेगा? जो श्वसुरके घरमे आग जल रही है, उसे कौन वुझाएगा ॥१२॥

उर्वशी—मै तुझे वतलाती हूँ। वह तेरे पास आँसू नही गिरायेगा, न रोयेगा। मै उसका कल्याण करूँगी, उसे मै तेरे पास भेज दूंगी। तू घर लौट जा, तू मुझे नही पा सकता ॥१३॥

पुरूरवा—सुदेव (पुरुरवा) आज गिरेगा, अत्यन्त दूर जाके (वह) फिर नही लौटेगा। वह आपदाओंके नीचे दवेगा, उसे भेडिये वलात् खा जायेंगे ॥१४॥

उर्वशी—हे पुरूरवा, तू नही मरे, नही गिरे, न अशिव भेडिये तुझे खायें। स्त्रियोकी मित्रता नही हुआ करती, (उनके) ये हृदय (नही, वे तो) शालावृको (भेडियों) के (हृदय) होते हैं ॥१५॥

नाना रूपमें घूमती मैंने मनुष्योमे चार शरदो (सालो) की रात्रियाँ विताई। थोडा-सा घी एक वार दिनमे खाया, उससे ही तृप्त हो विचरण करती रही ॥१६॥

पुरूरवा—आकाशको पूरनेवाली लोकोकी विमानवाली उर्वशीकी मैं वसिष्ठ (वासेच्छुक) प्रार्थना करता हूँ, मैं सुकृतका दाता तेरे पास रहूँ। (हे) लौट आ, मेरा हृदय जल रहा है ॥१७॥

उर्वशी—हे ऐल (इला-पुत्र), यह देवता तुझसे कह रहे है, कि तू मृत्युका वन्धु होगा। तेरी प्रजा हविसे देवोंकी पूजा करेगी और तू भी स्वर्गमें सुखी होगा ॥१८॥

इस सूक्तसे पता लगता है, कि पुरूरवाने दस्युओंके युद्धमें भाग लिया था। उसकी माँ का नाम इला था। उर्वशीसे उसके एक पुत्र पैदा हुआ था। महाभारत और पुराणोंमें उर्वशी और पुरुरवाकी बहुत-सी कथाएँ आती हैं, पीछेके लेखकोंने प्रयागके सामने झूसी (प्रतिष्ठान) को पुरूरवाकी राजधानी बतलाया है। लेकिन, पीछेकी परम्पराओंका ऋग्वेदसे पग-पगपर इतना विरोध है, कि जो भी उनके सहारे वेदार्थ का उपबृंहण करना चाहेगा, वह दलदलमें गिरे बिना नही रहेगा।

३ नहुष

वसिष्ठ[८] (७।६।५)ने कहा है, कि अग्निने नहुषको प्रजाओंका बलिहृत् (शुल्क पानेवाला) बनाया। इसी बातको हिरण्यस्तूप आंगिरस[९] (१।३१।११) ने भी दोहराया है—देवोंने नहुषको प्रजाओं (विशों) का पति बनाया।

४ ययाति

गय प्लात ऋषि[१०] (१०।६३।१)के कहनेसे पता लगता है, कि ययाति नहुष्य, अर्थात् नहुषका पुत्र था। हिरण्यस्तूप आंगिरस[११] (३१।१७) से मालूम होता है, कि अग्नि देवता की तरह ययातिके पास मनु, अंगिरा आया करते थे।

५ मन्धाता

यह भी दस्युहन्ता[१] (८।३९।८) प्राचीन आर्य राजा थे।

ऋग्वेदके प्राचीनतम राजाओंमे यही पांच नाम मिलते हैं। इनका आर्य-जनोंके विरोधियोंके साथ संघर्ष भी हुआ था, पर यह नही कहा जा सकता, कि सप्तसिन्धु (जमुनासे सिन्धुके परले पार तककी भूमि)के किस स्थानके ये राजा थे, और आर्योंके सिन्धु-उपत्यकामें प्रवेश करने (१५०० ई० पू०) के कितने बाद हुए, तथा इनसे कितने वर्षों या पीढ़ियों बाद ऋग्वेदके प्रसिद्ध राजा दिवोदास और सुदास आये।

अध्याय ८

शम्बर

§१ दस्यु

आर्य अपने प्रतिद्वन्द्वियोको दास कहते थे। ऋग्वेदके समय (१२०० ई० पू०) उनके मुख्य प्रतिद्वन्द्वी पर्वतवासी दास या दस्यु थे, मैदानी दासोंसे उनको कोई खतरा नही था। पर्वतीय दास हिमालयके किरात थे। यह हम बतला चुके हैं, कि इन्हींको नष्ट करनेके लिए आर्य तुले हुए थे। "इन कृष्ण-योनि दासोंका इन्द्रने नाश किया" (२।२०।७)। "इन्द्रने कृष्ण चमडे वालोको मारा" [२](१।१३०।८) परुच्छेपने कहा। परुच्छेप पर्वतीय दासोके सबसे प्रतापी राजा शम्बरके विजेता दिवोदासका पुत्र था। दासोका रूप काला बतलाया गया है। वसिष्ठ उन्हे शिश्नदेव कहते हैं' (७।२१।५)। शिश्नदेवका मतलब है, लिंगको देवता मानकर पूजनेवाले। पूजाके लिए पाषाण-लिंग मैदानी दासोके प्राचीन नगरो मोहन-जोडरो और हड़प्पामें भी मिले हैं। किरातोके ताम्र-युगीन अवशेषोकी अभी उतनी छान-बीन नही हुई है। सम्भव है, उनमें भी लिंगको देवता माना जाता हो। नागको देवता तो वह मानते ही थे, जिसके बहुत से नामावशेष हिमालय मे मिलते हैं। शिश्नको देवता माननेवाले पर्वतीय शत्रु आर्योंके सत्य (ऋत)को दबा न दें, इसकी वसिष्ठको बडी चिन्ता थी। भरद्वाज शम्बर-हन्ता राजा दिवोदासके पुरोहित थे। पुरोहितका अर्थ देवताओकी स्तुति करनेवाला, यज्ञ-सम्पादक ही नही था। प्रधानपुरोधा अपने राजाका प्रधानमन्त्री भी था। दिवोदास और उसके पुत्र सुदास बडे सेनानी थे। उनका सबसे बडा बल

योग्य पुरोहित था। पर्वतीय शत्रुओंके शिश्नदेव होनेका उल्लेख वभ्रु वैखानस ने भी किया है[4] (१०।९९।३)।

अपने उत्तरी शत्रुओंके जादू और मायासे भी आर्य बहुत डरा करते थे। वसिष्ठ भी शतयातु (सौ जादू वाले) कहे गये हैं[5] (७।१८।२१)। असुर(दस्यु) बड़े मायावी थे। गृत्समदके अनुसार इन्द्रने मायावी दानवको मायासे ही गिराया[6] (२।११।१०–१९)। जादू और मायाका अर्थ है, उनकी चालें बड़ी गम्भीर होती थीं, उनके पञ्जे आर्योंके गले पर पहुँचे रहते थे। वह केवल सीधी लड़ाई नहीं लड़ते थे, बल्कि अपने-से हजार वर्ष बाद पैदा होने वाले कौटिल्यके कुछ बातोंमें गुरु थे।

अपने शत्रुओंमें सभी दुर्गुणोंको और अपनेमें सारे गुणोंको देखना। आज भी देखा जाता है। आर्योंको शम्बरके लोग सारे दुर्गुणोंकी खान जान पड़ते थे। प्रजापति-पुत्र विमदके अनुसार[7] (१०।२२।८) वह अकर्म (दुष्कर्मा) थे, वह अमन्तु थे। वह अन्यव्रत (दूसरे धार्मिक आचारोंके माननेवाले) ही नहीं बल्कि वह अमानुष भी थे। आर्य ऋषि मनुकी सन्तान तो वह सचमुच ही नहीं थे, इसी अर्थमें उन्हें अमानुष कहा गया है। विमद गिड़गिड़ाकर कह रहे हैं, कि दस्यु हमारे चारों ओर हैं, अमित्रोंके हननकर्ता इन्द्र, इन दासोंको मार। लेकिन, क्या सचमुच ही दस्यु आर्योंको चारों ओरसे घेरे हुए थे। दक्षिणके मैदानी इलाकेके लिए वह दावेदार नहीं थे। अधिकसे-अधिक वह हिमालयके चरणपर अवस्थित तराईके जङ्गलोंमें वास्ता रखते थे, और आर्योंके आनेसे पहले ही उस भूमिमें उनका बसेरा था। पञ्जाबकी तराई उतनी अस्वास्थ्यकर न रही होगी, जितनी कि गंगासे पूर्व की। अपने पूर्वजोंके समयसे चली आई धरतीको यदि वह छोड़ना नहीं चाहते थे, तो इसमें अप-राध क्या था? जब उनके भीतर आर्य पशुपाल घुस आये, तो वह उन्हें चैनसे कैसे रहने देते?

गीतामें कहा गया है "यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्।" (जो करते हो, जो खाते हो, जो हवन करते हो, जो देते हो, जो तपस्या करते हो, उन सबको हे अर्जुन,

मुझे अर्पित करो)। सब कुछ को कृष्णार्पण करनेकी बात यद्यपि यहाँ कही गई है, लेकिन ऐसा सर्व-समर्पणकर्ता गीताकी इन पंक्तियोंके लिखे जानेके बाद शायद ही कोई हुआ हो। लेकिन, ऋग्वेदके ऋषि इस वचनका पूरा-पूरा पालन करते थे। गीताके लेखकके समय वेदकी ऋचाये सिर्फ रटी जाती थी, उनके अर्थोंको जाननेकी जरूरत नही समझी जाती थी। ऐसा न होता, तो बाण जैसे प्रतिभाशाली लोग, बचपनमें वेदको पूरी तौरसे कण्ठस्थ करके भी ऋषियो के बारेमें ऐसी बातें न करते, जो वेदके विरुद्ध है। इसीलिए हम यह नही कह सकते, कि वेदके प्रभावके कारण गीतामें सर्व-समर्पणकी बात कही गई। वेदके ऋषि अपनी सारी सफलताओका एकमात्र कारण अपने देवताओको समझते थे। उनके लिए असली विजेता वध्र्यश्व, कुत्स, दिवोदास, सुदास या उनके प्रधान मन्त्रदाता भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र नही थे। वस्तुत सारा काम इन्द्रने किया। मानुष विजेता केवल इन्द्रके हाथके हथियार थे।

वह नियति (विधिके विधान)को भी अपनी विजयोका श्रेय नही देते थे। "इन्द्रने दास वर्णको नीचा और गुमनाम किया"[८] (गृत्समद २।१२।४)। "हे इन्द्र, धनी दस्युको मारो"[९] (हिरण्यस्तूप १।३३।४)। "इन्द्र, दास प्रजाको अभिभूत कर"[१०] (गृत्समद २।११।४) ऋषि साधनके तौरपर आर्योंके पौरुषसे इन्कार नही करते थे। कण्व-पुत्र घोरके अनुसार[११] (१।३६।१८) अग्नि के साथ यदु और तुर्वश लोग बुलाये गए। अग्नि इसी उद्देश्यसे नववास्तु बृहद्रथ तुर्वीतिको लाये। यदु और तुर्वश आर्योंके पाँच प्रधान जनोमें बहुत अधिक शक्तिशाली थे। एक समय तक भरतो और इन दोनो महान् जनोमें आर्योंके मुखिया बननेकी होड रही। दिवोदासने इनको अपने बसमें करनेमे सफलता पाई, लेकिन उसमें बलका उतना हाथ नही था, जितना कि शम्बरके विरुद्ध सभी आर्योंके एक होनेकी अवश्यकताका। नववास्तु (नये निवास वाले) बृहद्रथ, तुर्वीति इन्ही दोनो जनोके उस समय नेता थे, जब वह पश्चिमसे उस भूमिमें आये, जो कि दासोके संघर्षका मैदान बनी हुई थी। ऋषि वामदेव ने कहा है[१२] (४।१६।१३) "इन्द्रने ५० हजार कृष्णो (कालो) को मारा। उनके दुर्गो (पुरो)को ध्वस्त किया।" यह ५० हजार कृष्ण किस

वक्त मारे गये? शायद उसी समय, जब कि दिवोदासने दासोंका जीवन-मरणका संघर्ष चल रहा था। गृत्समदके अनुसार" (२।२०।८) "इन्द्रने दस्युओंको मारकर उनके आयसी पुरोंको नष्ट किया।" अयस्‌से यहाँ न लोहे का मतलब है, न ताँबे ही का, क्योंकि उन्हीं पुरोंको कितनी ही जगह अश्मन्‌मयी भी कहा गया है, जिसका अर्थ है पाषाणमय। इन पुरियोंका नष्ट करनेवाला दिवोदास था।

दासोंमें शत्रुओंमें सिर्फ पुरुष ही नहीं लड़ते थे, बल्कि उनकी स्त्रियाँ भी डटकर मुकाबला करती थीं। आर्य अपनी स्त्रियोंको हथियारबन्द नहीं करते थे। हो सकता है, सप्तसिन्धुमें १५ पीढ़ियाँ रहनेके बाद उन्होंने पराजित सिन्धु-जातिके लोगोंके नागरिक आचार-विचारकी कितनीही बातें सीखी थीं, उनमें एक यह भी थी—हमें स्त्रियोंको पुरुषोंकी पंक्तिमें नहीं लाना चाहिए। बभ्रुकी एक ऋचा" (५।३०।९)में है—"दासने स्त्रियोंको आयुध (हथियार) बनाया।" इस पर इन्द्रने कहा— "इसकी अबला सेना मेरा क्या करेगी?" स्त्रियोंके लिए अबला शब्दका प्रयोग शायद यहीं सबसे पहिले हुआ, जिससे ध्वनित होता है, कि स्त्रियोंमें योद्धा होनेकी योग्यता नहीं है।

ऋग्वेदके सबसे पुराने ज्ञात आर्य-शासकका नाम मनु है। मनु ऋषि और विजेता था। वह ऋग्वेदसे बहुत पहले हुआ था। ऋग्वेदमें शम्बर-युद्धसे पहलेके ऋषियोंकी ऋचाओंको जमा नहीं किया गया है। तो भी वसिष्ठके पुत्र शक्तिके सुत गौरिवीतिके अनुसार" (१०।७३।७) मनु ऋषि थे— "ऋषि मनुके लिए इन्द्रने दास नमुचिको मारा।" नमुचि शायद शम्बरका पूर्वज पहाड़ी राजा था। पीछेकी परम्परा इसका सम्बन्ध शम्बरसे ही बतलाती है। शम्बरके प्रतिद्वन्द्वीके प्रधान-मन्त्रदाता भरद्वाज भी कहते हैं" (६।२०।६) "दास नमुचिके सिरको इन्द्रने चूर्ण किया", दूसरे स्थान" (५।३०।७,८)के अनुसार "इन्द्रने दास नमुचिके सिरको काटा।" यह लड़ाकटी मनुके समयमें हुई थी। वामदेवके अनुसार" (४।३०।२१) "दभीतिके लिए ३० हजार दास सुला दिये।" आर्य राजा दभीतिका प्रतिद्वन्द्वी कौन

दस्यु था, जिसके ३० हजार आदमी खेत आये ? हो सकता है दभीति दिवोदाससे पहलेका कोई आर्य-नायक था।

आर्योंको जिन दास-सेनानियोका जबर्दस्त मुकाबला करना पडा था, उनके नाम हमें कई ऋचाओमें मिलते हैं, जैसे —

भरद्वाज[११] (६।१८।८)—चुमुरि, धुनि, पिप्रु, शम्बर, शुष्ण ।

वसिष्ठ[१०] (७।९९।४)—दास वृषशिप्रका उल्लेख करते हैं।

कुत्स आगिरस[१२] (१।१०३।८)—शुष्ण, पिप्रु, कुयव, वृत्र, शम्वर।

गृत्समद[१३] (२।१४।५)—शुष्ण, अशुष, व्यस, रुधिका ।

वश अश्व-पुत्र[१४] (८।४६।३२) एक सज्जन दस्यु बल्बूतका नाम लेते हैं, जिसने उन्हें सौ दास (गुलाम) प्रदान किये थे।

पुराने दास महावीरोमें नमुचि और ऋग्वेदकालीनोमें शम्बर महा-पराक्रमी थे। शम्बरके सहायकोमें कितने ही और भी पराक्रमी सेनानी थे, पहाडी शत्रुओके पास सिर्फ शम्बर ही एकमात्र महान् सेना-नायक नही था। शम्बरके बाद जिस पहाडी वीरका सबसे अधिक उल्लेख उसके शत्रु करते हैं, वह शुष्ण है।

§२ शंबरके सेनापति

१. शुष्ण

शुष्ण और उसके प्रतिद्वन्द्वी कुत्स आर्जुनेय औशिज, शम्बर और दिवोदासके समकालीन तथा उनके ही सेनानी थे, यह स्पष्ट उल्लेख ऋग्वेदमें नही मिलता, लेकिन सब देखनेसे यही पता लगता है, कि शुष्ण शम्बरका, और कुत्स आर्जुनेय दिवोदासका दाहिना हाथ था। ऋग्वेदमें तीन कुत्सोका पता लगता है। कुत्स आगिरस एक ऋषि थे, और शायद कुत्स आर्जुनेय के समकालीन थे। पुरु जनका एक कुत्स (पुरुकुत्स) था, जो शम्बरके युद्धसे कुछ पहले हुआ था। शम्बरके प्रतिद्वन्द्वी दिवोदासका समकालीन त्रसदस्यु (दस्युओको त्रास देने वाला) इसीका पुत्र था। तीसरा कुत्स यही अर्जुन-पुत्र था, जो पराक्रममें दिवोदाससे कम

नहीं था। शुष्णको इन्हींने खतम किया था, लेकिन आर्य ऋषि किसी मनुष्यको यह श्रेय कैसे दे सकते थे? इसीलिये नाभाकने कहा[४] (८।४०।१०।११)—"इन्द्रने शुष्णके अंडो (सतानो)को भी छिन्न-भिन्न कर दिया।" कण्व-पुत्र मेधातिथि[५] (८।१।२८) के अनुसार शुष्णके चलायमान (चरिष्णु) पुरोको नष्ट किया गया था। पुर उस समय मोर्चाबन्द स्थान, दुर्ग या किलेको कहते थे। यह पत्थरके और लकड़ीके भी होते थे। लेकिन, खास कर पहाड़ी लोगोको पत्थरोको जोड़ कर पुर बनानेमें अधिक सुभीता और लाभ था। स्थायी पुरोंके अतिरिक्त चरिष्णुपुर शायद वह थे, जो लड़ाईके दौरानमें या घमतप्पीके लिये मोर्चाबन्दी करके बना लिये जाते थे।

हिरण्यस्तूप आंगिरस[६] (१।३२।१२) के अनुसार "इन्द्रने शुष्णको छिन्न-भिन्न किया।" पर यह छिन्न-भिन्न करना इतना आसान नही रहा होगा, क्योंकि शुष्ण बड़ा मायावी था। उसके दाव-पेचका मुकाबला इन्द्र जैसा आर्योका सर्वश्रेष्ठ देवता ही कर सकता था, इसीलिये विश्वामित्रके पौत्र और मधुच्छन्दके पुत्र जेताने कहा है[७] (१।११।७)—"हे इन्द्र, तुमने माया (चालो) द्वारा मायी शुष्णको नष्ट किया।" सव्य आंगिरस[८] (१।५६।३) ने भी शुष्णको मायी और उसके दुर्गोको आयसी (पत्थरका) कहा है। "शुष्णके पुरोको चूर्ण किया गया"[९] (वामदेव ४।३।१३)।

शुष्ण और कुत्स—जब शुष्णको नष्ट करनेवाले इन्द्र थे, तो उन बाहुओंके उल्लेखकी क्या अवश्यकता, जिन्होने शुष्णका सहार किया था? पर, ऋषि लोग ऐसी बाहुओंसे इन्कार नहीं करते। इसीलिये वसिष्ठ कहते हैं[१०] (७।१९।२)—"इन्द्र, तुमने कुत्सकी रक्षा की, जो कि तुमने दास शुष्ण और कुयवको आर्जुनेयके लिये मारा।" कुत्स आर्जुनेयका प्रतिद्वन्द्वी शुष्णके अतिरिक्त कुयव भी था, यह इससे पता लगता है। वसिष्ठ भी कुत्स और शुष्णके युद्धका उल्लेख करते हैं[११] (७।२०।५)—"इन्द्रने सारथी कुत्सके लिये शुष्ण (जैसे) महान् शत्रुको मारा।" कुत्सको भरद्वाज सारथी कहते है। लेकिन, सारथीसे हमें यहा वह अर्थ नही लेना

चाहिए, जो कि महाभारत और पुराणोमें किया जाता है। सारथी महारथी या महासेनापतिका वाचक था। इन दोनो ऋषियोंके तरुण समकालीन वामदेव[१२] (४।३।१३) सिर्फ शुष्णकी पुरियोंके नष्ट करनेकी ही बात कहते हैं। कुत्स बडा दानी (दाशुष) था (भरद्वाज[१३] ६।२६।३)। जिस वक्त शुष्ण और कुत्सकी लडाई हो रही थी, उस समय कुत्स युवा था, यह नोधा गौतम[१४] (१।६३।३) के वचनसे मालूम होता है। सव्यके अनुसार[१५] (१।५१।६) इन्द्रने युद्धमें कुत्सको शुष्णसे बचाया था। जिसका अर्थ यही है कि शुष्णने तरुण कुत्सके जीवनको सकटमें डाल दिया था। कुत्सको वायुके घोडोंसे वहन करते इन्द्रने शुष्णका वध किया था[१६] (१।१७५।४), जिसका अर्थ शब्दश यह नहीं लेना चाहिये, कि कुत्स आर्जुनेय घोडेपर चढकर युद्धसे भाग गया, और इन्द्रने आकर अपने वज्रसे शुष्णका शिरश्छेद किया।

शुष्णके साथी कुयवके साथ कुत्सके संघर्षका उल्लेख वामदेव करते हैं[१७] (४।१६।१२)—"कुत्सके लिये शुष्ण असुरको मारा, इन्द्र, तुमने कुयवके हजारो दस्युओका तुरन्त हनन किया।" शुष्ण और अशुषके मारने और कुत्सकी रक्षा करनेकी बात सव्य आंगिरस[१८] (१।५१।६) भी करते हैं। कुत्स आंगिरस ऋषि[१९] (१।१०४।३) आर्जुनेयको लिये कुयवके ही नहीं बल्कि उसकी दो पत्नियोको भी मारनेकी बात कहते हैं। कुयवको क्षीरमें स्नात कहा गया है। हो सकता है, दुग्ध-स्नानको टोटकेके तौरपर उस समय माना जाता हो। कुयवकी दोनो पत्निया अपने पतिके साथ हथियार लेकर लडती होगी। न लडतीं, तब भी स्त्रियो पर आर्य इतनी उदारता दिखानेके लिये तैयार नही थे। सारथी (महासेनापति) कुत्सके लिये शुष्ण, अशुष और कुयवके मारने तथा दिवोदासके लिये शम्बरकी ९९ पुरियोंके इन्द्र द्वारा नष्ट होनेका उल्लेख गृत्समद[२०] (२।१९।४) ने भी किया है। गौरिवीति[२१] (५।२९।९) और भरद्वाजने सारथी कुत्सका उल्लेख किया है। सारथी विशेषण कुत्स आर्जुनेयके लिए विशेष तौरसे प्रयुक्त मालूम होता है।

२ पिप्रु

यह दूसरा दस्यु सेनानी था, जिसका उल्लेख ऋग्वेदमे अनेक वार आया है। इसने आर्य-वीर ऋजिश्वाके साथ युद्ध किया था। महानतम चार ऋषियोमे वामदेव" (४।१६।१३) ने कहा है,—"इन्द्र, तुमने विदथीके पुत्र ऋजिश्वाके लिये पिप्रु मृगयुको मारा, ५० हजार कृष्णो (कालो) को नष्ट किया, और उनके पुरोको ध्वस्त किया।" वभ्रु वैखानसके अनुसार" (१०।९९।११) "ऋजिश्वा औशिजने पिप्रुके व्रजको विदारित किया।" इससे पता लगता है, कि ऋजिश्वा उशिज-कुलका था। पिप्रु अपने व्रज (गौओंके झुण्ड) को लेकर रहता था, इसी समय ऋजिश्वाने गौओकी लूटके लिये उसके ऊपर आक्रमण किया, और उसका आक्रमण सफल रहा। वसिष्ठके पौत्र गौरिवीति इस सफलतामें अपने भी श्रेय लेना चाहते है, इसीलिये कहते हैं" (५।२९।११)—"गौरिवीतिकी स्तुतियोने इन्द्र, तेरी वृद्धि की, और तूने वैदथीके लिये पिप्रुको मारा।" ऋजिश्वा पिप्रुके सघर्षमें खतरेमें पडा था, या ऋषिने योही इन्द्रको उसका श्रेय दिया, यह नही कहा जा सकता। सव्य आगिरस" (१।५१।५) के अनुसार भी "इन्द्रने पिप्रुके पुरको नष्ट किया, और दस्यु-हत्या (दासयुद्ध) मे ऋजिश्वाकी रक्षा की।"

चालीस सालसे ऊपर तक शम्बर और उसके सहायकोंके साथ आर्यो का जो युद्ध हुआ, उसे ऋग्वेदमें दस्यु-हत्या कहा गया है। हत्या केवल व्यक्तिगत हननको ही उस समय नही कहा जाता था, बल्कि यह युद्धके लिये भी इस्तेमाल होता था।

३ वगृद, ४ करज, ५. पर्णय

ऋजिश्वाके मुकाविलेमें लडने वाले सेनानियोमें पिप्रुके अतिरिक्त वगृद भी था। सव्यके अनुसार "ऋजिश्वाने वगृदके सौ वीरोको हराया था" (१।५३।८)। ऋजिश्वाने बहुतसे कृष्णगर्भों (दस्युओ) को मारा था, इसे कुत्स आगिरस भी बतलाते है "(१।१०१।१)। पिप्रुके

साधन वहुत दृढ थे। अग औरव[८] (१०।१३८।३) के अनुसार पिप्रु असुर मायी था, जिसे इन्द्रकी सहायतासे ऋजिश्वा हरानेमें सफल हुआ। यहा असुर शब्द पिप्रुके लिये इस्तेमाल किया गया है, दास और असुर दोनो शब्द पर्याय माने जाते थे।

६. वर्ची

उदव्रजमें शम्वरके साथ वर्ची भी मारा गया था, यह गर्गके कथन[९](६।४२ २१)से मालूम है। वसिष्ठने उदव्रज और शम्वरका एक साथ उल्लेख नही किया है, पर उनके कहने[१०] (७।९९।५) से मालूम होता है, कि वर्चीने भारी सख्यामें असुर योद्धाओंके साथ दिवोदासका मुकावला किया था—"सौ हजार वीरोंके साथ वर्ची असुरको मारा।" सौ हजार (एक लाख) योद्धा किसी एक जगह जमा होकर मारे गये होंगे, इसकी सभावना कम है। इसका यही अर्थ है, कि वहुत भारी सख्यामें दास युद्ध में काम आये। दासो की इतनी वडी सेना जहा एकत्रित हुई होगी, वहा आर्योंकी भी सेना कम नही रही होगी, इसलिये उदव्रज किसी ऐसे स्थानमें रहा होगा, जो पहाडमे होने पर भी काफी समतल था, और वह स्थान कागडेके पहाडोमें घुसनेका द्वार होगा, जैसे घमेरी (नूरपुर)। वर्चीके सौ हजार आदमियोंके मारे जानेकी वात गृत्समद[१०] (२।१४।६) भी करते है, और वामदेव[११] (४।३०।१५) भी कहते है—"दासस्य वर्चिन सहस्राणि शता वधी।" (दास वर्चीके सौ हजार मारे।) इससे यह भी पता लगता है, कि वर्ची शम्वरका कोई मामूली अनुयायी नही था, वह अपने तौरसे भी वहुत भारी प्रभुता रखता था।

गृत्समद[१२] (२।१२।१४) वर्ची के शतसहस्र आदमियोंके मारनेके साथ शम्वरके सौ पुरियोंके ध्वसकी भी वात करते है।

जिन असुर सेनापतियोका उल्लेख अभी किया गया है, उनके अतिरिक्त कुछ और भी रहे होंगे, लेकिन इन्द्रकी महिमा गानेके लिये उनके नामोंके गिनानेकी आवश्यकता[१३] (७।१८।२०) नही थी। मन्यमान

पुत्र देवकको शम्बरके साथ इन्द्र द्वारा मारे जानेका उल्लेख वसिष्ठने किया है। जिससे सन्देह होता है, कि देवक भी शम्बरकी तरह अनार्य राजा था। पर, देवक और पिताका नाम मन्यमान उसे आर्यजनका आदमी बतलाते हैं। देवक अपने लोगोंके विरुद्ध असुरोंकी तरफ रहा होगा, इस तरहका उदाहरण हमें ऋग्वेदमें और नहीं मिलता। उस समय सप्तसिन्धुके आर्योका शम्बरसे जबर्दस्त मुकाबला था। शम्बर ईंटका जवाब पत्थरसे देना चाहता था। यदि आर्य कृष्णों, कृष्ण-गर्भोका नाम तक मिटा देना चाहते थे, तो वह भी श्वेतों और श्वेतगर्भोको कम से कम अपनी सीमाके पास जिन्दा नहीं छोडना चाहता था। शम्बरके लोग बडे वीर और लडाके थे, इनकी गवाही ऋग्वेदके ऋषि भी देते हैं, और साथ ही हमें यह भी मालूम होना चाहिये, कि जिन गोरखोंकी वीरताको देखकर अंग्रेजोंने उन्हें अपनी भाडेकी सेनामें सबसे ऊंचा स्थान दिया, और आज भी भरती करके अपने साम्राज्यकी रक्षा के लिये मलायाके जंगलोंमें जिन्हें कटवा रहे हैं, उनमें सबसे बडी संख्या किरात-सन्तानोंकी है, जिसे आप उनकी आंख और नाकपर मंगोलायित मुख-मुद्रा देखकर जान सकते हैं।

पिप्रुके व्रजमें पता लगता है, कि दस्यु लोग बहुत भारी संख्यामें गायोंको रखते थे। आर्योकी आजीविका मुख्यत गो-अश्व तथा उसके बाद अज-अवि (भेड-बकरी) थे। दास शायद अश्वका अधिक उपयोग नहीं रखते थे। पहाडी रास्तोंके लिये अभी पहाडी टायन तैयार नहीं हुए थे, और आर्योंके बृहत्काय सैन्धव घोडे पहाडी युद्ध और यात्राके लिए उतने सहायक नहीं हो सकते थे। कुत्स आर्जुनेयको यद्यपि सारथी कहा गया है, किन्तु पहाडी युद्धमें रथका कोई उपयोग न हो सकता था, इससे भी मालूम होता है, कि सारथी रथचालक नहीं बल्कि सेनापति जैसी कोई बडी सैनिक उपाधि थी।

§३ शम्बर

ऋग्वेदिक आर्योंके समय दो बहुत जबर्दस्त युद्ध लडे गए थे— दस्यु-हत्या (शबर युद्ध) या दासोंके साथ युद्ध और दूसरा आर्योंका अपने

वीचका "दाशराज्ञ-युद्ध।" पहले युद्धके प्रधान प्रतिद्वन्द्वी शम्वर और दिवोदास थे, और दूसरे में दस राजाओंके खिलाफ सुदासने तलवार उठाई थी। इन दोनो युद्धोका उल्लेख यद्यपि ऋग्वेदमे है, लेकिन सवसे अधिक शम्वर-हत्या (शम्वर-युद्ध) को ही दोहराया गया है। इसका कारण भी है। दाशराज्ञ-युद्धमे लडनेवाले दोनो पक्ष इन्द्रके भक्त थे, इसलिये इन्द्रकी महिमा वढानेके लिये उसका उतना उपयोग नही हो सकता था। अधिकसे अधिक यही कहा जा सकता था, कि इन्द्रने दस राजाओंसे किसी कारण रूठ कर सुदासको विजय प्रदान की। लडते वक्त दोनो ही ओरके ऋषि इन्द्रको प्रसन्न करनेकी कोशिश करते रहे होगे। शम्वर-हत्या (४० वर्षों)की तरह दाशराज्ञ युद्ध भी वहुत दिनो तक चलता रहा—उसमें सदा अंतिम विजेताकी ही विजय नही होती रही। वीच-वीचके विजयोंके लिये दसो राजाओंके ऋषियोंने इन्द्रकी महिमा गाते ऋचायें वनाई होगी, जिन्हें पीछे सुरक्षित रखनेकी अवश्यकता नही थी। शम्वर-हत्या इन्द्रदेवो और शिश्नदेवोंके वीच थी। इसमें दस्युओंकी पूर्ण पराजय और इन्द्रके भक्तो की विजय हुई। इन्द्रकी महिमा को पूरी तौरसे यही दिखाया जा सकता था, इसीलिये ऋग्वेदमें सवसे अधिक आई इन्द्र-सम्वन्वी ऋचाओमे यदि शम्वर-हत्याका अधिक उल्लेख हो, तो कोई आश्चर्य नही। कुछ विद्वानोका तो कहना है, कि सारे ऋग्वेदमें शम्वर-हत्याकी ही प्रतिध्वनि पाई जाती है।

भरद्वाज, वसिष्ठ, वामदेव सभीने शम्वरके युद्धका वर्णन किया है, लेकिन, शम्वरसे लडनेवाला दिवोदास था, जिसके पुरोहित (पधान-मन्त्री) भरद्वाज थे। भरद्वाजने सोम (भाग या भाग जैसी किसी नशीली वनस्पति) को महिमा गाते हुए कहा है[१८] (६।४३।१)—"जिसके मद में (मस्त) इन्द्रने दिवोदासके लिये शम्वरको मारा।" शम्वरके पिताका नाम कुलितर था, यह वामदेवके कथन[१९] (४।३०।१४) से मालूम होता है—"इन्द्रने दास कौलितर शम्वरको वडे पर्वतोंके भीतर (वृहत पर्वतादधि) मारा।" शम्वर वृहत् पर्वतके भीतर रहता था। वृहत् पर्वत उस समय हिमालयको

कहा जाता था। भरतोंकी भूमि उस समय परुष्णि (रावी) और शुतुद्रि-विपाश् (सतलुज-ब्यास) के बीचमें थी, इसके पास बड़ा पर्वत कांगड़ेका हिमालय ही था। सिवालिकका छोटा पर्वत उसीसे मिला हुआ था, जिसे अब भी अलग नहीं समझा जाता। छोटे पर्वतमें नहीं, बल्कि बृहत् पर्वतमें शम्बरके होनेकी बात यही बतलाती है, कि उसके पुर सिवालिकके पीछेवाले बड़े पहाड़ों में थे। १९वीं शताब्दीके आरम्भ तक अजेय माने जानेवाला किला-कांगड़ा उसीमें पड़ता है। कोई आश्चर्य नहीं, यदि इस पहाड़ीने शम्बरके पुरका भी काम दिया हो। किला-कांगड़ामें इस शताब्दीके भयानक भूकम्पके पहले बहुत सी पुरातात्त्विक सामग्री थी, जिनमेंसे अधिकांश को भूकम्पने ध्वस्त कर दिया। यह ऐसे क्षेत्रमें पड़ता है, जिसे भूकम्पका क्षेत्र माना जाता है, इसलिये शम्बरकी अश्मन्मयी किसी अजेय पुरीके अवशेषके पानेकी आशा नहीं रखी जा सकती।

शम्बरके पुरोंके दर्दराने (ध्वस्त करने), तथा धन-सम्पन्न (वसुमन्त) पर्वतमें आर्योंके प्रवेश करनेका उल्लेख सोमाहुतिने किया है[49] (२।२४।२)—"शम्बर पर्वतोंमें रहता था (पर्वतेषु क्षियन्)" और ४०वें वर्षमें उसे मारनेमें आर्योंको सफलता मिली [50](गृत्समद २।१२।११)। वह गिरि का दास था, जिसे मारकर अपनी अद्भुत रक्षाओंसे इन्द्रने दिवोदासको बचाया —वामदेव[51] (६।२६।५)। वसिष्ठके अनुसार[52] (७।९९।५) —"इन्द्र और विष्णुने शम्बरकी ९९ पुरियोंको भ्रष्ट किया।"

शम्बरकी ९९, १०० या ९० पुरियोंके होनेका उल्लेख मिलता है। वसिष्ठकी तरह वामदेव भी[53] (४।२६।३) शम्बरकी ९९ पुरियोंके नष्ट करने और एक (सौवीं) पुरीको दिवोदास अतिथिग्वको देनेका उल्लेख करते हैं। वामदेवने अपनी ऋचाओंमें इन्द्रके मुखसे सारी बातें कहलाई हैं, जिससे पता लगता है, कि ऋषियोंके ऊपर उनके देवता आते थे। यह आश्चर्यकी बात नहीं। हिमालयमें अब भी हजारों ऐसे पुरुष-स्त्री मिलेंगे, जिनके सिर पर देवता आकर "मैं" कह कर सारी बातें बतलाते

हैं। हिमालय ही में क्यो, दूसरी जगहोमें भी ऐसे ओझा-सयानो या देववाहनोकी कमी नही है। फर्क इतना ही है, कि ऋग्वेद-कालमें जिस तरह सभी लोग देवताओके ऐसे प्रादुर्भाव पर एकान्त श्रद्धा रखते थे, वैसी श्रद्धा अब मैदानमें नही देखी जाती। दिवोदासका दूसरा नाम अतिथिग्व था। कितनी ही ऋचायें उसे केवल अतिथिग्वके नामसे स्मरण करती हैं। इस शब्दसे यह तो साफ मालूम होता है, कि दिवोदास अतिथियोका अनन्य सेवक था। अतिथिके साथ गौ शब्द क्यो इस्तेमाल हुआ, इसका अर्थ लोग गोघ्नसे लगाते हैं। लेकिन उसको उपाधियोमें शामिल करनेकी कोई आवश्यकता नही थी। गौका कोई ऐसा ही अर्थ था, जिससे दिवोदासके अतिथिदेव होनेका भाव निकलता हो।

दिवोदासके पुत्र या सतान परुच्छेप[11] (१।१३०।७) ने ९९ नही, ९० पुरियोंके नष्ट करनेका उल्लेख किया है—"इन्द्रने दिवोदास अतिथिग्वके लिये ९० पुरिया छिन्न-भिन्न की।" पीछेके ऋषि सुहोत्र[12] (६।३१।४) के अनुसार "दस्यु शम्बरकी सौ पुरियोको इन्द्रने नष्ट किया।" यह ९०, ९९ और १०० पुरियोका भेद क्यो? वसिष्ठ और भरद्वाजका कहना ही ठीक है ९९ पुरियोको दिवोदासने नष्ट कर दिया, और एक को अपने लिये सुरक्षित रक्खा।

शम्बरको कहा मारा गया, इसका उल्लेख भरद्वाजके पुत्र गर्ग करते हैं[14] (६।४७।२१), जो शायद शम्बर-युद्धके समय अपने पिताके दाहिने हाथ होकर दिवोदासकी सहायता कर रहे थे। उनका कहना है—"इन्द्र (दिवोदास) ने शम्बर और दास वर्चीको उदव्रजमे मारा।" दूसरे दासोकी तरह शम्बरके भी व्रज या गोष्ठ रहे होगे। किसी विशेष जलके पास एक व्रज था, जिसे उदव्रज कहते थे। यह स्थान कागडा जिलेमे ही कही रहा होगा, लेकिन तीन हजार वर्ष बाद भी उस स्थानका वही नाम रहे, यह ज़रूरी नही है।

शम्बर और उसकी जातिके साथ जो भीषण युद्ध हुआ था, उसका कुछ वर्णन हम विजेता दिवोदासके प्रकरणमें भी करेंगे।

६४ किरात

जान पडता है, कागडेमें अव भी इम सघर्षकी परपरा नामान्तरमे ौजूद है। कागडा प्रदेशका नाम जलन्वर है। हिमालयके पाच खण्डो— पाल, कूर्माचल (कुमाऊ), केदार (गढवाल), जलन्वर और कश्मीरमें क जलन्वर है। कश्मीरकी सीमासे पूर्व सतलुज तकके इलाके को जलन्वर ौर पश्चिमी को दुर्गर (डोगरा) इन दो हिस्सोमें वाटा जाता था। दोनो ी मीमा रावी थी। आज जलवरका अर्थ मैदानी जलन्वर नगर लिया ाता है, लेकिन पहले यह पहाडी भागका नाम था। पौराणिक परम्परा तलाती है जलन्वर एक भयकर राक्षस था, जिसे देवीने मारा। देवी नगर- ोट (भवन) की प्रमिद्ध भवानी थी। मरने पर जलन्वरका विशाल शरीर जितने भूखडमें गिरा, उसका नाम जलन्वर पडा। जलन्वरके कानकी जगह पर वने गढका नाम कनगढा या कागडा पडा। जलन्वर शब्दका अर्थ , जलो (रावी आदि) का धारण करनेवाला। इम भूभागसे होकर मतलज, व्यास, जैसी नदिया आती हैं, इसलिये उसका यह नाम उचित ही है।

वैदिक-कालकी परपरा वृत्रको पानीको रोक रखनेवाला वतलाती है, जिसे इन्द्रने अपने वज्रसे मारकर पानियोको मुक्त किया। शम्वरको भी वृत्र कहा गया है। यद्यपि अपने समकालीन ऋषियोके वचनोमे वह एक दुर्दान्त असुर शत्रु, वहुत यातु (जादू) और माया रखते भी वह आदमी ही था। जैसे-जैसे समय बीतता गया, शम्वर के आदमीके रूपको लुप्त कर उसे दानव वना दिया गया। शम्वरके साथ ४० वर्षो तक जो भीषण सघर्ष चला था, उसको पुराने कालमें इन्द्र-वृत्र-युद्ध भी कहा जाता था। उस समय पौराणिक-कालकी दुर्गा भवानी आर्योमें ख्याति नही रखती थी। पीछे इनकी महिमा वढी। इन्द्रको जव लोग भूलने गए, तो शम्वर-दिवोदास, वृत्र-इन्द्रके युद्धको देवी और जलन्वरका युद्ध वना दिया गया, और जलन्वरके विकराल शरीर के पर्वताकार गिरनेसे इस भूमिका नाम जलन्धर रख दिया गया।

हमारे पास तक शम्वर-दिवोदास (किरात-आर्य) युद्ध की जो कुछ भी सूचना आई, वह आर्योके स्रोतोसे ही आई। शम्वरके लोग भी इस घटना को जरूर याद करते रहे होगे, पर उसके जाननेका हमारे पास अव कोई साधन नही है। जहा तक शम्वरकी जाति के लोगोका सवाल है, ४० सालके युद्धमें लाखोकी सख्यामें मरने पर भी, पहाडमें उन्हें शरण लेनेके लिये वहुत जगह थी, जहा पर आर्य पहुच नही सकते थे। पराजित होने पर वह पहाडमें और भीतर की तरफ चले गये। व्यास, रावीके ऊपरी भागोमें चम्वा-कुल्लूके इलाकोमें वह वहुत समय तक आर्योसे सुरक्षित रहे, लेकिन अव वहा भी उनका पता केवल चम्वाके लाहुली, लाहुलके निचले भागो और कुल्लूके मलाणा गावमें ही किरात-भापाके उपयोगके कारण लगता है। यह लोग भी भाषामें किरात-वशकी ही सूचना देते है, धर्ममें अपने दूसरे भाइयोकी तरह ही है। किरातोकी मगोलायित मुख-मुद्रा चनावके ऊपरी भागोमें ही देखी जाती है। पर, उनसे आशा नही हो सकती, कि वह शम्वर-युद्ध सम्वन्धी अपनी प्राचीन परम्पराको रक्षित रखेंगे। तो भी उनकी लोक-परम्पराओ और पुरातात्त्विक अवशेषोके अध्ययनकी आवश्यकता है।

किरातोको निचले पहाडोसे भगानेवाले आर्य थे। उनको अपने में विलीन करने वाले या और उत्तरकी ओर भगानेवाले आर्य नही, वल्कि उन्हीके मध्य-एसियाके भाई-वन्द खस थे, जो मैदानसे नही, वल्कि पहाडो ही पहाड काशगर, कशकर (गिलगित), कश्मीरमे अपने खस या कश नामकी छाप छोड कर आगे वढे थे। वह किरातोकी भूमिमें नेपाल तक प्रवेश कर गये। यह प्रवेश शान्तिपूर्वक ही नही रहा होगा। दोनो ही जातिया पशुपाल थीं। चरागाहोंके लिये पशुपालोकी खूनी लडाइया हुआ ही करती है, यह ईसा-पूर्व द्वितीय शताब्दीके मध्य-एसियामें हूणो और शकोंके वारेमें हम जानते है। चीनके प्रहारसे जान वचाकर भागते हूण (मगोलायित) जव अपनी भूमिसे निकल पशुपाल शकोकी भूमिमें आये, तो दोनोमें खूनी सघर्ष हुए, जिनमें असफल हो शक अपनी भूमिको छोडनेके लिये मजबूर हुए,

और भागते हुए हिन्दुस्तान तक पहुचे। खसो और किरातोंके भी आरंभिक संघर्ष हुए होंगे। किरात जिन उपत्यकाओंको छोड़ते गए, खस उनपर अधिकार करते गए। जो किरात आत्म-समर्पण करनेके लिए तैयार हुए, वह वही रह कर समयान्तरमे खस बन गए।

शम्वरके वंशजोका यही परिणाम हुआ।

अध्याय ६

दिवोदास

§१. पूर्वकालके आर्य-नेता

१ दध्यङ (दधीच)

दिवोदासके पहले मनु आदि राजाओंके बारेमे हम बतला चुके हैं। दिवोदासके पुत्र या सन्तान परुच्छेपने निम्न प्राचीन आर्य नेताओका नाम लिया है [1] (१।१३९।९) दध्यङ (दधीचि), अगिरा, प्रियमेध, कण्व, अत्रि, मनु। इनमें अत्रि, कण्व राजा थे, इसमें सन्देह है।

२ रुम, ३ रुशम, ४ श्यावाक, ५ कृप

कुछ और भी राजाओका नाम ऋग्वेदमें मिलता है, पर यह नही कहा जा सकता, कि वह दिवोदाससे पहले हुए या वादमें। मेधातिथि[2] (८।३।१२) ने रुशम-श्यावक-कृपकी इद्र द्वारा रक्षा करनेकी बात कही है। देवातिथि ने[3] (८।४।२) भी रुम, रुशम, श्यावक, कृपके रक्षणकी वात कही है। पिजवन भी कोई पुराना वश-स्थापक था, जिसके ही कुलमें दिवोदासका पिता वध्र्यश्व और पुत्र सुदास पैदा हुए। पिजवनके वारेमें इससे अधिक कोई सूचना हमें नही मिलती।

६ वध्र्यश्व

वध्र्यश्वके साथ हमारा पैर इतिहासकी ठोस भूमिपर पडता है। भरद्वाज और सुमित्रने इसका उल्लेख किया है। सुमित्र अपनेको वध्र्यश्वकी सन्तान (वाध्र्यश्व) कहता है। उसके कहे अनुसार[4] (१०।६९।१,

२।११।१२) वध्र्यश्व द्वारा स्थापित अग्नि दर्शनीय था। अग्नि सप्त-सिन्धुके आर्योंके लिये जीता-जागता देवता था। हरेक घरमें अग्निकी स्थापना और पूजा होती थी। आर्य इस साकार देवताके बडे भक्त थे। सुमित्रके अनुसार (२) वध्र्यश्वका अग्नि घृतवर्धन था। पुराने जमानेमें उसे वध्र्यश्वने जलाया था। जैसे पिता पुत्रकी, उसी तरह वध्र्यश्व अग्निकी सपर्या (सेवा) करता था (१०)। वध्र्यश्वकी अग्निने बराबर शत्रुओंको जीतनेमें सहायता की। वध्र्यश्वकी अग्नि वृत्रहा (शत्रु-नाशक) है (१२)। सुमित्रके इन वचनोंसे पता लगता है, कि वध्र्यश्व एक शक्तिशाली आर्य-वीर था। उसने बहुतसे शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी। शत्रुके लिये वृत्र शब्दका उपयोग बतलाता है, कि वह दस्यु रहे होंगे। वध्र्यश्वके पुत्र दिवोदासके प्रधान शत्रु यद्यपि दस्यु थे, पर उन्हें हाथमें करनेके लिये आर्योंसे भी उसे लडना पडा था। वध्र्यश्व आरंभिक विजेता था, जैसाकि इतिहासमें हम सिकन्दरसे पहले फिलिप, समुद्रगुप्तसे पहले चन्द्रगुप्तको पाते हैं। पुत्रकी विजयोंके सामने पिताकी कीर्ति धूमिल हो गई। वध्र्यश्व जिस भरत-पुरु-त्रित्सु जन का था, उसका निवास रावी-सतलुजके बीचमें था। भरद्वाजके कथन[1] (६।६१।१) के अनुसार सरस्वतीने वध्र्यश्वको प्रतापी पुत्र दिवोदास प्रदान किया। जान पडता है, अपनी विजयोंके सिलसिलेमें वह सतलुजसे पूर्व सरस्वतीके किनारे पहुंचा, वहीं सरस्वती-तट पर दिवोदासका जन्म हुआ। सरस्वती सप्तसिन्धुकी पवित्र नदी थी। उसका माहात्म्य आजकी गंगा जैसा था।

भरद्वाज—दिवोदासकी सफलताओंके बारेमें कहनेसे पहले भरद्वाजके बारेमें कुछ विशेष तौरसे कहना आवश्यक है, क्योंकि भरद्वाज ही दिवोदासके चाणक्य, अपने समयके सबसे प्रभावशाली पुरोहित थे। वह ऊंचे दर्जेके कवि थे। उनकी सैकडों ऋचायें ऋग्वेदके छठे मण्डलमें मिलती हैं, जिसका नाम ही भरद्वाज-मण्डल है। भरद्वाज भरतोंके ही नहीं, दूसरे जनोंके राजाओंके भी श्रद्धाभाजन थे। जिन राजाओंने उन्हे बडे-बडे दान दिये, उनका उल्लेख स्वयं, उनके पुत्र गर्ग तथा दूसरे ऋषियोंने

किया हैं। उनसे साफ है, कि ये सभी राजा भरद्वाज और दिवोदासके समकालीन थे।

७ अभ्यावर्ती चायमान

पार्थवोके इस सम्राट्ने वधूके साथ एक रथ और बीस गायें दीं (६।२७।८)। वधू दासीको भी कहा करते थे। चायमानने दासीके साथ रथ दिया था।

८. सुमीढ

भरद्वाजको सुमीढने दो घोडियाँ और सौ गायें, पेरुकने पक्व अन्न और शाडने हिरण्यसहित दस रथ दिये (६।६३।९)। सबसे अधिक दान शाडका था।

९. पुरुनीथ

नोधा गौतमके (१।५९।७)के अनुसार पुरुनीथ शातवनेयने भी भरद्वाजको दान दिया। शतवन शायद किसी स्थानका नाम था।

१० प्रस्तोक

गर्गके अनुसार (६।४७।२२) इसने "दस कोश और दस घोडे दिये।" कोश आजकल खजानेको कहा जाता है, लेकिन उस समय यह कोई निश्चित निधि थी। यही गर्गने यह भी बतलाया है, कि "दिवोदास अतिथिग्वसे शम्बरका धन हमने पाया।" शम्बरसे जो धन मिला था, सभी भरद्वाजको कैसे दिया जा सकता था, उसके और भी भागीदार थे। शायद इसीलिए गर्ग अगली ऋचा में कहते हैं—"मैंने दिवोदाससे दस घोडे, दस कोश, दस वस्त्र-भोजन, और दस हिरण्यपिण्ड (सोनेके डले) पाये।"

दिवोदासके मरनेके बाद यद्यपि भरद्वाज या उनके पुत्र गर्गको पुरोहिती (प्रधानमन्त्रित्व) नही मिली, और दिवोदासके प्रतापी पुत्र सुदासके पुरोहित वसिष्ठ बने, पर, जान पडता हैं, इसके कारण वसिष्ठ और भरद्वाजका वैमनस्य उतना उग्र नही हुआ, जितना कि वसिष्ठका स्थान विश्वामित्रके

लेन पर। वसिष्ठ सन्तानोंमें भी कडवाहटका पता नहीं लगता, जैसाकि मृळीक वासिष्ठकी इस ऋचासे मालूम होता है[10] (१०।१५०।५)—"अग्निने अत्रि, भरद्वाज, गविष्ठिर, कण्वकी रक्षा की," अग्निको वसिष्ठ आह्वान करते हैं।

इन उद्धरणोंसे मालूम होगा, कि भरद्वाज अनेक जनोंमे प्रभाव रखते थे। उन्होंने अपने इस प्रभावका शम्बर-युद्धमे दिवोदासके पक्षमें पूरी तौरसे इस्तेमाल किया था। वाहरी शत्रुओंके इस भयकर सघर्षके समय आर्योंके भीतरी सघर्षको यदि स्थगित न किया गया होता, तो इसमें सन्देह है, कि ४० वर्ष की लडाइयोंके बाद भी शम्बर पर विजय प्राप्त की जा सकी होती। इससे भरद्वाजका महत्त्व मालूम होता है।

११ कुत्स आर्जुनेय, १२ श्रुतर्य, १३.तुर्वीति, १४ दभीति, १५.ध्वसति, १६.पुरुषात।

आर्य सेनानियोंके बारेमें हम कुछ बतला चुके हैं, जिनमें कुत्स आर्जुनेय मुख्य था। भरद्वाजने[11] (६।२०।५) सारथी (सेनापति) कुत्सके लिए स्तुति की है। वसुक्र ऋषि ने तो[12] (१०।२९।२) कहा है, कि इन्द्र स्वय कुत्सके साथ रथ पर बैठकर लडने गये। क्या इसी कारण तो कुत्स को सारथी नहीं कहा गया? कुत्स आगिरस (कुत्स आर्जुनेयसे भिन्न)[13] (१।११२।९,२३)के अनुसार "इन्द्रने वसिष्ठ, कुत्स, श्रुतर्य, कुत्स आर्जुनेय, तुर्वीति और दभीतिकी रक्षा की थी।" ये सभी समकालीन थे, यह कहना मुश्किल है। भरद्वाज[14] (६।१९।१३)एक ही वाक्यमें कुत्स, आयु और अतिथिग्वकी रक्षा करनेकी बात करते हैं। अतिथिग्व दिवोदास था, कुत्स आर्जुनेयको हम जानते हैं, आयु भी इसी समयका कोई आर्य योद्धा रहा होगा।

१७ देवक मान्यमान

शम्बर और उसकी जाति वालोंके अतिरिक्त एक आर्य नाम वाला व्यक्ति देवक मान्यमान है, जिसे एक ही ऋचामें शम्बरके साथ मारे जानेका उल्लेख वसिष्ठने किया है[15] (७।१८।२०)। अन्य आर्य राजाओं या

जननायकोके सघर्षका जो उल्लेख ऋग्वेदमें है, उनके वारेमें हम निश्चय नही कह सकते, कि वह दिवोदासके समकालीन थे। कुछ उनमें समकालीन रहे होगे, और कुछ उसके वाद के।

१८ सुश्रवा

भव्यने इन्द्रकी महिमा गाते[16] (१।५३।९) वतलाया है, कि उसने सुश्रवाके ऊपर आक्रमण करनेवाले दो-दस (वीस) जन-राजाओ को ६० हजार ९९ आदमियोके साथ हराया। यह वीस जन-राजा (जन-राज) कौन थे, और सुश्रवा कौन था ? भव्य ही आगे कहते है[17] (१।५३।१०)—"तुम (इन्द्र)ने सुश्रवाकी रक्षा की (१०)"। सुश्रवाके वारेमें इससे अधिक हमें कुछ मालूम नही है।

१९ तुर्वयाण

भव्य आगिरसने सुश्रवाके साथ तुर्वयाणकी भी इन्द्र द्वारा रक्षा की वात कही है (१०), और कुत्स, अतिथिग्व और आयुको तरुण महान् राजा सुश्रवाके अधीन होनेकी वात वतलाई है। इससे सुश्रवाके वारेमे हमारी जिज्ञासा वढ जाती है, परन्तु आगे कोई समाधान नही मिलता।

२०. ऋणचय

यह रुशम जनका वहुत ही धनाढ्य राजा था, जिसने वभ्रु[18]—(५।३०।१२, १४)को चारहजार गायें दी—"रुशमोके राजाने चारहजार गायें दी, ऋणचयके धनको मैंने ग्रहण किया। वह रात मैंने रुशमोके राजा ऋणचयके पास विताई।" चार हजार गायोके (आज ८ लाख रुपये) दान देने वाले राजाका वैभव असाधारण रहा होगा।

२१ पाकस्थामा कौरयाण

कण्व ऋषि दिवोदासके समकालीन थे, और तुर्वश-यदु जनोके पुरोहित होनेसे उनके सहायक और उनके पुत्र सुदास के विरोधियोके समर्थक

रहे होंगे, यदि वह तब भी जिन्दा थे। उनके पुत्र मेधातिथि (मेध्यातिथि) ने कुरयाणके पुत्र पाकस्थामाकी महिमा गाई"(८।३।२१, २२) है—"मरुत् देवताओंने जो दिया था, उसे पाकस्थामा कौरयाणने मुझे दिया। पाकस्थामाने सुन्दर धुरोवाला लाल रङ्गका रथ दिया। उसने वस्त्र और शक्तिदायक अभ्यञ्जन दिये। लाल (रथ)के दाता उस भोज (पाकस्थामा) का मैं वर्णन करता हूँ (२४)। यदु-तुर्वश जनोंकी भूमिके पास ही पाकस्थामाकी भूमि रही होगी। कुरयाण उसके जनका नाम होगा, अथवा पिता या पूर्वजका।

२२. देवश्रवा, २३. देववात

देवश्रवा और देववात भारत थे, जिसका अर्थ है, वह भरतजनके थे। पीछे हुए भरत राजाका ऋग्वेदमें कोई वर्णन नही आता। देववातकी सन्तान सृंजयका उल्लेख वामदेवने भी किया है" (४।१५।४), इसलिए यह देववात पहले ही का कोई पुरुष है। देवश्रवा और देववात दोनों भाई, अग्नि देवताके परम उपासक थे, जिनकी महिमा गाते हुए दोनोंने कहा है" (३।२३।१-५)—"अग्नि मथित हुआ, (वह) युवा, कवि, अध्वरका नेता गृहमें है। वनोंको विनाश करते भी वह अजेय, अमृत जातवेदा है। भरतोंकी सन्तान देवश्रवा और देववातने सुदक्ष धनवान् अग्निको मथा। दस अगुलियोंने पुरातन, सुजात, माताओंमें प्रिय अग्निको पैदा किया। देववात-देवश्रवा के अग्नि की तुम स्तुति करो। . . . पृथ्वी के श्रेष्ठ धन-सम्पन्न स्थानमें स्थापित किया। हे अग्नि, तुम दृषद्वती आपया, सरस्वतीके तट पर धनसहित प्रज्वलित रहो।"

लकड़ीके दो पाटोंवाली अरणियोंसे मथ (रगड़)कर अग्निको उत्पन्न किया जाता था, उसीका जिक्र यहाँ आया है। इन ऋचाओंमें वर्णित दृषद्वती आजकी घग्घर नदी है, सरस्वती आज भी सियाल्कोटसे कुरुक्षेत्र होकर बहने वाली इसी नामसे पुकारी जाती है। इन दोनोंके बीचकी नदी मरकण्डा ही आपया है।

२४. सृञ्जय दैववात, २५. महिराध साञ्जय

उपरोक्त दैववातके पुत्र सृञ्जयका उल्लेख भरद्वाजने[२२] (६।२७।७) किया है—"उस (इन्द्र) ने तुर्वशको सृञ्जयके लिए प्रदान किया, वृचीवतोको दैववातके लिए दिया।" तुर्वश और वृचीवतोको दैववात सृञ्जयके वसमे करा देना यहाँ अभिप्रेत है। दैववात अपत्य वाचक है, मुख्य नाम सृञ्जय है, यह बात वामदेवके इस कथनसे स्पष्ट हो जाती है[२३] (४।१५।४)—"यह जो अग्नि पूर्वमें दैववात सृञ्जयके लिए प्रज्वलित हुआ"। भरद्वाज-पुत्र गर्गके कथन[२४] (६।४७।२५)से यह भी पता लगता है, कि "सृञ्जय-पुत्र (साञ्जय)ने भरद्वाजोकी पूजा की।" यह सृञ्जय-पुत्र कौन था ? महिराध।

२६. पुरुकुत्स

कुत्स नामधारी तीन व्यक्तियोका पता ऋचाओंसे मिलता है, यह हम बतला आये हैं। यह कुत्स पुरुजनका था, इसीलिए इसे पुरुकुत्स कहा गया। इसका पुत्र त्रसदस्यु सुदासका समकालीन था, इसलिए पिता दिवोदासका समकालीन रहा होगा। भरद्वाजने इसकी महिमा गाई, इससे भी इसी बातका समर्थन होता है। भरद्वाजके कहने[२५] (६।२०।१०)से पता लगता है, कि इन्द्रने पुरुकुत्सके लिए दासोकी सात शारदी पुरोको दर्दराया। शरदकालीन पुरोके कहनेसे जान पडता है, कि पहाडके लोग उस समय सर्दियोंसे बचनेके लिए तराई की गरम जगहोमें आ अपने दुर्गबद्ध स्थानोमें रहते थे। कुमाऊँ-गढवालमें ठण्डी जगहोके निवासियोका अपने पशुओके साथ तराईमें घमतप्पीके लिए आना अब भी देखा जाता है। पुरुकुत्स ने किरातोकी ऐसी सात शारदी पुरोको लूटा होगा। वसिष्ठके भाई अगस्त्य (१।१७४।२)की ऋचामें भी इस बातका उल्लेख मिलता है—"इन्द्रने मृध्रवाच (म्लेच्छ)के सात शारदी पुरोको नष्ट किया, और युवा पुरुकुत्सके लिए अनवद्य अरणा (नदी)को देकर वृत्र (शत्रु)का वध किया।" इससे पता लगता है, कि सात पुरियोको लेते उनके पास बहनेवाली नदीको भी

पुरुकुत्सने दखल कर लिया। नोधा गोतम भी यही बात (१।६३।७) दुहराते हैं—"इन्द्रने पुरुकुत्सके लिए सात पुरोंको ध्वस्त किया।" कुत्स आंगिरस (१।११२।७) बतलाते हैं, कि अश्विद्वयने पृश्निगु पुरुकुत्सकी रक्षा की। पृश्निगु विचित्र गौओं वाले पुरुकुत्सका विशेषण है, या वह एक अलग राजा था?

२७ त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य

यह सुदासके पुरोहित वसिष्ठके अनुसार (७।१९।३) पुरुकुत्सका पुत्र था—"इन्द्र तुमने सुदासकी रक्षा की, वृत्रहत्या (शबर-युद्ध) में पौरुकुत्सि त्रसदस्युकी रक्षा की।" त्रसदस्युने स्वयं कहा है, (४।४२।८-९)—"दौर्गह त्रसदस्युके बन्धनमें रहते समय सात ऋषि पितर थे, उन्होंने इस त्रसदस्युके यज्ञ को कराया। पुरुकुत्सानीने इन्द्रवरुणको हव्य प्रदान किया। तब राजा त्रसदस्युको शत्रुनाशक अर्धदेव मिला।" पुरुकुत्सानी त्रसदस्युकी माँ रही होगी। इसका नाम ही बतलाता है, कि यह दस्युओंके लिए त्रासकारी था। अर्धदेव क्या इसके पुत्रका नाम था? त्रसदस्युको दौर्गह कहा गया है, दुर्गह कोई पूर्वज रहा होगा? सवरण (५।३३।८)ने गैरिक्षित पौरुकुत्स्यसे हिरण्ययुक्त दस सफेद घोड़ोंके पानेका उल्लेख किया है। गैरिक्षित का मतलब है गिरिमें रहने वाला। शायद उत्तर (व्यास-सतलुजके बीच) के पहाड़ोंमें त्रसदस्युका कोई दुर्ग था। वामदेवके कहने (४।३८।१)से मालूम होता है, कि त्रसदस्यु भारी दाता था। त्रसदस्युसे दान पाने वालोंमें सोभरि भी थे, जिन्होंने कहा है (८।१९।३६, ३७)—"अतिमहान् अर्य, सत्पति पौरुकुत्स्य त्रसदस्युने मुझे पचास वधुयें दीं, और सुवास्तु नदीके किनारे तीन-सत्तर (२१०) श्यामा गौवें दीं।" वधुओंका अर्थ यहाँ वहुएं नहीं है। सोभरिको इतनी वधुओंकी आवश्यकता क्या थी? वह दासियाँ थीं, जो पर्वतवासियोंकी लड़कियाँ रही होंगी। सोभरिने इसी सूक्तमें (८।१९।३२) में कहा है—"अग्नि सम्राट् त्रसदस्युका रक्षक है।" सम्राट् शब्द का अभी उतना प्रचार नहीं था, और न

उसका वैसा भारी अर्थ उस समय लिया जाता था, जैसाकि आजकल पुरुकुत्सका पुत्र होनेके कारण त्रसदस्यु पुरु-जन का था, जो कि सतलुज-व्यासके पूर्वमें पहाड तक उस समय निवास करता था।

२८ कुरुश्रवण त्रसदस्यु-पुत्र

इसीके नाममें पहले पहल हम कुरु शब्दका उपयोग पाते हैं। पुरुकुत्सका पौत्र होनेके कारण यह पुरु और सुदासके समय भी मौजूद और शायद उसका शत्रु भी था। इसका पुरोहित कवष ऐलूष था, जो दाशराज्ञ-युद्धमें पानीमें डूबकर मरा था। कवषने अपने यजमानकी उदारताका (१०।३२।९ और १०।३३।४) उल्लेख किया है। "दाता कुरुश्रवणके दिये हुए धन भद्र हैं। मै (कवष ऋषि) ने त्रसदस्युके पुत्र राजा कुरुश्रवण से याचना की, जो कि दाताओमें बहुत बडा है।

§२ दिवोदास के कार्य

१. दिवोदास अतिथिग्व

दिवोदासको अपने आर्य जनोंके साथ भी पहिले कुछ संघर्ष करना पडा था, लेकिन उतना नही, जितना कि उसके पुत्र सुदासको। यह हमें मालूम ही है, कि दस्युओंके साथ लोहा लेने वाले आर्य-नायकोंमें कुत्स आर्जुनेय, ऋजिश्वा, वैंदथी आदि भी थे। हम यह भी बतला चुके हैं, कि कुत्स आर्जुनेय शायद दिवोदासका सेनापति था। पञ्चजनोंमें तुर्वश और यदुने पश्चिमसे आकर दस्युओंसे लोहा लिया था। जान पडता है, तुर्वश और यदुने शम्बरसे निर्णायक युद्ध लडनेके पहले ही दिवोदासने समझौता कर लिया था। यह समझौता बिल्कुल शान्तिपूर्वक नही हुआ था, क्योंकि दिवोदासके मरनेके बाद उसके उत्तराधिकारी सुदासके साथ लडने वाले दस राजाओंमें यह दोनो जन मुख्य थे। जहाँ तक दिवोदासका सम्बन्ध है, वसिष्ठके अनुसार[६] (७।१९।८) तुर्वश और याद्व (यदु) ने अतिथिग्वकी अधीनता स्वीकार की थी। अमहीयु आंगिरस[७] (९।६१।२)ने भी सोमकी

महिमा गाते हुए कहा है, कि उसने तुर्वश और यदुको दिवोदासके वशमें कर दिया।

शम्बरके अतिरिक्त कुछ और दस्यु-शासकोंको दिवोदासने हराया था, जिनमें वर्ची तो शम्बरके साथ ही उदव्रजके महायुद्धमें मारा गया। सव्य आंगिरस कहते हैं[28] (१।५३।८)—करञ्ज और पर्णयको अतिथिग्व (दिवोदास)के लिए इन्द्रने मारा। वगृदके सौ पुरोंको ऋजिश्वाने तोड़ा। सौ पुरोंका तोड़ने वाला दिवोदास था। वगृद शम्बरका दूसरा नाम नहीं है। सव्यकी सौ संख्याका अर्थ बहुसंख्यक है। किसी अज्ञात ऋषिकी एक ऋचा[29] (१०।४८।८)में इन्द्रसे कहलाया गया है—"मैंने गुंगुओंमें अतिथिग्व (दिवोदास)को अन्न-धन दिलवाया, पर्णय और करञ्जको मारा।" गुंगु जान पड़ता है, किसी अनार्य कबीलेका नाम था।

दिवोदास देवोंका प्रिय था, यद्यपि उसने अशोककी तरह "देवानां प्रिय"की उपाधि नहीं धारण की। उसके पुत्रने ऋचाओंको बनाकर ऋषियोंकी सूचीमें नाम लिखवाया, और पौत्र या दूसरा पुत्र परुच्छेप भी ऋषि था, लेकिन, दिवोदासकी कोई ऋचा नहीं मिलती। तो भी देवताओंका साक्षात्कार उसे होता था। दीर्घतमाके पुत्र कक्षीवान्के अनुसार[30] (१।११६।८) दोनों अश्वि-देवता दिवोदासके पास आये थे। कुत्स आंगिरसके अनुसार[31] (१।११२।१४) अश्विद्वयने शम्बर-हत्यामें अतिथिग्व दिवोदासकी रक्षा की थी। कक्षीवान्[32] (१।११९।४) सिर्फ अश्विद्वय द्वारा दिवोदासकी भारी रक्षा करनेकी ही बात नहीं करते, बल्कि यह भी सूचित करते हैं, कि उन्होंने उसे बचाया। भुज्यु शायद दिवोदास का कोई सहकारी आर्यनायक था।

२ शम्बर-हत्या

शम्बर के वर्णन में हम इस महायुद्ध के बारे में भी बतला आये हैं। उसमें ब्राह्मण के रहित दस्युओं के मारे जाने की बात अतिरञ्जित है। दिवोदासके पुरोहित (प्रधानमन्त्री) भरद्वाजके प्रभावकी बात हम बतला चुके हैं। इसमें शक नहीं, आर्यजनोंमें इस समय जो प्रथा थी, उसका

बहुत कुछ श्रेय भरद्वाजको है। जहाँ तक हथियारका सम्बन्ध है, जिसके ही बलपर शम्बरको जीता गया था, उसका श्रेय दिवोदासको ही देना होगा। ऋषि अपने देवताओंको दूर स्वर्गमें रहकर तमाशा देखनेवाले नही मानते थे। देवता सघर्षोमें उनके साथ रहते सीधे भाग लेते थे। कुत्स आर्जुनेयके रथ पर इन्द्र स्वय चढकर शुष्णसे लडने गया था। देवताओंके साथ यह सम्पर्क कैसे स्थापित होता था, इसका स्पष्ट वर्णन हमे नही मिलता। लेकिन, वामदेवने अपनी ऋचाओंमें इन्द्रको उत्तम पुरुष "मैं" में जिस तरह वर्णित किया है, उससे जान पडता है, कि देवता शरीर पर आया करते थे। गढवालमें पाण्डव-नृत्य होते हैं। वहाँ पञ्च पाण्डव और द्रौपदी जीवन भरके लिए एक व्यक्तिको चुन लेते हैं, और उनके शरीर पर आकर सारी बात उत्तम पुरुषमें बतलाते हैं। वह पाण्डव-नृत्यमे भी अपने वाहनके शरीर द्वारा शामिल होते हैं। किन्नर देशमे अब भी देवताओंके साथ उनके भक्तोका सजीव सम्बन्ध देखा जाता है। वहाँके एक देवताने तो एक बडे अग्रेज अफसरके ऊपर इतना प्रभाव डाला था, कि उसने उसके लिए राजासे कहकर जमीनकी माफी दिलवाई। यह ठीक है, कि इसके भीतर यदि कोई वास्तविकता है, तो यही, कि आदमी हिपनाटिज्मसे आकर वैसी चेष्टाएँ करने लगता है, और चित्तकी अत्यन्त एकाग्रताके कारण उसकी कुछ बातें सही भी निकलती हैं। इन और दूसरे स्थानोंमें आधुनिक उच्च-शिक्षा-प्राप्त पुरुषोको भी आज इसके बारेमें अकल बेच खाते देखते हैं, तो आज से तीन हजार वर्ष पहले इन बातो पर कितना विश्वास किया जाता होगा, यह आसानीसे समझा जा सकता है। इन्द्र, अग्नि, सोम, अश्विद्वय आदि वेदकालीन आर्य देवता ऐसे ही किसी ढङ्गसे अपने भक्तोंके सहायक होते थे।

भरद्वाजके अनुसार[1] (६।२६।३) इन्द्रने अतिथिग्व (दिवोदास)की महिमा बढाते असमर्थ (शम्बर)के सिरको काटा। परुच्छेप दैवोदासि[2] (१।१३०।७)के अनुसार—"इन्द्रने दिवोदासके लिए ९० पुर तोडे, अतिथिग्व के लिए शम्बरको पहाडसे नीचे मारा।"

शम्बर-हत्याके प्रत्यक्षदर्शी भरद्वाज कहते हैं—

"अग्नि, तुमने सोम छानने वाले दिवोदासको बहुत श्रेष्ठ धन, भरद्वाजको भी दिया" (६।१६।५)।"

"वृत्रहा (शत्रुनाशक) अग्नि दिवोदासका सच्चा पति है"" (६।१६।१९)।

"इन्द्र, तुमने दिवोदासके लिए शम्बरको मारा। यह सोम छना है, इसे पीयो" (६।४३।१)।

इन वचनोंसे पता लगता है, कि शम्बरको पहाड़के नीचे लड़ाई लड़नी पड़ी। युद्धका स्थान उदब्रज था, इसे ऋषि गर्गने बतलाया है*।

भरद्वाजके समकालीन वामदेव भी कहते हैं" (४।२६।३)—"मैं (इन्द्र)ने शम्बरकी ९९ पुरियोंको तोड़ा, और सौवींको दिवोदास अतिथिग्वको दिया।" इस प्रकार सौवीं पुरी इस दिवोदासके हाथमें पहाड़ोंमें उसके और उसके वंशजोंके हाथमें रही, जिससे वह पहाड़के लोगों पर अपना प्रभुत्व रखते थे। शम्बरकी भूमिका देश सुमन्त (धन-सम्पन्न) था। यह तो निश्चय ही है, कि उस समयकी सबसे उपयोगी धातु ताम्र—जिसे आर्य अयस् कहते थे—इसी तरफ से आर्योंके पास आती थी। गाय-भेड़-बकरी भी पहाड़ निवासियों के पास बहुत थी।

ऋचाओंके जङ्गलमें बिखरी ऐतिहासिक सूचनाओंसे मालूम होता है, कि दिवोदास और सुदास यद्यपि अपने कालके सबसे बड़े आर्य-नायक थे, किन्तु वही एक मात्र नायक नहीं थे। दूसरे भी वैभवमें न नगण्य थे, न पराक्रममें। पुरुओंमें पुरुकुत्स, त्रसदस्यु और कुरुश्रवण अपने समयके प्रतापी राजा थे, जो हजारोंका दान देते थे। पुरुओंकी कीर्ति बढ़ानेमें इन्होंने बहुत काम किया था, और इसीके कारण वेद-कालके बाद पुरु-कुरु वंशका प्रताप बढ़ा। यद्यपि दस हजार ऋचाओंके जङ्गलमें से हमें सूईकी तरह ऐतिहासिक तथ्योंको ढूँढ़ना पड़ता है, पर यह अधिक विश्वसनीय है। उसके बादकी परम्परा महाभारत, रामायण और पुराणोंमें मिलती है, जो अधिक

* देखो अध्याय ८।३ (पृष्ठ १०२)

व्यवस्थित रूपमें होनेपर भी उतनी विश्वसनीय नही है। तो भी, सप्तसिन्धु के वाद में गगा-जमुनाकी उपत्यकाओंसे कुरुओकी प्रधानता स्थापित हुई।

§२ हथियार

ऋग्वेदिक आर्य ताम्र-युगमें थे, जिसमें सिन्धु-उपत्यकाके नागरिक उससे डेढ हजार वर्ष पहलेसे रहते आये थे। अयस्, लोह, अश्मन् तांवेके नाम थे। इसीके इषु (वाण), कुलिश या वज्र (गदा), परशु (फरसा) जैसे युद्धके हथियार वनते थे। उनके निषग (तूणीर), और ज्या चमडेके थे। असैनिक हथियारोमें वाशी (वसूला), आदि तांवेके थे।

१. इषु, २ निषंग

प्रजापति-पुत्र ऋषि यज्ञने[४९] (१०।१०३।२, ३) कहा है—"योद्धा पुरुषो, इन्द्रकी सहायता पा विजयी वनो, शत्रुओको पराजित करो। रुलानेवाले जागरूक विजयी अजेय दुर्धर्ष (वीर) हाथमें वाण लिये है ।।२।।

"हाथमें वाण लिये तूणीरवालोके गणके साथ स्वयवशी इन्द्र युद्धमें रहते है। फंके वाणो द्वारा शत्रुको जीतनेवाले सोमपायी और श्रेष्ठ धनुर्धर इन्द्र, शत्रुओको परास्त करते है।"

३ धनुष, ४ ज्या, ५ वर्म

भारद्वाजके पुत्र पायु हथियारोकी वडी प्रशसा करते है। आखिर उनके पिता शम्वर-विजेता दिवोदासके पुरोहित (प्रधानमन्त्री) भी तो थे। अपने पिताकी तरह ही दिवोदासके युद्धमें उन्हें भी सर्वस्वकी वाजी लगानी पडी होगी। उन्होने वर्म, कवच, धनुष, इषुधि (तर्कश) की तारीफ की है। ज्याके वारेमें कहते हैं[५०] (६।७५।१-४) यह ज्या युद्धसे पार ले जानेकी इच्छा करती है, मानो प्रिय वचन वोलनेके लिए ही धनुर्धरके कानके पास आती है, जैसे स्त्री प्रिय सखाका आलिगन करती वात करती है ।।३।।

" विमनस्क स्त्रीकी तरह हो शत्रुके ऊपर आक्रमण

करते समय, पुत्रको माताकी तरह रक्षा करें, और अच्छी तरह जानते (दिवोदासके) शत्रुओंको वेध डालें ॥४॥"

सुदास ऋग्वेदका एक महान् विजेता था। वह यदि हथियारोंकी महिमा गाये, तो आश्चर्य क्या? उसने अपने सूक्त" (१०।१३३।१) की सातमे से छ ऋचाओंमे यही प्रार्थना की है, कि दूसरो (शत्रुओ) की ज्या छिन्न-भिन्न हो जाये—"अन्येषा ज्याका अधिधन्वसु नभन्ता।"

६ कुलिश

विश्वामित्रने कुलिशकी उपमा देते हुए कहा है' (३।२।१)—"हम यज्ञ बढानेवाले वैश्वानर (अग्नि) के लिये पवित्र घृतकी तरह स्तुति करेंगे। जैसे कुलिश (कुल्हाडा) रथको बनाता है, वैसे ही मनुष्य और ऋत्विक् देवोंको बुलाते दो प्रकारके (गार्हपत्य और आहवनीय) अग्निका संस्कार करते है।"

७ परशु

कुलिश केवल वज्र या गदाको ही नही कहा जाता था, वह कुल्हाडेका भी पर्याय था। परशु लडाईका फरसा था, जिसे परशुरामके नाममें भी हम देखते है। विश्वामित्रने परशुका उल्लेख करते हुए कहा है" (३।५३।२२)—"हे इन्द्र, जैसे फरसेको पाकर सिम्बल (वृक्ष) दुखी होता है, वैसे ही हमारे शत्रु सन्तप्त हो। जैसे सेमलका वृक्ष गिर जाता है, जैसे हांडी (उखा) उबलकर फेन गिराती है, वैसे ही हमारे शत्रु गिर जायें।"

८ वाशी, ९ ऋष्टि

वाशी आजकल बसूलेको कहते है। इसका इस्तेमाल उस समय भी होता था। ऋषि श्यावाश्वकी ऋचा" (५।५७।२)है—"हे सुबुद्धि मनीषी मरुतो, तुम वाशी-सहित, ऋष्टि (छुरी)-सहित, सुन्दर धनुष-युक्त, वाण-युक्त, तूणीरधारी सुन्दर घोडे, सुन्दर रथवाले, सुन्दर आयुधके साथ तैयार होओ।" मरीचि-पुत्र कश्यप भी" (८।२९।३) वाशीका उल्लेख

करते हैं—"देवोमें निश्चल(वह)एक आयसी (ताँबेकी) वाशी (वसूला) हाथमें धारण करता है।"

१०. वज्र

वज्रको कुलिश भी कहते हैं। यह एक तरहकी गदा थी, जो पाषाण-युगसे चली आई थी। दधीचि विदथ-पुत्रकी हड्डियोका इन्द्रने वज्र बनाया, यह कथा पुराणोमें आती हैं। कश्यपने[५६] (८।२९।४) कहा हैं—"एक (देव) हाथमें रक्खे वज्रको धारण करता हैं, उससे वृत्रो (शत्रुओ) का नाश करता है।"

११. अत्क

यह एक परिधानका भी नाम था, पर शुनहोत्र[५७] (६।३३।३) के कथनसे किसी हथियारका भी यह नाम मालूम होता हैं—"हे सूर्य इन्द्र, तुम आर्य और दास दोनो अमित्रो वृत्रो (शत्रुओ)को मानो तेज धारावाले अत्कोंसे मारते हो, युद्धमे मनुष्योको विदारण करते हो।"

१२ नाव

हलके वारेमे हम वामदेव ऋषिके प्रकरणमें बतला आये हैं। आर्य नावोका इस्तेमाल करते थे, व्यापारकी ओर उनकी प्रवृत्ति अधिक नहीं थी। उनकी नावें अधिकतर साधारण यातायातके साधन के तौरपर इस्तेमाल होती थी। दीर्घतमा-सन्तान कक्षीवान्‌की ऋचा[५८](१।११६।५) में सौ पतवारो वाली (शतारित्रा) नावका उल्लेख आया हैं—"हे दोनो अश्विनीकुमारो, तुमने निरालम्ब, अयुक्त स्थान, अगाध समुद्रमें सौ पतवारोवाली नावपर बैठाकर डूबते भुज्युको पार किया।"

अध्याय १०

सुदास

§१. सुदास वीतहव्य

एक महाप्रतापी राजाके वाद उसका पुत्र उससे भी अधिक प्रतापी हो, सा इतिहासमें कम देखा जाता है। सुदास अपवाद रूपमे प्रतापी पुत्र था, समने दिवोदासकी सफलताओंको बहुत आगे बढाया। दिवोदासने पहाडके स्युओंके संकटको नष्ट करके सप्तसिन्धुको आर्योंके लिये सुरक्षित ही ही कर दिया, बल्कि हिमालयकी समृद्ध चरागाहो और उपत्यकाओं, उनकी ानोंका रास्ता भी खोल दिया, और सिन्धुसे सरस्वती तकके आर्य-जनोंमें ्कता स्थापित करके उसे एक राज्यका रूप दे दिया। लेकिन, सारे आर्यजन सके लिए तैयार नहीं थे, इसलिए दिवोदासके मरते ही उन्होंने हर जगह सर उठाया। इसके लिए सुदासको अपने पितासे भी अधिक संघर्ष करना डा। सुदास और दाशराज्ञयुद्धके सम्बन्धकी बहुत-सी ऐतिहासिक सामग्री ऋग्वेदमें मिलती है। वसिष्ठका एक पूरा सूक्त (७।१८) इसीके वर्णनमें ;। त्रित्सु जन भी पहले विरुद्ध था। त्रित्सु-भरतके वैभवके लिए ही उसने ंघर्ष किया था। पृथु और पर्शु जन भी उसके सहायक थे। पृथु और पर्शु ामके जन ईरानियोंमें भी मिलते हैं। इससे यह नहीं समझना चाहिए, कि ैदिक पृथु-पर्शु पीछे ईरानमें देखे जानेवाले पर्शियन और पार्थियन जन हैं। ईरानी और सप्तसिन्धुके आर्य एक ही वंशकी दो शाखाये थी। दोनोंके एक जगह रहनेके समय प्राचीन पृथु-पर्शु जनके ही कुछ लोग ईरानमें गये और कुछ सप्तसिन्धुमें आये, यह असम्भव नहीं है। सुदासके सहायकोंमें

भरतोके पुराने पुरोहित दीर्घतमाकी सन्तानें भी थी। भरद्वाजकी सन्तानोको यद्यपि सुदासके समय पुरोहित (मन्त्री) पदसे वचित किया गया, किन्तु उन्होने सुदासके शत्रुओका साथ दिया हो, ऐसा पता नही लगता। वसिष्ठ तो युद्धके मुख्य सूत्रधार थे, और शायद उनके सम्बन्धी जमदग्नि भी उनके साथ रहे। विश्वामित्रने पीछे वसिष्ठका स्थान ग्रहण किया, दाशराज्ञयुद्धमे वह और उनका जन कुशिक सुदासका सहायक था।

दस राजा शत्रु थे, लेकिन उसका यह अर्थ नही, कि शत्रुओकी सख्या केवल दस ही थी। मुख्य शत्रु दस थे। लेकिन इनकी गणना ऋग्वेदमें नही दी गई है। विद्वानोका भी इसमें मतभेद है। तो भी दस प्रधान शत्रुओमें १ तुर्वश, २ यदु, ३ अनु, ४ द्रुह्यु, ५ पुरु तो अवश्य ही थे। वाकी पाँच ६ शिम्यु, ७ कवष (कुरुश्रवणका पुरोहित), ८ भेद, ९-१० दो वैकर्ण रहे होगे। तुर्वश और यदुके पुरोहित कण्व थे, एव द्रुह्युके भृगु (गृत्समद), पुरुके अत्रि। इनके भी अपने यजमानोके साथ होनेकी अधिक सम्भावना है। कवषके कारण उनका यजमान कुरुश्रवण भी सुदासके विरोधमें खिच गया हो, तो कोई अचरज नही। तुर्वश-यदुने मत्स्योपर एक वार प्रहार किया था, लेकिन मत्स्य अव अपने शत्रुओके साथ मिलकर सुदासके विरोधी थे। इस प्रकार (११) मत्स्य दसकी सूचीसे वाहरके शत्रु थे। १२ पक्थ (पख्तून), १३ भलानस, १४ अलिन, १५ विषाणी, १६ अज, १७ शिव, १८ शिग्रु, १९ यक्षु ये सभी किसी न किसी समय शत्रु थे।

युध्यामधि, चायमान कवि, सतुक, उचथ, श्रुत, वृद्ध, मन्युके नाम भी आते है, जो भी सुदासके विरुद्ध इस सघर्षमें शामिल हुए थे।

१ वसिष्ठ पुरोहित

भरद्वाज दिवोदासके समय बहुत प्रभावशाली पुरुष थे, लेकिन सुदासके दाशराज्ञयुद्ध-विजयके समय वसिष्ठ उनसे भी अधिक प्रभाव रखते थे। वसिष्ठ अपनेको भरतो (सुदासके जन) का विधाता मानते थे। वह

कहते हैं (७।३३।६)—"गौकी तरह भरत पहले दण्डसे भयभीत अ-जन, (अनाथ) बच्चे से थे, इससे पहले (जब) कि वसिष्ठ उनके पुरोहित हुए। फिर त्रित्सुओं (भरतों) की प्रजा खूब बढ़ी।" दुर्मित्र (त्रित्सु) सुदासके अपने जन युद्धमें भागनेके लिए मजबूर हुए, और उन्होंने सारा धन (भोजन) सुदासको प्रदान किया (७।१८।१४)।" सारे भोजनके देनेकी बातका उल्लेख फिर (१७) वसिष्ठ करते हैं। भरद्वाजके कुलवालोंने शरीरसे भी दिवोदासकी सहायता की थी। उस वक्त अभी श्रुवा और असिका पक्का बँटवारा नहीं हुआ था, और न असि उठानेका काम किसी एक वर्गके हाथमें दे दिया गया था। वसिष्ठके लोग सुदासके लिए खुल कर लड़े थे, जिसके लिए ऋषिने स्वयं उन्हें प्रेरित किया था (७।३३।१-३)—"मेरे गोरे, दक्षिण ओर चूड़ा बाँधनेवाले प्रसन्न हो, मैं उठकर कहता हूँ, कि तुम मुझसे दूर न रहो।" फिर सुदासकी सफलतामें अपने कुलवालोंकी सहायताका उल्लेख करते कहते हैं (३)—"कौन इस प्रकार नदी पार हुआ है, किसने इस प्रकार भेदको मारा, किसने इस प्रकार दाशराज्ञमें सुदासकी रक्षा की? वसिष्ठो, तुम्हारी वाणीसे इन्द्रने रक्षा की।" सिर पर सारे केशको रखना प्राचीनकालसे मुसलमानोंके आनेके समय तक हमारे यहाँ प्रचलित था। उसे वक्त सजा कर जूड़ेकी शकलमें बाँधा जाता था। चूड़ा (जूड़ा), अलग-अलग जनोंकी अलग-अलग ढङ्गसे बाँधी जाती थी। वसिष्ठके कुलके लोग सिरके दाहिनी ओर बाँधते थे, इसलिए उन्हें "दक्षिणतः कपर्दी" (दाहिने जूड़ावाले) कहा गया है। ईसवी सन्के आरम्भ होनेके करीब तक स्त्रियाँ भी पगड़ी बाँधती थीं। वैदिक नारियाँ भी उसे बाँधती होंगी। ऐसा होनेपर वसिष्ठोंके कुलकी स्त्रियाँ भी दक्षिणतः कपर्दा रही होंगी। कुमारियाँ चार-चार कपर्द बाँधती थीं। (१०।११४।३) उन्हें चतुष्कपर्दा कहते थे। यहाँ कपर्दसे जूड़ा नहीं, बल्कि चोटी अभिप्रेत हो सकती है—शायद दो कपर्द कानोंके पाससे सामने लटकते थे, और दो पीछेकी ओर।

सुदासका छोटा भाई प्रतर्दन भी था। यद्यपि ऋचाओंमें उसे लिये

कोई प्रमाण नही मिलता। कुछ वेदानुशीलकोका मत है, कि प्रतर्दन वडा लडका था, जिसे भरद्वाजने पिताकी गद्दीपर बैठाया। पर, मनस्वी सुदास इसे वर्दाश्त नही कर सका, अथवा वह योग्य पिताका योग्य पुत्र नही था, और दिवोदासकी सफलताओको अक्षुण्ण नही रख सकता था। असन्तुष्ट लोगोने सुदासका पक्ष लिया, जिनमें वसिष्ठ मुख्य थे। वसिष्ठने सुदासका अभिषेक करके उसे भरतोका राजा घोषित किया। दोनो भाइयोमें लडाई हुई, जिसमे ही शायद प्रतर्दन मारा गया, और जिस तरह समुद्रगुप्तकी गद्दीपर बैठे अपने वडे भाई रामगुप्तको मारकर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य वन बैठा, वैसे ही सुदास भरतोका अधिराज हुआ। ऐसा माननेपर त्रित्सुओंके साथ आरम्भमें सुदासके संघर्षकी भी व्याख्या हो जाती है।

२. सुदास

वसिष्ठको सुदासने दान दिये, जिनका उल्लेख वसिष्ठने स्वय किया है[1] (७।१८।२२-२३)—"देववातके नाती सुदासने वधुओंके साथ दो रथ और दो सौ गायें मुझे दी। हे अर्हन (पूजनीय) अग्नि, पैजवन (सुदास) के दानको पा होताकी तरह मैं स्तुतिगान करता घर जा रहा हू।" "पैजवन (सुदास) ने सोनेके आभूषणवाले चार घोडे मेरे लिये दान दिये (२३)।"

दिवोदासका पुत्र सुदास था, इसपर कुछ विद्वान् सन्देह प्रकट करते है, जिसकी वसिष्ठके इस वचन[1] (७।१८।२५) से गुजाइश नही रहती—"हे मरुतो, पिता दिवोदासकी तरह सुदासकी सहायता करो (दिवोदास न पितर)। और पैजवनके घरकी रक्षा करो।" वसिष्ठ सुदासके ही श्रद्धाभाजन नहीं थे, वल्कि पौरुकुत्सि त्रसदस्यु भी उनकी कृपाका पात्र था, इसीलिये वह इन्द्रकी महिमा गाते कहते हैं[2] (७।१९।३)—"तुमने सुदासकी सारी रक्षाओंसे रक्षा की, युद्धमें पौरुकुत्सि त्रसदस्युकी रक्षा की।" इसमे यह सन्देह हो सकता है, कि त्रसदस्यु सुदाससे नही लडा, पर यह भिन्न समयकी वात हो सकती है। वसिष्ठ कहते हैं—

"इन्द्र, हवि-दाता दानी सुदासके लिये वह भोजन अन्न-धन सदा है '(७।१९।६)।"

'"इन्द्रने सुदासके लिये लोक बनाया, धन दिया' (७।२०।२)।"

"इन्द्र, तुम्हारी सैकड़ों रक्षायें और सहस्रों प्रशंसायें सुदासके लिये हों" (७।२५।३)।"

"सुदासके रथको न कोई हटा सकता, न रोक सकता है, जिसका कि रक्षक इन्द्र है। वह गौओं-वाले व्रजमें जाता है" (७।३२।१०)।"

"हे इन्द्र-वरुण, दास और आर्य शत्रुओंको मारो, सुदासकी रक्षा करो।"

वसिष्ठके कथनसे" (७।८३।१) पता लगता है, कि इन्द्र-वरुणकी कृपा पा पृथु और पर्शु गायोंके (लूटनेके) लिये पूर्व दिशामें गये। "तुमने दासों और वृत्रोंको मारा, आर्य शत्रुको मारा और सुदास की रक्षा की।" पहले जिन शत्रुओंके विरुद्ध ऋषि अपने देवताओंसे प्रार्थना करते थे, वह दस्यु थे, किन्तु अब आर्य और दस्यु दोनोंके नाशके लिये उन्हें प्रार्थना करनी पड़ी। सुदासके शत्रु तो मुख्यत आर्य ही थे।

§२. दाशराज्ञयुद्ध

१. शत्रु

शम्बर-युद्धकी तरह दाशराज्ञयुद्ध भी कोई एकाध सालका संघर्ष नहीं था। इसमें सुदासका काफी समय लगा था। वसिष्ठ कहते हैं" (७।८३।६-७)—"इन्द्र-वरुणने दश राजाओंसे बाधित सुदासकी त्रित्सुओंके साथ रक्षा की।" इसका अर्थ यह है, कि त्रित्सुओंके साथ जो गृह-कलह हुआ था, वह अब शान्त हो गया था, एवं दस राजाओंने सुदास और उनके त्रित्सुजनको पराजित करनेका प्रयत्न किया था। अगली ऋचामें वसिष्ठ कहते हैं, कि अ-यज्वा संगत दश राजाओंने इकट्ठा हो (समिता) सुदाससे युद्ध किया। "समिता"का अर्थ एकत्रित होना है, या समिती (युद्धक्षेत्र) में लड़नेकी बात यहां की गई है। सुदासके शत्रुओंमें तुर्वश और यदु मुख्य थे। वसिष्ठके कहनेसे" (७।१८।६-८) पता लगता है कि

"तुर्वश, मत्स्य, भृगु और द्रुह्युने मिलकर एक दूसरेका सहायक वन आक्रमण किया था।" अगली दो ऋचाओ (७, ८) से मालूम होता है, कि पक्थो, भलानसो, अलिनो, विषाणियो, शिवोने भी आक्रमण किया था, जिसमें आर्यकी गाये त्रित्सुओको मिली। दुर्दान्त, वुरी नीयतवाले शत्रुओने परुष्णीको ले लिया, पर अन्तमे चयमानका पुत्र कवि पृथिवीपर गिर पडा। परुष्णीमें शत्रुओको मुंहकी खानी पडी, और सुदासने उनको छिन्न-भिन्न कर दिया अन्यत्र" (७।८३।८) फिर इमी युद्धके वारेमें वसिष्ठ कहते हैं—"दाशराज्ञमें मव तरफसे घिरे सुदासको इन्द्र-वरुणने सहायता की। युद्धमें कपर्दवाले सफेद त्रित्सु प्रार्थना करते थे।"

विश्वामित्रने व्यास और सतलुजको अगाधसे गाव वननेके लिये ऐसी सुन्दर प्रार्थना की है, जिसे ऋग्वेदकी सर्वोत्कृष्ट कविता कह सकते हैं। परन्तु, नदियोको गाध वनानेका दावा वसिष्ठ भी करते है। नदिया ऋषिकी प्रार्थनासे गाध न हुई हो। सयोगसे वैसा हो जाना असम्भव नही। शत्रुओका पीछा करते सुदासके घोडसवारोने कही पर नदीमें कम पानी पाया होगा। यह घटना दाशराज्ञयुद्धके समय हुई थी, अत वसिष्ठको ही इमका श्रेय देना पडेगा। वसिष्ठ इसके वारेमें कहते है" (७।१८।५)—"इन्द्रने सुदासके लिये नदियोको गाध और सुपारा कर दिया।" इमके वाद ही तुर्वश, मत्स्य, भृगु, द्रुह्यु आदिके ऊपर प्रहार और चायमान कविके मारे जानेका उल्लेख है। इमसे यही जान पडता है, कि जिस नदीको पार करके सुदासने शत्रुओपर आक्रमण किया था, वह शुतुद्रि और विपाश् नही, वल्कि परुष्णी (रावी) थी। दोनो वैकर्णोके २१ लोगोको राजा (सुदास) ने काटा, वैसे ही जैसे ऋत्विज यज्ञमें कुशको काटता है।" (७।१८।११-१४) यही नही, वल्कि यहीं (१२) उल्लेख है, कि वज्रवाहु (इन्द्र) ने श्रुत कवप, वृद्ध और द्रुह्युको पानीमें डुवा दिया। जान पडता है, परुष्णी (रावी) को पार कर शत्रुओंने एक वार भरतोकी भूमि (रावी और सतलुजके वीचके द्वाव) में आनेमे सफलता प्राप्त की थी। सुदासने उनके ऊपर जो भीषण आक्रमण किया, उससे भागते शत्रुओके कितने ही लोग नदीमें डूव कर मर गये।

सुदासने किसी जगह नदीको सुपार पा उसे पार कर शत्रुओंका पीछा किया। वसिष्ठके आगेके वचन (१३) मे यह पता लगता है, कि सुदासने अपने शत्रुओंके सात दुर्गोको ध्वस्त किया। उनकी बहुत सी सम्पत्ति भित्सुओंको मिली। इस युद्धमें भारी नर-संहार हुआ था—"आक्रमणकारी अनु और द्रुह्युके साठ सौ, छ हजार, छियासठ वीर मर कर सो गये (१४)।"

सुदासका सबसे बड़ा युद्ध यही दाशराज्ञयुद्ध था, जिसमें उसने अपने बुरी तरह से हरा कर शत्रुओंको परुष्णी (रावी) के पश्चिम भगाते उनके देशपर आक्रमण किया।

वसिष्ठ सुदासके शत्रु भेदका भी उल्लेख[८] (७।१८।१८) करते सुदासकी सफलताका श्रेय इन्द्रको देते हुए कहते हैं—'इन्द्र, तुम्हारे बहुतसे शत्रु पराजित हो गये। अब अश्रद्धालु भेदको वशमें करो। जो (कोई) तुम्हारी स्तुति करता है, उसको यह हानि पहुचाता है। उसे वज्रसे मारो।" भेद नाम आर्य जैसा मालूम नही होता, हो सकता है, दाशराज्ञयुद्धमें सुदासको फसा और निर्बल देखकर इस नामके किसी राजा या जनने हाथ-पैर फैलाने की कोशिश की हो।

इन सफलताओंके बाद सुदासकी कीर्तिका बढ़ना स्वाभाविक था। वसिष्ठने भी कहा है[९] (७।१८।२४, २५)—"जिस (सुदास) की कीर्ति पृथिवी-आकाशके भीतर विस्तृत है, जिसने खूब दान बाटा है, लोग जिसकी स्तुति इन्द्रकी तरह करते हैं, जिसने युद्धमें युध्यामधिको नष्ट किया। मरुत् इस सुदासको पिता दिवोदासकी तरह मानें। पैजवनके निकेत की रक्षा करें, सुदासका बल अविनाशी अजर तथा अशिथिल हो।"

२ युद्ध

वसिष्ठकी पुरोहिती (प्रधान मन्त्रित्व) में ही सुदासने दाशराज्ञ-युद्ध[१०] (७।८३।१-१०) और पूर्वमें जमुना तककी विजय-यात्रा की थी, यह वसिष्ठके इन वचन[११] (७।१८।१९) से मालूम होता है—"यमुना और त्रित्सुओंने इन्द्रको संतुष्ट किया। यहा भेदको इन्द्रने मारा। अज,

शिग्रु और यक्षु अश्वोंके सिरोकी वलि लेकर आये।" भेद जमुनाके पास का ही कोई राजा या जन था। अज, शिग्रु और यक्षु शायद जमुना और गगाके वीचमें रहनेवाली आर्य-भिन्न जातिया थी, जिन्होने सुदासकी अधीनता स्वीकार की।

वसिष्ठने भरतोंके नामको अमर करते हुए कहा[२] (७।८।४)—"जव सूर्यकी तरह वडे प्रकाशके साथ अग्नि चमकते हुये (उन) भरतोकी स्तुति सुनते है। जिस भरत जनने कि युद्धमें पुरुओको पराजित किया।"

सुदासकी सफलताका सवसे अधिक श्रेय वसिष्ठ और उनके लोग लेना चाहते थे, इसके लिये सुदास वहुत दिनो तक तैयार नही रह सकता था। हो सकता है, अभिमानवश कुछ अवहेलना भी की गई हो। वसिष्ठका पुत्र ने शक्ति शायद पिताकी गम्भीरताका उत्तराधिकारी नही था। पीछेकी परम्परासे मालूम होता है, कि मन्त्रिपदको दूसरेके हाथमें देना उसे वहुत वुरा लगा, और विरोवका परिणाम शक्तिको सुदासके हाथो अपने प्राणोंसे हाथ धोना पडा। सुदासके पहले सघर्षोंमें विश्वामित्रने भी सहायता की थी, इसलिए वसिष्ठसे विमुख होने पर सुदासने विश्वामित्रको वह स्थान दिया।

३. सुदेवी रानी

सुदासकी रानी सुदेवी अपने पतिकी योग्य पत्नी थी, जिसे सुदास ने कुत्स आगिरस[३] (१।११२।१९) के अनुसार अश्विन्का प्रसादसे पाया।

§३. अश्वमेध

१ विश्वामित्र

विश्वामित्रके नदी-सूक्तके देखनेसे मालूम होता है, कि वह ऋग्वेदके सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनको इसका कुछ अभिमान भी था [४](३।५३।१२) —'जो यह दोनो पृथिवी और आकाश है, उनकी और इन्द्रकी मैंने स्तुति की। विश्वामित्रकी यह स्तुति भरतोंके जनकी रक्षा करती है।" विश्वामित्रने नदियोंको गाव वना कर सुदासको पार कराया, यह दावा

नन्द्र मालूम होता है, लेकिन विश्वामित्र कहते हैं[१] (३।५३।९)—"महान् ऋषि विश्वामित्रने सिन्धु अर्णव (नदी) को रोका, जिसने इन्द्रने कुशिकोंके साथ प्यार करते पार कराया।"

कुशिक पुराने पुरुजनसे ही सम्बन्ध रखनेवाला एक जन था, जो सरस्वती की उपत्यकामें रहता था। वसिष्ठक लोगोंकी तरह यह भी बहुत शक्तिशाली जन था। विश्वामित्र कहते हैं[२] (३।२६।३)—"वैश्वानर अग्नि अश्वकी तरह हिनहिनाते कुशिकोंके यहा प्रज्वलित किये जाते हैं। वह अग्नि हमें सुवीर्य, सुअश्वयुक्त रत्न प्रदान करे।" "कुशिक लोग एक-एक घरमें अग्निका सेवन करते हैं[३]" (३।२९।१५)। सरस्वतीकी उपत्यकाके ये आर्य इस बातका अभिमान करते थे, कि हमारे हरेक घरमें अग्निकी प्रतिष्ठा है, सभी अग्निदेवके भक्त हैं। जहा तक बड़े शत्रुओंके पराजय करने और जमुना-उपत्यकाके अनार्योंको अधीन करनेका सम्बन्ध था, यह काम वसिष्ठके समय ही हो चुका था। विश्वामित्रके समय इन सफलताओंको कायम रखना भर था, लेकिन उतनेसे विशेषता क्या रहती? इसीलिये विश्वामित्रने सुदाससे अश्वमेध करवाया।

२. अश्वमेध

सुरभि सुगन्धित अश्व-मांस आर्योंका एक प्रिय खाद्य था, यह ऋचाओंसे मालूम होता है[४] (१।१६२।१२)। पर, अश्वको हवनके रूपमें बलि देकर एक बड़े यज्ञ द्वारा अपने प्रभुत्वको प्रख्यापित करना शायद इसी समय पहलेपहल किया गया। इस यज्ञका ऋचाओंमें सिर्फ एक उल्लेख है, यद्यपि वहा अश्वके साथ मेध शब्दका प्रयोग नहीं किया गया है, लेकिन, निम्न ऋचा[५] (३।५३।११) से स्पष्ट हो जाता है, कि सुदासने जो घोड़ा छोड़ा था, उसका उद्देश्य राजनीतिक था—"हे कुशिको, सजग हो जाओ, सुदासने घोड़ेको छोड़ा है। राजाने पूर्व, पश्चिम और उत्तरमें शत्रु का नाश किया। वह पृथिवीमें यज्ञ (पैदा) कर रहा है" पूर्व, पश्चिम और उत्तर (प्राक्, अपाक्, उदक्) का ही नाम लेना और दक्षिणको छोड़ देना बतलाता है, कि सुदास

की विजय सिन्धुनद, हिमालय और जमुनाकी ओर हुई। दक्षिण (मरुभूमि) का बहुत सा भाग उस समय भी शायद इतना समृद्ध नही था, कि वह किसी विजेताका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता। इस घोडेको रोकनेवाला शायद कोई नही था, इसलिये इसके कारण और कोई संघर्ष नही करना पड़ा, अन्यथा विश्वामित्रकी ऋचाओंमें उसका उल्लेख जरूर होता। भरतो के राजा सुदासके विश्वामित्र जीवन भर पुरोहित रहे। भरतोके अभिमानके प्रति भी उनकी एक ऋचासे असंतोष व्यक्त होता है" (३।५३।२४)—"हे इन्द्र, भरत-पुत्र लडाई (फूट) जानते है, मेल नही। शत्रुकी तरफ घोडा भेजते है और नित्य युद्धमें धनुष धारण करते है।"

सुदासके समय सप्तसिन्धुके आर्योका चरम उत्कर्ष हुआ। उसीके समय सबसे बडे ऋषि पैदा हुए। यही समय है, जब कि जन-तन्त्रकी अलग-अलग रखनेकी मनोवृत्ति पर भारी प्रहार हुआ। हरेक अभिमानी आर्यजन अपनी सीमाओंके भीतर किसी दूसरे जनके हस्तक्षेपको बरदाश्त नहीं कर सकता था, पर, यह नीति तभी तक चल सकती थी, जब तक कि किसी प्रबल शत्रुसे मुकाबिला नही था। दुर्दान्त शम्बरने अपनी सफलताओंसे आर्यो को बतला दिया, कि तुम्हारी डेढ चावलकी खिचडी बहुत दिनो तक नहीं पक सकती। पडोसके आर्यजनोने शत्रुओंके मुकाबलेमें पूरी सफलता न देखकर यदुओ और तुर्वशोको पश्चिमसे बुलाया। फिर पृथु और पर्शु भी इसी उद्देश्यसे पूर्वकी ओर आये। लेकिन, अलग-अलग रह कर कोई सफल नही हो सकता था। दिवोदासने सारे आर्यजनोंके बलको लेकर शम्बरकी शक्तिका सर्वदाके लिये उच्छेद किया। दिवोदासके बाद फिर आर्यजनोंने अपनी पुरानी मनोवृत्तिको अपनाना चाहा। पर, वह उसमें सफल कैसे होते? विकसित आर्थिक जीवन और पराक्रमी सुदास उसमें बाधक थे। उसने सारे सप्तसिन्धुको एकताबद्ध करनेका काम किया, और जमुनासे पूर्व भी आर्योके प्रसारका रास्ता खोला।

अध्याय ११

राज-व्यवस्था

§१. शासक, शासित

यह बतला चुके हैं, कि सप्तसिन्धुमें पहलेपहल आते समय आर्य जन-व्यवस्थामें थे। उनके प्रमुख पाँच जन थे, जिनमें सबसे पूर्ववालेका नाम पुरु था। इसीकी एक शाखा भरत जन था। दिवोदास और सुदास भरत जनमें हुए। आर्योंके निवास और प्रभावको पूर्वमें बढ़ानेमें यही जन सबसे आगे था। पीछे भरत नामक कोई राजा भी हो सकता है, लेकिन देश की ख्याति उसके नामपर नहीं, बल्कि ऋग्वेदके इसी भरतजनके नामपर हुई। जन-प्रथासे निकलकर अब वह सामन्ती-व्यवस्थामें आ चुके थे, और पितृ-सत्ताके स्वच्छन्द वातावरणसे निकल राजाकी निरंकुशताकी ओर बढ़ रहे थे। पर, जनतान्त्रिकतासे उनको इस तरह छुट्टी नहीं मिल सकती थी। आर्योंकी आर्थिक व्यवस्था अभी पुरानी थी। गाय-घोड़े, भेड़-बकरी उनके सबसे बड़े धन थे, वही उनकी जीविकाके साधन थे। अपने पशुओंके चरनेके लिये उन्हें खुली गोचर भूमि और रहनेके लिये गोष्ठ चाहिये थे। एक-एकके पास हजारों गायें-घोड़े होते थे। ऐसे लोगोंके लिये घना बसा नगर उपयुक्त नहीं हो सकता था। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा जैसे नगर मौजूद थे, पर ग्राम उनके अधिक अनुकूल थे। आरम्भमें ग्रामका अर्थ झुण्ड था, अर्थात् हूण और तुर्क भाषाका ओर्द। पीछे ग्राम मनुष्योंके झुण्डकी जगह मकानोंका झुण्ड माना जाने लगा। आर्य बस्तियोंका विभाजन, ग्राम और राष्ट्रके रूपमें था। राष्ट्र और जनपद एक ही अर्थके वाचक थे। जनोंकी प्रधानताका

द्योतक—जनोका निवासस्थान—जनपद और सामन्तोकी प्रधानताका द्योतक राष्ट्र। ग्रामके मुखियाको ग्रामणी (ग्राम + नी) कहते थे, और राष्ट्रके मुखियाको राजा। राजाके लिये सम्राट्, स्वराट्, शास, ईशान, भूपति, पति का भी प्रयोग देखा जाता है। राजाकी सन्तानोको राजपुत्र और राजदुहिता कहते थे।

१. ग्रामणी

ऋषि नाभानेदिष्टने मनुको ग्रामणीकी उपाधि दी है, जो ग्रामके नेताके लिये नही, वल्कि आर्योके समूहके नेताके लिये इस्तेमाल हुआ है। इससे हजार वर्ष वाद सिंहलके एक प्रतापी राजाको ग्रामणी—नटखटपनके कारण दुष्ट-ग्रामणी—कहा जाता था। ऋषिने मनुकी उदारता की प्रशसा करते कहा है[1] (१०।६२।११)—"सहस्रके दाता ग्रामणी मनुका कोई अनिष्ट न करे। इसकी दक्षिणा (दान) सूर्यके साथ सब जगह पहुचे। सावर्णि मनुको देव आयु प्रदान करे, जिससे न थके हम धन पायें।"

२ राष्ट्र

वसिष्ठने वरुणको राष्ट्रोका राजा कहा है[2] (७।३४। १०, ११) —

"इन नदियोंके जलको सहस्र नेत्रवाले उग्र वरुण देखते हैं।"

"वह राष्ट्रोंके राजा, नदियोंके रूप हैं। उनका क्षत्र (वल) अपूर्व और सर्वगत है।"

एक कल्पित महिला-ऋषि जुहूने भी राष्ट्रका उल्लेख किया है[3] (१०। १०९।३)—

"उन्होंने कहा, हाथसे इसको ग्रहण करना चाहिये, यह ब्रह्मजाया है।

भेजे दूतमें यह (वैसे ही) आसक्त नही हुई, जैसे कि क्षत्रियसे रक्षित राष्ट्र।"

क्षत्रिय (राजा) अभी अपने पुराने अर्थमें व्यवहृत होता था, जैसा कि ईरानके सम्राट् दारयवहु (दारा) ने इस शब्दको अपने लिये इस्तेमाल

किया। जुहूको उसके पति बृहस्पतिने त्याग दिया था। उसे पत्नीको पुन स्वीकार करनेके लिये इन ऋचाओंमें कहा गया है।

३. विश्

विश्का अर्थ जनता था, जिससे ही पीछे वैश्य (विश्की सन्तान) शब्द बना। विश् शक्तिशाली जनका वाचक था, वैश्य या बनियेका नहीं। विश् राजाको बनाने-बिगाडनेका अधिकार रखती थी, जैसा कि राजाके गद्दीपर बैठनेके समय पढे जानेवाले (आगे उद्धृत) मन्त्रोंसे मालूम होगा। सर्वपुरातन ऋषि भरद्वाजने विशोंके राजाको उपस्थान (मुजरा) करनेका उल्लेख किया है (६।८।४)—"महान् मरुतोंने आकाशमे अग्निको धारण किया, विशोंने पूजनीय समझकर उस राजाकी स्तुति की। विवस्वान् (सूर्य) के दूत वायुने दूरसे वैश्वानर अग्निको यहा पहुचाया।"

४ राजा

राष्ट्रोंके राजाके बारेमें अभी हम (वसिष्ठके वचनमें) कह चुके हैं। उनके वृद्ध समसामयिक भरद्वाजने अग्निकी उपमा राजासे दी है (६।४।४)—"हे अग्नि, तुम हमें अन्न दो। राजाकी तरह शत्रुओंको नष्ट करके अन्न हमें प्रदान करो।" आगे भी (६।१२।२)—"हे राजन्, तुम यशस्वी बुद्धिमान् हो। यज्ञ करते (यजमान) बहुत सा हव्य तुम्हें प्रदान करते हैं। तुम त्रिभुवनमें अवस्थित मनुष्यके उत्तम हव्योंको बडे वेगसे (देवताओंके पास) ले जाओ।"

फिर (६।३०।५) भरद्वाज कहते हैं—"इन्द्र, तुमने जलको फैलनेके लिये मुक्त किया, दृढ़ पर्वतको तोडा। सूर्यके साथ द्यौ और उषाको पैदा करते तुम सत्कर्मके योगोंके राजा हुए।" अथवा (६।३६।४) इन्द्रको "जगतके अद्वितीय पति और सारे भुवनका एक राजा" कहा है। वसिष्ठ भी इन्द्रके बारेमें भरद्वाजके कथनका समर्थन करते हैं (७।२७।३)—"इन्द्र जगत् (जंगम) के लोगोंके राजा, पृथिवीमें नाना रूप जो धन हैं, उनके राजा हैं। उन्हींसे यह दाता (यजमान) को धन देते हैं, जो स्तुति करनेपर

हमारे पास धन भेजें।" वसिष्ठने मित्र (सूर्य) और वरुणकी एक साथ स्तुति करते उन्हें राजा कहा है[10] (७।६४।२)—"महान् सत्य-रक्षक, सिन्धुओंके पति, क्षत्रिय (राजा) मित्र-वरुण सामने पधारो। हे शीघ्र दाता, मित्र और वरुण द्यौलोकसे अन्न और वृष्टि भेजो।"

कण्वपुत्र प्रगाथने इन्द्रको जनोंका राजा कहा है[11] (८।५३।३)—"हे इन्द्र, तुम छाने और अनछाने (सोम) के स्वामी हो। तुम जनोंके राजा हो।"

§२ राजा

१ राजाभिषेक

अंगिराकी सन्तान ध्रुवने उन मन्त्रों[12] (१०।१७३) को बनाया है, जिन्हें राजगद्दीके समय हाल तक पढ़ा जाता था। इनमें राजाको चेतावनी दी गई है, कि विश् (जनता) की इच्छा ही तुम्हें अचल रख सकती है—

"मैंने तुम्हें लाकर बैठाया। तुम भीतरसे बढ़ो, ध्रुव और अचल बनो।

"सारी विश् (जनता) तुम्हें पसन्द करे, तुम राष्ट्रसे भ्रष्ट न हो। तुम्हारा राष्ट्र भ्रष्ट न हो॥१॥

"पर्वतकी तरह अचल हो यहा बढ़ो, च्युत मत हो।

"इन्द्रके समान यहा ध्रुव रहो, इस राष्ट्रको धारण करो॥२॥

"इस (राजा) को हव्यसे इन्द्रने ध्रुव करके धारण किया।

"उसे सोमने, ब्रह्मणस्पतिने आशीर्वाद दिया॥३॥

"द्यौलोक ध्रुव (अचल) है, पृथिवी ध्रुव है, ये पर्वत ध्रुव है।

"यह सारा जगत् ध्रुव है, विशोंका यह राजा ध्रुव है॥४॥

"तेरे राष्ट्रको देव बृहस्पति ध्रुव।

"राजा वरुण ध्रुव, इन्द्र-अग्नि ध्रुव धारण करें॥५॥

"ध्रुव हविष्से हम ध्रुव सोम (विजया) को मिश्रित करते है।"

"इन्द्र प्रजाओंको एक तथा बलि लानेवाली बनाओ॥६॥"

२. सम्राट्

सम्राट्का अर्थ राजाओंका राजा नहीं था। याज्ञवल्क्यने बृहदारण्यक उपनिषद् (४।२।१) में जनकको "सम्राट्" कहा है। पर, जनक केवल विदेह जनपदका राजा था। भरद्वाजने (६।७) वैश्वानर अग्निको भी उसी या अच्छे राजाके अर्थमें सम्राट कहा है—

"द्युलोकको मूर्धा, भूमिके विचरनेवाले, यज्ञके लिये उत्पन्न,

"कवि, सम्राट्, जनोंके अतिथि वैश्वानर अग्निको देवताओंने पैदा किया ॥१॥

वसिष्ठने सविता (सूर्य) को सम्राट् कहा है (७।३८)—

"देवी अदिति देव सविताकी सेवा करती आज्ञा पालन करती स्तुति करती है। वरुण, मित्र अर्यमा-सहित सम्राट् (सम्यक् प्रकाशमान) देवताकी स्तुति करते हैं ॥४॥"

३ शास

शास राजाके अर्थमें आया है। शासन शब्दमें वही भाव मिलता है। पीछे राजाके लिये शास (शाह्) ईरानमें ही रह गया। स का ह होना ईरानी भाषामें आम तौरसे देखा जाता है—शासका शाह् और शासान्-शासका शाहंशाह बना। ऋग्वेदमें भी यही उसका अर्थ है, जैसा कि विश्वामित्रकी ऋचा (३।४७) से मालूम होता है—

"मरुतों-सहित वृषभ, वर्धनशील दिव्य शास (राजा),

विश्वविजेता उस उग्र इन्द्रको हम नवीन रक्षाके लिये यहां आह्वान करते हैं ॥५॥"

४ ईशान

ईशान ऋग्वेदमें अभी शासकका पर्यायवाची नहीं बना था। वह भी राजाके लिये वैसे ही इस्तेमाल होता था, जैसे बहुत पीछेतक ईश्वर और परमेश्वर। वसिष्ठने इन्द्रके बारेमें कहा है (७।३२)—

"हे शूर इन्द्र, न दुही गायोंकी तरह हम तुम्हें नमस्कार करते हैं।

इस जगत्के सर्वदर्शी जग-स्थावरके ईशान तुम्हें ॥२२॥"

५. स्वराट्

राट्, राजा एक ही शब्द है, और उसके साथ स्व लगानेसे उसका अर्थ स्वय राजा होता है। गौतम नाधाने कहा है[10] (१।६१)—

"द्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्षसे भी बढ कर इसकी महिमा है। इन्द्र अपने गृहमे स्वराट् है ॥८॥

६ नृपति

आगिरस कुत्सने इन्द्रकी प्रशसामे कहा है[18] (१।१०२)—

"हे नृपति, तुम बलमें तेहरी रस्सीकी तरह, तीन भूमि और तीन प्रकाशोवाले हो। तुम इस सारे भुवनको वहन करते हो। सनातनसे जन्म लिये तुम शत्रु-रहित हो ॥८॥"

७ पति राजा

पति और राजा दोनो शब्दोका इकट्ठा राजाके लिये इस्तेमाल आगिरस तिरश्चीके वचन[11] (८।८४) में मिलता है—

'हे इन्द्र, श्येन (बाज) द्वारा लाये गये छाने हुए सुखमय सोमको खुशीके लिये पियो। तुम शाश्वत विशो (जनता) के पतिराजा हो ॥३॥"

८ राजपुत्र, राजदुहिता

राजा होनेपर राजपुत्र और राजदुहिताका होना स्वाभाविक है। राजा जनताका आदमी नही था, उसका सिहासन अब उसके ऊपर था, वैसे ही, जैसे कि इन्द्र, अग्नि, वरुण, मित्रका। इसलिये राजाका लडका होना विशेष सम्मानको प्रकट करता था। दीर्घतमासन्तान ऋषि कक्षीवान्की पुत्री घोषा अपनेका राजदुहिता कहती है। इससे यह जरूर मालूम होता है, कि राजाका शब्द अभी बहुत व्यापक था, तभी कक्षीवान् राजा हो सकते थे। घोषाने दोनो अश्विनीकुमारोकी स्तुति करते कहा है[*] (१०।४०)—

"हे अश्विनो, सवेरे जगानेके लिये दो बूढ़े राजाओंकी तरह तुम्हारी स्तुतिकी जाती है। सेवाके लिये किसके घर तुम जाते हो? किसके पास नष्ट करते हो? नरो, किसके सवन (यज्ञ) में राजपुत्रकी तरह तुम जाते हो ॥३॥

हे नरो अश्विनो, राजाकी दुहिता घोशा चारो ओर घूमती, तुम्हें पूछती है। दिन हो या रात तुम मेरे पास रहते हो। रथ और अश्व-युक्त मेरे भतीजेका दमन करते हो ॥५॥"

इन उद्धरणोंसे मालूम होगा, कि विश् (जनता) अभी पंगु नहीं हुई थी। वह शस्त्र-बद्ध मौजूद थी। उनके शस्त्रोंकी जरूरत हर जगह थी। गांवोंके निवासके कारण आर्य जनयुगीन अर्थतन्त्रसे बिल्कुल मुक्त नहीं हुए थे, इसलिये निरंकुश राजा पैदा नहीं हो सकता था। तो भी अब राजा विश्से ऊपर था।

§२ शासन-यंत्र

ऋग्वेदसे उस कालके प्रशासनका संकेत भर मिलता है। गण-पति शब्द से गण का संकेत मिलता है। बुद्धके समकालीन लिच्छवि और कितने ही दूसरे गण मौजूद थे। बुद्धकालमें ग्रामका मुखिया ग्रामणी होता था, जिसे गामजेट्ठ (गांवका मुखिया) भी कहते थे। गांवके ज्येष्ठकी प्रतिध्वनि हिमालयके कुछ स्थानोंमें बूढ़े या बुढेरेसे मिलता है। बूढ़े गांवमें व्यवस्था रखनेके जिम्मेवार होते थे, कर उगाहनेमें भी उनसे सहायता ली जाती थी। ऋग्वेदके ग्रामोंके ग्रामणी भी यही काम करते होंगे।

१ सभा

सभा और समितिका उल्लेख ऋग्वेदमें कई जगह आया है। सभाका अर्थ कुछ व्यापक था। उसमें राजनीतिक—ग्राम, राष्ट्र, जन—सभायें ही शामिल नहीं थीं, बल्कि जुवेकी सभा भी। कवष ऐलूष-पुत्रने इसका उल्लेख किया है[1] (१०।३४)—

"जुआडी पूछनेपर शरीर फुलाकर 'मैं जीतूंगा' कहते सभामें जाता है।
"पाशे कभी इसकी इच्छा पूरा करते हैं, कभी प्रतिद्वन्द्वीकी ।।६।।"

सभाका प्रयोग, जान पडता है, पीछे जूयेकी सभाके लिये ज्यादा होने लगा, इसीलिये जूआशालाके अध्यक्षको सभिक कहा जाता था। शुनहोत्र-पुत्र गृत्समद सभेयको सभासद्के अर्थमें प्रयुक्त करते हैं (२।२४)—

"ब्रह्मणस्पतिके वाहन (घोडे) हमारा स्तोत्र सुनते हैं। सभेय विप्र (ऋत्विक्) स्तुति-सहित हव्य प्रदान करते हैं ।।१३।।"

आर्य अपने जवानोको "सभेय" होनेकी प्रार्थना करते थे, अत उनकी सभायें महत्वपूर्ण थी, जिनमे उनके जवान अपनी वाग्मिता दिखलाते थे। देवातिथि काण्व कहते हैं (८।४)—

'हे इन्द्र, तुम्हारा सखा, अश्व-युक्त रथी, सुरूप, गोमान्, धनी, वयसे युक्त हो सदा आह्लाद करता सभामे जाता है ।।९।।"

भरद्वाजने भी गायोकी प्रशसा करते सभाका उल्लेख किया है (६।२८)—

"हे गायो, हमें तुम मोटा करो, हमारे कृश और असुन्दर शरीरको सुदर बनाओ, घरको भद्र बनाओ। हे भद्र बोलनेवालियो, सभाओमें तुम्हारे महाभोजन (अन्न) का बखान किया जाता है ।।६।।"

२ समिति

समिति ही युरोपीय भाषाओमें कमीटी या कमीती है। (शतम और केन्तमका मुख्य भेद यह है, कि शतमके श का केन्तम में क हो जाता हैं।) समिति या कमीटी आज छोटी सभाको कहते है, लेकिन ऋग्वेदिक कालमें यह राजसभा, राष्ट्रकी वडी सभा अथवा ससद्को कहा जाता था। बुद्धकालमें गणोकी पार्लियामेण्टके लिये सस्था शब्दका प्रयोग होता था। हरेक गण-राजधानीमे सस्थागार (सथागार) का होना आवश्यक था। पालि-सूत्रोमें उन्ही नगरोमें सथागारोका उल्लेख मिलता है, जो गणराज्योकी राजधानी थे। ऋग्वेदमें संस्थाका प्रयोग नही है। उस समय भी सस्था रही होगी,

पर राजतन्त्रके अधिक अनुकूल समिति थी। मरीचि-पुत्र कश्यप ने सोमको उपमा देते कहा है[5] (१०।९७।६)—

"राजा जैसे समितिमें जाते हैं।"

लेकिन, समितिका अर्थ युद्धक्षेत्र भी होता था, जैसा कि कश्यपके ही वचनसे मालूम होता है[6] (९।९२।६)—

"जैसे होता ऋत्विज पशुगृहमें जाते हैं, जैसे भला राजा युद्ध में जाता है। वैसे ही पवित्र होता सोम कलशोंमें जाता है।

संवनन ऋषि समितिका उल्लेख मन्त्र (सलाह) के सम्बन्धमें करते हैं[7] (१०।१९१।३)—

"तुम्हारा मन्त्र समान (एक साथ), समिति एक सी हो।"

३. व्राजपति, कुलप

शासन या सामाजिक व्यवस्थामें कुलों और व्राज (समुदायों) का भी स्थान था। प्रतर्दनने[8] (१०।१७९।२) कुलप और व्राजपतिका उल्लेख किया है—

"हे इन्द्र हवि पक चुका है, आओ। सूर्य काल (दिन) के भागके मध्यमें पहुँच गया है। कुलप जैसे विचरते व्राजपतिका वैसे ही (तुम्हारे) सखा निधियोंके साथ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

इससे मालूम होता है, कि कुलोंके मुखियासे ऊपर व्राजोंके मुखियाका स्थान होता था। ग्राम कुलोंका समुदाय था। शायद ग्राम समुदाय व्राज कहा जाता था, जिसका पति व्राजपति था। एक ग्राम कई कुलोंमें बटा होता था। बड़े गाँव या नगरको पुर नहीं कहते थे। शम्बरकी पुरियाँ किलेबन्द स्थान थे, यह हम देख चुके हैं।

ऋग्वेदमें जो छिटपुट वर्णन आता है, उससे उस समयके शासनका पूरा रूप अंकित करना सम्भव नहीं है। राज-व्यवस्थामें प्रशासन, न्याय-व्यवस्था, कर (बलि) उगाहना मुख्य था। प्रशासनके लिये शायद १ कुलपति, २ व्राजपति, ग्रामणी, गणपति और अन्तमें समिति तथा उसका प्रधान

३ राजा था। दीवानी-फौजदारी मुकद्दमोको देखनेका भार भी इन्हीके ऊपर होगा। विश्का वलिहृत् (कर देनेवाला) कहा गया है। वहुत सम्भव है, कर नगद नही, जिन्स के रूपमे उगाहा जाता था। कर उगाहने मे कुलपति, ग्रामपति सहायक होते होगे।

सैनिक प्रशासनके वारेमें इतना ही कह सकते हैं, कि आर्य सैनिक अनुशासनवद्ध थे। वह हजारोकी सख्यामें शत्रुओपर आक्रमण करने या प्रति-रक्षण के लिये जाते थे। सेनाका सवसे ऊपरका अधिकारी राजा था, लेकिन आर्जुनेय कुत्सको सारथी उपाधि शायद राजाके वाद सवसे वडे सेनापति होनेके कारण मिली थी। सम्भवत अफसर दशिन् (दशपति), शतिन् (शतपति) और सहस्रिन् (सहस्रपति) होते थे। चतुरग नही त्रिरग सेना थी—रथ, घोडे और पैदलकी। अभी हाथीकी सेना नही वनी थी। सप्तसिन्धुमें सिंह जरूर थे, पर हाथियोके होनेका ऋग्वेदसे पता नही लगता, और न उनके पालतू वनानेका ही कोई उल्लेख है।

४ पुरोहित (प्रधान-मंत्री)

राजाके पुरोहितका काम केवल यज्ञ और धार्मिक वातोमें सलाह देना भर नही था। वसिष्ठने वडे अभिमानसे कहा है। त्रित्सु भरत अनाथ शिशुकी तरह थे। जव वसिष्ठ उनके पुरोहित हुये, तो वह शक्तिशाली वन गये। पुरोहितको वृहस्पति भी कहा जाता था। वामदेवने वृहस्पति पुरोहित के वारेमें कहा है* (४।५०।१)। वसिष्ठने तृत्सुओकी अपनी पुरोहितीका उल्लेख किया है* (७।८३।४)।

———

भाग ४

सांस्कृतिक

अध्याय १२

शिक्षा, स्वास्थ्य

§१ शिक्षा

चाहे कितनी भी पिछड़ी मानव-जाति हो, उसके लिये भी पूर्वजों द्वारा अर्जित ज्ञान और अनुभवको एक पीढ़ीसे दूसरी पीढ़ीमें पहुंचाना आवश्यक होता है, जिसके वास्ते उसे किसी न किसी तरहकी शिक्षा-प्रणाली अपनानी पड़ती है। वैदिक आर्य अपने पूर्वार्जित ज्ञानको एक पीढ़ीसे दूसरी पीढ़ीमें पहुंचाते थे। जिस ज्ञानको वह परम पवित्र मानते थे, वह वेदके मन्त्र थे। ऋग्वेदिक आर्योंके समयसे पहले मोहनजो-डरोके लोग एक तरहकी चित्रलिपि इस्तेमाल करते थे, जिसके हजारके करीब अक्षर मिल चुके हैं, पर अभी तक पढ़नेकी कुंजी नहीं मिली है। लिखनेका पूरी तौरसे प्रचार हो जाने पर भी वेदोंको गुरुमुखसे सुनकर पढ़नेका रवाज हमारे यहां अभी भी पसन्द किया जाता था, फिर ऋग्वेदके कालमें उसे लिपिबद्ध करनेका प्रयत्न किया गया होगा, इसकी सम्भावना नहीं है। आर्य बहुत पीछे तक वेदके लिपिबद्ध करनेके खिलाफ रहे क्योंकि तब उनकी गोप्यता नष्ट हो जाती। वैदिक वाङ्मय ही क्यों, बौद्ध और जैन पिटक भी शताब्दियों तक कंठस्थ रखे गये। बौद्ध त्रिपिटक बुद्ध-निर्वाणके चार शताब्दी बाद और जैन-आगम आठ शताब्दी बाद लिपिबद्ध हुये। कानसे सुनकर सीखे जानेके कारण वेदको श्रुति कहते हैं। इसीलिये भारी विद्वान्को बहुश्रुत—बहुत सुना हुआ—कहा जाता। हमारी लिपिकी उत्पत्ति कैसे हुई और उसका सम्बन्ध किस

पुरानी लिपिसे है, इसका निर्णय अभी नही हो सका है। इतना मालूम है, कि हमारी सबसे पुरानी वर्णमाला ब्राह्मी है, जिसके निश्चित कालवाले नमूने अशोक के अभिलेखोमें मिलते है, जो ईसा-पूर्व तृतीय शताब्दी में या बुद्ध-निर्वाणसे ढाई सौ वर्ष बादके है। पिपरहवाके ब्राह्मी अक्षर बुद्धकालीन है, यह विवादास्पद है। ईसा-पूर्व तृतीय शताब्दीसे पहिलेकी वर्णमालाके नमूने मोहनजोडरो, हडप्पाकी चित्रलिपिमें मिलते है। दोनो लिपियोका सम्बन्ध स्थापित करना मुश्किल है। यद्यपि मोहनजोडरोकी चित्रलिपिसे उच्चारणवाली वर्णमाला का निकलना बिल्कुल सम्भव है, पर, ब्राह्मी मोहनजोडरोकी लिपिसे निकली, इसे सिद्ध करना अभी समव नही है।

उस समय किसी प्रकारकी मौखिक शिक्षा पुरानी (अतएव पवित्र) कविताओकी जरूर होती थी। उसका सग्रह ऋग्वेदमें होना चाहिये था। पर, वैसा नही देखा जाता। ऋग्वेदके प्राचीनतम ऋषि और उनकी कृतिया, हमें भरद्वाज, वसिष्ठ और विश्वामित्र तक ले जाती है। उससे पुराने दो-चार ही ऐसे ऋषि मिलते है, जिनकी कृतिया पुरानी हो सकती है, पर, भाषा और सग्रहकी गडबडी ने उनकी प्राचीनताको बहुत कुछ गवा दिया है। अनुमान किया जा सकता है, कि ऋग्वेदके महान् ऋषियोने इन्द्र, अग्नि, मित्रके ऊपर जो हजारो ऋचाये बनाई थी, उनमें कुछ शब्द या भावमें भरद्वाजसे पुरानी हो सकती है, पर, इसे निश्चयपूर्वक नही बतलाया जा सकता। हमारे सबसे पुराने देवता द्यौ और पृथिवी है, जिन्हे ऋग्वेदमें पितरौ (दोनो माता-पिता) कहा गया है। द्यौ पिता और पृथिवी माता द्यौ-पितर का ख्याल बहुत पुराना है। वह केवल शतम (आर्य-स्लाव) वश का ही नही बल्कि केन्तम् (ग्रीस, रोम आदि) का भी पूज्य देवता था। जुपितर द्यौ-पितरका ही शब्दान्तर है, ज्यौस द्यौस् ही है। द्यौ-सम्बन्धी कितनी ही ऋचायें मिलती है, किन्तु ऋग्वेदिक कालमें द्यौकी नही, बल्कि इन्द्र की प्रधानता थी।

ऋग्वेदसे पहलेकी परम्परासे आई ज्ञान-सम्पत्ति अलग नहीं मिलती, इसलिये हम नहीं कह सकते, कि उस कालमें श्रुतिकी शिक्षण-परम्परा किस तरहकी थी। शिक्षा, शिक्षण, प्रशिक्षण शब्दोंका जो अर्थ आज है, वह उस समय नहीं था। ऋग्वेदमें शिक्षाका अर्थ देना है, जैसा कि वसिष्ठकी एक ऋचा' (७।२७।२) से मालूम होता है—

"हे पुरुहूत इन्द्र, जो तुम्हारा बल है, उसे सखा मनुष्योंको दो (शिक्ष)।"

वसिष्ठकी ही दूसरी ऋचामें (७।१०।३५) शिक्षाका अर्थ अनुकरण है—

"इन मेंढकोंमें एकके वचनको दूसरा शाक्त (आचार्य) की तरह अनुकरण करता बोलता है। मेंढको, जब तुम सुन्दर तौरसे बोलते हो, तो जलमें सब अंग अच्छा हो जाता है।"

यहां बरसात के आरम्भमें मेंढकोंको एक दूसरेका अनुकरण करते बोलनेको ऋग्वेदकालीन गुरु-शिष्योंके पाठसे तुलना की गई है। गोस्वामी तुलसीदासने उस ऋचाको शायद ही देखा हो, पर जान पड़ता है यह उपमा परम्परासे चली आई थी, इसीलिये उन्होंने कहा—

"दादुर धुनि चहु ओर सुहाई। वेद पढ़इ जनु बटु समुदाई।"

एक मेंढक आवाज निकालता है। उसके बाद दूसरे अनुकरण करते हैं, फिर रट्टी लग जाती है। पुराने समयकी वेद पढ़ानेकी प्रक्रिया अब भी देखी जाती है। गुरु स्वर-सहित मन्त्रको एक बार पढ़ता है। शिष्य उसे दो बार दोहराते हैं। आज गुरु-शिष्य पुस्तकका सहारा लेते हैं। वेद जब लिपिबद्ध नहीं थे, तो गुरु कण्ठस्थ ऋचाको एक बार बोलता होगा और शिष्य दो बार। इस प्रकार बराबर दोहराने छोटी आयुमें ही बच्चोंको अपना वेद कण्ठस्थ हो जाता था। यद्यपि सामको छोड़कर और किसी वेद को संगीतके स्वरोंके साथ नहीं पढ़ा या दोहराया जाता था, पर तो भी इस पाठकी तरह उस की एक लय हो ही जाती थी। पवित्र ऋचाओं या छन्दोंकी शिक्षा शिष्य गुरुसे इसी तरह पाता था। भरद्वाज-वसिष्ठकी चौथी-पांचवीं पीढ़ी तकके ही रचित मन्त्र ऋग्वेद में मिलते हैं, ऋग्वेदके

सबसे पिछले ऋषियोंने गुरुमुखसे अपने पूर्वज ऋषियोंके ब्रह्म (मन्त्र, पद) का अध्ययन किया था।

ब्रह्म (ऋचा) में अद्भुत शक्ति मानी जाती थी। तभी तो विश्वामित्रने कहा (३।५३।१२)—

"जो यह दोनो द्यौ तथा पृथिवी है, उनसे मैंने इन्द्रको तुष्ट किया। विश्वामित्रका यह ब्रह्म भारत-जनकी रक्षा करता है।"

वेदवाणीकी अद्भुत शक्तिको स्वय प्राचीनतम ऋषियोने अपने मुँहसे बखाना था, इसलिये उसके सीखने और कठस्थ करनेकी ओर लोगोका ध्यान बहुत हो, यह स्वाभाविक था।

लेकिन, केवल देवताओंको प्रसन्न करनेसे ही उनकी लोक-यात्रा नही चल सकती थी। उस समय सीखनेकी और भी बहुत सी चीजे थी। जिस युद्ध-कौशल को आर्य तरुण गुरुमुखसे सीखते थे, वह सब वेदमें नहीं दिया गया है। नाना शिल्प भी उस वक्त प्रचलित थे, जिन्हें भी सीखना जरूरी था। इन शिल्पोमेंसे कुछ का ही नाम ऋग्वेदमें मिलता है। मोहन-जोडरो और हडप्पामें ऋग्वेदसे डेढ-दो हजार वर्ष पहलेकी जो चीजें उपलब्ध हुई है, उनसे पता लगता है, कि उस समय इजीनियर (वास्तुशिल्पी), राज-गीर, शखरकार, पटकार (जुलाहे) सुनार, चर्मकार, वेणुकार, लोहार, कुम्हार आदि बहुतसे शिल्पकार थे, जिन्हें अपनी बातें अगली पीढी में पहुचानी पडती थी। खेती और उसके लिये उपयोगी ऋतुओंके ज्ञानकी भी शिक्षा आवश्यक थी। इस प्रकार ऋग्वेदिक आर्योंको जितनी शिक्षा लेनी पडती थी, वह उतनी ही नहीं थी, जिनका उल्लेख ऋग्वेदमें मिलता है।

§२. स्वास्थ्य

आर्य यथार्थवादी थे। अपने देवताओ पर उनकी परम भक्ति थी, लेकिन पौरुषको भूल कर नही। वह जानते थे, इन्द्र भी दिवोदास, सुदासके पौरुषके सहारे ही शत्रुओका सहार कर सके, इसलिये शरीरकी पुष्टि और स्वास्थ्यकी ओर उनका ध्यान विशेष था। सप्तसिन्धुमे अपनेसे अधिक

सभ्य, संस्कृत तथा साधन-सम्पन्न लोगोंको पराजित करनेमें आर्य इसीलिये सफल हुये, कि उनके पास तेज चलनेवाले घोड़े और घुमन्तुओं की लड़ाकू प्रकृति के अतिरिक्त तगड़ा शरीर भी था। उनके सामने मोहनजोदड़ोके नागरिक खर्वकाय थे। हरेक घुमन्तू या अर्ध-घुमन्तूकी तरह आर्य खुलेमें रहना पसन्द करते थे, इसीलिये उन्होंने अपना वास नगरोंमें नहीं, ग्रामोंमें रखा। खुली हवामें वास, दूध-घी-मांस प्रधान-भोजन स्वास्थ्य-संवर्धनके ये सबसे अच्छे साधन उनके पास मौजूद थे। घुड़सवारी स्वयं एक व्यायाम है। उस समय शायद ही कोई ऐसा आर्य हो, जो चतुर घोड़सवार न हो। शत्रुओंसे प्रतिरक्षा तथा स्वयं भी दूसरोंकी गायों और भेड़ोंको लूटनेके लिये उन्हें हर वक्त हथियारबन्द रहना पड़ता था। इसी लिये वह घोड़सवारीमें भी चुस्त थे। मल्ल या मल्लविद्याका उल्लेख ऋग्वेदमें नहीं मिलता। पर, पीछे पंजाब और पूर्वी उत्तर-प्रदेशमें एक जनका नाम मल्ल बतलाता है, कि उनमें कुश्तीका रवाज था। मुष्टियुद्धका स्पष्ट उल्लेख विश्वामित्र-पुत्र मधुच्छन्दाकी ऋचा[1] (१।८।२) में है—

"हे इन्द्र, तुम्हारे द्वारा रक्षित हम घोड़ोंसे मुष्टिहत्या (मुष्टियुद्ध) द्वारा शत्रुओंको रोकें।"

कुश्ती (मल्लयुद्ध) या मुष्टियुद्ध केवल स्वास्थ्यके लिये ही उपयुक्त नहीं थी, बल्कि युद्धमें भी इनका उपयोग था, इसलिये आर्य तरुण उनको अच्छी तरह सीखते थे।

नृत्य मनोरंजनकी एक उत्तम और मानवकी सबसे पुरानी ललितकला है। यह अच्छा व्यायाम भी है। घोर जाड़ेके दिनोंमें जहाँरोंके नृत्य नाचने एक तरुणको मैंने पसीने-पसीने होते देखा था। उस समय आधुनिक व्यायामके शौकीन एक तरुण दर्शकने बतलाया था, कि इस नृत्यमें कमरके दोनों तरफकी पेशियोंपर भी बहुत जोर पड़ रहा है, जहाँपर आधुनिक व्यायामकी शैलियोंसे भी जोर पहुँचाना असम्भव नहीं, तो मुश्किल है। अंगिरा-गोत्री सव्यने नर्तयन् (नचाने) शब्दका प्रयोग[2] (१।५१।३) किया है, पर वह हथियार नचानेके अर्थमें—

"हे इन्द्र, तुमने अंगिराओं (पुरोहितों) के लिये वर्षा कराई। अत्रिको शतदुर हथियारसे बचनेके लिये भगाया। विमदको अन्न-सहित (धन) दिया, और संग्राममें वज्र नचाते हुये स्तुतिकर्त्ताकी रक्षा की।"

संस्कृत-असंस्कृत सभी आदिम तथा सभ्यतामें सबसे आगे बढ़ी आधुनिक जातियोंमें नृत्य बहुप्रचलित व्यायाम और विनोद है। ऋग्वेदिक आर्य सोम (भांग) के बड़े प्रेमी थे। उसे पीकर मस्त होनेमें उन्हें बड़ा आनन्द आता था। मस्ती और आनन्द दोनोंके लिये मद शब्दका प्रयोग इसीको बतलाता है। आर्य नर-नारी अपनी सोमगोष्ठियोंमें गीत और नृत्यका भी आनन्द लेते थे, जिससे उनके स्वास्थ्यको बहुत लाभ था।

§२ रोग

रोगोंमें यक्ष्मा, हृदयरोग, कुष्ठका उल्लेख ऋग्वेदमें आता है। यक्ष्मा शायद ज्वरका ही दूसरा नाम था, और तपेदिक (टी० बी०) के लिये राज-क्ष्माका प्रयोग होता था। आथर्वन ऋषिने कहा है (१०। ९७। ११, १२)

"जब मैं इन औषधियोंको हाथमें लेता हूं, तो यक्ष्माकी आत्मा वैसे ही नष्ट होती है, जैसे पकड़नेवाली मृत्युसे जीव।

"हे औषधियो, जैसे उग्र और मध्यस्थ दूसरोंको बाधित करता है, वैसे ही तुम इसके पर्व-पर्व (पोर-पोर) में व्याप्त हो यक्ष्मको हरो।"

कल्पित नाम वाले प्रजापति-पुत्र यक्ष्मनाशन ऋषि यक्ष्मासे राजयक्ष्मा-का भेद करते हुये कहते हैं (१०। १६१। १)—

"हवि द्वारा तुझे अज्ञात यक्ष्मा और राजयक्ष्मासे मुक्त करता हूं। यदि किसी ग्रह (भूत-प्रेत) ने पकड़ा है, तो उससे इन्द्र-अग्नि इसे मुक्त करें।"

हृदयरोग पुराना रोग है। बुढ़ापेमें शरीरके भीतरी अंगोंके जीर्ण-शीर्ण होनेका ही यह एक रूप है। बिना किसी ज्वर या दूसरे रोगके हृदयके विपन्न होनेसे आदमीका एकाएक प्राणान्त होने को पुरानी परिभाषामें रोगियोंकी (श्लाघनीय) मृत्यु कहा जाता था। मृत्यु न देकर यदि वह

कष्ट देता रहे, तो वह उत्सीदक रोग है। कण्व-पुत्र प्रस्कण्वने मित्र (सूर्य) से इससे बचनेकी कामना की (१। ५०। ११)—

"आज द्युलोकके ऊपर चढ़ता मित्र (सूर्य) मेरे हृद्रोग और पीलियाको नष्ट करे।"

पीलियाके कारण शरीर पीला (हरिमाण) हो जाता था।

यक्ष्मा, जान पड़ता है, शरीरके बहुतसे रोगोंका नाम था, जैसा कि विवृहा काश्यपके कथन (१०। १६३। १-६) से मालूम होता है—

"तेरे दोनों नेत्रों, दोनों नासिका-छिद्रों, दोनों कानों, चिबुक, मस्तिष्क और जिह्वासे शीर्षस्थानीय यक्ष्माको दूर करता हूँ ॥१॥

"तेरी ग्रीवासे, धमनियोंसे, स्नायुओंसे, हड्डीसे, दोनों पहुँचों, दोनों बाहुओं और दोनों कन्धोंसे यक्ष्माको दूर करता हूँ ॥२॥

"तेरी अंतड़ियोंसे, गुदासे, हृदयसे, मूत्राशयसे, यकृत्से, तेरे मांस-पिण्डोंसे यक्ष्माको दूर करता हूँ ॥३॥

"तेरी जांघोंसे, दोनों पिण्डलियोंसे, दोनों गुल्फोंसे, दोनों एड़ियोंसे, दोनों नितम्बोंसे, कमर और मलस्थानसे यक्ष्माको दूर करता हूँ ॥४॥

"तेरे मूत्रस्थानसे, लोमसे, नखसे, तेरे सर्व आत्मा (शरीर) से इन यक्ष्माओंको मैं दूर करता हूँ ॥५॥

"अंग-अंगसे, लोम-लोमसे, पर्व-पर्वमें उत्पन्न तेरी सारी आत्मा (शरीर) से इस यक्ष्माको दूर करता हूँ ॥६॥"

घोषाके कुष्ट रोगसे पीड़ित होनेकी बातका स्पष्ट उल्लेख ऋग्वेदमें नहीं आता, जिसका कि दूसरी जगहों में जिक्र आता है। दीर्घतमा-पुत्र कक्षीवान्के कथन (१। ११७। ७) से मालूम होता है कि वह किसी रोगसे पीड़ित होकर बिना ब्याहे ही पिताके घरमें बैठी थी—

"हे अश्विनो, तुमने स्तुति करते कृष्ण-पुत्र विष्वक विष्वापुको पिताके घरमें बैठी बुढ़ाती घोषाके लिये पति प्रदान किया।

रोगोंकी संख्या उस समय भी काफी होगी, पर उनके रोगों का अधिक विभाजन नहीं हुआ था।

§४. चिकित्सा

ऋग्वेदसे छ शताब्दियो बाद बुद्धके समय औषधियोका काफी विस्तार-और विकास हो चुका था। पर, अभी रस और धातु-भस्मोंके प्रयोगमें आने-में शताब्दियोकी देर थी। बुद्धके समय पचभैषज्य (घी-मक्खन-तेल-मधु खाड), चर्बी, मूल, कषाय, पत्ता, फल, गोद, नमकवाली दवा कच्चे मास-रक्तकी दवाइया प्रचलित थी। अजन, तेल, नस्य, धूमवत्ती और मद्ययुक्त औषध भी इस्तेमाल किये जाते थे। ताप देकर पसीना निकालना, सीगसे खून निकालना, मालिश, चीर-फाड, मलहम-पट्टी, सर्प-चिकित्सा, विष-चिकित्सा पाण्डुरोग-चिकित्सा, ग्रह (भूत) चिकित्सा, चर्मरोग-चिकित्सा का भी उल्लेख "विनय-पिटक" (महावग्ग, भैषज्य-स्कन्धक) मे आता है। इनमें से अधिकाश औषधियो और चिकित्साओका पहिले भी प्रचार रहा होगा।

ऋग्वेदमें निम्न रोगोका उल्लेख आता है—

अगद, अजका, अज्ञात यक्ष्मा, अनमीव, अनूक्य, अप्वा, अम, अशीपद, अशीमिद, जीवगृभ, दुर्नामा (ववासीर), नवज्वार, पृपन्य, पृष्ठ्यामयी, यक्ष्मा, राजयक्ष्मा, वदन, वध्रि, विवतृ, विसूचि, सुराम, श्राम, हरिमा, हृद्रोग।

औषधियोकी सख्या बहुत थी, तभी तो भिषग् आथर्वणने" (१०।९७।६) कहा है—

"जैसे राजा लोग समितिमे एकत्रित होते है, वैसे ही जिसके पास औषधियोका समागम होता है उसे रोगनाशक, राक्षसनाशक विप्र भिषग् कहा जाता है।"

आजकल वैद्य लोग धन्वतरिको इष्ट मानते है, किन्तु वैदिक कालमें यमल अश्विनो (अश्विनीकुमारो) की महिमा गाई जाती थी। इरिम्बिठिने "(८।१८।८) कहा है—

"वे (दिव्य) भिषग् अश्विद्वय हमारा कल्याण करें, बाधाओंको यहासे दूर हटावें।"

हिरण्यस्तूप अश्विनीकुमारोंकी प्रशंसामें कहते हैं[1] (१।३४।६-९)—

"शुभके स्वामी, हे अश्विनो हमें तीन बार दिव्य, तीन बार पार्थिव और तीन बार जलीय दवाइयोंको दो। मयुकी तरह मेरी सन्तानोंको तीनों प्रकारसे सुख दो ॥६॥

"हे नासत्यो, तुम्हारे तीन प्रकारके रथके तीन चक्के कहाँ हैं? नीड-सहित तीनों धुरे कहाँ हैं? उस शक्तिशाली गदहेका जोड़ना कब होगा, जिसके साथ तुम यज्ञमें आओगे ॥९॥"

इससे मालूम होता है, कि अश्विनीकुमारोंके रथमें गदहा (रासभ) जुतता था। चाहे घोड़ेके समान न समझते हों, लेकिन गदहे पालने और उसके इस्तेमाल करनेमें आर्य हीनता नहीं अनुभव करते थे।

मादक सोमको भी औषध माना जाता था, यह आश्चर्यकी बात नहीं। आजकल भी दवाइयोंमें मद्यसारका प्रयोग काफी देखा जाता है। प्रगाथ-पुत्र हर्यतने कहा है[2] (८।६१।१७)—

"मित्र, वरुण, सूर्यके उदय होनेपर सोमको ग्रहण करते हैं, सो आतुर (रोगी) का भेषज है।"

कण्व-पुत्र सोभरि ऋग्वेदके प्रसिद्ध ऋषि हैं। वह अश्विनीकुमारोंकी महिमा गाते[3] (८।२२।१०) कहते हैं—

"हे जिनसे तुमने पक्थकी, जिनसे अध्रिगु, जिनसे बभ्रुकी रक्षाकी, उनके साथ अति शीघ्र आओ। जो आतुर (रोगी) है, उनकी चिकित्सा करो।"

स्त्रियोका वस्त्रसे सु-आच्छादित रहना अच्छा समझा जाता था। विश्वमना आगिरस कहते[८] (८।२६।१३) है—

"हे अश्विद्वय, सेवा करनेपर वस्त्रसे आच्छादित वधूकी तरह यज्ञ द्वारा सेवित हो तुम मगल करते हो।"

वस्त्रोका अधिक व्यवहार होनेपर भी वह कितने प्रकारके थे, इसका पता कम लगता है। उनके परिधान थे—

१ द्रापि—वामदेवने इस वस्त्रका उल्लेख[९] (४।५३।२) किया है—

"द्युलोकके धारक, भुवनके प्रजापति कवि (सविता) पिशग (पीली) द्रापि धारण करते है। वह प्रार्थित तर्पित हो विचक्षण सविता सुन्दर धन प्रदान करें।"

दीर्घतमा-सन्तान कक्षीवान् भी द्रापिका वर्णन करते है[१०] (१।११६। १०)—

"हे अश्विकुमारो, द्रापिकी तरह तुमने च्यवनके बुढापेको खोल फेंका। हे दर्शनीयो, तुमने उस परित्यक्त के जीवनको बढाया, और (उसे) कन्याओका पति बनाया।"

अजीगर्त-पुत्र शुन शेप वरुणकी प्रशसा करते है[११] (१।२५।१३)—

"सुनहली द्रापिको धारण करते वरुण (अपना) पुष्ट शरीर ढाकते है। चारो ओर किरणें फैलती है।"

इन ऋचाओसे मालूम होता है, कि पिशग, हिरण्य अर्थात् (पीली), सुनहली द्रापि पहनी जाती थी। शायद हिमालयके बहुत से स्थानोकी स्त्रियोंके दोडू (चादर) की तरह इसे पहिना जाता था।

२ अत्क—भरद्वाजने इसका उल्लेख किया है[१२] (६।२९।३)—

"इन्द्र, श्रीके लिये तेरे पैरोकी हम सेवा करते है। वज्र-युक्त तुम शत्रुओको बलसे पराजित करते हमे दक्षिणा देते हो। हे नेता, दर्शनीय सुरभि अत्कको पहने तुम सूर्यकी तरह भ्रमण करते हो।"

कल्पित वेन भार्गव ऋषि वेन नामक देवताका वर्णन करते कहते है[१३] (१०।१२३।७)—

"गन्धर्व स्वर्गमें ऊंचे स्थित, सामने विचित्र आयुधधारी, सुरभि अत्क पहने दर्शनीय (वेन) प्रिय सुख उत्पन्न करते हैं।"

३ शिप्र—यह शिरस्त्राण और उष्णीष (पगड़ी) दोनोंका नाम था। वसिष्ठने इन्द्रके लिये कहा है[15] (७।३५।३)—

"हे शिप्रवाले (इन्द्र), सुदासके लिये तेरी सैकड़ों रक्षायें, सहस्रों अभिलाषायें और दान हों। इन सब मर्दोंके हथियारोंको नष्ट करो, और (हमें) उज्ज्वल रत्न दो।"

वामदेवके कथनसे [16](४।३७।४) मालूम होता है, कि शिप्र शिरस्त्राण था—

"हे ऋभुओ, तुम्हारे अश्व मोटे हैं, रथ चमकते हैं, तुम ताम्र-शिप्र (अय. शिप्रा), अन्नवान् और अच्छे निष्क (सुवर्ण) वाले हो। हे इन्द्रके पुत्रों, बलके नातियो, तुम्हारे आनन्दके लिये यह अग्रणी सेवन किया जा रहा है।"

शिप्रसे यहां तांबेके शिरस्त्राणका पता लगता है। पर, शिरस्त्राण भी उष्णीष (पगड़ी) काही एक विकसित रूप है। इसप्रकार आर्योंकी पोशाकमें उष्णीष भी थी। प्राय ईसवी सन्के आरम्भ तक भारतमें स्त्री-पुरुष दोनों उष्णीष (पगड़ी) बांधते रहे। उस समय भारतसे जो लोग बाहरके उपनिवेशोंमें जाकर बसे, वहां भी नर-नारी दोनोंके साथ उष्णीष गयी। बर्माकी सीमान्त पर चीन में—जहां पुराने समयमें पूर्व-गन्धार उपनिवेश आबाद था—आज भी स्त्री-पुरुष पगड़ी बांधते हैं। द्रापिका ही रूपान्तर पिछौरा उत्तरासंग (चादर) है। सुथना या अच्छे अन्तर्वासकने पीछे धोतीका रूप लिया। स्त्रियोंमें इसीने उत्तरीय या उत्तरासंगसे जुड़कर साड़ीका रूप लिया, या घेरेको घटा देने पर लहंगा बन गया। मोहन-जोदड़ो और हड़प्पाकी पोशाकमें भी अन्तर्वास और उत्तरासंगका पता लगता है। सुथन या पायजामा शकोंकी पोशाक थी, जो उन्हींके साथ ईसा-पूर्व और पश्चात्की प्रथम शताब्दियोंमें भारत आया, और पीछे हमारे राजाओंने इसे अपनी पोशाकमें शामिल कर लिया, यह अपने सिक्कों पर सुथन पहने गुप्त राजाओंको देखनेसे मालूम होता है।

§२ भूषा

आभूषणोंमें कुण्डल (कर्णशोभन), गलेकी तावीज या हमेल, छातीका हार तथा हाथमें कंकण (खादि) का पता लगता है। यह जेवर सोने और मणिके होतेथे। वैदिक कालमे चादीका यदि अभाव नही, तो प्रचार जरूर कम था। पुराने समयमें चादीकी दुलर्भताके कारण चादी और सोनेका भाव बराबर देखा जाता है, यह भी उसके प्रचारमें बाधक था। सोना हमारे यहा थोडा बहुत होता था, और उससे भी अधिक सोना अल्ताईकी खानें ताम्रयुगके एसिया के भिन्न-भिन्न देशोको प्रदान करती थी, जो बीचकी जातियोंसे होता भारत पहुचता था।

१ कर्ण-आभूषण—कुरुसुति ऋषि कर्णशोभन (कर्णाभरण) का उल्लेख करते हैं[11] (८।६७।३)—

"हे शत्रुनाशक इन्द्र, तुम वसु, तुम प्रशसनीय सुने जाते हो। हमें बहुतसे कर्णशोभन प्रदान करो।"

कक्षीवान्[10] (१।१२२।१४) विश्वे (सारे) देवोंसे प्रार्थना करते है—

"हे विश्वेदेवो, हमे हिरण्यकर्ण (सुवर्ण-कुण्डली), मणिग्रीव (मणि-कण्ठावाला), रूपवान् पुत्र प्रदान करो। सद्य निकलती हमारी श्रेष्ठ वाणी और हव्यको पसद करो।"

२ सोनेका कण्ठा—गलेमें निष्क (सोने) पहननेका उल्लेख है। निष्क सोनेकी मुद्रा नही था। कुषाणोंसे पहले सोनेकी मुद्रा भारतमें किसी राजाने नही ढाली न उसका नमूना कोई मिलता। हो सकता है, गलेमें पहननेके लिये विशेष आकारके सोनेके टुकडे बनते हो, जिन्हें निष्क कहा जाता था। अत्रि-गोत्रीय वव्र, ऋषि गलेमें निष्क पहने हुए ऋत्वजोका उल्लेख करते हैं[16] (५।१९।३)—

"स्तुतिकर्ता अन्नाकाक्षी, निष्कग्रीव ऋत्विज इस अग्निके बलको बढ़ाते है।"

निष्कग्रीव होनेके लिये वसिष्ठने सुनिष्क कहा है[17] (७।५६।११)—

"वे सुन्दर आयुधवाले गतिशील सुनिष्क मरुत् स्वयं शरीरको सजाते।"

कक्षीवान्ने विश्वेदेवोंको [1](१।१२२।१४) मणिग्रीव बतलाया है, जिससे पता लगता है, कि आर्य पुरुष-स्त्री गलेमें निष्क ही नहीं, मणियोंकी भी माला धारण करते थे।

३ रुक्मवक्ष—वसिष्ठने [1] (७।५६।१३) छातीपर रुक्म और कन्धेपर खादिके धारण करनेका उल्लेख किया है—

"हे मरुतो, तुम्हारे कन्धोंपर खादि और वक्षपर रुक्म (स्वर्णाभरण) पड़ा हुआ है। जैसे वृष्टिके समय बिजली चमकती है, वैसे ही जल देते हुए तुम अपने आयुधोंसे शोभित होते हो।"

४ खादि, ५ ऋष्टि, ६ शिप्र—ऊपरकी ऋचासे पता लगता है, कि खादि कन्धेपर पहनी जाती थी। श्यावाश्वकी ऋचा [1](५।५४।११) में भी उल्लेख है—

"मरुतो, तुम्हारे कन्धोंपर ऋष्टि (हथियार), पैरोंमें खादि, वक्षपर रुक्म (स्वर्णाभरण) है। रथपर तुम शोभायमान हो। किरणों (हाथों) में आगकी तरह चमकनेवाली बिजलियां और सिरपर फैले सुनहले शिप्र हैं।"

यहां कन्धेपर नहीं, बल्कि पैरोंमें खादिका वर्णन बतलाता है, कि पैरके कड़ेको भी खादि कहा जाता था। खादि कंकणको भी कहते थे, यह श्यावाश्वकी एक ऋचा [1](५।५८।२) से मालूम होता है—

"हे विप्रो, शक्तिशाली हाथमें खादि पहने, कंपानेका धनी, मायावी, दाता इन मरुतोंके गणकी वंदना करो, जो सुखदाता अमित महिमावाले बड़े ऐश्वर्य-शाली हैं।"

भरद्वाज [1](६।१६।४०) भी मिथुके हाथमें खादि (कंकण) का उल्लेख करते हैं—

"सुन्दर कंगनवाले मिथो (जनता) की अग्निको (वह) हाथमें खादि-युक्त उत्तम शिशुकी तरह धारण करते हैं।"

मोहनजोडरोके लोगों और ऋग्वेदिक आर्योंके आभूषणमें कुछ समानता जरूर रही होगी, क्योंकि मोहनजोडरोवाले अधिक सभ्य होनेसे भूषण

ऋग्वेदमें आर्य नर-नारियोकी वेष-भूषाके बारेमें जो बातें मिलती है। उनसे पता लगता है, कि आर्य उन्हे कपडा पहननेका शौक था, जो ऊनी और कुछ चमडेके भी होते थे। वह तरह-तरहके सोने और मणिके आभूषण पहनते थे। केशोका सिंगार फूलोंसे करते थे। सभी आर्य पुरुष दाढी रखनेके शौकीन नही थे, प्रौढोमें उसका अवश्य रवाज था।

अध्याय १४

क्रीडा, विनोद

§१ नृत्य

नृत्य-गीत, सोमपान, घुड़सवारी, कुश्ती, जूआ सप्तसिन्धुके आर्योंके मनोरंजनकी चीजें थीं। इनका विशद वर्णन ऋग्वेदमें न होना स्वाभाविक है, क्योंकि उसके संग्रहका यह उद्देश्य नहीं था। आंगिरस सव्य ऋषि नृत्य[1] (१।५७।३) का उल्लेख करते हैं, लेकिन, सांकेतिक भाषामें ही, वहां इन्द्रके वज्र नचानेकी बात कही है।

§२ संगीत

संगीत भी आर्योंके लिये मनोरंजनका एक साधन था, ऋग्वेदका नवां मण्डल और प्रायः सारा सामवेद सोम-सम्बन्धी गानके लिये ही है। गान-त्राणन (गायत्र) होनेके कारण आठ अक्षरोंवाले तीन पादोंके छन्दको गायत्री कहा जाता था। घोर-पुत्र कण्व ऋषिने इसीलिये कहा है (१।३८।१४)—

"मुंहसे श्लोक बनाओ, पर्जन्य मेघ की तरह विस्तृत करो। उक्थ्य (मेघ) गायत्रका गान करो॥१४॥"

इसे बतानेकी जरूरत नहीं है कि आज भी किन्नर आदि पहाड़ी तथा मैदानी लोक-गीतोंमें भी तीन पादवाले इस छन्दका बहुत रवाज है। लेकिन गायत्र गान और लोक-गीतोंके तीन पादवाले गानोंकी स्वर-तुलनाका उपाय शायद हमें सप्तसिन्धुके आर्योंकी गान-विधिका परिचय दे सके।

§३. पान

(१) 'सोम—मादक पानोमें सोमका आर्योंमें बहुत रवाज था। एक तरहकी सुरा भी वह पीते थे, पर उसे महत्त्व नही दिया जाता था। (१) कण्व-पुत्र कुसीदि इन्द्रके प्रिय सोमपानके लिये कहते हैं' (८।७१।७-८)—

"चमसो (प्यालो) और चमुओ (काष्ट-पात्रो) मे तुम्हारे लिये जो सोम छाना गया है। हे इन्द्र, इसे पियो, तुम इसके स्वामी हो ।।७।।"

"जो सोम चमुओमें पानीमें चन्द्रमाकी तरह दिखाई देता है, इसे पियो, तुम ईश्वर हो ।।८।।"

सोमवाला नवा मडल विश्वामित्रके पुत्र मधुच्छन्दाके सूक्तसे शुरू होता है, जिसकी प्रथम ऋचा '(९।१।१) है—

"इन्द्रके पीनेके लिए छाने गये हे सोम, तुम स्वादिष्ट और मदिष्ट (मस्त करनेवाली) धाराके साथ प्रवाहित होओ।"

शुन शेप ऋषिने कहा है' (९।३।१)—

"यह अमर देव द्रोणो (घडो)में बैठनेके लिए पक्षीके समान डाला जाता है।"

सोमके सबसे अधिक सूक्तोके रचयिता काश्यप असित-देवल कहते हैं' (९।५।१)—

"सुप्रकाशित, सबके पति, पवित्र, कामवर्षक, प्रसन्नकर्ता, सोम शब्द करते विराजते हैं।"

"पवमान (छाने जाते, पवित्र) सुन्दर महान् सोम, रात्रि और दर्शनीया उषाकी कामना करते है ।।६।।

"पवमान सोमकी भारती, सरस्वती, इळा तीनो महान् सुन्दरी देवियाँ हमारे इस यज्ञमें आयें ।।८।।"

असित फिर कहते हैं' (९।८।४, ६)—

"तुम्हें दसो अगुलियाँ मार्जित करती है, सात स्तुतियाँ प्रसन्न करती है, (तुम्हें पी) पीछे विप्र मस्त होते हैं ।।४।।

"कलशोंमें छाने हुए पीले सोमके वस्त्रोंके समान गव्य (गोरस) आच्छादित करता है ॥६॥

फिर कहते हैं (९।११।१, ३, ६)—

"हे नरो, पवमान सोमके लिए गीत गाओ। यह देवोंके लिए यजन करना चाहता है ॥१॥

"देवताओंके लिए कामनासे सोम देवताको अथर्वा (ऋषियों) ने मधुसे मिश्रित किया। सो हे राजा सोम, तुम हमारे लिए बहो, हमारी गायोंके कल्याणके लिए, जनोंके कल्याणके लिए, घोड़ोंके कल्याणके लिए, ओषधियोंके कल्याणके लिए बहो ॥३॥

"अरुण स्वशक्तिमान् द्यौको छूनेवाले सोमके लिए गाथा गाओ ॥४॥

"नमस्कारके साथ पास जाओ, सोमको दहीसे मिश्रित करो, इन्द्रके लिए सोम प्रदान करो ॥६॥"

यह ध्यान देनेकी बात है, कि सोमकी स्तुतियाँ अधिकतर तीन पदवाले गायत्री छन्दमें हैं। लोक-गीतोंमें आज भी उत्तरी-भारतके बहुत व्यापक क्षेत्रमें उस छन्दका प्रयोग होता है। अन्तिम तीसरे पदको गाते वक्त दोहरा दिया जाता है, जिससे वह चौपदा हो जाता था। यही ऋग्वेद-कालमें भी होता होगा। ऋग्वेदिक आर्योंका सबसे प्रिय पान सोम था, जो उनके देवताओंको भी मस्त करता था, इसीलिए असित देवल गद्गद् होकर सोमका गुणगान करते हैं (९।१५।१, २, ४)—

"यह शूर सोम इन्द्रके बनाये स्थानमें सूक्ष्म स्तुतियोंके साथ शीघ्रगामी रथों द्वारा जाता है ॥१॥

"यह (उस) बड़े यज्ञ में बहुत काम करना चाहता है, जहाँपर अमर रहते हैं ॥२॥

"यह नृम्णवाला ओजसे धन धारण करता, यूथपति वृषभ सींगोंको हिलाता, तेज करता है ॥४॥"

फिर (९।१७।४,७)—

"सोम कलशोमें दौडता, पवित्र (-पात्र)मे सीचा जाता यज्ञो म उक्थो (सामगान) द्वारा बधावा पाता है ।।४।।

'वाजी (अन्नवान्) (सोम), तुमको रक्षा-इच्छुक विप्र नर यज्ञके लिये स्तुतियो द्वारा मार्जित करते है ।।७।।"

फिर[1] (९।२२।१,२,३७)—

"यह सोम, बना कर छोडे जाने पर तेज रथोकी तरह अन्नवान् हो जाते है ।।१।।

"विस्तृत वायुकी तरह, पर्जन्यकी वृष्टियोकी तरह, अग्निकी शिखाकी तरह, यह सोम व्याप्त है ।।२।।"

'दीर्घ-मिश्रित इस पवित्र सोमको विप्र स्तुतियोसे व्याप्त करते है ।।३।।"

"हे सोम, तुम पणियोसे गो-हितकारी धनको लेते हो, विस्तृत यज्ञमे शब्द करते हो ।।७।।"

सोमका उस समय इतना अधिक उपयोग होता था, कि वह दुर्लभ नही हो सकता था। सोम (नवम)-मण्डल के ११४ सूक्तोमे सोमके गुणोकी जितनी महिमा गाई गई है, उतना उसके उद्गम और दूसरी बातोंके बारेमे नही कहा गया है। रहूगण-पुत्र गोतमके कहने[1] (१०।३२।२) मे जान पडता है, कि सोम ऊचे पहाडो पर होता था—

"पहाड (वर्षिष्ठ सानु) पर बैठे भूरे (सोम), तुम्हारे लिये गाये, घी-दूध दुहाती हैं ।।२।।"

रहूगण पुराने भरद्वाजसे भी पुराने ऋषियोमे थे, उनके दिव्य-पान सोमकी प्रशसामें गाये जानेवाले लोक-गीत यदि पीढियो तक लोगोकी जिह्वापर रहें, तो कोई आश्चर्य नही। रहूगण कहते है[1] (९।३७।१)—

"राक्षसोको नाश करता देव-कामी तृप्तिकारक छना हुआ सोम पीनेके लिये पवित्र (पान-पात्र) मे जाता है ।।१।।"

"वह भीगा हुआ सोमदेवता कवि द्वारा प्रेपित इन्द्रके लिये द्रोण (घडो) में दौडता है ।।६।।"

अयास्यने सोमके गुणगानमें तीन सूक्त (४८-४९) रचे हैं। वह एक जगह[१३] (९।४६।१,२,५) कहते हैं—

"पर्वतमें बढ़े सोम क्षरण करते निपुण घोड़ोंकी तरह यज्ञके लिये तैयार किये जाते हैं ॥१॥"

"पिता-माता द्वारा सजाई कन्याकी तरह परिष्कृत इन्दु (सोम) वायुके पास जाते हैं ॥२॥"

"हे धन जीतनेवाले, मार्ग-ज्ञाता सोम, (हमें) महाधन प्राप्त कराते बहो ॥५॥"

अवत्सार ऋषिकी कविता है[१४] (९।५६।३)—

"हे सोम, तुम्हें दसों अंगुलियाँ उसी तरह बुलाती हैं, जैसे जारको कन्या। प्रदान करनेके लिये तुम शोरसे जाते हो ॥३॥"

सोमको सर्वविजेता कहा जाता था।[१५] (९।५९।१)—

"हे गो-विजेता, अश्व-विजेता विश्व-विजेता, रमणीय-विजेता सोम, बहो। (मेरे लिये) सन्तान-सहित रत्नको ले आओ ॥१॥"

यह भी[१६] (९।६०।१)—

"हजार आँखोंवाले सूक्ष्मदर्शी छाने जाते सोमका गान गायत्री-छन्दसे करो ॥१॥"

अमहीयु आंगिरस सोमके ऐतिहासिक कार्योंको बतलाते हुये कहते हैं[१७] (९।६१।१,२,२०)—

"हे सोम पीनेके लिये बहो, तुम्हारे ही मदसे निन्यानवे पुरियाँ नष्ट की गईं ॥१॥"

"(तुमने) उस प्रकार शम्बरकी पुरियाँ भी और तुर्वश-यदुको दिवोदासके वशमें तुरन्त कर दिया ॥२॥"

"तुमने अमित शूरोंको मारा दिन-प्रति-दिन अन्न दिया। तुम गोदाता और अश्वदाता हो ॥२०॥"

निध्रुव काश्यप सोमकी महिमा गाते हुये कहते हैं[१८] (९।६३।३,४,५)—

"इन्द्र-विष्णुके लिये छाना (जो, सोम कलशमें) टपकता रहता है, वह वायु (देव) के लिये मधुमान् हो ।।३।।"

"यह शीघ्रगामी भूरे सोम सत्यकी धाराके साथ दुष्टो की ओर जाते है ।।४।।"

"इन्द्रको बधावा देते जलमें जाते सबको आर्य बनाते यह सोम सूमडोको मारते है ।।५।।"

आर्यसमाजी "कृण्वन्तो विश्वमार्यं" (सबको आर्य बनाते) वाक्यको लेकर उड चलते है, और यह नही जानते, कि निध्रुव ऋषिने सबको आर्य बनानेका श्रेय सोम(भग) पान को दिया था। आगे ऋषि कहते है" (९।६३।१२,१३)—

"तुम हमें गौ और अश्व-युक्त सहस्र धन, और अन्न तथा यश भी दो ।।१२।।"

"सोम सूर्य देवताकी तरह पत्थरोंसे घोटा छाना जाकर कलशमें सरस प्रवाहित होता है ।।१३।।'

यमदग्नि भृगु-पुत्रका गीत है" (९।६५।१।८,१५)—

"कुशल बहिनें(अगुलिया) लुगाइया क्षरणकी इच्छासे महान् स्वामी सोमको प्रेरित करती है ।।१।।"

"जिसका रग पीला (हरि), मधुरसप्रद है। उस सोमको इन्द्रके पानके लिये पत्थरोंसे(पीसकर) निचोडते है ।।८।।"

"(सोम,) जिस तेरे मदकारक तीव्र रसको पत्थरोंसे दूहते है, तो तुम पापनाशक होते बहो ।।१५।।"

यमदग्नि अपनी सोमगाथामें सोमके उद्गमका कुछ परिचय देते है "(९।६५।२८-२५)—

"जा सोम परे जो उरे और जो शर्यणावतमें निचोडे गये ।।२२।।"

"जो आर्जीकों (व्यास-तटवासियो), कृत्वो (याग कर्मकुशलो) में, जो पस्त्योंके मध्यमें और जो पाचो जनोमें(निचोडे गये) ।।२३।।"

"वे निचोडे गये देव सोम आकाशसे वृष्टि और सुवीर सन्तान लावें ।४।"

"गायके चमड़ेपर तैयार किया जाता यमदग्नि द्वारा प्रशंसित पीला म बह रहा है ॥२५॥"

जागिरस पवित्र ऋषिने निम्न मन्त्रको सोमकी महिमामें गाया था, न्तु रामानुजी उसीको लेकर सात-आठ शताब्दियोंसे करोड़ो आदमियोंकी गाओंको धातुके शंख-चक्रसे भाजकी तरह दाग रहे हैं। इन अन्धेरखातेका कोई ठिकाना है? मन्त्र है (९।८३।१)—

"हे ब्रह्म (मन्त्र) के पति, तुम्हारा पवित्र रूप फैला हुआ है। प्रभु होकर र गात्रोंमें चारो ओर व्याप्त हो। जो तपे हुये तनवाला नही है, वह रिपक्व उसे नही प्राप्त करता। जो परिपक्व है, वही वहन करते र प्राप्त करते है ॥१॥"

गृत्समद सोमके बारेमें कहते है (९।८६।४७)—

"छाने जाते (समय) तुम्हारी धारायें भेड़के सूक्ष्म रोमोंको लांघ र जाती है। हे सोम, दो चमुओं (पात्रो) में जब तुम गोरससे मिलायें, ने जाकर कलशोंमें बैठते हो।४७।"

वसिष्ठ सोमकी महिमाको जानते थे—युद्धमें सोम पीकर मस्त योद्धा द्भुत पराक्रम दिखलाते, और शान्तिके समय उसे पीकर लोग आनन्द-भोर होते है। प्राचीनताका भक्त होने पर भी आधुनिक आदमीको सोमके ने ऋषियोंके भावका पता नहीं लग सकता, क्योंकि सदीसे पानके खिलाफ जके वायुमण्डलमें विद्रोह, घृणा भरी हुई है। विजया (भांग) की प्रशंसा कवियोंको यदि सुने, तो मालूम होगा, कि सप्तसिन्धुके आर्य क्यो सोमके ने भक्त थे, और क्यो महर्षि वसिष्ठ कहते है (९।९०।३)—

"(हे सोम) सर्वसमृद्धशाली सब वीरोंवाले बलवान् जैसा धनोंके दाता का आयुध-युक्त, क्षिप्र धनुषवाले, युद्धोंमें अजेय, संग्रामोंमें शत्रुओंको न्त करनेवाले होकर तुम बहो ॥३॥"

प्रतर्दन प्रतापी दिवोदासके पुत्र थे। अनेक युद्धोंमें उन्होने भाग या था। शायद उन्हें यज्ञित करके सुदास सप्तसिन्धुका राजा हुआ। ना की जाती है, प्रतर्दन दिवोदासका ज्येष्ठ लड़का होने पर भी

युद्ध और शासनकौशलमें अपने अनुज सुदासके समान नही था। खानदानी पुरोहित भरद्वाजने प्रतर्दनका पक्ष लिया होगा, पर उससे कुछ नही बन सका। वसिष्ठ सुदासकी पीठपर हुये, और वह भरतोका प्रतापी राजा बन गया। प्रतर्दन सोमकी प्रशसामें २४ त्रिष्टुपोको गाते अपनेको योग्य ऋषि साबित करने है। वह सोमके बारेमें ऐसी उपमाये देते है, जो एक सैनिक ही के मनमें आ सकती है [१](९।९६।१,५,६,११,१२)

"सेनानी शूर सोम गौ (के लूटने) की इच्छासे रथोंके आगे जाता है, उसकी सेना हर्षित होती है। इन्द्रके आह्वानको भला बनाते सोम मित्रोको बहुतसे वस्त्र देते है ॥१॥"

"बुद्धियो (कविताओ) का उत्पादक, द्यौलोकका उत्पादक, पृथिवीका उत्पादक, अग्निका उत्पादक, सूर्यका उत्पादक, इन्द्रका उत्पादक और विष्णुका उत्पादक सोम बह रहा है ॥५॥"

"सोम देवोमें ब्रह्मा, कवियोकी कविता, विप्रोमें ऋषि, मृगोमें महिष, गृध्रोमे बाज, वनोका कुठार (हो) शब्द करता पवित्र (-पात्र) मे उफन कर बहता है ।६।"

"हे पवमान सोम, तुम्हारे साथ हमारे पहलेके पितरोने कर्म किये। वीर, तुम बिना रुके अश्वोंमे शत्रुओको मारते हो। तुम हमारे मघवा (इन्द्र) बनो ॥११॥"

"धन-धारक शत्रुनाशक आयुधधारक हविमान् हो जैसे तुम मनुके लिये बहे। ऐसे ही धनधारक हो इद्रकी सहायताके लिये बहो, आयुधोको पदा करो ॥१२॥"

क्या अपने अनुज सुदासके साथके सघर्षमें प्रतर्दनने सोमकी महिमा गाते इन त्रिष्टुपोको रचा ?

कुत्स ऋषिने ६० हजार धन सोमकी कृपासे पाये थे [१] (९।९७।५३)—
"हमारे श्रुत (वाणी) तीर्थमे उस पवित्रतासे बहो, जिससे तुमने पक्व वृक्ष (-फल) की तरह आनन्दके लिये शत्रुको हराकर साठ हजार (गो) धन दिये ॥५३॥"

काश्यप रेभके कहनेसे मालूम होता है, कि सोमके छाननेके समय पुराने कालकी गाथायें गाई जाती थीं (९।९९।४)—

"पुने (छाने) जाते उस सोमकी पुरानी गाथाओंसे स्तुति करते हैं। और इधर-उधर घूमती अंगुलियाँ देवोंका नाम (हवि) लिये घूमती हैं ॥४॥"

विश्वामित्र वाक्-पुत्र या प्रजापति ऋषि सोमके छाननेमें उनके कपडे और गायके चमडेके आवश्यक होनेका उल्लेख करते हैं (९।१०१।१६)—

"भेडके बालोंसे गायके चमडेपर सोम छाना जाता है। तृप्तिकर्त्ता हरित वर्ण वह (सोम) शब्द करता इन्द्रके स्थानमें जाता है ॥१६॥"

कश्यप मरीचि-पुत्र सोमपानके स्थानोंका निर्देश करते हैं (९।११३। १,२,७,९,११)—

"वृत्रनाशक इन्द्र शरीरमें बल धारण कर पराक्रम करनेकी इच्छासे शर्यणावत्में सोमपान करें। हे सोम, इन्द्रके लिये तुम क्षरित होओ ॥१॥"

"दिशाओंके पति ऋत वचन, सत्य, श्रद्धा और तपसे छाने गये हे सोम, आर्जीक (व्यास-उपत्यका) से क्षरित होओ ॥२॥"

"जहाँ निरन्तर ज्योति है, जिस लोकमें स्वर्ग अवस्थित है। हे पवमान सोम, उस ह्रास-रहित अमर लोकमें मुझे ले चलो ॥७॥"

"जिस तीन (प्रकारके) उत्तम स्वर्गमें इच्छानुसार विचरना होता है। जहाँ ज्योतिवाले लोक हैं वहाँ (हे सोम) मुझे अमर बनाओ ॥९॥"

"जहाँ आनन्द और मोद और मुद, प्रमुद हैं, जहाँ (सारी) सब कामनायें प्राप्त होती हैं, वहाँ मुझे अमर बनाओ। हे सोम, इन्द्रके लिये बहो ॥११॥"

यह इससे भी अवगत होता है, कि सोम सिर्फ आर्योंके लिये आनन्ददायक और मदकारक एक श्रेष्ठ पेय ही नहीं था, बल्कि देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये उसे पान कराना भी बहुत आवश्यक समझा जाता था। यज्ञमें जो दूध, मांस आदिकी हवि देवताओंको प्रदान करते थे उनमें

कितना ही आगमें जलकर उनके काम नही आती थी। गायके चमडेपर दो पत्थरो द्वारा पीसे घोटे गये ऊनी (बालके) छन्ने मे छाने, लकडीके चमुओ और धातुके द्रोणो-कलशोमें सुसज्जित रक्खे सोमके पीनेके लिये इन्द्र, अग्नि आदि देवताओका आह्वान किया जाता था। आर्यभक्तोंके विश्वासके अनुसार देवता आकर उन्हे पीते थे। पुराने ऋषियोकी गोष्ठीमें इन्द्र और अग्निने, वरुण और मित्रने साकार रूपमे आकर सोमपान किया था, इसके बारेमें पीछेके ऋषि शपथ खानेके लिये तैयार थे। सोमरस देवपूजाका ऐसा साधन था, जिसकी एक बूंद भी नष्ट नही होती थी, और चमू तथा कलशमें भरा दधिमधुसे मिश्रित सारा सोमरस भक्तोके काम आता था।

सोमपान आर्योंके लिये अतिसाधारण पेय होते भी दिव्यपान था। इसलिये देवताओंके पीछे ही वह उसे प्रसादके तौरपर ग्रहण करते थे। आजकल भी वैरागी साधु स्वादिष्ट भोजनको सीधे अपने खाने की बात न कह कर उसके साथ "रामजीके पीछे" लगाते हैं अर्थात् सभी भोजन पहले रामजीको अर्पित होगा, उसके बाद हमारा और आपका "पावना" (खाना) होगा। इसी तरह वैदिक आर्य भी देवताओंके पीछे ही प्रसाद-रूपमें सोमको ग्रहण करते थे।

सोम पवित्र और परम ग्राह्य था, पर, सुरा (मद्य) नीची दृष्टिसे देखी जाती थी। आज भी हिन्दुओंके वही भाव भाग और शराबके बारेमें देखे जाते हैं। तिब्बतमें भागको 'सोमराजा' कहते हैं। वहा वह बहुत पैदा होती है। तिब्बती लोगोमें शायद ही कोई हो, जो नशा न करता हो। लेकिन, देखनेमे ऐसा मालूम होता है, कि मानो उनको मालूम ही नहीं है, कि उनका सोमराजा (हमारी भाग) नशेकी चीज है, और उसे दूध-चीनी मिर्च-इलायची मिलाकर अत्यन्त स्वादिष्ट बनाया जा सकता है। वह "सोमराजा" का अर्थ नही जानते। उनके यहा सोमराजाका वही उपयोग है, जो हमारे यहा सन और पटसन का। वह उसके छिलकोकी रस्सी बनाते हैं। हमारे यहा पुराने समयमें भागके रेशेका कपडा बनता था। अभी भी कुमाऊ और गढवालमें भगेडा बनता है, जिसे आजसे सौ साल पहले

लोग पहनते थे, अब वह थैलेका काम देता है। कोरियामें भी भागके रेशेका कपड़ा बनता है। वहांवाले भी तिब्बतियोंकी तरह इनका यही उपयोग समझते हैं। तिब्बती लोग "सोमराजा"के पास तक नहीं फटकते। उनकी जगह वह अपनी छङ् (जौ की कच्ची शराब) पीते हैं। अरा (अरक, चुवाई शराब) अधिक पसन्द करते हैं, लेकिन वह महगी चीज है। ऋग्वेदिक आर्योंमें तिब्बतियोंकी बात उलटी है। वह भागको नहीं पसन्द करते, सुराको अच्छा समझते हैं।

(२) सुरा—सप्तसिन्धुके सोमभक्त आर्य सुरासे कोई वास्ता नहीं रखते थे, यह तो नहीं कह सकते, पर उसे हीन दृष्टिसे देखते थे, यह मेधातिथि काण्वकी निम्न ऋचा[1] (८।२) से मालूम होता है—

"जैसे सुरा पिये बदमस्त हो हृदयमें लड़ते, नंगे गोस्तनोंकी तरह रहते हैं।।१२।।"

वसिष्ठ भी सुराको नापसन्द करते थे[2] (७।८६)—

"हे वरुण, अपने बल नहीं बल्कि, सुरा, क्रोध, जुआ, अज्ञानसे यह दोष होता है। जेठा कनिष्ठको और स्वप्न भी (उन्हें) पापमें ले जाता है।।६।।"

पर सुराके प्रेमी भी थे, तभी तो कहा गया[3] (१०।१०७।९)—भोज (दाता) सुराको पाते हैं।

§४. जूआ

जूयेका रवाज, जान पड़ता है, सप्तसिन्धुके आर्योंमें काफी था। महाभारतके युधिष्ठिरने भी अपने पूर्वजोंसे सीखा था। जूयेके मारे लोग तबाह हो जाते थे, इसलिये आर्य ऋषि उनसे बचनेका उपदेश देते थे, जैसा कि कवष ऐलूष ने अपनी ऋचाओं[1] (१०।३४) में किया है।

जुआरी कहता है—"बड़े पासे (अक्ष) हिलते-डुलते इधर-उधर घूमते मुझे बहुत प्रसन्न करते हैं। मुजवान् (पर्वत) में उत्पन्न (जैसे) सोम पिया जाता है वैसे ही विभीदक (बहेड़े) के पासे जागकर मुझे खुश करते हैं।।१।।"

"यह मेरी पत्नी मुझसे न कभी उदास हुई न लज्जित हुई। मेरे लिये और मित्रोंके लिये (यह) कल्याणी रही। केवल अक्ष (पाशे)का भक्त होनेके कारण मैंने अनुव्रता भार्याको छोड दिया॥२॥"

"सास द्वेष करती है, जाया (स्त्री) छोड देती है। मागनेपर वह (जुआडी किसीको) पसन्द करनेवाला नही पाता। जैसे बूढे घोडेको कोई नही खरीदता, वैसे ही जुआडीके भोगको मै (कही) नही पाता॥३॥"

"खलमें आकर्षक पाशेने जिसे पकडा, उसकी जायाको दूसरे विगाडते है। पिता-माता और भाई उसके लिये कहते है 'हम इसे नही जानते, इसे बाध कर ले जाओ'॥४॥"

"शरीरसे बूढा कहनेपर 'में जीतूंगा' कहता जुआडी (द्यूत-) सभामें जाता है। पाशे (कभी) इसकी इच्छा पूरा करते है, और कभी प्रतिद्वद्वीके कामको सिद्ध करते है।६।"

"जुआडीकी जाया मन-मारे सतप्त होती है। (आवारा) घूमते पुत्रके वारेमें माता "कहा है" पूछती है। ऋणी हो धन के तकाजेमे डरता वह दूसरोंके घरमें रात विताता है॥१०॥"

"स्त्रीको और दूसरोकी जायाको, अच्छे वने घरोको देखकर जुआडी सतप्त होता है। पूर्वाह्णमें उसने (शानसे) लाल घोडोको जोडा था, और (दिनके) अन्तमें वृपल (अकिंचन) सर्दीके डरके मारे अग्निके पास वैठता है॥११॥"

"पाशोंसे मत खेलो, कृपि करो। उसी धनको बहुत मान कर रमण करो। हे जुआडी, वही गाये है, वही जाया है, सो मुझे इस स्वामी सविताने वतलाया है।१३।"

जूयेके इस वीभत्स रूपको देखकर भी जूआ खेलनेसे आर्य वाज आते होगे, इसकी सम्भावना नही है। जूआ खेलनेके लिये राजदण्ड होता था, इसका ऋग्वेदमें पता नही।

अध्याय १५

देवता (धर्म)

आर्य अपने देवताओंके परमभक्त, पौरुषके पूजक तथा आशावादी थे। उनके देवता भी उन्हीं गुणोंके धनी थे। यद्यपि उनके देवताओंकी संख्या ३३ और ३३३९ बतलाई गई है, पर उतने देवताओंके नाम ऋग्वेदमें नहीं मिलते। देवताओंके अतिरिक्त पितरों—मृतपूर्वजों—को भी वह पूजनीय समझते थे। देवताओंकी अर्चना वह निष्काम भावसे नहीं करते थे। निष्काम उपासना बहुत पीछेकी बात है। आर्योंका परलोकपर विश्वास था, वह स्वर्ग-नर्क मानते थे, पर पुनर्जन्मका ऋग्वेदमें कहीं पता नहीं है।

§१. देवता

आजकल देवकी जगह देवता शब्द अधिक इस्तेमाल किया जाता है, इसके दो कारण हैं। पुराने समय में राजाको भी देव कहते थे, इसलिये एक अलग शब्दके गढ़नेकी जरूरत महसूस हुई। पारसीक सम्पर्कमें आनेपर हमारे लोगोंको मालूम हुआ, कि देव राक्षसोंको भी कहते हैं, इसलिये अपनी पूज्य भावनाका सम्मान करते हुये उन्होंने सिर्फ देव शब्दको छोड़कर देवता कहना शुरू किया। विवस्वान्-पुत्र मनुने कहा '(८।३०।१) देवोंमें नाबालिग कोई नहीं होता—

"हे देवो, तुममेंसे न कोई शिशु और न कोई बच्चा। तुम सब महान् हो।'

१ देव-संख्या

ऋग्वेदमें देवोकी गणना तरह-तरहसे हुई है। भरद्वाज[२](६।५०।१) और वसिष्ठने[१] ,(७।३५ और ७।४१।१) सख्याका उल्लेख किया है। भरद्वाजने[२] (६।५०) अदिति, वरुण, मित्र, अग्नि, अर्यमा, सविता, भग (१), रुद्र, वसुगण, मरुत् (४), रोदसी (द्यौ-पृथिवी) (६), दोनो भिषग् (अश्विनौ), (७), नासत्य (अश्विनौ) (१०), सरस्वती, वायु, ऋभुक्षा, पर्जन्य (१२) का उल्लेख किया है। उन्होने[३] (६।५१।५) द्यौको पिता, पृथिवीको माता, अग्निको भाई बतलाया है। आदित्य, आदितिका भी वही उल्लेख है। ऋषि लोग पृथिवीकी सुन्दर और ऐश्वर्यशाली वस्तुओको भी देवता मानते थे। इसीलिये भरद्वाज[४](६।५२।४-६) ने उषा, पर्वतो, पितरो, सिन्धुओ (नदियो) के साथ सरस्वती (नदी), पर्जन्य (मेघ) से भी रक्षाकी कामना की—

"उगती उषायें, मेरी रक्षा करे। फूलती नदिया मेरी रक्षा करें। अचल (ध्रुव) पर्वत मेरी रक्षा करें। देव-यज्ञमें देवताओंके साथ बुलाये पितर मेरी रक्षा करें।।४।।"

"हम सदा सुन्दर मनवाले होकर उगते सूर्यको देखें। देवोंके पास हवि ले जानेवाले वसुओंके पति अग्नि (देव) शक्ति-युक्त होकर आवें।।५।।"

"इन्द्र रक्षा के साथ हमारे पास आये। सिन्धुओंके साथ फूलती सरस्वती, ओषधियोंके साथ हमारे पास पर्जन्य, पिताकी तरह सुप्रशसनीय सु-आहूत सुखमय अग्नि हमारे पास आय।।६।।"

वसिष्ठने एक सूक्त[५] (७।३५) में निम्न देवोकी गणना की है—

"इन्द्र-अग्नि, इन्द्र-वरुण, इन्द्र-सोम, इन्द्र-पूषा, भग, पुरन्धि, अर्यमा, धाता, रोदसी (द्यौ-पृथिवी), अद्रि (पर्वत), अग्नि, मित्र-वरुण, अश्विद्वय, अन्तरिक्ष, इन्द्र, वसुगण, रुद्र, त्वष्टा, ग्नायी (देविया), सोम, ब्रह्मा, ग्रावा, यज्ञ, सूर्य, चार प्रदिशायें, पर्वत, सिन्धु (नदिया), आप, अदिति, मरुत्गण, विष्णु, पूषन्, वायु, सविता, उषा, पर्जन्य. क्षेत्रपति, विश्वदेव (देवसमूह),

"महस-सूनु, युवा, अद्रोधवाच, अतितरुण तुम्हें स्तुति द्वारा हम पुकारते हैं, जो कि तुम ज्ञानी, अद्रोही सबसे प्रिय धनोंको प्रदान करते हो।"

भरद्वाज अग्निकी महिमामें कहते हैं" (६।८)—

"वह व्रत-पालक अग्नि परमव्योममें उत्पन्न हो व्रतोंकी रक्षा करता है। वह सुकर्मा आकाशको नापता है। वैश्वानर (अग्नि) अपनी महिमासे नाक (स्वर्ग) को छूता है।२।"

"आकाशमें महिष (महान्) ने उसे ग्रहण किया, विशोंने पूज्य राजा समझकर उपस्थान (सम्मान) किया, विवस्वान् (सूर्य) के दूत अग्नि वैश्वानरको वायुने दूरसे लाकर धारण किया।४।"

भरद्वाज अग्निको युग-युगका अमर दूत कहते हैं" (६।१५।)—

"हे अग्नि, देव और मनुष्य युग-युगके अमृत दूत, हव्यवाहक, रक्षक, पूज्य, जागृत, विभु, विशोंके स्वामी तुम्हें धारण करते और नमस्कार पूर्वक बैठाते हैं।"

विश्वामित्र" (३।२६)—

"हम कुशिक लोग अग्निको हवि-युक्त मनसे नमझकर सत्य-युक्त स्वर्गके जानकार, सुदानी, रथी, अणु, देव अग्निको धनकी इच्छासे पुकारते हैं।१।"

"माताओ जैसे मैं कुशिक अश्वकी तरह हिनहिनाते वैश्वानरको* युग-युगमें प्रज्वलित करते रहें। सो अमरोंमें जागरूक अग्नि हमें सुवीर, सुअश्व-वाला बनाये।३।"

"मैं अग्नि जन्मसे ही सब जाननेवाला हूं। घृत मेरी आंख (है) और अमृत मेरे मुखमें है। मैं त्रिविध तेजवाला, अन्तरिक्षका विमान, अजस्र-ताप हवि नामवाला हूं।।७।।"

वामदेव अग्निकी स्तुतिमें कहते हैं" (४।३)—

"जाओ, क्षिये धनके राजा, रुद्र होता द्यौ और पृथिवीके सच्चे

---

*सभी नरो का पूज्य अग्नि

यजमान। सुनहले रूपवाले अग्निको अचित्त विजलीसे तुम्हारी रक्षाके लिये बनाओ ॥१॥"

"हे अग्नि, पतिकी कामना करती सुन्दर परिधान-युक्त स्त्रीकी तरह हम तुम्हारे लिये यह स्थान बनाते है। तेजसे सम्मुख हो यहा बैठो, और सामने स्वपाक बनो ।२।"

सप्तसिन्धुके भरत-सन्तान देवश्रवा और देववात अग्निकी स्तुति करते है[18] (३।२३।४)—

"हे अग्नि, हम अभ्रस्यान वाली उत्तम पृथिवीमें सुदिनके लिये तुम्हें स्थापित करते है। तुम दृपद्वती (घग्गर), आपया (मरकण्डा), सरस्वतीके तट पर धन-युक्त हो मनुष्योमें दीप्तिमान् होओ।"

२ अरण्य—पूज्य, दाता और प्रकाशमान होनेके कारण ऋषि लोग किसी वस्तुको भी देवता मानते थे। इसीलिये अरण्य (जगल) भी उनके लिये देवता थे। जब हम भारतमाताकी प्रशसामे वन्देमातरम् गान करते है, उस समय भी उसी तरहकी कल्पना हमारे दिमागमे घूमती है। सप्तसिन्धुके आर्योंके परम धन थे गाय-घोडे, भेड-बकरी। इनके लिये अरण्य भारी अवलम्ब थे। इसीलिये इरम्मद-पुत्र देवमुनिने अरण्यकी स्तुति बडे भक्तिभावसे की है[19] (१०।१४६)—

"यदि दूसरे (सिंह आदि) न आवें, तो अरण्यानी हिंसा नही करती। वहा स्वादु फल खाकर यथेच्छ रह सकते है ।५।"

"अजन-वर्ण (काली) सुगन्धि-युक्त, किसान के बिना बहुत भोजन-वाली, मृगोंकी माता अरण्यानीकी मै स्तुति करता हू ।६।"

३ आप—आप जल और नदी दोनोको कहते है। दोनो ही आर्योंके पूज्य थे। उनके भाईबन्द पारसीक भी आप देवताओंके माननेमें उनके साथी थे। सिन्धुदीप-पुत्र अम्बरीपने आपकी स्तुति करते कहा है[20] (१० ९)—

"आप देवी, सुखमय हो। वह हमें धन दें, भली-भाति देखने (जानने) के लिये ज्ञान दें ।१।"

"हे आपो, जो तुम्हारे पास अत्यन्त शिव (मंगलमय) रस है, उसे लालसावाली माताकी तरह हमें प्रदान करो ।२।"

"देवी आप हमारे कल्याणके लिये, पानके लिये हों। हमारे चारों ओर कल्याणकी वर्षा करें।४।"

४ इळा—सरस्वती उषा, आप की तरह इळा भी आर्योंकी देवी थी। इळाका अर्थ अन्न है। अन्न देवता में भी बढ़ कर है ही। विश्वामित्रने इळाके साथ भारती और सरस्वतीकी स्तुति[1] (३।४) की है—

"भारतियोंके साथ भारती, देवों और मनुष्योंके साथ इळा, अग्नि, सारस्वतोंके साथ सरस्वती, तीनों देवियां (हमारे) सामने इस यज्ञमें बैठें।"

भारतीका अर्थ आजकी सरस्वती लेना नहीं होगा। अनेक भारतियोंके साथ भारतीका कहना कुछ विशेष अर्थ रखता है। शायद बहुत-सा भारतीसे यहां भरत देशकी पूज्य देवियां अभिप्रेत हों, और सारस्वत-समुदायसे सरस्वती-तटके निवासी देवी-देवता।

५ इन्द्र—इन्द्र आर्योंके सबसे बड़े और तेजस्वी देवता थे। यद्यपि ईरानी आर्योंने जरथुस्त्रके मतके अनुसार देव शब्दका अर्थ राक्षस और देवोंके राजा इन्द्रको राक्षसराज बना दिया है, पर यह समझना गलत होगा कि जरथुस्त्रसे पहले भी इसका यही अर्थ था। हम जानते ही हैं, कि बिना अपवादके सभी हिन्दो-युरोपीय जातियोंके पूर्वज दिव्य अर्थ हीमें देव शब्दका उपयोग करते थे। ऋषियोंमें सबसे ज्येष्ठ भरद्वाज इन्द्रकी महिमामें कहते हैं[1] (६।१७)—

"इन्द्र, रक्षा करो, जो कि तुम शत्रुओंके रक्षक, जो वृषभ (मनोकामना पूरक), जो शिप्रवान्, जो मतियों (अभिलाषाओं) के वर्षक वृषभ हो, जो पर्वतोंके विदारक वज्रधर, जो घोड़ोंपर चलनेवाले, वह इन्द्र दिनदिन अन्न-धन प्रदान करे।२।"

भरद्वाजके पुत्र गर्गने इन्द्रकी रक्षा करते हुये प्रार्थना की है[1] (६।४७)—

"त्राता इन्द्र, अविता (रक्षक) इन्द्र, हर यज्ञमें सुन्दर तौरसे पुकारे गये इन्द्र, शूर इन्द्र, शक्र, पुरुहूत (बहुत पुकारे जानेवाले) इन्द्रको मैं पुकारता हूं। मघवा (धनवान्) इन्द्र हमारी स्वस्ति करे ।११।"

"जो इन्द्र रूप-रूपमें भिन्न रूप हुआ, सो उसके रूपको बतलानेके लिये है। इन्द्र (अपनी) मायाओंसे बहुरूप होता है। इसके रथमें हजार घोडे जुते हैं।"

वसिष्ठ[१४] (७।२९) इन्द्रको सोम पीने के लिये बुलाते हैं—

"हे इन्द्र, यह सोम तुम्हारे लिये छाना हुआ है। हे घोडेवाले, उसके पास जल्दी आओ। इस चारु (भली प्रकार) छनेको पीयो, और हे मघवा, आकर हमें मेघ (धन) दो ।१।"

सोम आर्यों और उनके देवताओंका अत्यन्त प्रिय पेय था। उसको पीकर वह प्रसन्न और मस्त होते थे। वसिष्ठने[१५] (७।३२) कहा है—

"यह दही मिला कर (दध्याशिर) सोम छाने गये हैं। हे वज्र-हस्त, मस्त होने के लिये दोनो घोडोंके साथ उनके लिये उनके पास के स्थानमें आओ ।४।"

वसिष्ठ शतयातु (सौ जादूवाले) कहे जाते थे, लेकिन वह जादूमें चतुर थे, इन्द्रके बलपर ही। इसीलिये वह इन्द्रसे प्रार्थना करते हैं[१६] (७।१०४)—

"हे इन्द्र, माया (छल) से हिंसा करनेवाले यातुधान (जादूगर) पुरुष और स्त्रीको नष्ट करो। बिना गर्दनके राक्षस नष्ट हों, वे उगते सूर्यको न देख पायें ।२४।"

विश्वामित्र तीनो ऋषियोंमें सबसे पीछे प्रभुतामें आये। उन्होंने सुदासको अश्वमेध-यज्ञ कराया। वह इन्द्रकी स्तुति करते कहते हैं[१७] (३।३२)—

"हे इन्द्र, गवाशिर (दूध-सहित) मथे सफेद (शुक्र) सोमको पियो। तुम्हारे मदके लिये हम (इसे) देते हैं। ब्रह्मकृत् (मन्त्रकर्ता), मरुत्‌गणो और रुद्रोंके साथ तृप्त होने तक (इसे) पियो ।२।"

"इन्द्र, जो तुम्हारे शक्ति और बलको बढ़ाते हैं, वह मरुत् तुम्हारे ओजको बढ़ायें। हे वज्र-हस्त, सुमुकटवर (सुशिप्र), गण-सहित रुद्रोंके साथ मध्याह्नके सवन (सत्र) में (सोम) पियो।३।"

"सारे देव इन्द्रके सुकृत को, बहुतसे व्रतोंवाले कर्मको नष्ट नहीं कर सकते। जिसने द्युलोक और इस पृथिवीको धारण किया, सुदर्शना सूर्य और उषाको पैदा किया।८।"

विश्वामित्र इन्द्रके घोड़ोंको मोरसरी बतलाते हैं [8] (३।४५)—

"हे इन्द्र मोरके रोमवाले मस्त घोड़ोंके साथ आओ। (जालसे) फँसानेवाले बहेलियेकी तरह, मरुभूमिकी तरह कोई तुझे न रोके।१।"

वामदेव इन्द्रकी प्रशंसामें कहते हैं [9] (४।१६)—

"इन्द्र सूर्यके समीप रूप धारण करता है। अमृतके शरीर-हन्तावाले मृगकी तरह, तेजमें जलाते सिंहकी तरह, भयंकर होते आयुधोंको धारण करता है।१४।"

"हे शूर, जनोंके किसी युद्धके भीतर तीक्ष्ण अशनि गिरे। हे स्वामी, जब घोर युद्ध हो, तो हम लोगोंके शरीरकी तुम रक्षा करना जानो।१७।"

"तुम वामदेवकी स्तुतियोंके रक्षक हो। (हमारे) अशत्रु हो। युद्धमें सखा बनो। हे महाबुद्धिमान्, हम तुम्हारा अनुगमन करें। तुम सदा स्तुति-कर्ताओंके बहुप्रशंसनीय होओ।१८।"

वामदेव फिर कहते हैं [10] (४।१७)—

"हे इन्द्र, तुम महान् हो। महा पृथिवीने तुम्हारा अनुमोदन किया। द्यौने तुम्हें माना। तुमने अपने बलसे वृत्रको मारा, अहि (वृत्र) द्वारा ग्रसी जाती सिन्धुओं (नदियों) को मुक्त किया।१।"

"तुम्हारे प्रकाशके जलनेपर द्यौ और कांपने लगा। तुम्हारे कोपसे भयभीत भूमि कांपी, सुन्दर होनेवाले मेघ बढ़े, नदियां आर्द्र कर मरुभूमियों को नष्ट करती बहीं।२।"

वामदेव फिर कहते हैं [11] (४।२२)—

"कामनापूरक श्रेष्ठ नेता शची-वान् उग्र इन्द्र चार धारवाले वज्रको दोनो बाहुओमें लिये ऊनवाली (भेडोवाली या ढाकती) परुष्णी (रावी) का सेवन करते है, उसके स्थानोंको मित्रताके लिये वयन करते हैं।२।"

"जो उत्पन्न देव, देवतम महान् अन्नो और महान् बलोंसे युक्त हैं। दोनो बाहुओमें बल धारण किये उसने अभिलषित, द्यौ और भूमिको बहुत कँपाया।३।"

वामदेव इन्द्रके मुँहसे उसकी महिमा कहलवाते है [१२](४।२६)—

"मैं मनु हू, मैं सूर्य और कक्षीवान् विप्र ऋषि हू। मैंने आर्जुनेय कुत्सको अलकृत किया, मुझे ही उष्णा कवि करके देखो।१।"

"मैंने आर्यके लिये भूमि दी, दाता मर्दको मैंने वृष्टि दी। मै शब्द करते जल लाया। देव मेरे सकल्पका अनुगमन करते हैं।२।"

"जब मैंने युद्धमें अतिथिग्व (दिवोदास) की रक्षा की, मैंने मस्त हो शम्बरके नौ और नब्बे पुर (दुर्ग) ध्वस्त किये। तो सौवींको (उसे) रहनेके लिये दिया।३।"

गृत्समद भी ऋग्वेदके प्रसिद्ध ऋषियोमें है। वह इन्द्रकी सर्वशक्ति-मत्ताके बारे में कहते हैं [१३](२।१२)—

"जिसकी आज्ञामें अश्व है, जिसकीमें गायें, जिसकीमें ग्राम, जिसकी आज्ञामें सारे रथ हैं। जिसने सूर्य और उषाको पैदा किया, जो नदियोका नेता है, हे लोगो, वह इन्द्र है।७।

"जिसने पर्वतोमें रहनेवाले शम्बरको चालीसवी शरदमे (मार) धरा। ओजस्वी हो जिसने सोये हुये अहि दानवको मारा। हे लोगो, वह इन्द्र है।११।"

वसिष्ठने आर्योकी सारी विजयोका श्रेय इन्द्रको दिया है। इनके दो सूक्तोमें (७।१८।१०) ऋग्वेदिक आर्योंके सघर्षोंके सम्बन्धमें बहुमूल्य सूचनायें मिलती है, जिनका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। वह कहते हैं [१४](७।१८)—

"हे इन्द्र, हमारे पितरोंने तुम्हारी स्तुति करते सारे बढ़िया धन प्राप्त किये। तुमने ही सुन्दर दुधार गायें, तुमने ही अश्व दें। देवोंके भक्तको तुम बहुत सा धन देते हो।१।"

"जैसे स्त्रियोंके साथ राजा, वैसे ही विद्वान् और कवि तुम स्तुतियोंवाले होकर रहते हो। हे मघवन्, स्तोताओंको गौओं और अश्वोंके साथ रूप दो। धनके लिये हमें तुम सिखाओ।२।"

"देवभक्ति-सहित स्तोत्रों-युक्त यह मेरी मधुर स्तुतियां तुम्हारे पास जा रही हैं। हे इन्द्र, तुम्हारा पथ्य धन हमारी ओर आवे। तुम्हारी सुमति-से हम शर्म(सुख)-युक्त होवें।३।"

जैसे धेनुके लिये सुन्दर तृण, वैसे ही तुम्हें दुहनेके लिये वसिष्ठने ब्रह्मों (मन्त्रों) को रचा। सब तुम्हें ही गो-पति कहते हैं। इन्द्र हमारी सुन्दर स्तुतिके पास आवें।४।"

आंगिरस प्रियमेध कहते हैं[15] (८।५८)

"जो पासमें प्राप्त है, उस वज्रधारी इन्द्रके लिये गायें मधुर आशिर (दूध) दुहाती हैं।७।"

'हे प्रियमेध-सन्तानो, अर्चना करो, खूब अर्चना करो, अर्चना करो। दुर्गध्वंसकको जैसे वैसे ही हे पुत्रो अर्चना करो।८।"

"गर्गर (बाजा) आवाज कर रहा है, गोधा (गोहके चमड़ेवाला बाजा) ध्वनि कर रही है। पिंगा (पीली प्रत्यंचा) चिल्ला रही है। इन्द्रके लिये ब्रह्म (स्तुति) उद्यत हो।९।"

"शिशुकुमारकी तरह नवीन रथपर चढ़े पिता-माता (द्यौ और पृथिवी) से जानने वह (इन्द्र) महिष (महान्) मृगों मसल और बहुत कर्मवाले हैं।१५।"

'हे सुन्दर मुकुटवाले स्वामी, सुनहले रथपर चढ़ो। सहस्रपाद, लाल-रंग निष्पाप, स्वर्गको जानेवाले सुन्दर रथपर चढ़ो। तब हम दोनों मिलेंगे।१६।

आर्योंमें कुछ लोग इन्द्रके अस्तित्वपर सन्देह करते थे जैसा कि भृगु-गोत्रीय नेमके वाक्य[16] (८।१००) से मालूम होता है—

"यदि सत्य है तो हे युद्धेच्छुको, इन्द्रके लिये सच्चे स्तोम (स्तोत्र) को पढो। नेम ऋषि तो कहता है, इन्द्र नही है। किसने (इद्रको) देखा, फिर किसकी स्तुति करें ।३।"

नेमके ऐसा सन्देह करनेपर इन्द्रने स्वय जवाव दिया—

"हे भगत, यह हू मै, देख मुझे। यहा सारी सृष्टिको (अपनी) महिमा से मै वशमें करता हू। दिशायें मेरे सत्यका वधावा देती है। मै भुवनोका विदारक हू ।४।"

ऋषि इन्द्रको शरीरधारी समझते थे। उसके मुकुट और दो भुजाओका वर्णन ऊपर हो चुका है। विमद (प्रजापति-पुत्र) ने इन्द्रकी मूँछ-दाढी (श्मश्रु) का वर्णन किया है[१७] (१०।२३)

"दाहिने हाथमें वज्र-युक्त, कार्य-निपुण घोडोंके रथवाले इन्द्रकी हम पूजा करते है। सोम द्वारा प्रसन्न हो सेनाओ और अन्नके साथ अपनी श्मश्रुको हिलाते शत्रुओंके सहारके लिये वह प्रकट हुये ।१।"

"जैसे वृष्टि पशुयूथोको भिगोती है, वैसे ही हरित (पीले) सोमसे इन्द्र अपने श्मश्रुओको भिगोते है। फिर सुन्दर यज्ञमें जा छने मधुर सोमको पीकर जैसे वायु वनको वैसे ही अपने श्मश्रुओको हिलाते है ।४।"

विमद ऋषि केवल सोम-पानसे ही इन्द्रकी तृप्ति नही समझते, वह उनके भोजनके वारेमे कहते है[१८] (१०।२३)—

"हे इन्द्र विमद-लोगोने सुदाता तुम्हारे लिये अपूर्व विस्तृत स्तोम (स्तुति) रचा। इस (इन्द्र) राजाके भोजनको हम जानते है, इसलिए गोपालोकी तरह (ग्रास) दिखा कर पास पशुको बुलाते है ।६।"

वसुक्र इन्द्रकी अद्वितीय प्रतिभापर विश्वास रखते समझते है, कि इन्द्र असम्भवको सम्भव कर सकते है[१९] (१०।२८ ३)—

"हे मघवन् इन्द्र, अन्नके लिये पुकारते समय तुम्हारे लिये जल्दी-जल्दी पत्थरसे मददायक सोमको, (पीसकर हम) छानते है, तुम उसको पीते हो। वे वैल पकाते है, तुम उन्हें खाते हो ।३।"

"हे स्तुत्य, मेरे लिये तुम ऐसा कर दो, कि नदियां उल्टी दिशामें बहें। घास खानेवाला मृग सिंहको भगाये, सियार वराहको वनसे हटा दे।४।"

"इन्द्रकी कृपा होनेपर शशक श्वापदका सामना कर सकता है। मैं समीप जा ढेलेसे पहाड़को तोड़ सकता हूँ। (उनकी कृपा से) महान् भी क्षुद्र के वशमें आ सकता है, बछड़ा सांडसे लड़ सकता है।९।"

"पिंजड़ेमें यथा सिंह चारों ओर अपने पैरको जैसे रगड़े, वैसे ही गरुड़ (बाज) पक्षी अपना नख रगड़ने लगे। जो रुग्ण प्यासा महिष है, उनके लिये वह गोधा पानी लाये।१०।"

इन्द्रके रूप आदिके बारेमें आंगिरस वरु कहते हैं" (१०।९६)—

"उसका वह वज्र हरित (पीला) है, जो आयस (ताम्बे या पत्थर का) अत्यन्त सुन्दर दोनों हाथोंमें है। धनी, सुशिप्र (सुमुकुट), सुन्दर, क्रोधरूपी बाणवाले इन्द्रको हरित (सुनहले) सोमसे अभिषिक्त किया।३।"

"जो हरित (पीले) मोछवाले पीले केशवाले ताम्रसे दृढ सोम पी कर शरीर (बल) को बढ़ाते हैं, जिसे हरित घोड़े वशमें ले जाते हैं, वह दो घोड़ोंपर चढ़े सारी दुर्गतिको दूर करते हैं।८।"

इन्द्र मनुष्यकी तरह साकार था, इस बातका उल्लेख यास्क भी करते हैं (निरुक्त उत्तरषट्क ७।२।२)—

"देवताओंके आकारका चिन्तन करते वह पुरुषसे लगते हैं। चेतना-वान् (मनुष्य) की तरह ही स्तुतियां (ऋचायें) बतलाती हैं। पुरुष जैसे अंगोंके साथ उनकी स्तुति की जाती है।"

इन्द्र-सम्बन्धी ऋचाओंके देखनेसे भी यास्ककी बातकी सत्यताका पता लगता है। इन्द्र शिप्र (शिर ठुड्डी या मुकुट) वाले हैं। वह घोड़ोंके रथ पर सवार होकर चलते हैं। वह सोम पीकर मस्त होते हैं। उनके दोनों हाथोंमें चार धारोंवाला वज्र है। उनके घोड़े सोमपायी हैं। उनके मुँह-पर पीली दाढ़ी-मूँछ है। उनके खानेके लिये सत्तू वृषभ पकाते हैं। पत्नि उनकी पत्नी है इत्यादि।

पृथिवी और द्यौलोककी स्तुति माता-पिताके तौरपर ऋषियोंने की है।

१० पुरुष—पुरुष-सूक्त ऋग्वेदके पीछेके सूक्तोंमें[1] (१०।९०) है। इसके ऋषि नारायण कल्पित मालूम होते हैं। सूक्तमें ब्रह्माण्डमय विराट् पुरुषकी कल्पना है—

"हजार सिरोंवाला, हजार आंखोंवाला, हजार पैरोंवाला पुरुष है। वह चारों ओर भूमिको ढांक कर दस अंगुलमें अवस्थित होता है।।१।।

"यह जो कुछ भूत और भावी है, सब पुरुष ही है। वह अमृतत्वका स्वामी है, जो कि अन्नसे अतिरोहण (वर्धन) करता है।।२।।

"पुरुषरूपी हविसे देवोंने जिस यज्ञको पसारा। उस (यज्ञ) का घी वसन्त था, ईंधन ग्रीष्म, हवि शरद थी।।६।।

"उससे अश्व और जो कुछ भी मुखमें दोनों ओर दांतवाले (प्राणी) हैं, उत्पन्न हुये। गायें उससे उत्पन्न हुईं। उससे भेड़-बकरियां उत्पन्न हुईं।।१०।।

"इसका मुख ब्राह्मण हुआ, दोनों बाहें राजन्य (क्षत्रिय) बनीं। उसकी दोनों जांघें वैश्य (हैं), दोनों पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुआ।।१२।।"

११ पूषन्—पुष्टिकारक देवताके लिये यह नाम दिया गया है। इसके गुण सूर्यपर अधिक घटते हैं। एक देवताके भी अनेक गुणोंको लेकर ऋषि अनेक देवताओंकी कल्पना कर लेते थे, जैसे एक ही सूर्य आदित्य, सविता, मित्र, सूर्य और पूषन्के नामसे अलग-अलग माना जाता था। ऋषि-त्रयमें सबसे ज्येष्ठ भरद्वाजने पूषन्की प्रशंसामें ६ सूक्त (६। ५३-५८) रचे हैं, जिससे इस देवताका महत्त्व मालूम होता है। भरद्वाजकी ऋचाओंसे पूषन्के व्यक्तित्वका भी पता लगता है,[77] (६ ५३)—

"हे पथके पति पूषन्, अन्न प्राप्तिके लिये रथकी तरह हम तुम्हें सन्मुख करते हैं।

"प्रकाशमान पूषन्, अ-दाता कृपण पणि को दानके लिये प्रेरित करो। (उस) के मनको मृदु बनाओ।।३।।"

दूसरे सूक्त[78] (६।५४) में भरद्वाज कहते हैं—

"हे पूषन्, तुम हमें ऐसे विद्वान्से मिलाओ, जो बतलावे 'यही है'।

"हमारा गोधन नष्ट न हो, हमारा (पशुधन) कूएमें न गिरे। स्वस्ति-युक्त गौवोंके साथ तुम आओ ॥७॥

"पूषन् अपने दाहिने हाथको चारों ओर रक्खें। हमारे नष्ट (लुप्त) गोधनको वह फिर लावें ॥१०॥"

भरद्वाजकी उपरोक्त ऋचाओंसे मालूम होता है कि, पूषन् भूलेको रास्ता बतलानेवाला, गौओंका रक्षक देवता था। उन्हींके एक मन्त्र (६। ५५। २) से मालूम होता है, कि पूषन्के सिरपर कपर्द (जूडा) था।

"महारथी, कपर्दी ईशान मित्रसे हम धनकी प्रार्थना करते हैं।"

भरद्वाजने पूषन्को सत्तू (करम्भ)-प्रिय कहा है (६।५६)—

"जो (मनुष्य) उस पूषन्को करम्भ(-दान)से प्रार्थना करता, उसे दूसरे देवकी प्रार्थना करनी नहीं पड़ती ॥१॥

"महारथी, सच्चे स्वामी इन्द्र अपने सखा (पूषन्) के साथ शत्रुओंको मारते हैं ॥२॥

"महारथी सूर्य (पूषन्) सुनहले चक्रोंको चलाते हैं ॥३॥"

यहां पूषनको सूर (सूर्य) कहा गया है। भरद्वाजके वचन (६।५७)से मालूम होता है, कि जैसे इन्द्र सोमपानको पसन्द करते हैं, वैसे ही उनके मित्र पूषन करम्भ (सत्तू) को—

"पात्रमें छाने सोमको पीनेके लिये एक (इन्द्र) पास आते हैं, अन्य (पूषन्) करम्भ(सत्तू) चाहते हैं ॥२॥

"एकका वाहन बकरा है, और दूसरेका घोडे के जानेवाले हैं। इन दोनोंके साथ (हम) वृत्रों (शत्रुओं) को मारते हैं ॥३॥"

भरद्वाज फिर पूषन्की सूर्यकी तरह स्तुति करते हैं (६।५८)—

"बकरी-घोडेवाला, पशुपाल, अन्नवाली स्तुति-प्रिय जो पूषन् सारे विश्वमें व्याप्त है। वह देव-भुवनको प्रकाश करते निमित्त [illegible]

[illegible] ॥३॥

"हे पूषन्, तुम्हारी जो नावें समुद्रके भीतर और आकाशमें चलती हैं, स्तुति किये जाते सूर्यकी कामनासे (तुम) दूत बनते हो ॥३॥

"पूषन् द्यौ और पृथिवीके सुन्दर बन्धु, अन्न-पति, धनवान्, दर्शनीय रूपवान् हैं। स्वेच्छासे बल-युक्त, सुन्दर गतिवाले हैं, जिन्हें देवोंने सूर्य लोक के लिये दिया ॥४॥"

इन ऋचाओंसे मालूम होता हैं, कि पूषन्का सूर्य और पोषण (पशु पोसने) से विशेष सम्बन्ध था, और वह इन्द्रके सखा अन्नके देवता और स्वय सत्तूके प्रेमी थे—आजके तिब्बती लोगोकी तरह सारे आर्य उस समय सत्तू प्रेमी (सातूखोर) थे।

१२. प्रजापति—परमेष्ठी प्रजापति ऋषि यह कल्पित नाम मालूम होता है। इस नामसे रचित सूक्तका सारे ऋग्वेद में एक विशेष महत्व है। यद्यपि वह दसवें मण्डलका सूक्त [51]। (१० १२९ में होनेसे पीछेकी कृतियोमें है, पर इसीमे पहिले पहल उपनिषद्के रहस्यवाद और अज्ञेय ब्रह्मका वर्णन मिलता है—

"न असत् था न तब सत् था, न लोक थे, न आकाशसे परे जो है वह (था)। उस समय क्या आवरण, कौन किसका स्थान, (था) ? क्या गहन गम्भीर था ॥१॥

'तब न मृत्यु थी, न अमृत, न रात्रि, न दिनका ज्ञान था। वायु विना वही एक अपने धारणसे था। उसमे दूसरा और कोई नही था ॥२॥

"अन्धकारसे छिपा अन्धकार आगे था। यह सब अज्ञात सलिल था। छूछे (शून्य) से जो ढका था, तपस्याके प्रभावसे वह एक उत्पन्न हुआ ॥३॥

"उसके पहले काम (इच्छा) थी। मनमें पहला बीज जो था। कवियोने बुद्धि द्वारा हृदयमें विचार करके असत् मे सत्के बन्धुको प्राप्त किया ॥४॥

"तिर्छा फैला हुआ था, इसकी रश्मि मानो अध थी, मानो ऊपर थी। बीज धारण करनेवाले थे, महिमायें थी, स्वशक्ति स्वधा पूरी थी, प्रयति (प्रगति) परे थी ॥५॥

"कौन जानता, कौन यहां बोलता है, (कि) कहांसे यह सृष्टि उत्पन्न हुई। इस (सृष्टि) के होनेके पीछे देव हुये, (अतः) कौन जाने जहांसे उत्पन्न ॥६॥

"यह सृष्टि जहांसे हुई, अथवा धारण हुई या न हुई। जो इसका अध्यक्ष परम आकाशमें है। सो भाई, जानता है या नहीं जानता ॥७॥"

प्रजापति-पुत्र यज्ञ भी कल्पित नाम है। उनके रचित सूक्तमें भी प्रजापतिका वर्णन मिलता है, परन्तु वह उतना रहस्यमय नहीं है " (१० १३०)—

"जो यज्ञ तन्तुओंसे चारों ओर फैला हुआ एक सौ देव-कर्मोंसे विस्तृत है। जो पितर आये हैं, यह बुन रहे हैं। 'लम्बा बुनो, चौड़ा बुनो' कहते विस्तृत फैले यज्ञमें हैं ॥१॥

"तब यज्ञकी क्या प्रमा-प्रतिमा (सीमा-आकृति) थी, क्या निदान था, क्या घी था, क्या परिधि (माप) थी। छन्द क्या था, उक्थ (साम (गान) क्या था, जब कि सारे देवोंने यजन किया ॥३॥

"अग्निके साथ गायत्री छन्द हुआ। उष्णिक्के साथ सविता हुआ। अनुष्टुप् द्वारा सोम, महान् तेजस्वी (सूर्य), उक्थो द्वारा (हुआ), बृहस्पतिके वचनका आश्रय बृहती ने लिया ॥४॥

"विराट् (छन्द) ने मित्र और वरुणका आश्रय लिया। इन्द्र और दिनका भाग यहां त्रिष्टुप् हुआ। जगतीने सभी देवोंका आश्रय लिया। उससे ऋषियों, मनुष्योंने यज्ञ किया ॥५॥

"सात दिव्य ऋषि स्तोमों (स्तुतियों) छन्दोंसे साथ हो प्रमा-युक्त हुये। पहले ऋषियोंके पथको देखकर धीरोंने जैसे घोड़ेको लगाम वैसे पथको पाया ॥७॥'

प्रजापतिके इन सिर्फ सूक्तमें पहलेके जैसा चमत्कार नहीं है। इसको सम्भवतः उपनिषद्का पूर्वरूप मानना चाहिये। इसी सूक्त में स्पष्ट मनोविकृति आर्योंने दार्शनिक उड़ान करनी शुरू की इसमें सन्देह नहीं। दूसरे सूक्तमें छन्दोंके नामोंका एक उदाहरण सब

दिया गया, और स्तोम (स्तुति) और उक्थ (सामगान) का भी उल्लेख किया है।

१३. मन्यु—देव शब्दका व्यापक अर्थ है। उसमें प्रकृतिके भीतरकी चमत्कारिक शक्तियाँ ही सम्मिलित नही है, वल्कि मनुष्यके भीतरकी शक्तिया भी देव है । सप्तसिन्धुके ऋषियोको अभी शान्ति और अहिसाका पाठ पढनेमें वहुत देर थी। उन्हें अपने शत्रुओपर प्रहार करनेके लिये मन्यु (क्रोध) की अवश्यकता थी । इसीलिये तपके पुत्र मन्युने उसकी प्रशसा की[55] (१०।८३)—

"हे वज्र-वाण-तुल्य मन्यु, जो तुम्हारा ओज सवमें पुष्ट होता है, वैसे वलवान् तुम्हारे साथ हम दास और आर्यको पराजित करें।।१।।

"मन्यु इन्द्र है, मन्यु ही देव है, मन्यु (है) क्रोध होता, वरुण जातवेद (अग्नि) (है)। जो मानुषी प्रजायें है, वह मन्युकी प्रशसा करती है। हे मन्यु, तपस्यासे युक्त हो हमारी रक्षा करो।।२।।

"वलमें अतिवली मन्यु तपके साथ आओ, शत्रुओको मारो। अमित्रनाशक, वृत्रनाशक और दस्युनाशक, तुम हमारे पास सारे धन लाओ ।।३।।"

उसी कल्पित नामवाले ऋषिने फिर कहा है[6] (१०। ८४)—

"तुम्हारे साथ रथपर चढकर हर्षित होते ढीठ, वेगवान्, तीक्ष्ण वाणोवाले आयुधोको तेज करते अग्निरूप नर अभियान करें।।१।।

"अग्निकी तरह प्रज्वलित यज्ञमें पुकारे जाते हे मन्यु, हमारे सेनानी (आगे) वढें । शत्रुओको मार कर हमें धन दो, ओज देते दुश्मनोको भगाओ।।२।।"

१४ मित्र—मिथ, मिथ्र, मिहिर ईरानी आर्यो और वैदिक आर्योका सम्मिलित देवता है। उसका नाम पीछेके देवताओमें हमारे यहा नही मिलता, लेकिन मित्रकी महिमा ईरानमें पीछे वहुत वढी। एक वार उसकी उपासनाकी ओर रोमके सामन्त भी वहुत झुके थे। उस समय ईसाइयत और मिथ्र-भक्तिमें होड थी । कुछ समय तक यह कहना मुश्किल था, कि वहा

ईसाका धर्म विजयी होगा या मित्र का। मित्र की स्तुति में हम विश्वामित्रकी कुछ ऋचायें देते हैं" (३।५९)—

"पुकारनेपर मित्र लोगोंको प्रेरित करता है। मित्र पृथिवी और द्यौको धारण करता है। मित्र मनुष्योंको कृपादृष्टिसे देखता है। मित्रके लिये घृत-सहित हविका हवन करो॥१॥

'हे मित्र आदित्य, वह मनुष्य धनवान् हो, जो तुम्हारे व्रतसे प्रार्थना करता है। तुम्हारे द्वारा रक्षित वह न हत होता, न पराजित (होता)। दूर या नजदीकसे आता पाप उसे नहीं प्राप्त होता॥२॥

"महान् आदित्य नमस्कारसे उपासना करने योग्य है। सुन्दर कर्मवाला जन जाकर उसकी स्तुति करता है। उन अतिप्रशंसनीय मित्रके लिये इस प्रिय हविको अग्निमें हवन करो॥५॥

"शक्तिशाली मित्रके लिये पाँच जन पूजा करते हैं। वह सारे देवोंका पालन करता है॥८॥"

१५. रुद्र—रुद्र विशेषणके रूपमें रुलानेवालेको कहते हैं। वेदके रुद्र और पीछेके शंकरका कोई सम्बन्ध नहीं है, यद्यपि दोनोंको एक मानके रुद्रपरक मन्त्रोंको जमा कर "रुद्राष्टाध्यायी' (रुद्री) तैयार की गई है। वसिष्ठ अपने यजमान भरतोंको कहते हैं" (७।४६)—

'हे भरतो, सुनो, यह हमारी वाणियां (कवितायें) स्थिर-धनुष, क्षिप्र-बाण चलानेवाले, अन्नवाले अजेय, विजेता, वेधा, तीक्ष्ण आयुधवाले रुद्रके लिये हैं॥१॥

"(हे रुद्र,) देवलोकसे छोड़ी गई जो तुम्हारी बिजली पृथिवीपर विचरण करती है, वह हमें बचावे। हे स्वप पीनेवाले, तुम्हारे पास हजारों औषध हैं। तुम हमारे पुत्र-पौत्रोंकी हिंसा न करो॥३॥

'हे रुद्र, हमें न मारना, न त्यागना। क्रुद्ध हुये तुम्हारे बन्धनमें हम न पड़ें। जीवोंसे प्रशंसनीय हमारे यज्ञमें आकर भागी बनो। तुम सदा स्वस्तिसे सदा हमारी रक्षा करो॥४॥'

आंगिरस कुत्सके सूक्त[१] (१।११४) से रुद्रके रूप-गुणका कुछ और पता लगता है—

"शक्तिशाली, जूडाधारी, शत्रुवीरो के नाशक रुद्रके लिये यह स्तुतिया हम लाते है, जिसमे कि दोपायो और चौपायोका कल्याण हो। इस ग्राममें सभी पुष्ट और अरोग रहें ॥१॥

"हम दीप्तिमान् यज्ञसाधक वकु कवि रुद्रको रक्षाके लिये आह्वान करते है। वह अपने दिव्य क्रोधको हमसे परे फेंके। हम उसकी सुमति (प्रसन्नता) चाहते है ॥४॥

"उस दीप्तिमान् सुन्दर, जटावान्, रूपधारी, द्यौलोकके वराहको नमस्कारसे हम आह्वान करते है। वह हाथमें अच्छे भेपज लिये हमारे वास्ते वर्म (रक्षा), सुख और घर प्रदान करे ॥५॥"

१६ वरुण—वरुण पुराना देवता है। विद्वानोका कहना है, कि इसीको पारसियोंने अहुरमज्द (असुरमेघ) माना। ईरानी और भारतीय आर्य शतवशकी शाखाके हैं। उसकी दूसरी शाखा वाले स्लावों (रूसियो, चेको आदि) में ईसाई होनेसे पहले पेरुन (परुन) *देवताकी बडी महिमा थी। पेरुन (परुन) यही वरुण है, इसमें[१] सन्देह नही। भारतमें इन्द्र ने वरुण के तेजको मलिन कर दिया, तो भी पुराने ऋषि वरुणकी प्रार्थना गद्‌गद् होकर करते है। वसिष्ठने कई ऋचायें वरुणकी स्तुतिमें रची है। यद्यपि वहा उसे विश्वे (सारे) देवोमें सम्मिलित करके वरुणको गौण बना दिया। वह कहते है[१] (७।३४)—

"सहस्र आखोवाले उग्र वरुण इन नदियोंके जलको देखते है ॥१०॥

"वह राष्ट्रोंके राजा, नदियोंके रूप है। वह अनुपम बल वाले और सर्वगामी हैं ॥११॥"

इन ऋचाओंसे जल और वरुणका सम्बन्ध स्पष्ट है।

---

*स्लावयान्ये व्-द्रेच्नोस्ति (न० स० देर्झाविन्, मास्क्वा १९४५)

वसिष्ठ वरुणकी स्त्री वरुणानीका भी उल्लेख करते हैं" (७।३४)—

"द्यौ-पृथिवी हमें अभिलषित धन दें, वरुणानी हमारी स्तुति सुनें। त्वष्टा उपद्रव-नाशमें हमारे लिये सुन्दर गृहपालक हो। वह सुदानी हमें धन दे ॥२२॥"

वसिष्ठने अपने सातवें मण्डलमें ८२-८५ सूक्तोंमें इन्द्र और वरुणकी साथ-साथ और ८६-८९ सूक्तोंमें केवल वरुणकी स्तुति की है। ६०-६५ सूक्तोंमें उन्होंने मित्र और वरुणका वर्णन किया है। इन सूक्तोंसे वरुणपर प्रकाश पड़ता है' (७। ६०)—

"पुकारे गये उदय होते हे सूर्य, आज (हमें) निष्पाप करो, मित्र और वरुणके लिये सत्य होओ। हे अदिति, अर्यमा, देवताओंके पास हम स्तुति करते तुम्हारे प्रिय हों ॥१॥"

केवल वरुणकी स्तुतिपरक वसिष्ठकी कुछ ऋचायें हैं" (७। ८६)–

"उस (वरुण) की महिमासे जन्म स्थिर हुये। जिसने विस्तृत द्यौ-पृथिवीको स्थापित किया। दर्शनीय महान् आकाश और नक्षत्रको उसने दोहरा फैलाया ॥१॥

"हे वरुण, देखनेका इच्छुक उस पापके बारेमें मैं पूछता हूं। जाननेकी इच्छासे मैं पूछने जाता हूं। (सभी) कवियोंने एक सा मुझे कहा— 'यह वरुण तुमसे क्रुद्ध है' ॥३॥"

"हे तेजस्वी दुर्धर्ष वरुण, क्या पाप था, कि तुम ज्येष्ठ-स्तोता (होते) अपने स्तुतिकर्त्ताको मारना चाहते हो, उसे मुझे बताओ, जिसमें मैं नमस्कारके साथ जल्दी तुम्हारे पास आऊं ॥४॥

"हमारे पैतृक द्रोहोंको छोड़ो जो हमने शरीरसे जो किया, उसे भी (छोड़ दो)। हे राजन्, पशु [illegible] चोरकी तरह, रस्सीसे बंधे बछड़ेकी तरह वसिष्ठको छोड़ दो ॥५॥

"पाप-रहित हो मैं दासकी तरह [illegible] (वरुण) देवकी [illegible] (स्वामी) देव चेताये। वह [illegible] करें ॥७॥"

भरद्वाजने देव-समुदायमें वरुणका नाम देकर वेगार सी टाली है। विश्वामित्रने जरूर वरुणके प्रति कुछ उदारता दिखलाई है, पर उतनी नही, जितनी कि वसिष्ठने। क्या इसीलिये तो वसिष्ठको मैत्रावरुणि (मित्र और वरुणका पुत्र) नही कहा गया? अपने मण्डल के अन्तिम सूक्त[१४] (३।६२) में विश्वामित्रने इन्द्र और मित्रके साथ वरुणकी प्रशसा की है—

"हे इन्द्र-वरुण, यह धनका इच्छुक महान् यजमान वरावर रक्षाके लिये तुम्हारा आह्वान करता है। मरुतो, द्यौ और पृथिवीके साथ तुम मेरी स्तुति सुनो ॥२॥

"हे सुकर्मा मित्र और वरुण, तुम दोनो हमारी गोशालाओको घृतसे पूर्ण करो। हमारे आवासोको मधुसे पूरा कर दो, सीच दो ॥१६॥"

वसिष्ठकी की हुई वरुणानीकी स्तुति को हम वतला चुके है[१५] (७।३४।२२)

१७ **वायु**—विश्वामित्रके पुत्र मधुच्छन्दा वायु देवताकी स्तुति करते हैं[१६] (१।२)—

"हे दर्शनीय वायु, आओ, सोम सजे हैं। उन्हें पीयो और स्तुति सुनो ॥१॥

"हे वायु, सोम छानते समय जाननेवाले स्तुतिकर्त्ता उक्थों (साम-गान) से अच्छी तरह तुम्हारी स्तुति करते है।

१८ **वास्तोष्पति**—घरोका देवता इस नामसे पुकारा जाता था। वसिष्ठने कहा है[१७] (७।५५)—

"हे रोगनाशक वास्तोष्पति, सभी रूपोमें आवेश कर तुम हमारे सुख-कर सखा वनो ॥१॥

"हे अर्जुन (गोरे) सरमा-पुत्र, पिशग (सुवर्ण वर्ण), जव खाते तुम दातो को दिखाते हो, तव ओठोंके पास हथियारकी तरह वे चमकते है। इस समय तुम सो जाओ ॥२॥

१९ **विश्वकर्मा**—ऋग्वेदी विश्वकर्माका पीछेके देवशिल्पी विश्वकर्मा से कोई सम्वन्ध नहीं है। विश्वकर्माका वर्णन ऋग्वेदके सवसे पीछेके दसवें मण्डलमे आया है। वहाके वर्णनमे वह विश्व (ससार) का वनानेवाला

जान पड़ता है। भुवन-पुत्र विश्वकर्मा इस सूक्त "(१०।८१) के ऋषि हैं, जो कल्पित मालूम होते हैं। भुवन नामको सूक्तकी पहली ऋचासे लिया गया है, और विश्वकर्माको इस सूक्तमें चार बार दोहराया गया है।

"जिसने हमारा पिता हो उन सारे भुवनको हवन किया। वह आशी-र्वादसे धनकी कामना करता पहले ढाँक कर दूसरेमें प्रविष्ट हुआ ॥१॥

"क्या अधिष्ठान (आधार) है, आरम्भ कौन था और कैसे (काम) हुआ था, जिसमें सर्वदर्शी विश्वकर्माने भूमिको उत्पन्न किया, (अपनी) महिमासे द्यौको बनाया ॥२॥

"चारों ओर चक्षु और चारों ओर मुंह, चारों ओर बाहु और चारों ओर पैर वाला वह एक देव, उत्पन्न करते दोनों बाहुओं-पैरोंसे द्यौ और पृथिवीको कंपित करता है ॥३॥

"क्या वन था, क्या वह वृक्ष था, जिसने (विश्वकर्माने) द्यौ और पृथिवीको गढ़ा। हे मनीषियो, मनसे यह पूछो जो कि भुवनोंको धारण करते, (वह) जिसपर अधिष्ठित हुआ ॥४॥"

२० विष्णु—यह ऋग्वेदके गौण देवताओंमें है। पीछेके विष्णु-की स्तुतिमें ऋग्वेदके इन मंत्रोंका सहारा उसी तरह लिया गया है, जिस तरह शिवकी स्तुतिमें ऋग्वेदके कपर्दी रुद्रका। पर, वैदिक आर्योंको पौराणिक या महाभारतके विष्णु और रुद्रसे कोई मतलब नहीं था। वसिष्ठ-ने एक सूक्त " (७।१००) में विष्णुकी महिमा गाई है—

"दान-इच्छुक मद बहुतों द्वारा यशोगान किये गये विष्णुको हवि देता है। जो मनुष्य विष्णुकी सेवा करता है वह इतना (शीघ्र ही) पाता है ॥१॥

"इस देवने सौ किरणोंसहित इस पृथिवीको अपनी महिमासे तीन बार विक्रमण किया। वृद्धसे भी वृद्ध शक्तिशालियोंसे भी शक्तिशाली विष्णु दीप्तिमान् हों, उस वृद्धका नाम हो ॥३॥

"मनुष्यको क्षेत्रके लिये देनेकी इच्छासे विष्णुने इस पृथिवीका विक्र-मण किया (नापा)। उसकी स्तुति करनेवाले जन स्थिर हैं। सुन्दर निर्माणवाले विस्तृत क्षितिको उस (विष्णु)ने बनाया ॥४॥"

२१. सरस्वती—सरस्वती वेदकी एक प्रमुख देवी थी। कुरुक्षेत्रके पास बहनेवाली सरस्वती भी पीछेकी गगाकी तरह ऋग्वेदिक आर्योमें एक श्रेष्ठ देवी मानी जाती थी। सरस्वती का शब्दार्थ सर (जल) वाली है। गगा अपनी धारासे अलग नही है, पर सरस्वती धारासे अलग भी देवी मानी जाती थी। इसके रूपका कुछ पता वसिष्ठ और विश्वामित्र-के मन्त्रोंसे मालूम होता है। वसिष्ठने कई सूक्तों" (७।९५-९६) में सरस्वती की स्तुति की है। वह पहले सूक्तमें" (७। ९५) कहते है—

"यह सरस्वती पाषाणमें दुर्गकी तरह पक्ष और वेगवाले जलके साथ दौडती है। अपनी महिमासे अन्य सिन्धुओ (नदियो) को बाधित करती वह रथीकी तरह जाती है॥१॥

"नदियोमें शुचि, गिरियोंसे समुद्र तक जाती, अकेली यह सरस्वती मनुष्योंके लिये भुवनके भूरि धनको चेताती घी और दूधको दुहाती जाती है॥२॥

"हे सुभगा सरस्वती, तुम्हारे लिये यह वसिष्ठ यज्ञका द्वार खोलता है। हे शुभ्रवर्णा, बढो, स्तोताको अन्न दो। तुम सदा हमें स्वस्तिके साथ पालन करो॥६॥"

अगले सूक्त" (७। ९६) मे वसिष्ठ कहते है—

"हे वसिष्ठ, नदियोमें बलवती सरस्वतीके लिये बडा गान करो। द्यौ और पृथिवीमें सरस्वतीको ही सुन्दर स्तोमो (स्तुतियो) द्वारा पूजो॥१॥

"हे शुभ्रवर्णा, तेरी महिमासे पुरु लोग (दिव्य और मानुष) दोनो प्रकार का अन्न प्राप्त करते है। वह मरुतोकी सखी रक्षिका (सरस्वती) धनिकोंके धनको हमारे पास भेजे॥२॥"

विश्वामित्रको सरस्वतीकी महिमा विशेष तौरसे गानी चाहिये थी, क्योंकि उनके कुलवाले कुशिक लोग सरस्वतीके तटपर रहते बतलाये जाते है। लेकिन, उन्होने ऐसा पक्षपात नही दिखलाया। एक जगह" (३।४।८) इळा और भारतीके साथ सरस्वती और सारस्वतोका उल्लेख उन्होने किया है, जिसे हम इळाके प्रकरणमे देख चुके है।

भरत जनके ऋषि देवश्रवा, देववात एक ही जगह सरस्वतीके साथ उसकी दो सहायक नदियोंका वर्णन करते हैं" (३। २३। ४)—

"हे अग्नि, हम अन्नस्थान उत्तम पृथिवीमें सदा सुदिनके लिये तुम्हारी स्तुति करते हैं। दृषद्वती, आपया, सरस्वतीके तटके मनुष्योंके लिये धनयुक्त हो तुम दीप्तिमान बनो ॥४॥"

इस ऋचामें आई दृषद्वती, आपया, सरस्वती हरियानामें बहनेवाली घग्गर, मरकण्डा और सरस्वती नदियाँ हैं, यह हम पहले कह चुके हैं।

भरद्वाज के कथनानुसार" (६।६१) यह भी मालूम होता है, कि सरस्वतीने ही दिवोदासको प्रदान किया था—

"इस सरस्वतीने दानी वध्रयश्वको ऋण-रहित अपराजित दिवोदास प्रदान किया। हे सरस्वती, जिसने लोभी, कजूस पणिका भक्षण किया, उस तेरा दान बल-युक्त है ॥१॥

"यह सरस्वती बिस खोदनेवालेकी तरह अपनी बल-शक्ति-लहरोंसे गिरियोंकी सानुको तोड़ती है। हम तटोंके तोड़नेवाली सरस्वतीकी भक्ति सुन्दर स्तुतियों द्वारा करते हैं ॥२॥

"प्रियोंमें प्रिया सुसेविता सात बहनोंवाली सरस्वती हमारे लिये स्तुति-योग्य हो ॥१०॥

"हे सरस्वती, हमें उत्तम धनमें ले जाओ, हमें हानि न पहुँचाओ। जलसे हमारा घन न करो। हमारी मित्रता और पड़ोसको स्वीकार करो। तुम्हारे क्षेत्रमें हम अरण्यमें न भटकें ॥१४॥"

२२ सविता—गायत्री छन्दमें विश्वामित्र द्वारा रचित सविताकी स्तुति मशहूर है। यद्यपि गायत्री आठ अक्षरोंवाले तीन पादोंके किसी भी रोति छन्दको कहते हैं, लेकिन सविताकी महिमा गानेके कारण इस ऋचाका सावित्री, या गायत्री नाम हो गया।" (३। ६२)—

"सविता देवताके उस श्रेष्ठ तेजको हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करे ॥१०॥

"भग सविता देवतासे हम अन्न माँगते हैं ॥११॥

वह सुकृती सविता देवता (अपनी) सुनहली बाहुओंको सवन देनेके लिये ऊपर उठाते हैं। युवा सुदक्ष महान् सविता लोकके रक्षणकेलिये दोनो हाथोंको घृत (जल)से प्रेरित करते हैं ॥११॥ [७१] (६ ७१)

"सुनहली जीभवाले हे सविता, सुखद अहिंसक तेजोंसे आज हमारे घरकी रक्षा करो। नये सुखके लिये रक्षा करो। अहित करनेवाला हम पर शासन न करे ॥३॥

वह सुवर्णपाणि, लौह-हनु, मधुर-जिह्व, यशस्वी सविता देवता प्रदोष कालमें उगें। वह दाताके लिये बहुत अन्न प्रेरित करें ॥४॥

हे सविता, आज धन, कल धन हमारे लिये दिनप्रति-दिन धन प्रदान करो। हे देव, इस स्तुति द्वारा बहुत निवासके हम धनभागी होवें ॥६॥

२३ सोम—ऋग्वेदका नवम मंडल सोमका मंडल है। भरद्वाज, वसिष्ठ और विश्वामित्र तीनो ऋषियोंने सोमकी प्रशंसामें सूक्त रचे हैं। सोम भांगकी जातिका एक नशीला पौदा था, जिसमें ऋषियोंने दिव्यताकी कल्पना की। पेय सोम और उसमें वास करने वाले सोम-देवताके भी गुणोंका वह वर्णन करते हैं। इन्द्र, अग्नि और दूसरे देवता सोमके बहुत प्रेमी थे। भरद्वाजने उन्हींके प्रकरणमे सोमकी महिमा गाई है। उनके पुत्र गर्गने एक सूक्त ही [७३] (६। ४७) सोमके सम्बन्धमें रचा है, जिसमें पेय सोमके गुणोंका भी वर्णन मिलता है—

"यह निश्चय स्वादु है, और यह तीव्र मधुमान (मीठा) है, और यह रसवान् है। इसके पीनेवाले इन्द्रको युद्धमें कोई परास्त नहीं कर सकता ॥१॥

"यह स्वादु है, यह अति मद-दायक है, जिससे कि इन्द्र वृत्रयुद्धमें मस्त हुआ, जिसने शम्बरकी निन्नानवे पुरियोंको नष्ट किया ॥२॥

"जिसने पृथिवीके विस्तार, द्यौके शरीरको बनाया, वह यह (सोम) है। सोम तीन चीजों (ओषध, जल, गाय) में पीयूष (अमृत) देता है, विस्तृत आकाशको धारण करता है।"।४।

वसिष्ठ, विश्वामित्र और वामदेवने सोमकी प्रशंसा देवताओंके दिव्य पानकी तरह की है।

असित, देवल ऋषियोंके दो होनेका सन्देह वैदिक-परम्परामें मिलता है। पर, जान पडता है, ऋषिका असली नाम देवल था, अधिक गोरा होनेके कारण उन्हें अ-सित कहा जाता था। असित बौद्ध त्रिपिटकमें मिलते हैं। मज्झिम निकायके अस्सलायण सुत्त (२।५।३) में बुद्धने असित-देवलको एक महान् ऋषिके तौरपर याद किया हैं। देवलने सात ब्राह्मण ऋषियोका मान-मर्दन किया था। देवलसे रुष्ट होकर सातो ऋषियोंने शाप दिया, पर देवलपर उसका कोई प्रभाव नही पडा। ऋषियोंने पूछा—"आप कौन है?"

जवाब मिला—"आप लोगोंने असित देवल ऋषिको सुना है?"

"हां, भो।"

"वही मै हूँ।"

वह गोत्रसे काश्यप और सोमके खास तौरसे ऋषि थे,। उन्होने नवें मण्डलमें सोमकी स्तुतिमें १९ सूक्त (६–२४) रचे है।

नवा मण्डल सारा ही सोमकी स्तुतिवाले सूक्तोका सग्रह है, जिसके ऋषि हैं—१ मधुच्छन्दा (विश्वामित्र-पुत्र), २ मेधातिथि, ३ कण्व आंगिरस, ४ शुन शेप अजीगर्त-पुत्र, ५ हिरण्यस्तूप आंगिरस, ६. असित-देवल, ७ दृढच्युत, ८ इध्मवाह दृढच्युत-पुत्र, ९ नृमेध आंगिरस, १० प्रियमेध काण्व, ११ बिन्दु आंगिरस, १२ रहूगण गौतम-पिता, १३ श्यावाश्व ऐतरेय, १४ तृत आप्त्य, १५ प्रभूवसु आंगिरस, १६ बृहन्मति आंगिरस, १७ मेध्यातिथि काण्व, १८ अयास्य आंगिरस, १९ कवि भृगु-पुत्र, २० उचथ्य आंगिरस, २१ अवत्सार काश्यप, २२ अमहीयु आंगिरस, २३ यमदग्नि भार्गव, २४ निध्रुवि काश्यप, २५ कश्यप मरीचि-पुत्र, २६ भृगु वरुण-पुत्र, २७ वैखानस, २८ भरद्वाज बृहस्पति-पुत्र, २९ सोम आत्रेय, ३० विश्वामित्र गाथि-पुत्र, ३१ वसिष्ठ मित्रावरुण-पुत्र (१९-२१), ३२ पवित्र आंगिरस ३३ वत्सप्री भलन्दन-पुत्र, ३४. रेणु विश्वामित्र-पुत्र, ३५ ऋषभ विश्वामित्र-पुत्र, ३६ हरि-

मन्त आगिरस, ३७ कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, ३८ वसु भरद्वाज, ३९. प्रजापति वाक्-पुत्र, ४० वेन भार्गव, ४१ आकृष्टमाष आत्रेय, ४२ सिकता आत्रेयी, ४३. अज आत्रेय, ४४ गृत्समद, ४५ उशना काव्य, ४६ नोधा गोतम-पुत्र, ४७ प्रस्कण्व कण्व-पुत्र, ४८ प्रतर्दन दिवोदास-पुत्र, ४९ इन्द्रप्रमति, ५० वृपगण, ५१ मन्यु, ५२ उपमन्यु, ५३ व्याघ्रपाद वासिष्ठ, ५४ शक्ति वसिष्ठ-पुत्र, ५५ कर्णश्रुत्, ५६ मृलीक, ५७ वसुक्र, ५८ पराशर शक्ति-पुत्र, ५९ वत्स आगिरस, ६० अम्बरीष वृषागिर-पुत्र, ६१ ऋजिश्वा भरद्वाज-पुत्र, ६२ रेभ काश्यप, ६३. अध्रिगु श्यावाश्व-पुत्र, ६४ ययाति नहुप-पुत्र, ६५ नहुप मनु-पुत्र, ६६ मनु सवरण-पुत्र, ६७ विश्वामित्र वाक्-पुत्र, ६८ प्रजापति वाक्-पुत्र, ६९ तृत आप्त्य, ७१ पर्वत काण्व, ७२ नारद काण्व, ७१ शिखण्डिनी काश्यपी, ७२ अग्नि चक्षु-पुत्र, ७३ चक्षु मनु-पुत्र, ७४ मनु आप-पुत्र, ७५ गौरिवीति शक्ति-पुत्र, ७६ उरु आगिरस, ७७ ऊर्ध्वसद्मा आगिरस, ७८ कृतयशा आगिरस, ७९ ऋणचय, ८० विष्ण्य ईश्वर-पुत्र, ८१ त्र्यरुण, ८२ त्रसदस्यु, ८३ अनानत परुच्छेप-पुत्र, ८४ शिशु आगिरस। इन ८४ ऋषियो द्वारा रचित सोम-स्तुतिया नवें मण्डलके रूपमें एकत्रित कर दी गई हैं। इनमें एक ओर भरद्वाजसे पहलेके भी कश्यप आदि ऋषि हैं, और दूसरी तरफ वसिष्ठके पुत्र शक्ति तथा उनके पुत्र पराशर और गौरिवीतिकी ऋचायें भी मौजूद हैं। मण्डलका आरम्भ विश्वामित्र-पुत्र मधुच्छन्दा की ऋचा से हुआ है।

§२ पितर आदि

इन्द्र आदि देवताओंके अतिरिक्त आर्य अपने पहले के पूर्वजो, पितरोको भी पूजते थे, और मानते थे, कि वह देवताओंके लोकमें विराजमान हैं। यम-पुत्र शख, यह सदिग्ध सा नाम है, उसी तरह विवस्वान्के पुत्र यम भी कल्पित हैं। इन दोनो पिता-पुत्रोंने पितरोका काफी गुणगान किया है[९८] (१०।१४)—

"यमने हमारे गमनको सबसे पहले जाना। उनका यह मार्ग नष्ट नहीं किया जा सकता। जहां हमारे पुराने पितर गये, उसी अपने रास्ते (सारे) जन्तु जायेंगे ॥२॥

"कव्य (पितरोंके लिये पूजा-द्रव्य) से मातली, अंगिरो (पुरोहितों) से यम, ऋक्वो (ऋचाओं) से बृहस्पति बढ़े। जिनको देवताओंने बढ़ाया, और जिन्होंने देवोंको, उनके लिये स्वाहा (है), दूसरे (पितर) स्वधासे प्रसन्न होते हैं ॥३॥

"हे यम, अंगिरो-पितरोंके साथ इस प्रस्तर (यज्ञ) में आकर बैठो। तुम्हें कवियोंके गाये मन्त्र (यहां) लावें। हे राजन्, इस हविसे तुम प्रसन्न हो, यजमानको प्रसन्न करो ॥४॥

"जाओ, प्राचीन मार्गोंसे (वहां) जाओ, जहां कि हमारे पुराने पितर गये हैं। यम और वरुणदेवको देखो। दोनों राजा स्वधासे प्रसन्न हैं ॥७॥"

"चार आंखोंवाले सरमा-पुत्र दोनों काले कुत्तोंको अच्छे मार्गसे हटाओ। और यमके साथ आनन्दसे रहते विज्ञ पितरोंके और यमके साथ जाओ ॥१०॥

"हे यम, मनुष्योंके द्वारा प्रशंसनीय पथरक्षक, घररक्षक तुम्हारे वह जो चार आंखोंवाले दोनों श्वान हैं, उनके द्वारा हे राजन्, इनकी रक्षा करो और इसे स्वस्तिसे निरोग रक्खो ॥११॥

"बड़ी नाकोंवाले प्राणभक्षक अतिबलवान् यमके दोनों दूत लोगोंके पीछे-पीछे चलते हैं। वह दोनों (हमें) सूर्यको देखनेके लिए पुनः यहां अच्छा प्राण प्रदान करें ॥१२॥

"यमके लिये सोम छानो, यमके लिये हविका हवन करो। अग्निदूत अलंकृत यमके पास जाता है ॥१३॥

"यम राजाके लिये मधुरतम (अतिमधुर) हविका हवन करो। पुराने पथकर्त्ता पूर्वज ऋषियोंके लिये यह (मेरा) नमस्कार है ॥१५॥"

यम नामके किसी ऋषिने अपने सूक्तमें यमकी महिमा गाई है। उनके कल्पित पुत्र शंखने पितरोंके बारेमें कहा है" (१०।१५)—

"उत्तम, मध्यम और साधारण सोमपायी पितर अनुग्रह करें। अमित्र होकर जो धर्मज्ञ हमारे प्राणरक्षाके लिये यज्ञमें आये है, वे हमारे पितर हमारी रक्षा करें।।१।।

"जो कि पूर्वके है, जो कि ऊपर गये है। जो पार्थिव लोकमे बैठे है, या जो निश्चय सम्पन्न लोगोमे है, आज पितरोंके लिये यह नमस्कार(है)।।२।।

"पितरो, लाल ज्वालाओंके पास बैठे दाता मनुष्यके लिये धन दो। उसको पुत्र दो, उसे यहा उत्साहित करो।।७।।

"जो हमारे पूर्वके पितर वसिष्ठोने सोमपानकी कामना की थी, उनके साथ हविको प्राप्त कर यम सुखी हो तृप्त हो।।८।।

"जो अग्निमे दग्ध, जो अग्निमे अदग्ध (न जलाये गये) द्यौलोकके मध्यमें स्वधासे सतुष्ट (पितर) है। हे स्वराज, उनके साथ एक हो इस सुनीति शरीरको यथाशक्ति बनाओ।।१४।।"

पितर-सम्बन्धी इन ऋचाओंसे आर्योका अपने मृत पितरोंके सबधमें क्या विश्वास था, इसका पता लगता है। वह समझते थे, कि पितर यम देवताके साथ विशेष सम्बन्ध रखते है, वह उनके कृपापात्र है। अपनी सन्तानोंके पास उनकी पूजा-भक्ति स्वीकार करनेके लिये वह आते है। यमके चार-चार आखवाले दो काले कुत्ते परलोकके यात्रियोंके लिये बड़े भयकर जन्तु है। लबी नाकोवाले दो प्राण खानेवाले यमदूत भी कम भयकर नही है। देवताओंके लिये स्वाहारूपी अन्न आधार है, और पितरोंके लिये स्वधा।

§४ सकाम कर्म

ऋग्वेदके ऋषियो और उनके प्राचीन वशजोको निष्काम कर्ममे कोई वास्ता नही था। वह गोसाईजीके इस वाक्यके माननेवाले थे—"सुर नर मुनिकी ये ही रीती। स्वारथ लागि करहि सब प्रीती।" वह देवताओंके लिये यज्ञ, हवन या सोमपान करते-कराते उनके सामने बराबर अपनी अभिलाषायें रखते थे। उनका मोटो था—"देहि मे ददानि ते" (मुझे दो

फिर मैं तुम्हें दूंगा)। वृहस्पति-पुत्र भरद्वाजकी अग्निसे यह प्रार्थना उनके भावको बतलाती है" (६।१)—

"जो तुमने द्यौ और पृथिवीको विस्तृत किया, (वह तुम) प्रजनासे प्रशमनीय और प्रभासे रक्षक हो। हे अग्नि, बहुत अन्न और विशेष धन द्वारा हम लोगोको धनवान् बनाओ, दीप्त करो ॥११॥

"हे वसु, हमें मनुष्यों-सहित धन दो, हमारे पुत्रों-पौत्रोंको बहुतपशु दो। पहले (जिनकी) कामना की गई, (वह) बड़ा धन, भद्र यश हमें प्राप्त हो ॥१२॥

"हे राजा अग्नि, तुमसे हम बहुत प्रकारके धन और धान्य पायें। हे बहुत श्रेष्ठ राजा अग्नि, तुम्हारे पास बहुतायत है तुम्हारे पास बहुतसे धन हैं ॥१३॥"

भरद्वाज अग्निसे सौ वर्ष जीनेकी कामना करते हैं" (६।४)—

"हे अग्नि, शत्रुओंसे रहित रास्तेसे हमें शीघ्र स्वस्तिके पास पहुंचाओ। पाप दूर करो, स्तुति करनेवाले सूरियोंको जो देते हो, उन सुखके साथ हम सुन्दर वीर सन्तानों-सहित सौ वर्ष जीयें ॥८॥"

उनकी अग्निसे दूसरी याचना है" (६।५)—

"हे अग्नि, तुम्हारी रक्षासे उस कामनाको हम पायें। धन-युक्त, वीर-सन्तान-सहित धन प्राप्त करें। अन्नकी कामना करते अन्नको पायें। तुम्हारे अजरामर यशको प्राप्त करें ॥७॥"

और भी" (६।२४)—

"हे इन्द्र, भक्तोंको तुम रक्षाके लिये सेवन करो। यहांके शत्रुओंसे (उनकी) रक्षा करो। वन और घरमें शत्रुओंसे हमारी रक्षा करो, हम सौ हिम (वर्ष) सुवीर्य सन्तानों-सहित आनन्द करें ॥१०॥"

वसिष्ठ भी आदित्य देवतासे सौ शरद (वर्ष) जीनेकी कामना करते हैं" (७।६६)—

"यह देवहितैषी श्वेत-चक्षु उग रहा है।

कल्याणके लिये सात वहिनें (किरणें) सुनहले रथमें सूर्यको वहन करती है ।।१५।।

"वह देवहितैषी शुक्लनेत्र उग रहा है। हम सौ शरद (वर्ष) देखें, सौ शरद जीयें ।।१६।।"

वसिष्ठ मरुत् देवताओंसे कामना करते हैं[५] (७।५९)—

"सुगन्धी पुष्टिवर्धक त्र्यम्बककी हम उपासना करते हैं। वह बधनसे बेरकी तरह मुझे मुक्त करे, अमृतसे नही ।।१२।।"

फिर वरुणसे वसिष्ठ कहते हैं[६] (७।८८)—

"इन ध्रुव भूमियोमें रहते अदितिके पास (हम) रक्षाकी इच्छा करते है, वरुण, हमें बधनसे मुक्त करे। तुम सदा स्वस्तिके साथ हमारी रक्षा करो ।।७।।"

विश्वामित्रकी एकसे अधिक वार प्रार्थना है[७] (३।३०।२२,३।३१।२२)

"हम शीघ्रगामी, मघवा (धनवान्) श्रेष्ठ नेता, श्रोता, उग्र शत्रुओंके घातक धनवान् इन्द्रको इस आये युद्धमें रक्षाके लिये यज्ञमें पुकारते हैं। ।।१०।।"

वामदेव इन्द्रसे प्रार्थना करते हैं[८] (४।३०)—

"हे वृत्रहन्ता, तुमने अन्धो और पगुओ दोनोको मुक्त किया। तुम्हारा वह सुख हटाया नही जा सकता ।।१९।।"

दिवोदास-पुत्र परुच्छेपने पिशाचोंसे बचनेके लिए इन्द्रसे प्रार्थना की है[९] (१।१३३)—

"हे इन्द्र, चिल्लानेवाले पिशग (पीले) रगवाले पिशाचका नाश करो, सारे राक्षसोंको खतम करो ।।५।।"

सूर्याके रूपमें कोई स्त्री या पुरुष ऋषि, पत्नीकी कामना करता है[१०] (१०।८५)—

"तुम दोनो यही रहो, विछडो नही, पुत्रों और नातियोंके साथ खेलते अपने गृहमें मुदित रहते सारी आयुको प्राप्त करो ।।४२।।"

§५ अर्चना की सामग्री

यह बतला चुके हैं, कि देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये सप्तसिन्धुके आर्योंके पास दो क्रियायें थीं—अग्निमें हवन करना और सोम तैयार करके चमुओं और कलशोंमें रखकर देवताओंको अर्पित करना। हवनकी सामग्री नाना प्रकारकी होती थी, जिनमेंसे कितनों हीका पता विश्वामित्रकी ऋचाओंसे मालूम होता है" (३।२८)—

"हे जातवेद, स्तुतिरूपी धनवाले अग्नि, प्रातः सवनमें हमारे पुरोडाश हविका सेवन करो ॥१॥

"हे अति तरुण अग्नि, तुम्हारे लिये परिष्कृत पुरोडाश पकाया गया है, उसका तुम सेवन करो ॥२॥

"हे अग्नि, पुकारे गये तुम दिनके अन्तमें पुरोडाशको खाओ, तुम साहसके पुत्र और यज्ञमें अवस्थित हो ॥३॥

"हे जातवेद कवि, यहाँ मध्याह्नवाले सवनमें पुरोडाशका सेवन करो। हे अग्नि, यज्ञमें धीर लोग महान् तुम्हारे भाग को नष्ट नहीं करते ॥४॥

"हे साहसके पुत्र अग्नि, तृतीय सवनमें हवन किये गये पुरोडाशकी कामना करो। और स्तुतिके साथ अमर देवताओंमें अविनाशी जागरूक रत्नवान् सोम को (ले जाकर) स्थापित करो ॥५॥

"हे जातवेदा अग्नि, आहुतिको बढ़ाते दिनके अन्तमें पुरोडाश सेवन करो ॥६॥"

देवताओंके लिये हवन या सोमपानकी क्रियायें तीन समय हुआ करती थीं, जिनको तीन सवन कहते थे। सबेरे होनेवालीको प्रातःसवन, मध्याह्नमें होनेवाली को माध्यन्दिन सवन और शामवालीको तृतीयसवन या सायंसवन कहते थे। विश्वामित्रने अपने इस सूक्तमें तीनों सवनोंका उल्लेख किया है। पुरोडाश पीछे दूधमें पके चावलवाली खीरको कहा जाने लगा, लेकिन सप्तसिन्धु के आर्य चावलका कहीं जिक्र नहीं करते। उसकी जगह जौ को डालकर वह पुरोडाश बनाते थे। इसका यह अर्थ नहीं, कि सप्तसिन्धुमें चावल नहीं होता था। मोहनजोदड़ो और हड़प्पाके लोग चावल खाते थे, पर हमें

"जैसे श्रुवामे घी, चमूमें सोम वैसे ही हे अग्नि, हम तुम्हारे मुंहमें हवि रखते हैं। हमें तुम अन्न, धन, प्रशस्त सुवीर्य सन्तान और बडे यशको प्रदान करो ।।१५।।"

वसुक्र ऐन्द्र ऋषि इन्द्रके लिये वृषभ (साड) और मोटे मेषके पकानेकी बात करते हैं" (१०।२७)—

इन्द्र कहते हैं—"हे भक्त, मेरा स्वभाव है, कि सोम सवन करने वाले यजमानको (धन) देता हू। जो अ-हव्यवस्तु देता है, सत्यको नष्ट करता है, पापी और चोर है, उसका मैं नष्ट करनेवाला हू ।।१।।"

ऋषि कहते हैं—"न-देवभक्तो (अपना) शरीर भरने वालोको जब मैं युद्धके लिये ले जाता हूँ। तब तुम्हारे लिये मोटे वृषभको पकाता हू, और पद्रहवी (अमावस्या) को तीव्र छाने हुए सोमका सेचन करता हू ।।२।।"

वही ऋषि फिर" (१०।२७।) कहते हैं—

"मोटे मेषको वीरोने पकाया था, जूयेके स्थानमें पासे फेंके हुए थे। दो बडे धनुषोको लेकर (वह) पवित्र-युक्त शोधन करते जलके भीतर विचरण करते हैं ।।१७।।"

दीर्घतमा ऋषि सीधे घोडेको पकते बतलाते हैं" (१।१६२)—

"जो पक्व घोडेको देखते हैं। जो कहते हैं 'सोधा है, देवताओंको प्रदान करो'। जो घोडेके मास-भोजनका सेवन करते हैं, उनकी कामना हमें प्राप्त हो ।।१२।।

"जो (यह) मास पकानेकी उखा (हडिया) में (उसे पकाते) देखते, जो पात्रोमें जूसको डालते है। चरुओंके मुंहको ढाक गरम रखते, सूना (काटनेके पीढे) पर अश्वको सजाते हैं ।।१३।।"

गाय, घोडे, मेषके अतिरिक्त अजा (बकरी) मासको भी देवताओंको अर्पित किया जाता था, इसे बतलानेकी अवश्यकता नही।

§६. मन्त्र-तन्त्र

देवताओको हवि और सोमसे प्रसन्न करके ऋषि प्रिय वस्तुओको

मागते और अप्रियको हटाना चाहते थे। इनके अतिरिक्त मन्त्र-तन्त्र द्वारा भी वह अनिष्ट-निवारणकी कोशिश करते थे, यद्यपि उतना नही, जितना कि पीछे उसे देखा जाता है। आर्य-स्त्रियोंको जादू-टोनेपर ज्यादा विश्वास था, वह इसके लिये जडी-बूटियोका भी इस्तेमाल करती थी। इन्द्राणीके नामसे किसी कल्पित ऋषि-स्त्रीने सौतसे त्राण पानेके लिये कहा है।[101] (१०।१४५)—

"इस अतिवलवान् वनस्पति ओषधिको खोदती हू, जिसके द्वारा सौतको बाधा दी जाती, जिसके द्वारा पतिको अच्छी तरह प्राप्त किया जाता है ॥१॥

"हे उत्तान-पर्णवाली बलवाली, देवोंकोपसन्द, सुभगे (ओषधि), सौतको मुझसे दूर भगा और पतिको केवल मेरा बना ॥२॥

"मै उत्तम हू, हे उत्तमे, मै उत्तमसे उत्तम बनूं, और जो सौत है, वह मुझसे नीचे से और नीचे हो ॥३॥

"उस (सौत) का नाम नही लेती, उस जनमें मन नहीं प्रसन्न होता। मै सौतको दूरसे दूर ही भेजती हूँ ॥४॥

"मै शक्तिमती हू, और (हे ओषधि,) तुम अत्यन्त शक्तिमती हो। हम दोनों शक्ति-युक्त हो मेरी सौतको परास्त करें ॥५॥"

यह टोटका-टोना ऋग्वेदके दसवें मण्डलमें आया है, जो उसके बहुत पीछे रचे गये भागोमेंसे है। टोटके-टोनो और मन्त्रोका अधिक प्रयोग अथर्ववेदमे मिलता है।

६७ परलोक

ऋग्वेदमें कही ऐसा वर्णन नहीं मिलता है, जिससे मालूम हो, कि सप्तसिन्धुके आर्य पुनर्जन्मको मानते थे। मरने के बाद अपने कर्मोंके अनुसार दूसरे लोकोंमें जाना उन्हें मान्य था। यमलोक और स्वर्ग दो परलोकोंका पता लगता है।

१ **यमलोक**—यह यमका लोक था, जिसका वर्णन हम यम देवताके साथ कर चुके[1] हैं। इसके बारेमें आर्य कहते थे[102] (१०।१४।१२)—

"जहा हमारे पूर्वके पितर गये।

यमलोक तक पहुचनेके रास्तेमें चार आखोवाले भयकर काले कुत्तोका वर्णन भी हम कर चुके हैं।

२. **स्वर्ग**

कक्षीवान् ऋषि देवभक्तोको देवोके पास जानेकी बात कहते हैं[103] (१।१२५)—

"जो देवोंको तृप्त करता है, वह देवोके पासवाले स्थानमें जाता है, नाक (स्वर्ग) पीठपर आश्रित हो अधिष्ठित होता है। उसके लिये आप (जलदेवता) घृत प्रदान करते हैं। सिन्धु, यह दक्षिणा उसको सदा मनस्तृप्ति करती है ।।५।।"

कश्यप मारीच ऋषि स्वर्गको सदा ज्योतिमान्, सुख-युक्त अमृत-लोक[104] (९।११३।७-११) कहते हैं, और वहा आनन्द, मोद, प्रमोदका होना बतलाते हैं (११)।

ऋग्वेदमें धर्म-कर्म, देवताओ, पूजा-सामग्री और स्वर्ग-परलोकके बारेमें जो बातें आई हैं, वह सक्षेपमें यही है।

---

[1]देखो पृष्ठ २०३

अध्याय १६

ज्ञान-विज्ञान

ऋग्वेदिक आर्य ताम्र-युगके अन्तमें थे, कृषि भी उनकी जीविकाका साधन थी, पर उसमें पशुपालनकी प्रधानता थी। उस समयके कपड़ा बुनना आदि शिल्पोंके बारेमें हम कह चुके हैं*। इनका ज्ञान उनको अवश्य था।

§१. कृषि

१ हल, फाल

कृषिके बारेमें हम पहिले कुछ कह आये हैं। हलका उपयोग वह करते थे, और सीरा (नदी, हल) का भी उल्लेख मिलता है (४।१९)। वामदेव कहते हैं—

"इन्द्रने वृत्रको मारकर पहिलेकी उषाओं, शरदों और स्त्री सिन्धुओं को मुक्त किया। चारों तरफ मौजूद बाधी गई सीराको पृथिवीके ऊपर बहनेके लिये मुक्त किया ॥८॥"

सीरा यहां नदी को कहा गया है। नदी और हराई दोनोंके लिये सीरा कहना उनकी आकारकी समानताके कारण था।

बुध सौम्य भी सीरा (हलकी हराई)के बारेमें कहते हैं (१०।१०१)—

"सीराको जोड़ो, जूयेको फैलाओ। यहां (इस) स्थानमें बीज बोओ। और स्तुतिसे हमारे लिये भरपूर अन्न हो। पास पकी फसलमें हंसुये पहुँचें ॥३॥"

"कवि सीराओंको जोड़ते हैं, जूयेको पृथक् करते हैं। देवोंके लिये सुन्दर स्तोत्रके साथ धीर हैं ॥४॥

---

*देखो पृष्ठ ३४-३५

'पशु-प्याव बनाओ, रस्सी (वरहा) जोडो। पानीवाले गडहेसे हम सुसेचन करते (उसे) निरन्तर सीचें ।।५।।

"पशुओका प्याव तैयार है, सुसेचन (के लिये) जलवाले अक्षय कुये (अवत)में सुवरत्र (वरहा, रस्सा) है ।।६।।

"घोडोको तृप्त करो, हित (वस्तु) पाओ, स्वस्तिके साथ वहन करनेवाले रथको तैयार करो। द्रोण भरके पत्थरके चक्केवाले असत्रकोश-(मान बँधे) युक्त कुण्डको मनुष्योके पीनेके लिये भरो ।।७।।"

२. कुआ

पजाव जैसी जगहमें उस समय भी खेतीके लिये और आदमियो-पशुओ के पीनेके लिये भी आजकी तरह ही कुओकी बडी अवश्यकता थी। पानी स्वाभाविक स्वयज और खनित्रिय (खोदकर निकाले) दो प्रकारके होते थे। यश वासिष्ठके कथनसे मालूम होता है '(७।४९)—

"जो जल दिव्य या खनित्रिय अथवा जो अपने उत्पन्न बहते है। जो समुद्रार्थ शुचि पवित्र जलदेविया है, वह मेरी रक्षा करें ।।२।।"

भरद्वाज भी कूए (केवट) का उल्लेख करते है '(६।५४)—

"हमारी गौवें नष्ट न होवें, हमारी (गौवें) मारी न जायें (वह) कुएमें न गिरें। विना हानिके (गोष्ठ में) आवें ।।७।।"

गृत्समद भी कुए (उत्स) का उल्लेख करते है '(२।१६)—

"तुम शत्रुनाशक हो, युद्धमें नावकी तरह हम तुम्हारे पास जाते है, सवनमें ब्रह्माके स्तोत्र-वचनके साथ जाते है। हमारे इस वचनको अच्छी तरह जानो। हम कुयेंकी तरह इन्द्रको धनसे सीचेंगे ।।७।।"

३. कुल्या

पीछे और आज भी कुल्या या (कूल) छोटी-बडी नहरोको कहते है, लेकिन उस समय कुल्याका अर्थ कूल या तटवाली था, जो नदी या नहर दोनो का नाम था। कृष्ण आगिरस कहते है '(१०।४३)—

"जैसे जल सिन्धुकी ओर वहते हैं, कुल्या ह्रदकी ओर वहती है, वैसे (ही) सोम इन्द्रकी ओर (वहें)। इसके तेजको यज्ञशालामें ब्राह्मण उसी तरह वढाते हैं, जैसे दिव्य दाता द्वारा (भेजी) वृष्टि जौको वढाती है ॥७॥"

भौम आत्रेय भी कुल्याका उल्लेख करते[१] (५।८३) हैं—

"हे पर्जन्य, महान् कोश मेघ को उठाकर सींचो। रुकी हुई कुल्या पूर्वकी ओर वहें। घी (जल) से द्यौ और पृथिवीको भिगो दो, धेनुओंके लिये सुन्दर प्याव हो (जाये) ॥८॥"

§२. वास्तु

आर्य यद्यपि नगरोंके निवासी नही थे, न सप्तसिन्धु के नगरोंका उल्लेख मिलता है, पर, हमें मालूम है, कि सिन्धु-उपत्यकाके निवासी मोहन जोडरो और हड़प्पा जैसे अच्छी तरह वने-वसे शहरोंमें रहा करते थे[१]। वैदिक आर्य केवल घुमन्तू पशुपाल नही थे। वह कृषक भी थे, और अपने पशुओंकी अनुकूलता देखकर गावोंमें रहते थे। उनके ग्रामोंमें दम, शाला, कुटी ही नही, वल्कि हजार खम्भेवाली और हर्म्य जैसी इमारतें भी थी। हर्म्य यद्यपि पीछे राजप्रासादको कहा जाता था, पर वसिष्ठके कथन[१] (७।५६) से ऐसा नही मालूम होता—

"मरुद्गण घोडेकी तरह सुन्दर गतिवाले, हैं, उत्सवदर्शी मनुष्योंकी तरह शोभने हैं। ये हर्म्यमें स्थित शिशुओंकी तरह शुभ्र और क्रीडाप्रिय वछडोंकी तरह जलधारक हैं ॥१६॥"

सहस्रस्थूण हजार खम्भोंवाले हाल का उल्लेख श्रुतविद आत्रेयकी ऋचामें है[१] (५।६२)—

"हे मित्र-वरुण सुकृत (यज्ञ) में दानशील हो यजमान के अन्नकी रक्षा करो। क्रोध-रहित तुम दोनो राजा, हजार खम्भोंवाले गृहको धारण करो ॥६॥

---

[१]देखो पृष्ठ १४

उद्धृत कर चुके हैं। यह दोनो ही भार-माप वड़े हैं, इनसे छोटे पसर या दूसरे माप भी रहे होंगे।

मापमे अगुलका उल्लेख नारायणने किया है [१०] (१०।९०)—

"वह सहस्र-शिर, सहस्र-नेत्र, सहस्र-चरण पुरुष भूमिको चारो तरफ घेर कर दस अगुलसे अविक होकर खडा हुआ ॥१॥"

अगुल और योजनके वीचमें हस्त और धनुषके माप आते हैं, जो उस समय रहे होंगे, क्योकि योजनका उल्लेख कक्षीवान् ने [१] (१।१२३) किया है—

उषा जैसी आज, वैसी ही कल वरुणके दीर्घ धामका सेवन करती है। निर्दोष एक-एक उषा तुरन्त तीस योजन (तक जा) कार्य करती है ॥८॥"

[२२] (१०।८६।२०) ऋचा में भी योजन है।

§५ सख्या

ऋग्वेदमें सख्याका अन्त अयुत (दस हजार) मे किया गया है। उसके वाद उसी को दस, शत या सहस्र लगा कर वढाया जाता होगा। सख्याका उल्लेख ऋचाओमें निम्न प्रकार हुआ है—

एक दो उभ (६।३०)—

पराक्रमके लिये फिरसे[११] वढे अकेले जरा-रहित इन्द्र धन देते हैं ॥१॥

"इन्द्र द्यौ और पृथिवीका अतिक्रमण करते हैं। उनका आधा ही उभै (दोनो) द्यौ और पृथिवीके वरावर है ॥१॥"

[१४] (६।२७)—

पार्थवोका सम्राट् अभ्यावर्ती चायमान धनवान् है। हे अग्नि, वधू-सहित रथ और वीस गायें यह दोनो मुझे प्रदान करे ॥८॥"

एक और दो—भरद्वाज [१५] (६।४५)

"हे वृत्रहन्ता, तुम हम जैसोंके एक और दोके रक्षक हो। ॥५॥"

प्रथम—वसिष्ठ [२६] (७।४४)—

"तेज घोडोंमें दधिक्र (है, वह) प्रथम रथोंके आगे होता है ॥१४॥"

तीन, चार, सात, नौ, दस—गृत्समद [२७] (२।१८)

"तब नया प्रात. हुआ, चार जूआ (पत्थर) तीन कषा (स्वर) सात रश्मि (छन्द) वाले नवीन रथ (यज्ञ) को जोड़ा। दस पात्र (वाले) मनुष्यके लिये स्वर्गप्रद वह स्त्रियों और स्तुतियों द्वारा प्रसिद्ध हुआ ॥१॥"

प्रथम, द्वितीय, तृतीय—गृत्समद ' (२।१८)

"वह यज्ञ इस इन्द्रके लिये प्रथम, द्वितीय और तृतीय सवनमें पर्याप्त हुआ। वह मनुष्यके लिये शुभ लानेवाला है ॥२॥"

चार—प्रतिरथ '' (५४७)

चार (ऋत्विज) कल्याण-कामनामे (हवि) धारण करते हैं, दस (दिशायें) गर्भस्थ सूर्यको प्रेरित करती है। तीन प्रकारकी इसकी श्रेष्ठ किरणें सद्य द्यौके अन्त तक विचरण करती है ॥४॥"

पांच—वसिष्ठ '' (७।१५)

"जो युवा कवि गृहपति घर-घरमें पचजनोंके सामने बैठता है ॥२॥"

विश्वामित्र '' (३।२७) :

"हे शतक्रतु इन्द्र, पाचों जनोंमें जो तेरा इन्द्रत्व है, (इसलिए) उन्हें हम तुम्हारा समझते हैं ॥१९॥"

साठ, हजार,—वसिष्ठ ' (७।१८)

"गो चाहनेवाले अनु और द्रुह्युके साठ सौ छ हजार साठ और छ वीर सो गये। वह सब इन्द्रके वीर्यके काम हैं ॥१४॥'

सात—भरद्वाज '' (६।७४)

"हे सोम-रुद्र, असुर-सम्बन्धी बल हमे दो। यज्ञ तुम्हें प्राप्त हो। घर-घरमें सात रत्न धारण करते हमारे दोपायों और चौपायोंके कल्याणकारी होओ ॥१॥"

आठ—हिरण्यस्तूप '' (१।३५)

"पृथिवीकी आठों (दिशायें) तीनों (धन्वा) सप्त सिन्धुओंको प्रकाशित किया। सुनहली आंखोंवाले सविता देव यजमानको श्रेष्ठ रत्न देने आये ॥८॥

नौ, सत्ये—वसिष्ठ '' (७।१९)

अध्याय १७

आर्य-नारी

ऋग्वेदमे यह नही मालूम होता, कि सप्तसिन्धुकी आर्य-स्त्रियोकी स्थिति उतनी हीन थी, जितनी पीछे देखी गई। यह ठीक है, अब वह सामन्तवादी व्यवस्थाके अधीन थी, जिसमें जन (पितृसत्ताके) अवस्थाके अधिकार सुलभ नही थे। शुद्ध जन-व्यवस्थामें स्त्रिया हथियार लेकर लड सकती है। ईसा-पूर्व छठी शताब्दीमें मध्य-एसियाके शकोमे ऐसा ही देखा जाता था, जहाँ घुमन्तू स्त्रियोने कितनी ही वार हथियार उठाये। लेकिन, स्त्रियोंका युद्ध-में जाना आर्य वुरा समझते थे। शम्वरके पहाडी लोग जन-अवस्थामें थे, उनके लिये स्वाभाविक था, कि दिवोदासके साथ उनका जो जीवन-मरणका सघर्प चल रहा था, उसमें पुरुपोकी तरह स्त्रिया भी शामिल हो। पर आर्य ऋपियोने "अवला क्या करेंगी" कह कर इसका उपहास किया था,* यह हम वतला आये है। इस प्रकार आर्य-स्त्रियो के सग्राममें खुलकर भाग लेनेकी सम्भावना सप्तसिन्धुमें नही थी। वैसे अप-वादके तौरपर स्त्रियोंने कभी अपने हाथ दिखाये हो, तो दूसरी वात है।

युद्धके वाद सवसे महत्त्व था ऋचाओ (पदो) की रचनाका, जिसके कारण उन्हें ऋपि, ऋपिका कहा जाता। ऋपिकाओकी सख्या ऋग्वेदमें दो दर्जनसे कम नही है। पर, विश्लेपण करनेपर उनमेंसे अधिकाशको मानुपी नही कल्पित ही देखा जाता है। केवल घोपा और विश्ववाराको ही ऐतिहासिक ऋपि माना जा सकता है। ऋपिकाओंके नामसे जो ऋचायें ऋग्वेदमें संगृहीत है, उनकी रचयित्रिया स्त्रिया ही रही होंगी, यह कहना मुश्किल

---

*पृष्ठ ९५

है। हां, इन ऋचाओंमें ऋग्वेदिक आर्य-स्त्रियोंके जीवनके बारेमें कितनी ही बातोंका पता जरूर लगता है। इन कल्पित-अकल्पित ऋषिकाओंकी कुछ सूक्तियां निम्न प्रकार हैं;

१. अदिति—ऋग्वेदके दसवें मण्डलका ७२वां सूक्त बृहस्पति अथवा अदितिका बनाया बतलाया जाता है। इसमें अदितिका नाम (१०।७२) आया है, शायद इसीलिये इसे अदितिका बनाया सूक्त कह दिया गया। अदिति (द्यौ) दक्षकी पुत्री कही गई है, और दक्ष (सूर्य) को भी अदितिका पुत्र बतलाया गया है—

"उत्तानपद (वृक्ष) से भूमि उत्पन्न हुई, भूमिसे दिशायें उत्पन्न हुईं। अदितिसे दक्ष, दक्षसे अदिति उत्पन्न हुई ॥४॥"

"हे दक्ष, जो तेरी दुहिता अदिति है, उसने देवोंको जन्म दिया। उसके पीछे महान् अमृतबन्धु (अमर) देव उत्पन्न हुये ॥५॥"

"शरीरसे अदितिके जो आठ पुत्र* उत्पन्न हुये। (उनमेंसे) सातके साथ वह देवताओंके पास गई। (पर) मार्तण्डको परे स्थापित कर दिया।८।"

इसमें दिव्य अदिति (द्यौ) का वर्णन है। वह सप्तसिन्धुकी ऋषिका नहीं थी।

२ इन्द्र-मातायें—इन्द्रकी माताओंका सूक्त (१०।१५३) भी इसी तरह कल्पित नामसे है। इस सूक्तमें इन्द्रके जन्म तथा वीरताका वर्णन है। असली ऋषिका नाम मालूम न होनेपर इन्द्रको जन्म देनेवाली इन्द्र-माताओंको इसका रचयिता मान लिया गया। इसकी कुछ ऋचायें हैं—

"उत्पन्न इन्द्रके पास कार्य-तत्पर, सुन्दर-वीर्य-अभिलाषिणी उपासना करती हैं।१।"

"हे इन्द्र, तुम सहनके बलसे ओजसे पैदा हुये। तुम कामनापूरक (वृष) हो।२।"

---

*मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान्, आदित्य

"हे इन्द्र, ओजके साथ वज्र को तेज करते तुम (अपने) मायी अर्क (सूय) को दोनो वाहोमे धारण करते हो।४।"

३ इन्द्राणी—यह भी कल्पित नाम है। इसकी ऋचाओ (१०।१४५) में कही इन्द्राणीका नाम नही आया है। स्त्रीको सौतसे भय होना स्वाभाविक है। सपत्नी-वाघनके लिय यहा जडो-बूटियोके प्रयोगका उल्लेख है, जिसे हम 'मन्त्र-तन्त्र"के प्रकरणमें* (अध्याय १५) वतला आये हे। इन्द्राणीका एक और सूक्त ' (१०।८६) मिलता है, जिसमे इन्द्राणीके तेजका पता जरूर लगता है। घरमे वृपाकपि (अग्नि) के अधिक सम्मानको इन्द्राणी सह नही सकी, इसलिये वह इन्द्रके सामने उसके प्रति रोप प्रकट करती है। इन्द्रने ही आगमे घी डालते हुये आरभ किया—

"सोम छाननेके लिये कहा था, पर स्तोताओने देवेन्द्रकी उस यज्ञमे स्तुति नही की, जहा यज्ञमें पुष्ट मेरा सखा आर्य (स्वामी) वृपाकपि (अग्नि) सतुप्ट हुआ। इन्द्र सवसे उत्तम है।१।"

इन्द्राणी कहती है—हे "इन्द्र, तुम विचलित होकर वृपाकपिके पास दौडे जाते हो, अन्यत्र सोमपानके लिये नही जाते।०।२।"

"क्या है, जो तुम्हें इस पीले (हरे) मृग वृपाकपि ने (ऐसा) वना दिया, कि उसके लिये पुष्टिकारक धन तुम अर्य (स्वामी) देते हो।०।३।"

"हे इन्द्र, जिस इस प्रिय वृपाकपिके तुम रक्षक हो। उसके कानमें वराह (को काटने) की चाहवाला कुत्ता काटे ०।४।"

मेरे लिये साफ की हुई तैयार प्रिय वस्तुको कापेने दूपित कर दिया। इसके सिरको काट लो। इस दुष्कर्माको सुख न होवे।५।"

इन्द्र—"सुबाहु, सुअगुलीवाली, वडे वालो, मोटी जाघोवाली हे शूर-पत्नी (इन्द्राणी,) तुम क्यो हमारे वृपाकपिपर क्रुद्ध हो।८।"

इन्द्राणी—यह दुप्ट वृपाकपि मुझे अवीरपुत्रोवाली समझता है। परन्तु मै वीरपुत्रा इन्द्र-पत्नी हू। मेरे सखा मरुत् है।९।"

---

*देखो पृष्ठ २१०

"हवन या युद्धके समय नारी वहां पहले आती है। सत्यकी विधाता वीरपुत्रा "इन्द्र-पत्नीकी पूजा होती है०।१०।"

इन्द्र— इन नारियोंमें इन्द्राणीको मैंने सौभाग्यवती सुना है। दूसरों-की तरह इसका पति बुढ़ापेमें नहीं मरता ॥११॥

"हे इन्द्राणी, (अपने) मित्र (उस) वृषाकपिके विना मैं नहीं सुख रह सकता, जिसके द्वारा प्राप्त यह प्रिय हवि देवताओंके पास जाती है।१२।

"हे धनवती सुपुत्रा सुवधुका वृषाकपि-पत्नी, इन्द्र तेरे बैलोंको खा जाये, प्रिय हविका भख जाये ०।१३।"

"(भक्त) मेरे लिये पन्द्रहके साथ बीस (३५) बैलोंको पकाते हैं, और मैं खाकर मोटा हूं। मेरी दोनों कुक्षियों को (भक्तजन) पूर्ण करते हैं ०।१४।"

"हे वृषाकपि, मरुभूमि और काटने लायक जो वन है, वह कितने योजन हैं। आओ पासवाले उन गृहोंमें ०।२०।"

वृषाकपि अग्नि है। अग्निके मुखसे ही इन्द्र हवि ग्रहण करता है, इस-लिये वृषाकपिको वह अपना परममित्र माने, तो कोई आश्चर्य नहीं। इसी कारण इन्द्राणीका वृषाकपिके ऊपर कोप था। देवताओंमें भी पारिवारिक कलह कितना था?

४ उर्वशी—उर्वशी अप्सरा थी, जिसने पुरूरवासे प्रेम किया। जैसे आज पंजाबमें हीर-रांझा, सोहनी-महीवालकी प्रेम-कथायें प्रचलित हैं, उसी तरह उर्वशी और पुरूरवाकी प्रेम-कथा सप्तसिन्धुमें उस समय प्रचलित थी। सम्भव है, वह मानुष प्रेमी और प्रेमिका रहे हों, जिन्हें मानव-देवी बना दिया गया। ऋग्वेदके इस प्रेम कथानकवाले सूक्त (१०।९५) को उर्वशी और पुरूरवाकी रचना बतलाया गया है, जिससे यही मालूम होता है, कि असली रचयिता (न्यायकवि) का नाम विस्मृत हो गया था। उस को छोड़कर जाती उर्वशीसे प्रेमी पुरूरवा बहुत अनुनय-विनय करता है, [illegible] है। लेकिन, उर्वशी कुछ सुननेके लिये तैयार नहीं होती। वह यहां तक कह देती है, कि स्त्रियोंमें प्रेम नहीं होता, उनके हृदय भेड़ियोंके से हैं।" (१०।९५।१५) १७वीं ऋचामें वसिष्ठका नाम आया है, जिससे सन्देह होता है,

कि शायद वसिष्ठ ही इन ऋचाओंके कर्त्ता रहे हों[१] (१० ९५)—

"अन्तरिक्षको भरनेवाली लोकोको नापनेवाली उर्वशीसे मैं वसिष्ठ प्रार्थना करता हूं। सुकृत-दाता (पुरूरवा) तुम्हारे पास रहे, लौटो, मेरा हृदय तप रहा है। ।१७।"

यह सूक्त ऋग्वेदके उन सूक्तोंमें है, जिन्हें उत्तम काव्य कहा जा सकता है। इसे हम पहले दे आये हैं।*

५. घोषा कक्षीवान्-पुत्री दोनों अश्विनीकुमारोंकी प्रशंसामें घोषा-ने दो सूक्त (१०। ३९। ४०) रचे हैं। पहले सूक्तमें उसने भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके ऊपर अश्विनीकुमारोंके किये गये उपकारोंका उल्लेख किया है। ये व्यक्ति थे—तुग्र-सन्तान च्यवान[१] (१०। ३९।५) विमद, शुन्ध्यु, पुरु-मित्र, वध्रीमती (७), पेदु (१०), शयु (१३), भृगु (१४)। घोषा अपनी सुन्दर रचनामें किसी भी ऋषिका मुकाबिला कर सकती हैं। वह कहती हैं[७] (१०। ३९)—

"हे अश्विनो, सारी पृथिवीपर जानेवाला तुम्हारा सुनिर्मित रथ है, जिसे हविवाले यजमान प्रतिदिन प्रतिरात्रि और प्रतिउषा पुकारते हैं। तुम्हारे पिताके सुन्दर पुकारे जानेवाले नामकी तरह तुम्हारे (नामका) हम सदा आह्वान करते हैं।।१।"

हे अश्विनो, जैसे भृगु लोग रथको गढ़ते हैं, वैसे इस स्तोम (स्तुति) को तुम्हारे लिये मैंने बनाया। पतिके लिये जैसे वधूको अलकृत करते हैं वैसे ही मैंने मानो नित्य पुत्र और पौत्रको धारण करती इसे अलकृत किया।१४।"

दूसरे[८] (१०। ४०) सूक्तमें घोषा (५) कुत्स (६), भुज्यु-वशज मिजार-उशना (७), कृश-शयु (८) का उल्लेख किया है। घोषा राजाकी दुहिता थी, यह उसकी निम्न ऋचा[९] (१०। ४०) से पता लगता है—

"हे अश्विनो, राजाकी दुहिता घुमक्कड़ा घोषा तुमसे बात करती है,

---

*देखो पृष्ठ८८–९

हे नेताओ, (वह) तुमसे आज्ञा मागती है। दिन हो या रात इस समय अश्व वाले रथी अर्वन्‌को तुम दमन करते हो।४।"

अश्विद्वयसे अपनी कामना प्रकट करती हुई घोषा वर मागती है—

"मैं उस बातको नही जानती, उसे तुम बतला दो, जिसे कि युवा और युवती घरोमे रहकर अनुभव करते है। मैं स्त्री-प्रिय सुपुष्ट वीर्यवान् तरुणके गृहमे जाऊ, हे अश्विनो, (मेरी) यह (कामना) पूरी करो।११।"

सप्तसिन्धुकी आर्य कुमारिया क्या कामना करती थी, यह घोषाके इस वचनसे मालूम होता है। स्वस्थ प्रिय पति पाना उनके जीवनका लक्ष्य था। घोषाके पुत्र कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र एक बडे ऋषि थे, जिनकी ऋचायें ऋग्वेदके पहले मण्डल के दस सूक्तोमे मिलती है। कक्षीवान्‌के राजा होनेका उल्लेख कही नही मिलता। घोषाका व्याह जिससे हुआ, उसका भी नाम नही पाया जाता। उसके पुत्र सुहस्त्यको माताके नामसे ही याद किया गया है। पुत्रने भी माकी तरह दोनो अश्विनीकुमारोकी प्रार्थना की है।" (१०।४१। १-३)। घोषा चिरतक पिताके घरमे क्वारी बैठी रही" (१।११७।७)

६ जुहू यह भी कोई कल्पित नाम मालूम होता है। दसवें मण्डल-मे जुहू का एक सूक्त (१०।१०९) मिलता है। यद्यपि पीछेके लोगोने जुहूको ब्रह्मवादिनी बतलाया है, पर यहा उसने ब्रह्मकी कोई बात नही कही, और सिर्फ विश्वदेवोकी स्तुति की। हा, उसने ब्रह्मचारीका उल्लेख जरूर किया है। इस सूक्तके बारे में बतलाया जाता है, कि जुहूके पति बृहस्पतिने किसी कारण उसे त्याग दिया था, जिसके लिये समझा-बुझाकर, देवोने उसको सीधे रास्तेमे लानेमें सफलता पाई। इससे कुछ रचनाओसे सप्तसिन्धुके दाम्पत्य-जीवनपर प्रकाश पडता है।' (१०।१०९)—

"उन प्रथमोने यहा (ऐसा करनेसे) ब्रह्म-पाप लगा। फिर प्रजाजो (पूर्वजो)—सूर्य, वायु, जल, उग्र सुन्दर सोम और आप देवियो—ने हमारे साथ प्रायश्चित्त कराया।१।"

प्रथम सोमराजने आकृष्ट हो ब्रह्मपत्नीको फिरसे बृहस्पतिको प्रदान किया। मित्र और वरुणने उनका अनुगमन किया। होता अग्नि हाथ पकडकर उसे ले आया।२।"

"इसका शरीर हाथसे ही पकडना चाहिए, यह ब्रह्मजाया है—(यह) उन्होने कहा। भेजे गये दूतके साथ इसने उसी तरह सम्पर्क नही किया, जैसे क्षत्रिय-का रक्षित राष्ट्र।३।"

"पुराने देवो और तपस्यामें बैठे उन सात ऋषियोने कहा—भीमा पत्नीको ब्राह्मणके पास ले आयें, निकृष्ट (पत्नी) भी परमस्थान पर स्थापित होती है।४।"

"बिना पत्नीके ब्रह्मचारी रह विचरता, वह (बृहस्पति) देवताओका एक अग हो गया। सोम द्वारा लाई गई पत्नी जुहूको जैसे देवोने, वैसे ही बृहस्पतिने प्राप्त किया।५।"

"देवोने फिर(उसे) प्रदान किया, और फिर मनुष्योने प्रदान किया। राजाओने(बात) सच्ची करते ब्रह्मपत्नीको फिर प्रदान किया।६।"

जहा तक ऋचाओका सम्बन्ध है, इसमें जुहू अग्नि देवताकी पत्नी मालूम होती है। सप्तसिन्धुके आर्यपुरुष अपनी पत्नीसे अनबन कर बैठते होगे, फिर उनका पुनर्-मिलन कुछ इसी तरह होता होगा।

७ **दक्षिणा**—यह भी कल्पित नाम है। दक्षिणाको प्रजापतिकी पुत्री कहा जाता है। इसके सूक्त [११] (१०।१०७) में दान-दक्षिणाकी महिमा गाई गई है—

"मघवा (धनवान्) सूर्यका महान् तेज आविर्भूत हुआ, (उसने) इनको और सारे जीवोको अन्धकारसे निर्मुक्त किया। पितरो द्वारा दी गई बडी ज्योति आई। दक्षिणाका विस्तृत पथ दिखाई पडा।१।"

"दक्षिणावाले (दानी) ऊचे द्योलोकमें स्थान पाते है, जो अश्व-दायक (है) वह सूर्यके साथ होते है। सोना-दायक अमरताको पाते है, वस्त्र-दायक सोमके पास जा आयुको प्राप्त होते है।२।"

"देवोकी पूजावाली दक्षिणा दिव्य मूर्ति है। वे (देव) कजूसोको

तृप्त नहीं करते। और दोषसे डरनेवाले बहुतेरे जो नर दक्षिणामें तत्पर है, (वह) तृप्तिको प्राप्त होते हैं।३।"

"दक्षिणावान् (दानी) पहले बुलाया जाता है। दक्षिणावान् श्रेष्ठ ग्रामणी होता है। जो पहले दक्षिणा देता है, उसीको मै जनोंका नृपति मानता हू।५।"

"यज्ञकर्त्ता, सामगायक, उक्थ (स्तुति) बोलनेवाले उसीको ऋषि, उसीको ब्रह्मा कहते है। जिसने पहले दक्षिणासे आराधना की, वह शुक्र (अग्नि) के तीनों शरीरोंको जानता है,।६।"

"दक्षिणा अश्वको, दक्षिणा गायको देती है। दक्षिणा चन्द्र (चादी) और जो सोना है, उसे देती है। दक्षिणा अन्नको देती है, जो कि हमारा आत्मा है। आदमी जानते हुये दक्षिणाको कवच बनाता है।७।"

"भोज (भोजन-दाता) न मरते, न दरिद्र होते, न क्लेश पाते हैं, न भोज व्यथित होते है। यह जो सारा भुवन और यह स्वर्ग है, सबको दक्षिणा उन्हें प्रदान करती है।८।"

"भोज पहले ही सुरभि-मूल पाते है। भोज सुन्दर वस्त्रधारी वधू पाते हैं। भोज आन्तरिक पेय सुराको पाते है। जो बिना बुलाये आते है, उन्हें भोज जीत लेते हैं।९।"

"भोजके लिये (लोग) शीघ्रगामी अश्व सजाते है। भोजके लिये यह सुन्दरी कन्या है। भोजका यह घर पुष्करिणी सा देव-विमान सा अद्भुत परिष्कृत है।१०।"

दानकी महिमा आर्योंमें बहुत थी। अतिथियोंको अन्न-भोजन देनेमें वह बड़े उदार थे। लोकसम्पत्तिशाली आर्य अपने घरको देव-विमान और पुष्करिणी सा देखना चाहता था।

८ निवावरी या सिकता—इन्हें अयोनिजा ऋषिकायें बतलाया गया है, पर यह भी कल्पित नाम है, मूल व्यक्तिका नाम मालूम नहीं है। सिकताने अपनी ऋचाओं "(९।८६) में सोमकी महिमा गाई है—

अतिप्राचीन कालमे वहिन भाइयोका व्याह होता था। थाई भूमिके राजवशमे अव भी यह होता है। ईरानके सासानी राजवश मे भी इसे देखा जाता था, और मिस्रके फरवा भी रक्तको शुद्ध रखनेके लिये ऐसा करते थे। यम-यमीके इस मवादसे यह जरूर मालूम होता है, कि इसे सप्तसिन्धुके आर्य ठीक नही मानते थे।

यमी वैवस्वतीका एक और सूक्त [१६] (१०।१५४) मिलता है, जिसकी भापा वहुत नवीन मालूम होती है। इसमें प्रेतके वारेमें कहा गया है—

"किन्ही (पितरो) के लिये सोम छाना जाता है, कोई घृतका सेवन करते है। हे देवापि (प्रेत), उनके पास तुम जाओ जिनके लिये मधु वहता है, ।१।"

"तपस्याके कारण जो दुर्धर्प हैं, तपस्यासे जो स्वर्ग गये, जिन्होने महान् तपस्या की, हे देवापि (प्रेत), तुम उनके पास जाओ।२।"

"जो युद्धमें लडते हैं, जो शूर वहा शरीर छोडते हैं, और जो सहस्रो दक्षिणा देते हैं, हे देवापि, तुम उनके पास जाओ।३।"

वैदिक आर्य यमको मृत्युका देवता समझते यह मानते थे, कि पितर उनके पास जाते हैं। उसी यम और मृत्युकी वातोको यमीके इस सूक्तमें वतलाया गया है।

१० रात्रि—भारद्वाजी रात्रि भी कल्पित ऋपिका है। रात्रिका वर्णन इस सूक्त [१७] (१०।१२७) में आया है। दूसरी परम्पराके अनुसार सोभरि-पुत्र कुशिक (विश्वामित्रके वश-स्थापक) इसके ऋपि माने गये हैं। गायत्री छद होनेसे यह गानेकी ऋचाये है ?

"देवी रात्रि चारो ओर आकर प्रकट हुई, उसने नक्षत्रो द्वारा सारी शोभाको धारण किया ।।१।।

"देवीने आते समय अपनी वहिन उपाको ग्रहण किया। उसने तमको हटाया ।।३।।

"ग्राम चुप हैं, वटोही चुप हैं, पक्षी चुप हैं, इच्छावाले वाज चुप हैं ।।५।।

"हमें (चारों ओर) काला अन्धकार दिखाई दे रहा है, वह स्पष्ट मौजूद है। हे उषा, ऋणकी तरह तुम उसे हटाओ ॥७॥

११ लोपामुद्रा—यह वसिष्ठके भाई अगस्त्यकी पत्नी थी। पति-वियोग सहन करनेमें असमर्थ लोपामुद्रा का अगस्त्यके साथ का संवाद निम्न प्रकार (१।१७९) है—

(लोपामुद्रा)—पहिले (बीते) वर्षों बुढ़ापा लानेवाली उषाओंको दिन-रात सहती रही। बुढ़ापा शरीर-शोभाको नष्ट करता है। फिर ऐसी, पत्नीके पास पति क्यों जाये? ॥१॥

'जो पुराने सत्यपालक थे, देवोंके साथ सच्ची बातें करते थे। वह अन्त न पा पड़े रहे। फिर" ॥२॥

(अगस्त्य)—"हम व्यर्थ नहीं थके, देव लोग हमारी रक्षा करते हैं। हम सारे भोगोंको पा सकते हैं, यदि ठीकसे दोनों चाहें, तो यहां सैकड़ों ले सकते ॥३॥

"कामको मैंने रोका है, पर यहां-वहां-कहींसे वह आ जाता है। अधीरा कामिनी लोपामुद्रा धीर उसांस लेते पतिका संगम करती है ॥४॥

१२. वसुक्र-पत्नी—इन्द्रके पुत्र वसुक्रकी पत्नीके नामसे एक सूक्त (१०।२८) मिलता है, जिसमें वसुक्र-पत्नी तथा इन्द्रकी बातें आती हैं। वसुक्र-पत्नी कहती है—

"दूसरे सारे देवता आये, मेरे श्वसुर यहां नहीं आये। यदि आते, तो वह भुना दाना खाते, और सोम पीते। अच्छी तरह खाकर पुन अपने घर जाते ॥१॥"

इस सूक्तका ऋषि वसुक्र भी बतलाया गया है। इन्द्र ही नहीं सप्त-सिन्धुके आर्य भी भुने जौका खाना और सोमका पीना बहुत पसन्द करते थे। "यदन्न पुरुषो भवति तदन्ना अस्य देवता" (जो भोजन आदमी खाता है, वही उसका देवता भी)।

१३ वाक्—अम्भृण ऋषिकी पुत्री वाक् भी [illegible] नाम है। इसमें वाक् (वाणी) देवी की महिमा वर्णन की गई है (१०।१२५)—

"सौभाग्यके लिये तेरे हाथको मैं ग्रहण करता हूं। तू मुझ पतिके साथ जरा अवस्था तक बनी रह। भग, अर्यमा, सविता, पुरन्धि देवोने तुझे गृहपति धर्मके लिये मुझे प्रदान किया ॥३६॥"

"दोनो (पति-पत्नी) यही रहे, न बिछुड, सारी आयुको प्राप्त करे। पुत्र और नातियोंके साथ खेलते अपने घरमें प्रमुदित रहें ॥४२॥"

"हे इन्द्र, सिंचन समर्थ हो इस (वधू)को सुपुत्रा सुभगा बनाओ। इसमे दस पुत्रोको धारण करो, (और) पतिको ग्यारहवा बनाओ ॥४५॥

"हे वधू, तू ससुरपर सम्राज्ञी हो, सासपर सम्राज्ञी हो। ननदपर सम्राज्ञी हो, देवरोपर सम्राज्ञी हो ॥४६॥"

यह बतला चुके हैं, कि ऋग्वेदकी ऋषिकाओकी सख्या चाहे दो दर्जन हो, पर उनमे ऐतिहासिक घोषा और विश्ववारा ही हैं। स्त्रीका स्थान उस कालमें काफी ऊचा था, पर पुरुषके समान नही था, यह इन ऋचाओंसे मालूम होता है। सास-ससुर, ननद-देवरपर शासन करनेकी कामना नारीको होती थी, और सौत उसके सिरदर्दका सबसे बडा कारण थी।

अध्याय १८

भाषा और काव्य

§१. भाषा

शौनककी अनुक्रमणीके अनुसार ऋग्वेदमें १०४१४ मन्त्र, १,५३,८२६ शब्द, ८,३२,००० अक्षर हैं। ऋचाओंकी संख्या गिननेपर उन्हें १०४६७ पाया गया। ऋग्वेदका दो प्रकारसे विभाजन है, एकमें मण्डल, सूक्त और ऋचाके क्रमको रक्खा गया है। ऋग्वेदमें १० मण्डल, १०१७ सूक्त और १०४१४ मन्त्र हैं। अष्टक, अध्याय और सूक्तके अनुसार दूसरी गणना होती है, जिसके अनुसार ऋग्वेदमें ८ अष्टक, ६४ अध्याय और १०१७ सूक्त हैं। मण्डल, अनुवाक और वर्गके अनुसार गणना करनेपर ऋग्वेदमें १० मण्डल, ८५ अनुवाक और २००८ वर्ग (बालखिल्यके ११ सूक्तोंको छोड़कर) पाये जाते हैं। आजकल सबसे अधिक प्रचलित गणना मण्डल, सूक्त और ऋचाके क्रमसे है।

भिन्न-भिन्न मण्डलोंकी भाषा देखनेसे पता लगता है, कि सबोंकी भाषा एक समान नहीं है। यह बतला चुके हैं, कि ऋग्वेदिक आर्य हिन्दू-यूरोपीय वंशकी उस शाखाके अन्तर्गत हैं, जिसमें ईरानी और बाल्त-स्लाव आते हैं, और जिसे शतम्-शाखा कहा जाता है। शतम्-शाखाकी कोई जाति टवर्ग नहीं बोल सकती। इसलिये सप्तसिन्धुमें आनेवाले आर्य टवर्ग (मूर्धन्यवर्ण) नहीं बोल सकते थे, यह निश्चित है। ऋग्वेदमें यद्यपि आदिमें टवर्गीय अक्षर रखनेवाला कोई शब्द नहीं मिलता, पर मूर्धन्य वर्णोंका प्रयोग जरूर मिलता है। यह टवर्ग यहींसे आर्योंमें प्रचलित

हुआ? निश्चय ही सप्तसिन्धुकी प्राचीन जातिके घनिष्ट सम्पर्कमे ही उच्चारणमें यह परिवर्तन आया। आज भी द्रविड भापाओमें टवर्गकी प्रचुरता उत्तरी भारतके कानोको खटकती है। सप्तसिन्धुमें आनेके तीन सौ वर्षबाद ऋग्वेदके महान् ऋपि हुये। वह टवर्ग बोलते थे, यह कहना आसान नही है, क्योकि शताब्दियो तक ऋचाये लिपिवद्ध नही हो कठस्थ रक्खी गई थी। मूल पालि त्रिपिटक (बुद्धके सूक्त) मागधी-कोसली भापामें रहे, जिसमें ल और श अक्षरो का प्राचुर्य एव र तथा स अक्षरोका बहुत कुछ अभाव सा था। पर वर्तमान पालि त्रिपिटकमें मागधीके इन विशेप अक्षरोका बायकाट सा देखा जाता है—श का तो बिल्कुल ही प्रयोग नही होता। इस परिवर्तनका कारण यही था, कि शताब्दियो तक बुद्धके सूक्त मागधीभापियो के नही, बल्कि पश्चिमी भापाभापियो—विशेपकर लाट-गुजरातमे गये उपनिवेशिको—के मुखमें रहे, जिनके कारण यह परिवर्तन हुआ। इसे देख हम नही कह सकते, कि ऋचाओंके रचने और उनके लिपिवद्ध होनेके समय के बीचमे अक्षरोका परिवर्तन नही हुआ होगा। वैदिक भापाके प्रकाण्ड विद्वान् डा० बटेकृष्ण घोपने ऋग्वेदके अक्षरो और उनके उच्चारणपर सूक्ष्म विवेचन किया है। मूर्धन्य वर्णोका प्रचार आर्योकी भापा में भारतमें आनेपर हुआ। डा० घोप र की अपेक्षा ल की प्रचुरताको आर्योके भारतमे पूर्वकी ओर बढनेका प्रभाव बतलाते है। पर, र की जगह ल के प्रयोग स्लाव भापाओमें भी बहुत आते है। इसलिये हमें मानना पडेगा, कि जहा तक र और ल के प्राचुर्यका सवाल है, वह शतम्-वंशकी दूसरी शाखाओमें भी देखा जाता है।

डा० घोप इस निष्कर्पपर पहुचे है,* कि जहा तक भापाका सवाल है, ऋग्वेदके पहले नौ मण्डलोकी भापा एक सी है। दसवें मण्डलकी भापामें जरूर परिवर्तन है। दसवें मण्डलमे भी कितनी ही ऋचाओ और सूक्तोकी भापा पुरानी दीख पडती है, साथ ही बाकी मण्डलोमे कितनी

---

*The Vedic Age PP 33-40

हीकी भाषामें नवीनता पाई जाती है। तो भी यह माननेमें आपत्ति नहीं होनी चाहिये, कि पहले नौ मण्डलोंकी भाषा प्राय पुरानी है। इन नौ मण्डलोंमें भी यदि ऋषियोंके काल-क्रमको देखें, तो पहले भरद्वाजका मण्डल (छठा), फिर वसिष्ठका (सातवां), फिर विश्वामित्रका (तीसरा), फिर वामदेवका (चौथा) आता है। यह भाषा-भेद भरद्वाज[1] (६।१।१,२) और रक्षोहाकी ऋचाओं[2] (१०।१६२।१-२) की तुलनासे मालूम हो सकता है।

वेदकी भाषा अपेक्षाकृत बहुत पुरानी, ताम्र-युगके समाजकी भाषा है, विकासमें वह वहां नहीं पहुंची थी, जहां कि पालि, प्राकृत, अपभ्रंश और हमारी भाषायें आधुनिक कालमें पहुंचीं। इस प्रकार उसे अपरिचित और दुरूह शब्दोंवाली भाषा कहा जा सकता है, लेकिन जहां तक भाषाकी प्रकृतिका सम्बन्ध है, उसे सरल होना चाहिये। किन्हीं-किन्हीं बातोंमें वह सरल है भी। उसे हम पाणिनीय संस्कृतकी पृष्ठभूमिमें रखकर पढ़ना चाहते हैं, इसलिये हरेक पाणिनीय नियमके अपवादोंकी संख्या देखकर हम समझते हैं, कि वैदिक भाषाकी प्रकृति अधिक क्लिष्ट है। यदि वेदकी भाषाको वैदिक उदाहरणों अर्थात् वैदिक पाठशालाओंके सहारे पढ़ा जाये, तो वह जरूर सरल मालूम होगी। भाषाके ज्यादा सरल होनेका मतलब संदिग्ध होना भी है। चीनी भाषा दुनियाकी अत्यन्त सरल भाषा है—यहां उसकी लिपि-से हमें कोई मतलब नहीं, जो निश्चय ही बहुत कठिन है। चीनी भाषाके पूर्ण व्याकरणके लिखनेके लिये शायद पांच-छ पृष्ठोंकी भी आवश्यकता नहीं होगी, पर इसके कारण सन्देह होनेकी भी गुंजाइश है। क्रियाओंमें वचन और काल, पुरुषका कोई पता नहीं। लोगोंने नये शब्दोंसे आजकलवालोंने संदिग्धताको असंदिग्ध बनानेकी कोशिश की जाती है। वैदिक भाषामें एक ही क्रियाके कालको न निश्चित करके पाठकको मजबूर किया जाता है, कि वह प्रकरणसे उसका अर्थ निकाले। भविष्यका अर्थ है और भूतसे काम ही करना है। वैदिक भाषामें ऐसे अनिश्चित और व्यवस्थाशून्य नियमोंको लेट लकारमें जमा कर दिया गया है। इस प्रकार वैदिक भाषाकी कठिनाईमें

इन्कार नही किया जा सकता। पर, यदि सस्कृतके द्वारा नही, वल्कि ऋचाओमें आये व्याकरण और उसके प्रयोगोद्वारा सिखलाया जाये, तो यह भापा उतनी कठिन नही मालूम होगी।

जहा तक शव्दोका सम्वन्ध है, ऋग्वेदमें कितने ही शव्द दूसरे अर्थोमें प्रयुक्त होते हैं। कारु काम करनेवालेको कहना चाहिये, लेकिन ऋग्वेदमें कारु कविको कहते है, जो ऋचायें वनाता है। इसी तरहके दूसरे भी शव्द वहा मिलते है।

सन्धियोके नियमोको भी वेदमें उतना पालन नही किया गया, स्वरके वाद स्वर आनेपर भी उसे ज्यो का त्यो रहने दिया जाता है।

§२. छन्द

ऋक्का अर्थ ही है पद्य। सारा ऋग्वेद पद्य-वद्ध है। सात छन्द प्रसिद्ध माने जाते है, पर छन्दोकी सख्या और अधिक है। यज्ञ ऋपिकी ऋचाओं (१०।१३०।३-५)में गायत्री, उप्णिक्, अनुप्टुप, वृहती, विराट्, त्रिप्टुप्, जगती इन सात छन्दोका उल्लेख है। यही मूल छन्द भी है। यह हम वतला चुके है, कि गानेके लिये गायत्री छन्द सवसे अधिक प्रचलित था। सोमपानके समय हरेक पीनेवालेका कण्ठ खुल जाता था, जैसे आज भी मद्य पीते समय देखा जाता है। ऋग्वेदका नवा मण्डल सोम मण्डल है, जिसमें सौसे ऊपर ऋपियोने सोमके गुणोका गान किया है। इस मण्डलकी वहुत अधिक ऋचायें गायत्री छन्दमें है। गायत्री छन्दके गानेको गायत्र साम कहा जाता है।

ऋग्वेदके १०४१४ मन्त्रोंमें छन्द है—

१. गायत्री	२४६७
२ उप्णिक्	३४१
३ अनुप्टुप्	८५५
४ वृहती	१८१
५. त्रिप्टुप	४२५३

६. पंक्ति	३१२
७ जगती	१३४८
८. अतिजगती	१७
९ शक्वरी	१९
१०. अतिशक्वरी	९
११. अष्टि	६
१२ अत्यष्टि	८४
१३ धृति	२
१४ अतिधृति	१
१५ एकपादवाले	६
१६. दोपादवाले	१७
१७ प्रगाथ बार्हत	१९४
१८. ककुभ	५५
१९ महाबार्हत	२५७

इनके देखनेसे मालूम होता है, कि २००से अधिक बार आनेवाले छन्द गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती हैं। इनमें भी सबसे अधिक उपयुक्त होनेवाला छन्द त्रिष्टुप् है, जिसके बाद दूसरा नम्बर गायत्रीका तीसरा जगतीका और चौथा अनुष्टुप् का। पीछे अनुष्टुप् संस्कृत-में बहुत प्रयुक्त हुआ है। गायत्रीमें गानेके लिये अन्तिम पादको दोह-राना आवश्यक था, इस प्रकार वह भी अनुष्टुप् बन जाता था। दोनोंको एक कर देने पर अनुष्टुपोंकी संख्या २३२३ हो जाती है।

§३. रचना

१ वाणी—पद्यबद्ध रचना को कहते थे, जैसा कि वसिष्ठ (७-३१) ने कहा है—

"क्योंकि राजा निष्पाप इन्द्रकी वाणियां शत्रुओंको निरस्त करनेके लिये हैं ॥१२॥"

२. सूक्त—वसिष्ठने सूक्तका भी उल्लेख किया है[1](७।२९)—

"हे मघवन् इन्द्र, जो सूक्तो द्वारा हम तुम्हारी स्तुति करते हैं, सो तुम्हारा अलंकार है।।३।।"

[2](७।५८।६)—"मरुत् इस सूक्तका सेवन करें।"

३ श्लोक—श्लोकका भी उल्लेख ऋग्वेदमें मिलता है, लेकिन इसका अर्थ वही है, जो पुण्यश्लोकमें आता है, अर्थात् श्लोकका अर्थ प्रशंसा या कीर्ति है। कण्वने कहा है[3](१।३८।१४)—

"मुखमें श्लोक बनाओ, मेघकी तरह फैलाओ, उक्थ्य गायत्रको गाओ।"

४ साम—साम गीतिको कहते थे। ऋग्वेदकी ही बहुत सी ऋचाओंका गान के साथ जो संग्रह है, उसीको सामवेद कहते हैं। सारे सामवेदमें थोड़े कम ही ऐसे मन्त्र हैं, जो ऋग्वेदमें नहीं आये हैं। कुत्स ऋषि सामसे विश्वेदेवोंकी स्तुतिका उल्लेख करते कहते हैं[4](१।१०७)—

"सामसे द्वारा स्तुति किये जाते देव (अपनी) रक्षाके साथ हमारे पास आवें।।२।।"

गृत्समद ऋषि त्रिष्टुप् और गायत्रीके सामकी बात करते हैं[5](२।४३)-

"और त्रैष्टुभको जैसे सामगायक, वैसे ही दोनो वाणियोंको बोलते यह अनुरंजन करता है।।१।।"

कण्व-गोत्री कुसीदि ऋषि कहते हैं[6](८।७०)

"इन्द्र, गीयमान सामको सुनें, उसका स्तुतिगान करें, यह अन्नसे हमारे ऊपर कृपा करें।।५।।"

५. स्तोम—स्तुति या स्तोत्रको उस समय स्तोम कहते थे। कुत्स आंगिरस इन्द्र-अग्निके लिये कहते हैं[7](१।१०९)—

"हे इन्द्रअग्नि, सुना है, तुम दामाद और सालेसे भी ज्यादा देनेवाले हो। इसलिये सोमके प्रदानके समय तुम्हारे लिये मैं नवीन स्तोम बनाता हूं।।२।।"

§९ काव्य

नदी-सूक्त—¹(३।३३।१-१३) पुरूरवा-उर्वशी सूक्त² (१०।९५)को देखनेसे मालूम होता है, कि कविताकी मनोहारिणी शैली ऋग्वेदिक आर्योंमें मौजूद थी। लेकिन ऋषियोंकी ऋचाओंको कविताकी दृष्टिसे नहीं सुरक्षित किया गया। उनका प्रयोजन देवताओंको प्रसन्न करना था। बिल्कुल सम्भव है, उस समय मधुर लोकगीत और पवाड़े प्रचलित थे, जिनकी उस समय काफी कदर थी।

उपमा—कविताको सजानेमें अलंकारोंका उपयोग भी ऋषि करते हैं। अलंकारोंमें सबसे अधिक उपमाका इस्तेमाल देखा जाता है, जिसके लिये इव या उसीके अर्थमें न का प्रयोग बहुत हुआ है। गृत्समदने एक सूक्त (२।३९।१,८) की हरेक पंक्तिमें इसका प्रयोग और एकसे अधिक बार किया है—

"अश्विद्वय पत्थरकी तरह,   शत्रुको बाधा दो, गिद्धकी तरह निधियुक्त वृक्षको प्राप्त करो। ब्रह्माकी तरह यज्ञमें उक्थ (गीत) गानेवाले हो, दूतकी तरह बहुतोंके लिये पुकारने लायक हो॥१॥"

इस सूक्तमें और उपमायें दी गई हैं—रथी, अजा (बकरी), स्त्री, दम्पती, सींग, शफ (खुर), चक्रवाक, नाव, युग (धुर), नाभि, उपधि, प्रधि, श्वान, गात्र, वर्म, वात, नदी, हाथ, पाद, ओष्ठ, स्तन, नासा, कर्ण, हे पृथिवी, शान, तलवार। सात त्रिष्टुप् ऋचाओंके भीतर इतनी उपमायें दी गई हैं, और सबके साथ इवका प्रयोग है। अन्तमें ऋषि कहते (२।३९।१-८)—

"हे अश्विद्वय, गृत्समदोंने तुम्हारे बढ़ानेको ये मन्त्र और स्तोम बनाये। हे नरो, उनका सेवन करके (हमारे) पास आओ। यज्ञमें सुन्दर वीरोंवाले हो हम बहुत कहें॥८॥"

---

१ देखो, अध्याय (७।७) पृष्ठ ६७-८

२ देखो अध्याय (५।२८) पृष्ठ ८९-९०

वाजम्भर-पुत्र सप्तिने क्रियाकी उपमा इवके साथ दी है" (१०।७९)—

"हे सुनहले अग्नि, क्या देवोंके ऊपर तुमने क्रोध किया, अनजान होनेसे मैं तुमसे पूछता हू। खेलते न खेलते तुम वैसे ही छिन्न-भिन्न कर डालते हो, जैसे गायको तलवार पोर-पोर करके काटती है ॥६॥"

विश्वामित्रने अपने सुन्दर काव्य नदी-सूक्त' (३।३५) में व्यास और सतुलजकी उपमायें इवके साथ निम्न वस्तुओंसे दी है—अश्व, गौ, रथी, वत्स, योपा (मा), मर्य (पति),

न के साथ उपमा भी ऋग्वेदमें आती है, जिसका प्रयोग पीछे नही होता। न नहीके अर्थमे भी आता है, इसीलिये सदिग्ध होनेके कारण उपमार्थ न के प्रयोगको छोड दिया गया। भरद्वाज कहते हैं" (६।२)—

"हे अग्नि, तुम दीप्तिमान् हो, तुम्हारा उज्वल धूम विस्तृत द्योलोकमें फैला है। हे पावक, कृपालु हो अपनी द्युतिसे सूर्यकी तरह (सूरो न) प्रकाशमान होते हो ॥६॥

"प्रजाओमें तुम पूज्य हमारे प्रिय अतिथि हो, पुरमें हितकी तरह आश्रय लेने लायक, सूनुकी तरह (सूनुर्न) पालनीय हो ॥७॥

"हे अग्नि, तुम घर्षण करके द्रोणमें प्रकाशित होते हो, अश्वकी तरह वाजी न कार्यकारी हो। सर्वत्रगामी वायुकी तरह स्वय जानेवाले हो, घोडेकी तरह (अत्यो न) कुटिलगामी शिशु हो ॥८॥

अगले सूक्त" (६।३।४-८)में भरद्वाजने न-वाली उपमा अश्व, द्रवि (दर्वी), परशु, अयस्, पक्षी, रेभ (शब्दकारक), द्यो, घृणा, विद्युत् और ऋभुसे दी है।

§५. कवि

१ वशिष्ठ के ऋग्वेदके कुछ काव्यमय सूक्तोका परिचय हम दे चुके है। वसिष्ठने एक सूक्त" (७।७५) में उषाका बडा सुन्दर वर्णन किया है—

"दिविजा उषाने प्रकाश किया। (वह) सत्यसे अपनी महिमाका

---

१ देखो पृष्ठ ६७–८

आविष्कार करती आई। उसने तमको दूर किया, प्राणियोंके श्रेष्ठतम पथको आलोकित किया ॥२॥

"उषाकी यह दर्शनीय विचित्र अमृत किरणें आईं। (वह) दिव्य व्रतोंको उत्पन्न करती अन्तरिक्षको भरती अवस्थित हुई ॥३॥

"वह यह उषा द्यौकी दुहिता, भुवनकी रक्षिका, जनोंके ज्ञानको अव-लोकन करती तुरन्त पाँचों जनोंके चारों ओर पहुँचती है ॥४॥

"अन्नवाली विचित्र धन-युक्त सूर्यकी पत्नी (उषा) धनके लिये वसुओंके धनपर शासन करती है। जीर्ण करती ऋषियोंसे प्रशंसित धनिक यजमानों द्वारा स्तुति की जाती उषा प्रकाशित होती है ॥५॥

"प्रकाशमान उषाको वहन करते विचित्र अश्व दिखाई दे रहे हैं। शुभ्र नाना रूपोंवाली वह रथसे जाती है, सेवक जनोंको रत्न देती है ॥६॥

"वह सत्या सत्योंके साथ, महती महान् देवोंके साथ, यजनीया यजनीयोंके साथ दृढ़ अन्धकारको भेदन करती, गौओंको चरा देती है। गायें उषाकी कामना करती हैं ॥७॥

"हे उषा, हमें तुम गो-युक्त, वीरों-युक्त रत्न-अश्व-युक्त बहुत भोज दो। पुरुषोंके सामने हमारे यज्ञकी निन्दा न करो। तुम सदा स्वस्तियोंके साथ हमारी रक्षा करो ॥८॥"

२. विश्वामित्र—विश्वामित्रने भी कई सूक्त उषाकी प्रशंसामें रचे हैं, जिनमें एक[1] (३।६१)की कुछ ऋचायें निम्न प्रकार हैं—

"अन्नसे अन्नवाली, ज्ञानवाली मघोनी हे उषा, स्तुति-कर्ताके स्तोत्र (स्तुति) को ग्रहण करो। वह स्तोत्र सबके लिये वरणीय है। पुरातन युवती देवि, व्रतके लिये अनुगमन करो ॥१॥

"हे उषा देवि, सुनहले रथ-युक्त मित्रोंको मधुर भाषण करती प्रकाशित हो, सुवर्णवर्णा तुम्हें वे बहुत बलवाले सुनियमित अश्व ले जायें ॥२॥

"हे उषा, तुम अमृतकी ध्वजा हो, भुवनोंके ऊपर ऊर्ध्व खड़ी उपस्थित

हो। हे नवीना, एकसे रथपर विचरण करती चक्की तरह तुम पुन -पुन: घूमो ॥३॥"

३ वामदेव—सभी प्रधान ऋषियोने उषाकी महिमा गाई है। फिर वामदेव कैसे पीछे रह सकते हैं ? वह कहते हैं[16] (४।५१)—

"अन्धकारके बीचसे यह वह अतिविशाल ज्योति सामने उठी। जनोंके लिये निश्चय गमन क्रिया करती द्योकी दुहितायें उषायें प्रकाशित हो रही हैं ॥१॥

"यज्ञोमें यूपोकी तरह पूर्वमें विचित्र उषायें उठकर अवस्थित हुईं। बाधक अधकारके द्वारको खोलती वह दीप्त पवित्र प्रकाशित होती हैं ॥२॥

"मघोनी (धनवती), तमनाशिका उषायें भोजनदानके लिये अन्नदानके लिये भोजोको चेताती हैं। पणि लोग अन्धकारके मध्यमें न जाग बेहोश हो सोयें ॥३॥

"हे देवियो, सत्यमें जुडे अश्वोंके साथ तुम तुरन्त भुवनोमें चारो ओर जाती हो। उषायें जीवन विचरणके लिये सोये दोपायो-चौपायोको जगाती तुरन्त भुवनोंके चारो ओर जाती हैं ॥५॥

"जिसके लिये ऋभुओने विधान बनाये, वह उषा कहा, कितनी पुरानी हैं ? जब शुभ्र उषायें शुभ विचरण करती है, तो(वह कभी) न पुरानी होनेवाली एकसी पहचानी नही जाती ॥६॥"

फिर दूसरे सूक्त[17] (४।५२) में वामदेव सर्वप्रिय गायत्री छन्दमें उषाका गान करते हैं—

"अन्धकारनाशिनी बहिन (रात्रि)को हटानेवाली वह प्रशसित सुनायिका रमणी, द्योकी दुहिता दिखाई पडी ॥१॥

"अश्वकी तरह विचित्र चमकीली, गायोकी माता, यज्ञवाली उषा अश्वि-द्वयकी सखी हुई ॥२॥

"चाहे अश्विद्वयकी तू सखी है, चाहे गायो (किरणो) की माता है उषा तुम धनकी ईश्वरी हो ॥३॥

"मधुरभाषिणी (तुम) शत्रुओंको हटाओ, ज्ञान दो। हम स्तोमों (स्तुतियों) द्वारा तुम्हें प्रबोधित करते हैं ॥४॥

"वर्षाकी धाराकी तरह उसकी भद्र किरणें दिखाई पड़ीं। उषाने अपने विस्तृत तेजसे (विश्वको) भर दिया ॥५॥

"हे पूरयित्री विभावरि प्रकाशवती, अपनी ज्योतिसे तमको दूर करो। हे उषा, अन्नकी रक्षा करो ॥६॥

"हे उषा, (तुम) अपनी किरणोंसे द्यौको, विशाल प्रिय अन्तरिक्षको व्याप्त करती हो, अपनी शुक्र (उज्ज्वल) किरणोंसे व्याप्त करती हो ॥७॥"

उर्वशी-पुरूरवाका लघु सुन्दर खण्डकाव्य ऋग्वेद[1](१०।९५)का एक सूक्त है। उसको हम पीछे उद्धृत कर चुके हैं।

ऋषि अपनी कृतियोंको काव्य कहते थे, यह वामदेव के एक सूक्त [1](१०।५५) से मालूम होता है। सूक्तका ऋषि यद्यपि वामदेव-पुत्र बृहदुक्थ बतलाया गया है, पर सम्भव है वह बृहद् उक्थ (महान् गान) वामदेवकी मानस सन्तान हो। वह इन्द्रकी प्रशंसा करते कहते हैं—

"बहुतोंके युद्धमें शत्रु युवा होनेपर भी जिसके भयसे भागते हैं, वह श्वेतकेश हो गया। देवके महत्वपूर्ण काव्यको देखो, जो कल जीवित था, वह आज मर गया ॥५॥

४ भौम—अत्रिकी सन्तान भौम पर्जन्य (मेघ) की स्तुति [1](५।८३) भी बहुत सुन्दर है—

"हे इन वाणियोंसे पर्जन्यकी अच्छी प्रशंसा करो, नमस्कार करके पर्जन्यकी स्तुति करो। जलसेचक दानशील गरजता पर्जन्य ओषधियोंमें बीज धारण करता है ॥१॥

"यह वृक्षोंको नष्ट करता है, राक्षसोंको नष्ट करता है, महावधसे सारे भुवनको डराता है। उस वृष्टिवाले से निरपराध भी भागते हैं, क्योंकि पर्जन्य शब्द करते दुष्टोंको मारते हैं ॥२॥

---

१ देखो पृष्ठ ८०-९०

परिशिष्ट १

अध्याय १

सप्तसिन्धु

१. अष्टौ व्यख्यत् ककुभ पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून।
हिरण्याक्ष सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥८॥
१।३५ (त्रिष्टुव्)

२. ऋग्वेद मण्डल ६, ७, ३ और ४ क्रमश भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र और वामदेवके मण्डल कहे जाते हैं।

३. अग्निमीळे पुरोहित यज्ञस्य देवमृत्विज। होतार रत्नधातम ॥१॥
—१।१ (गायत्री)

४. वृषा वृषन्धि चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्या नृतम शचीवान्।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णा यस्या पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥
४।२२ (त्रिष्टुव्)

५. यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थ।
अत' परि वृषणा वा हि यातमथा सोमस्य पिवत सुतस्य ॥८॥
१।१०८ (त्रिष्टुव्)

६. वृषा वृषन्धि चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्या नृतम शचीवान्।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णा यस्या पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥
—४।२२

७. अतारिषुर्भरता गव्यव समभक्त विप्र सुमति नदीना।
प्र पिन्वध्वमिषयन्ती' सुराधा आ वक्षणा पृणध्व यात शीभ ॥१२॥
—३।३३ (त्रिष्टुव्)

परिशिष्ट १

अध्याय १

सप्तसिन्धु

१. उसने पृथिवीकी आठो दिशायें, तीनो मरुस्थल और सातो नदिया प्रकाशित कीं। सुनहली आंखोंवाला सविता देव (यजमान) दानियोंके लिये उत्तम रत्न लिये आवे ॥८॥

—हिरण्यस्तूप आंगिरस, १।३५

२ ऋग्वेदके ६, ७, ३ और ४ मंडल भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वमित्र और वामदेवके हैं।

३ यज्ञके देव, होता, ऋत्विज, पुरोहित अति रत्नधारक अग्निकी मैं स्तुति करता हूं ॥१॥

—मधुच्छन्दा विश्वामित्र-पुत्र, १।१

४ वृष्टि-धारक, कामवर्षी, दोनों बाहोंसे चार कोरवाले वज्र को फेंकनेवाले, उग्र, महानतम नेता शची-युक्त वृषभ (इन्द्र) ने ऊनकी तरह परुष्णी (रावी) को, श्री के लिये सेवन करते उसके पोरोंको मैत्रीके लिये ढाक दिया ॥२॥

—वामदेव गोतम-पुत्र, ४।२२

५ हे इन्द्र-अग्नि, जब तुम यदुओं, तुर्वशोंमें, जब द्रुह्युओं, अनुओं, पुरुओंमें रहो, तो भी हे कामनावर्षको, तुम आओ, और सुत (छाने) सोमको पियो ॥८॥

—कुत्स आंगिरस, १।१०८

६ देखो १।४

७. गो-कामी भरत पार हो गये, जिसने नदियोंकी सुमति प्राप्त की। (हे व्यास-शतद्रु,) अन्नकारिणी, सुन्दर धनयुक्त, फूली तटोंको पूर्ण करती, तुम शीघ्र आओ ॥१२॥

—विश्वामित्र कौशिक, ३।३३

८. उत न प्रिया प्रियासु सप्त स्वसा सुजुष्टा। सरस्वती स्तोम्या भूत् ।१०।
—६।६१ (गायत्री)

९ नि त्वा दधे वर आपृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्ना।
दृषद्वत्या मानुष आपयाया सरस्वत्या रेवदग्ने दिदीहि ।।४।।
—४।२३

१० इम मे गगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोम सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये श्रृणुह्या सुषोमया ।।५।।
तृष्टामया प्रथम यातवे सजू सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या।
त्व सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमु मेहत्न्वा सरय याभिरीयसे ।।६।।
—१०।७५

११ सप्तापो देवी सुरणा अमृक्ता याभि सिन्धुमतर इन्द्र पूर्भित्।
नवतिं स्रोत्या नव च स्रवन्तीर्देवेभ्यो गातु मनुषे च विन्द ।।८।।
—१०।१०४

१२ सरस्वती सरयू सिन्धुरूर्मिभिर्महो महीरवसा यन्तु वक्षणी ।
देवीरापो मातर सूदयित्नवो घृतवत् पयो मधुमन्नो अर्चत ।।९।।
—१०।६४

१३. मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मा व सिन्धुर्नि रीरमत्।
मा व परिष्ठात् सरयू. पुरीषिण्यस्मे इत् सुम्नमस्तु व ।।९।।
—५।५३

८. और प्रियाओंमें प्रिया सात बहिनोंवाली सुप्रसन्ना सरस्वती हमारी स्तुति योग्य हो ॥१०॥

—भरद्वाज, ६।६१

९ हे अग्नि, दिनोंके सुदिनके लिये पृथिवीके उत्तम अन्न-स्थानमें मैं तुम्हें स्थापित करता हूं। तुम दृषद्वती (घग्घर) आपया (मरकण्डा), सरस्वती पर आदमियोंके लिये धन-युक्त दीप्तिमान् होओ ॥१५॥

—देवश्रवा, देववात, भारत, ३।२३

१० हे गंगा, यमुना, सरस्वती, परुष्णी (रावी) सहित शुतुद्रि, मेरे इन स्तोमको स्वीकार करो। हे असिक्नी (झेलम)-सहित मरुद्वृधा, वितस्ता सुषोमा-सहित आर्जीकीया, सुनो ॥५॥

त्रिष्टामा, सुसर्तु, रसा, उन श्वेत्याके साथ पहले जाती, हे सिन्धु, कुभा (काबुल नदी)-सहित गोमती, मेहत्नू को लिये क्रुमु, तुम बहती हो ॥६॥

—सिन्धुक्षित् प्रियमेध-पुत्र १०।७५

११ सुरम्य अमित गतिवाली दिव्य सातों नदियाँ (हैं), जिनके साथ, हे गढ़ोंको तोड़नेवाले इन्द्र, तुम सिन्धु पार हुए। देवों और मनुष्योंके उपकारके लिए तुमने निन्नानवे बहती नदियों को प्राप्त किया ॥८॥

—अष्टक विश्वामित्र-पुत्र, १०।१०४

१२ सरस्वती, सरयू, सिन्धु (अपने) तरंगोंसे महती, महान् रक्षाके लिए बहती आवें। प्रेरिता दिव्य जलमाताएँ घृत, दुग्ध, मधु-सहित हमें तृप्त करें ॥९॥

—नयग्रान, १०।६४

१३. (हे मरुतो,) तुम्हें रसा, अनितभा, कुभा (काबुल), क्रुमु (कुर्रम) न (रोकें), न तुम्हें सिंधु रोकें। जलवती, सरयू तुम्हें न बाधा डाले, और तुम्हारा दिया सुख हमारे लिए हो ॥९॥

—श्यावाश्व आत्रेय, ५।५३

१४ यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहु ।
यस्येमा प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविपा विधेम ॥४॥

—१०।१२१

१५ न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळव ।
यद्दित्ससि स्तुवते मावते वसु नकिष्टदा मिनाति ते ॥३॥

—८।७७

१६ त्वं शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्था प्रतीनि दस्यो ।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे,
भरद्वाजाय गृणते वसूनि ॥४॥

—६।३१

१७ स वृत्रहेन्द्र कृष्णयोनी. पुरन्दरो दासीरैरयद्वि ।
अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शंसं यजमानस्य तूतोत् ॥७॥

—२।२०

१८ इन्द्र समत्सु यजमानमार्यं प्रावद्विश्वेपु
शतमूतिराजिपु स्वर्मीहळेष्वाजिपु ।
मनवे शासदव्रतान् त्वचं कृष्णामरन्धयत् ।
दक्षन्नविश्वं ततृपाणमोपति न्यर्शसानमोपति ॥८॥

—१।१३०

१९ प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्र वातेजा इरिणे वर्वृताना ।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान् ॥१॥

—१०।३४

१४. जिसकी महिमासे यह हिमवन्त (है) और रसा-सहित समुद्र (जिसका) कहा गया, जिसकी (भुजाएँ) यह दिशाएँ हैं, उस क देवके लिए हम हविसे पूजा करें ॥४॥

—हिरण्यगर्भ प्राजापत्य, १०।१२१

१५ हे इन्द्र, बृहत् और दृढ़ पर्वत भी तुम्हें नहीं रोक सकते। मेरे जैसे स्तुतिकर्ताको जब तुम धन देना चाहते हो, तो तुम्हें कोई नहीं रोक सकता ॥३॥

—नोधा गौतम-पुत्र, ८।७७

१६ (हे इन्द्र,) तुमने दस्यु शम्बरके सौ अजेय पुरोंको नष्ट किया। हे शचीवान् (प्राज्ञ), तुमने सोम-सेवन-कर्ता, सोमप्रेता दिवोदासको प्रज्ञा-सहित धन दिया, स्तुति करनेवाले भरद्वाजको धन प्रदान किया ॥४॥

—सुहोत्र भारद्वाज, ६।३१

१७. उस पुरनाशक वृत्रहन्ता इन्द्रने जन्मसे काले दासोंको नष्ट किया। उसने मनुष्यके लिए पृथिवी और जलको बनाया। वह यजमानकी आकांक्षा पूरी करता है ॥७॥

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।२०

१८ इन्द्रने सारे युद्धोंमें आर्य यजमानकी रक्षा की। वह सारे युद्धोंमें सैकड़ों रक्षावाला सुखकारी है। उसने मनुके लिए अव्रतियोंको दण्ड दिया, काले चमड़े (वालों) को नष्ट किया। (वह) सबको जलाता, हिंसकोंको, निष्ठुरोंको जलाता है ॥८॥

—परुच्छेप दिवोदास-पुत्र, १।१३०

१९. पृथ्वी पर घूमते, चलते, कांपने वाले मुझे बहुत प्रसन्न करते हैं। जैसे मौजवान् पर्वतके सोमका भग, वैसे बहेड़ेके काठवाले पासे मेरे लिए उत्साह देते हैं ॥१॥

—कवष ऐलूष, १०।३४

२०. दिवस्पृथिव्योरव आवृणीमहे मातृन्त्सिन्धून् पर्वतान्छर्यणावत:।
अनागास्त्वं सूर्यमुपासमीमहे भद्र सोम सुवानो अद्या कृणोतु न ॥२॥
—१०।३५

२१. अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुर्निधिं पणीना परम गुहाहित।
ते विद्वास. प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यत उ आयन्तदुदीयुराविशन् ॥६॥
—२।२४

२२. यास्ते पूषन्नावो अन्त समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति।
ताभिर्यासि दूत्या सूर्यस्य कामेन कृतश्रव इच्छमान ॥३॥
—६।५८

अध्याय २

आर्यजन

१. प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भा।
अभि य. पूरु पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ॥४॥
—७।८

पुरु सरस्वतीके तटपर भी थे। १५।७१।२

२. वि सद्यो विश्वा दृंहितान्येषामिन्द्र पुर सहसा सप्त दर्द।
व्यानवस्य तृत्सवे गयं भाग्जेष्म पूरु विदथे मृध्रवाच ॥१३॥
—७।१८

३. भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे
नृतो वज्रेण दाशुषे नृत।
अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत्।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥७॥
—१।१३०

२० हम द्यौ और पृथिवीसे, नदी माताओंसे, शर्यणावान् पर्वतों से रक्षाकी प्रार्थना करते हैं, सूर्य और उषासे निष्पाप होनेकी कामना करते हैं। सेवन किया जाता (यह) सोम आज हमारा मंगल करे॥२॥

—लूश धानाक, १०।३५

२१ चारों ओर खोजते (जिन्होंने) गुहामें छिपाई पणियोंकी परमनिधि को प्राप्त कर लिया, वे विद्वान झूठको देखकर जहांसे आये थे, वहीं चले गये॥६॥

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।२४

२२ हे पूषन्, जो तुम्हारी सुनहली नावें समुद्रके भीतर और आकाशमें चलती हैं, उनके द्वारा तुम सूर्यके दूत-कार्यके लिए, कामनासे चाहते हुये जाते हो॥३॥

—भरद्वाज, ६।५८

अध्याय २

आर्यजन

१ जब सूर्यका बृहद्-ज्योति यह अग्नि प्रकाशित होता है, तो भरतको सुनता है। जिसने युद्धोंमें पुरुका दमन किया, वह दिव्य अतिथि द्योतित हो प्रज्वलित हुआ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।८

२ इन्द्रने इन दस्युओंकी सारी सात दृढ़ पुरियों (गढ़ियों)को तुरन्त बलपूर्वक विदीर्ण कर दिया। आनव (अनुओं)के स्थानको तृत्सुके लिए दिया। हठी पुरुको हम युद्धमें जीतें॥१३॥

—वसिष्ठ ७।१८

३. हे इन्द्र, मैं गाता हूँ तुमने महान् शम्बर पुर (पुरों) दिवोदासके लिए पत्थरके नब्बे गढ़ियोंको छिन्नभिन्न किया। अतिथिग्व (दिवोदास) के लिए शम्बरका उग्र (इन्द्रने) गिरिसे नीचे गिराया, (अपने) ओजसे महान् धन दिए, सारे धन ओजसे (दिये)॥७॥

—परुच्छेप दिवोदास-पुत्र, १।१३०

४. त्व धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरप सीरा न स्रवन्ती ।
प्रयत् समुद्रमतिशूर पर्षि पारया तुर्वशं यदु स्वस्ति ॥९॥
—१।१७४

५. त्वमाविथ नर्यं तुर्वश यदुं त्व तुर्वीति वय्यं शतक्रतो ।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्व पुरो नवति दम्भयो नव ॥६॥
—१।५४

६ येनाव तुर्वशं यदु येन कण्व धनस्पृतत । राये सु तस्य धीमहि ॥१८॥
८।७—

७. सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजं ॥६॥
मा ते अस्या सहसावन् परिष्टावघाय भूम हरिव परादै ।
त्रायस्व नो वृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियास सूरिषु स्याम ॥७॥
प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखाय ।
नि तुर्वश नि याद्व शिशीह्यतिथिग्वाय शस्य करिष्यन् ॥८॥
—७।१९

८ त्वमपो यदवे तुर्वशायारमय सुदुघा पार इन्द्र ।
उग्रमयातमवहो ह कुत्सं स ह यद्वामुशना रन्तदेवा ॥८॥
—५।३१

गावावरपा सूयवस्यू मन्तस्थु चरतो रेरिहाणा ।
तुर्वशं परादादृचीवतो दैववाताय शिक्षन् ॥७॥
—६।२७

४. हे इन्द्र, धुननेवाले तुमने नदियोंकी तरह धुननेवाले जलोंको बहाया। हे शूर, जब तुम समुद्रमें बाट करते हो, तब तुर्वश और यदुको कल्याण सहित पार करो ॥९॥

—अगस्त्य, ११७४

५. हे शतक्रतु (इन्द्र), तुमने नर्य, तुर्वश, यदुकी रक्षा की, तुमने वय्य, तुर्वीतिकी रक्षा की। तुमने धनके लिए संग्राममें एतशके रथकी रक्षा की, तुमने निन्नानवे गढ़ियोंको नष्ट किया ॥६॥

—सव्य आंगिरस, १।५४

६ जिससे तुर्वश-यदुकी रक्षा की, जिससे तुमने धनाभिलाषी कण्वकी (रक्षा की), उस (रक्षा) को धनके लिए हम चाहते हैं ॥१८॥

—वत्स काण्व-पुत्र, ७।८

७ हे इन्द्र, भक्त रातहव्य(हविदाता)सुदासके के लिए यह तुम्हारे भोजन सनातन हैं। हे कामवर्षक, तुम्हारे लिए दोनों घोड़ोंको मैं जोतता हूँ। हे महाशनि, हमारे स्तोत्र (और) अन्न तुम्हारे पास पहुँचें ॥६॥ हे बलवान् और अश्ववान्, तुम्हारे इस यज्ञमें हम अघके भागी न हों। हमें निरापाय अपनी रक्षाओं द्वारा बचाओ, ताकि हम सूरियों (राजकुमारों) में तुम्हारे प्रिय होवें ॥७॥

हे मघवा (धनवान्), तुम्हारी इष्टि (यज्ञ) में हम नर (लोग) प्रिय सखा हो घरमें मौज करें। अतिथिग्व (दिवोदास) की भलाई की इच्छासे (तुम) तुर्वश यदुको मारो ॥८॥

—वसिष्ठ, ७।१९

८. हे इन्द्र, तुमने यदु और तुर्वशके लिए परले पार उर्वर नदियाँ रोकीं, कुत्सके ऊपर आये उग्र (दस्यु) को तुमने मारा, जबकि तुम दोनों उशना और देवोंके साथ आये ॥८॥

अवस्यु आत्रेय, ५।३१

९ जिसकी सुतप-इच्छुक लेलिहान लाल गायें (द्यौ पृथिवीके) भीतर विचरण करती हैं। उस (इन्द्र) ने सृंजयके लिए दूसरे सारे तुर्वशको दिया, देववातके लिए वृचीवान्‌को प्रदान किया ॥७॥

—भरद्वाज, ६।२७

१०. य आनयत्परावत सुनीती तुर्वश यदु।
इन्द्र स नो युवा सखा ॥१॥

—६।४५

११. यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थ ।
अत परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिवत सुतस्य ॥८॥

—१।१०८

१२ यदा तृक्षौ मघवन्द्रुह्या वा जने यत्पुरौ कच्च वृण्य।
अस्मभ्य तद्रिरीहि स नृपाह्ये मित्रान्पृत्सु तुर्वणे ॥८॥

—६।४६

१३. पुरोळा इत्तुर्वशो यक्षुरासीद्राये मत्स्यासो निशिता अपीव।
श्रुष्टि चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च सखा सखायमतरद्विपूचो ॥६॥
अध श्रुत कवष वृद्धमप्स्वनु द्रुह्य् नि वृणक् वज्रवाहु ।
वृणाना अत्र सख्याय सख्य त्वायन्तो ये अमदन्ननु त्वा ॥१२॥
नि गव्यवो नवो द्रुहयवश्च षष्टि शता सुषुपु पट् सहस्रा।
षष्टिर्वीरासो अधि पड् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ॥१४॥

—७।१८

१४ अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन् त्वष्टा वज्र पुरुहूत द्युमन्त।
ब्रह्माण इन्द्र महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥४॥

—५॥३१

१५ यदिन्द्र प्रागपागुदङ न्यग्वा हूयसे नृभि ।
सिमा पुरू नृपूतो अस्यानवेसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥१॥

—८।४

१६. य ईं राजानावृतुथा विदधेद्रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत्।
गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद्वचस आनवाय॥९॥

—६।६२

१० सुन्दर आनयनसे जो तुर्वश, यदुको पश्चिमसे ले आया, वह युवा इन्द्र हमारा सखा है ॥१॥

—शंयु बार्हस्पत्य, ६।४५

११. हे इन्द्र-अग्नि, यदि तुम यदुओं, तुर्वशोंमें, यदि द्रुह्युओं, अनुओं, पुरुओंमें हो, तो भी हे प्रभुओ, आओ, और सुत (छाने) सोमको पियो ॥८॥

—कुत्स आंगिरस, १।१०८

१२ हे मघवन्, तुर्वसु या द्रुह्यु जनमें, पुरुमें जो बल है, उसे हमें दो, ताकि मनुष्य-पराजयके युद्धमें हम अमित्रोंको पराजित करें ॥८॥

—शंयु बृहस्पति-पुत्र, ६।४६

१३ हव्यदाता यज्ञकर्ता, तुर्वश धनके इच्छुक पानीमें मछलियोंकी तरह बंधे थे। भृगुओं और द्रुह्युओंने सुना, दूसरों (तुर्वश-यदु) के बीच सखा (इन्द्र) ने सखा (सुदास) की रक्षा की, ॥६॥

वज्रबाहु (इन्द्र) ने प्रसिद्ध वृद्ध कवषको पानीमें डुबाया, द्रुह्युको नष्ट किया। मित्रताको स्वीकार करते यहाँ जो तुम सखाके पास आये, वे तुम्हारे पीछे आनन्दित हुये ॥१२॥

लूट-इच्छुक अनु और द्रुह्यु साठ सौ छ हजार और छियासठ वीर सो गये (भक्तोंके लिए) यह सब पराक्रम इन्द्रने किये ॥१४॥

—वसिष्ठ, ७।१८

१४ हे पुरुहूत (इन्द्र), अनुओंने तुम्हारे घोड़ोंके लिए रथ तैयार किया, अहि (राक्षस) को मारनेके लिए त्वष्टाने प्रकाशमान वज्रको, ब्राह्मणने स्तुतियोंसे तुम्हें बढ़ाया ॥४॥

—अवस्यु आत्रेय, ५।३१

१५ हे इन्द्र, यद्यपि तुम पूर्व, उत्तर या दक्षिणमें आदमियों द्वारा बुलाये जाते हो, तो भी वीर अनुके और तुर्वशके साथ होते हो ॥१॥

—देवातिथि काण्व, ८।४

१६ जो चतुर अनुसार [illegible] राजाओंकी पूजा करते हैं, उसे मित्र और वरुण जानते हैं। वह गुप्त [illegible], द्रुह्यु [illegible] अनवके लिए अन्न फैलाते हैं ॥९॥

—भरद्वाज, ६।६२

१७. याभि पक्थमवथो याभिरध्रिगुं याभिर्बभ्रुं विजोषस।
ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गत भिषज्यत यदातुरं ॥१०।

—८।२२

१८. आ पक्थासो भलानसो भनन्तालिनासो विषाणिनः शिवासः।
आ यो नयत्सधमा आर्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगन्युधा नृन् ॥१॥
दुराध्यो अदितिं स्रवयन्तो चेतसो वि जगृभ्रे परुष्णीं।
मह्ना विव्यक् पृथिवी पत्यमान पशुष्कविरशयच्चायमानः ॥८॥
इयुरर्थं न न्यर्थं परुष्णीमाशुश्चनेदभिपित्व जगाम।
सुदास इन्द्र सुतुका अमित्रानरन्धयन्मानुषे वध्रिवाचः ॥९॥

—७।१८

१९. इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिर क्षिप्रेषवे देवाय स्वधान्वे।
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता श्रृणोतु न ॥१॥

—७।४६

२०. उभे यत्ते महिना शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः।
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद रावो मघोना ॥२॥

—७।५६

अध्याय ३

वर्ण, वर्ग

१. स हि ष्मा धन्वाक्षित दाता न दात्या पशु ।
हरिश्मश्रुः शुचिदन्नृभुरनिभृष्टतविषि. ॥७॥

—५।७

१७. हे अश्विद्वय, जिन चिकित्साओंसे तुमने पक्यकी रक्षा की, जिनसे अध्रिगुको, जिनसे असहाय बभ्रुको रक्षा की, उनके साथ जल्दी आकर आतुर (बीमार) की चिकित्सा करो ॥१०॥

—सोभरि कण्व-पुत्र, ८।२२

१८. पक्थ, भलान, अलिन, विषाणी, शिव आये। जो (इन्द्र) आर्यको गायें तृत्सुओंके लिए लाया, युद्धमें लोगोंको जीता ॥७॥

दुर्विचार, अविचारी (शत्रु) के अदिति (पृथिवी) को खोदते परुष्णी (रावी) पर अधिकार कर लिया। (इन्द्रकी) महिमाने चायमान कवि पशुकी तरह पृथिवीपर गिरते भाग गया ॥८॥

अर्थको तरह अनर्थके लिए परुष्णीके पास वह पहुँचे। ठीक ही वह (जल) अपने स्थानपर चला गया। सुदासके लिए इन्द्रने मनुष्योंमें बकवादी, बहु-सन्तानी शत्रुओंको मारा ॥९॥

—वसिष्ठ, ७।१८

१९ भरतो, स्थिर धनुषवाले, क्षिप्र बाण फेंकनेवाले, अन्नवान्, अपराजित, विजेता, विधाता, तीक्ष्णायुध रुद्र के लिये यह मेरी स्तुति सुनो ॥१॥ —७।४६

२० हे शुभ्रे, तेरी महिमा है, जो कि पूरु लोग दोनों तटो पर बसते हैं। सो तुम रक्षिका हमें बोध दो, मरुतों की सखी होकर धनवानों के धन को भेजो ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।९६

अध्याय ३

वर्ण, वर्ग

१. सुनहले मूछ-दाढ़ी वाले, नपे दांतोंवाले अमोनिहा-अग्नि यह महान् अग्नि दरातों से जैसे पशु, (काटते हैं), वैसे उजाड़ करके प्रकाशता है ॥७॥

२ हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ॥८॥
—१०।९६

३. ऋतावान यज्ञिय विप्रमुक्थ्यमाय दधे मातरिश्वा दिविक्षय।
त चित्रयाम हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्नि सुविताय नव्यसे ॥१३॥
—३२

४ हिरण्यकेशो रजसो विसारे हिर्धुनिर्वात इव ध्रजीमान्।
शुचिभ्राजा उषसो न वेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्या ॥१॥
—१।७९

५ एवेदिन्द्र सुहव ऋष्वो अस्तूती अनूती हरिशिप्रः स त्वा।
एवा हि जातो असमात्योजा पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ॥६॥
—६।२९

६ श्वित्यचो मा दक्षिणतस्कपर्दा धिय जिन्वासो अभि हि प्रमन्दु।
उत्तिष्ठन्वोचे परि बर्हिषो नृभ्न मे दूरादवितवे वसिष्ठा. ॥१॥
—७।३३

७ इहेह व स्वतवस कवय. सूर्यत्वच।
यज्ञ मरुत आ वृणे ॥११॥
—७।५९

८ खे रथस्य खे नम खे युगस्य शतक्रतो।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्व्यकृणो सूर्यत्वचं ॥७॥
—८।८०

२ सुनहले (पीले) मूँछ-दाढ़ीवाले-पीले केशवाले पत्थर से दृढ़, सोमपायी अश्व जो वेग में तुरन्त बढ़ते हैं। जो द्रुतगामी घोड़ों द्वारा यज्ञ में आते हैं। दोनों घोड़ों पर चढ़े सारी बाधाओं को पार करते हैं ॥८॥

—वरु आंगिरस, १०।९६

३ शक्तिमान् यज्ञ-योग्य विप्र, स्तुति-योग्य, द्यौ निवासी जिसे वायु ने स्थापित किया। उस विचित्र गतिवाले सुनहले केश-युक्त सुदीप्त अग्नि की स्तुति नई सम्पत्ति के लिये हम करते हैं ॥१३॥

—विश्वामित्र, ३।२

४ लोकों के फैलाव में सुनहले केश-युक्त, कम्पमान सर्प-सा द्रुतगामी वायु सा शुद्ध प्रकाश द्वारा सच्ची यशोवती उषाओं की तरह, कर्मियों का जानता है ॥१॥

—गोतम राहूगण-पुत्र, १।७९

५ सुनहले मुकुट वाले, सुआहृत, सहायक-बिना सहायक इन्द्र धन देते हैं। इस प्रकार प्रकट अत्यन्त ओजस्वी इन्द्र बहुत से शत्रु दस्युओं को मारते हैं ॥६॥

—भरद्वाज, ६।२९

६ गोरे, दाहिनी ओर जूड़ा रखनेवाले सुबुद्धि ये वसिष्ठ मुझे बहुत प्रसन्न करते हैं। घर से उठते मैं आदमियों को कहता हूँ, "वसिष्ठ-संताने मुझसे दूर न जायें" ॥११॥

—वसिष्ठ, ७।३३

७ स्वयं शक्तिमान् सूर्य के जैसे वर्णवाले हे [illegible], यज्ञ में मैं तुम्हें वरण करता हूँ ॥१४॥

—वसिष्ठ, ७।५०

८ हे शतक्रतु (इन्द्र), रथ के छिद्र, शकट के छिद्र, युग के छिद्र में तीन बार पवित्र करके तुमने अपाला को सूर्य के वर्ण जैसे वर्णवाली बना दिया ॥७॥

—अपाला आत्रेयी, ८।८०

९. तुविग्रीवो वपोदर सुवाहुरन्धसो मदे। इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥८॥
—८।१७

१०. क्व स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानत । ब्रह्मा कस्त सपर्यति ॥७॥
—८।५३

११. पिशंगरूपः सुभरो वयोधा श्रुष्टी वीरो जायते देवकाम ।
प्रजा त्वष्टा विष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथ ॥९॥
—२।३

१२ अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा अन्त कृष्णां अरुषैर्धामभिर्गात्।
प्र सूनृता दिशमाननृतेन दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वा ॥२१॥
—३।३१

१३ स वृत्रहेन्द्र कृष्णयोनी. पुरन्दरो दासीरैरयद्वि।
अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शस यजमानस्य तूतोत् ॥७॥
—२।२०

१४ शत मे गर्दभाना शतमूर्णावतीना। शत दासा अतिसृज ॥३॥
—(वालखिल्य) ८।८

१५ शुभ्र नु ते शुष्म वर्धयन्त शुभ्र वज्र बाह्वोर्दधाना ।
शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विश सूर्येण सह्या ॥४॥
—२।११

९ विस्तृत-ग्रीव स्थूल-उदर सुन्दर-बाहु वाले इन्द्र सोम के मद में शत्रुओं को मारते हैं॥८॥

—इरिम्बिठ काण्व, ८।१७

१० वह वृषभ (पहलवान), युवा, विशाल-ग्रीव न झुकनेवाला (इन्द्र) कहा है? कौन ब्राह्मण उनकी स्तुति करता है॥८॥

—प्रगाथ काण्व, ८।५३

११ हमारे पिशंग-रूप (सुवर्ण-वर्ण), सुघर, आयुष्मान, क्षिप्रकारी देवभक्त वीर (पुत्र) जन्में। त्वष्टा (हमें) नाभि-सन्तान देवे, वह देवों के स्थान को जायें॥९॥

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र २।३

१२ शत्रुनाशक गोस्वामी (इन्द्र), गायें प्रदान करें। अरुण तेज द्वारा कालों के भीतर पहुंचा। उसने अनृत सुन्दर वचन निकलाने वाले अपने सारे दरवाजों को खोल दिया॥२१॥

—विश्वामित्र, ३।३१

आर्यों की नाक अधिक लम्बी ऊंची होती थी, जब कि उनके विरोधी छोटी नाकवाले इसीलिये उन्हें वह अ-नास कहते थे। ऋक् ५।२९।१०।

१३ उन वृत्रहा पुरन्दर (पुरनाशक) इन्द्र ने जन्मसे काले दासों को नष्ट किया। उसने मनुष्य के लिये पृथिवी और जल को जन्माया। वह यजमानकी आकांक्षा को पूरा करता है॥७॥

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।२०

१४. मुझे सौ गदहे, सौ भेड़ें, सौ दास उन (पूतक्रतु-पुत्र) ने दिये॥३॥

—पृषध्र, वालखिल्य, ८।८

१५ हे इन्द्र, (हम) तुम्हारे शुभ्र बल को बढ़ाते तुम्हारी दोनों बाहों में शुभ्र वज्र को धारण करते हैं। तुम सूर्य के साथ शुभ्र बने हुये दासीय प्रजाओं को हमारे लिये पराजित करो॥८॥

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र २।११

१६ येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दास वर्णमधर गुहाक ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँलक्षमाददर्य पुष्टानि, स जनास इन्द्र ॥४॥
—२।१२

१७ विश्वस्मात् सीमधमा इन्द्र दस्यून्विशो दासीरकृणोरप्रशस्ता ।
अवाधेयाममृणत नि शत्रूनविन्देथामपचितिं वधत्रै ॥४॥
—४।२८

१८ क अदान्मे पौरुकुत्स्यः पचाशत नाम त्रसदस्युर्वधूना ।
महिष्टो अर्य सत्पति ॥३६॥
उत मे प्रयियोर्वयियो सुवास्त्वा अधि तुग्वनि ।
तिसृणा सप्ततीना श्याव प्रणेता भुवद्वसुर्दियाना पति ॥३७॥
—८।१९

१८ ख. दास (उपमा १५।६३)

१९. शर्यणावति सोममिन्द्र पिबतु वृत्रहा ।
बल दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्य महद् इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१॥
आ पवस्व दिशा पत आर्जीकात् सोम मीढ्व ।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत ॥२॥
पर्जन्यवृद्ध महिष त सूर्यस्य दुहिता भरत् ।
त गन्धर्वाः प्रत्यगृम्णन्त सोमे रसमादधु ॥३॥
ऋत वदन्नृतद्युम्न सत्य वदन्त्यसत्यकर्मन् ।
श्रद्धा वदन्त्सोम राजन्धात्रा सोम परिष्कृत ॥४॥
—९।११३

२० ब्राह्मणो'स्य मुखमासीद् बाहू राजन्य. कृत ।
ऊरू तदस्य यद् वैश्य' पद्‌भ्या शूद्रो अजायत ॥१२।
—१०।९०

१६ जिसने इस सारे नश्वर (विश्व) को बनाया, जिस गुह्य (इन्द्र) ने दास वर्ण को नीच गुहा-निवासी बनाया। जिस स्वामी ने शिकारी की तरह लक्ष्य को जीत कर धन को ग्रहण किया। हे लोगो, वह इन्द्र है ॥४॥

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।१२

१७ हे इन्द्र, तुमने दस्युओं को सभी से अधम बनाया, दासीय प्रजाओं को अप्रशस्त किया। (इन्द्र और सोम ने) शत्रुओं को बाधा दी, वध के हथियारों से बदला लिया ॥४॥

—वामदेव गोतम-पुत्र, ४।२८

१८ पुरुकुत्स-पुत्र त्रसदस्यु ने जो कि अतिमहान् अर्य (स्वामी) सत्पति है, मुझे पचास दासियाँ दीं, ॥३६॥
दान-पति धनी सुनेता श्यावने भी मुझे सुवास्तु के तट पर मजबूत घोड़ा और तीन-सत्तर गायें दीं ॥३७॥

—सोभरि कण्व-पुत्र, ८।१९

१९ वृत्र-हन्ता इन्द्र ने शर्यणावत में सोम पिया। अपने में बल धारण करके महान् विक्रम करने को तैयार हो हे इन्दु (सोम), इन्द्र के लिये बहो ॥१॥

दिशाओं के पति, सिंचक हे सोम, आर्जीक से बहो। ऋत वचन, सत्य, श्रद्धा और तप द्वारा सुवाये, हे सोम इन्द्र के लिये बहो ॥२॥

उस पर्जन्य से बढ़े महिष (महान्) सोम को सूर्य की दुहिता ले आई। उसे गन्धर्वों ने ग्रहण किया, सोममें रस स्थापित किया ॥३॥

ऋतवादी ऋत-प्रकाशक सत्यवादी सत्यकर्मा, श्रद्धावादी हे सोम-राजा विधाता द्वारा परिष्कृत ॥४॥

—कश्यप मरीचि-पुत्र, ९।११३

२०. इस (पुरुष) का मुख ब्राह्मण हुआ, दोनों बाहु से राजन्य (क्षत्रिय) बना। जो इसकी दोनों जांघें हुईं, जो कि वैश्य (और) दोनों पैरों से शूद्र जनमा ॥१२॥

—नारायण, १०।९०

३. आदिद्धनेम इन्द्रियं यजन्त आदित्पक्ति पुरोळाश रिरिच्यात्।
आदित् सोमो विपपृच्यादसुष्वीनादिज्जुजोष वृषभ यजध्यै ॥५॥
—४।२४

वृषभ पकाना १५।३९, ९७–१००
इन्द्र का ३५ बैल खाना १६।३।(१४)

४. त्व नो वायवेषामपूर्व्य सोमाना प्रथम पीतिमर्हसि सुताना पीतिमर्हसि।
उतो विहुत्मतीना विशा ववर्जुषीणा।
विश्वा इत्ते धेनवो दुह आशिर घृत दुहत आशिर ॥६॥
—१।१३४

५. किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिर दुहे न तपन्ति घर्म्म।
आ नो भर प्र मगन्दस्य वेदो नैचाशाख मघवन्नन्धया न ॥१४॥
—३।५३

इमे त इन्द्र सोमास्तीव्रा अस्मे सुतास । शुक्रा आशिरं याचन्ते।१९।
ता आशिर पूरोळाशमिन्द्रेम सोम श्रीणीहि।
रेवन्त हि त्वा श्रृणोमि ॥११॥
—८।२

परि सोम प्र धन्वा स्वस्तये नृभि पुनानो अभि वासयाशिर।
ये ते मदा आहनसो विहायसस्तेभिरिन्द्र चोदय दातवे मघ ॥५॥
—९।७५

अय पुनान उपसो विरोचयदय सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत्।
अयं त्रि सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सर ॥२१॥
—९।८६

३. तब कोई इन्द्र के पराक्रम की पूजा करते, कोई पकाते, पुरोडाशको तैयार करके देते, अदानियों को सोम सतावे, हम यजन के लिये वृषभ प्रस्तुत करते हैं ॥५॥

—वामदेव, ४।२४

४ हे सर्वपुरातन वायु, (तुम) इन सोमों के प्रथम पान करने योग्य हो, छाने हुओं के प्रथम पान के योग्य हो। हवन करनेवाले निर्दोष प्रजाओं की आहुतियों को (तुम स्वीकार करते हो)। सारी धेनुयें तुम्हारे लिये दूध-घी दुहाती, दूध दुहाती हैं ॥६॥

—परुच्छेप दिवोदास-पुत्र १।१३४

५ हे मघवन् (इन्द्र), कीकटों (अनार्यों के देश) में तुम्हारी गायें क्या करती हैं? न आशिर (दूध) दुहाती हैं, न घर्म (दूध) तपाती हैं। नैचाशाख (नगर) को नष्ट करो, प्रमगंद के धन को हमारे लिये लाओ ॥१४॥

—विश्वामित्र, ३।५३

हे इन्द्र, तुम्हारे लिये यह हमारे छाने श्वेत तीव्र सोम हैं, यह आशिर (दूध) चाहते हैं ॥१०॥

हे इन्द्र, उन (सोमों) को आशिर, पुरोडाश से मिलाओ। मैं तुम्हें धनवान् सुनता हूँ ॥११॥

—प्रियमेध आंगिरस, ८।२

हे सोम, इन्द्र के लिये तुम चारों ओर बहो। मनुष्यों द्वारा पूत हुये तुम दूध से मिलो। जो तुम्हारे फेनिल तीव्र मद हैं, उनके द्वारा इन्द्रको धन देने के लिये प्रेरित करो ॥५॥

—कवि भार्गव, ९।७५

यह पुनान (सोम) उषाओं को प्रकाशमान करता है। यह सिन्धुओं (नदियों) के लिये स्थान बनाता है। यह २१ बार दुहा गया, मत्सर सोम हृदय में सुशोभित होता है ॥२१॥

—पृश्नि, अज, ९।८६

अह तदासु धारय यदासु न देवश्च न त्वष्टा धारयद्रुशत् ।
स्पार्हं गवामूध सु वक्षणास्वा मधोर्मधु श्वात्र्य सोममाशिरं ॥१०॥
—१०।४९

इन्द्रो वल रक्षितार दुधाना करेणेव विचकर्त्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानो रोदयत् पणिमाग अमुष्णात् ॥६॥
—१०।६७

६ उप न सुतमागहि सोममिन्द्र गवाशिर । हरिम्या यस्ते अस्मयु ॥१॥
इममिन्द्र गवाशिर यवाशिर च न पिव । आगत्या वृषभि सुत ॥७॥
—३।४२

७ सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिर ।
निम्न नयन्ति सिन्ववोमि प्रय ॥७॥
—५।५१

८ विश्वेत्ता विष्णुरामरदुरुक्रमस्त्वेपित ।
शत महिपान् क्षीरपाकमोदन वराहमिन्द्र एमुप ॥१०
—८।६६

१ अश्वमेध—

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुत परिख्यन् ।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्ते प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥१॥

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृत स्य राति गृभीता मुखतो नयन्ति ।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्ण प्रियमप्येति पाथ ॥२॥

मैंने इन (गायों) में उसे स्थापित किया, जिसे इनमें न किसी देवता ने न त्वष्टा ने स्थापित किया। गायों के होनेवाले स्तनों में मधुका भी मधु स्पृहणीय सफेद सोम आशिर (दूध) है ॥१०॥

—इन्द्र, १०।४९

धेनुओं के रक्षक बल को इन्द्र ने हुंकार के साथ हाथ से ही चीर डाला। मरुतों के साथ आशिर (दूध) को चाहते गायोंको छीन लिया, पणि को रुलाया ॥६॥

—अयास्य आंगिरस १०।६७

६ हे इन्द्र, हम पर कृपा कर अपने दोनों घोड़ों (के रथ) द्वारा हमारे गोदुग्धवाले छाने सोम के पास आओ ॥१॥

हे वाहन-युक्त इन्द्र, आकर हमारे छाने इन गवाशिर और यवाशिर को पियो ॥७॥

—विश्वामित्र, ३।४२

७. इन्द्र के लिये वायु के लिये, दध्याशिर (दधि-मिश्रित) सोम छाने है। जैसे सिन्धु (नदियां) निम्न (उपत्यकाओं) की ओर जाती हैं, वैसे (तुम) आओ ॥७॥

—अग्नि, ५।५१

८. हे इन्द्र, तुमने प्रेरित बहुगामी उन उन सबको लाया—सौ महिषों, क्षीरपाक, ओदन, वराह, चोर ॥१०॥

—कुरुसुति, ८।६९

१ अश्वमेध

जब देव-उत्पन्न शीघ्रगामी घोड़े के पराक्रम को विदथ (यज्ञशाला) में हम कहते हैं, तो वरुण, मित्र, अर्यमा, आयु, इन्द्र, ऋभुक्षा हमारी निन्दा न करें ॥१॥

जब स्नात अश्व के मुख के आगे सुन्दर वस्त्र ले जाते हैं, तो बकरा-भाग इन्द्र-पूषन् के प्रिय स्थान को मिमियाता जाता है ॥२॥

एपच्छाग पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्य ।
अभिप्रिय यत्पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेन सौश्रवसाय जिन्वति ।।३।।

यद्धविष्यमृतुशो देवयान त्रिर्मानुपा पर्यश्व नयन्ति।
अत्रा पूष्ण प्रथमो भाग एति यज्ञ देवेभ्य प्रतिवेदयन्नज ।।४।।

होताध्वर्युरावया 'अग्निमिन्धो ग्रावग्राम उत शस्ता सुविप्र' ।
तेन यज्ञेन स्वरकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आपृणध्व ।।५।।

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चपाल ये अस्य यूपाय तक्षति।
ये चार्वते पचन स भरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ।।६।।

यद्वाजिनो दामसन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य।
यद्वाधास्य प्रभृतमास्ये तृण सर्वाताते अपि देवेष्वस्तु ।।८।।

यदश्वस्य क्रविपा मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति।
यद्वस्तयो' शमितुर्यन्नखेपु सर्वा ताते अपि देवेष्वस्तु ।।९।।

यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविपो गन्धो अस्ति।
सुकृतातच्छमितार कृण्वतूत मेध शृतपाक पचन्तु ।।१०।।

यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभिशूल निहतस्याव धावति।
मातद्भूम्यामाश्रिपन्मा तृणेपु देवेभ्यस्तु दशद्भ्यो रातमस्तु ।।११।।

ये वाजिन परिपश्यन्ति पक्व य ईमाहु सुरभिर्निर्हरेति।
ये चार्वतो मासभिक्षामुपासत उतो तेपामभिगूर्तिर्न इन्वतु ।।१२।।

बलशाली अश्व द्वारा आगे आगे यह बकरा ले जाया जाता है, जो सारे देवों वाला तथा पूषन् का भाग है। जब त्वष्टा सुयश के लिये घोड़े के साथ इसे अतिप्रिय पुरोडाश के तौर पर भेजता है ॥३॥

जब क्रमानुसार देवताओं की ओर जानेवाले हविष् या घोड़े को मनुष्य तीन बार ले जाते हैं। तो पूषन् का प्रथम भाग बकरा देवताओं को सूचना देते यहाँ यज्ञ में प्राप्त होता है ॥४॥

होता, अध्वर्यु, आवय (शोधक), अग्नीध्र, सिलबट्टा पकड़नेवाला, प्रशस्ति गानेवाला, सुदीप्र—ये सारे ऋत्विक् अच्छी प्रकार किये गये उस यज्ञ द्वारा वाहिकाओं नदियों को पूर्ण करें ॥५॥

जो यज्ञस्तम्भ (यूप) काटनेवाले, और जो यूप ढोनेवाले जो इस यूप के लिये चषाल काठ का तक्षण करते हैं, और जो घोड़े के लिये पचनपात्र को लाते हैं। उनकी सहायता हमारे काम को ऐसे पूरा करे ॥६॥

शीघ्रगामी घोड़े के बांधने की जो रस्सी है, जो सिरपर बांधने की और इसकी लगामकी रस्सी है, जो इसके मुँह में रखा तृण है, वह सब सभी देवों के विषय में होवे ॥८॥

मक्खियों द्वारा खाया गया अथवा जो काष्ठ में और खड्ग में लिपटा हुआ घोड़े का मांस है। काटने वाले के दोनों हाथों में या नखों में जो लगा है। सो सभी देवों के विषय में होवे ॥९॥

जो पेट का न पचा भोजन बाहर आता है, जो कच्चे मांस का गंध है। उसे काटनेवाले सुन्दर बनावें और बलि को सुन्दर पाक से पकावें ॥१०॥

हे अश्व, आगमें पकाये जाते समय के शूल पर जो तेरे शरीर से बहता है। वह न भूमि पर पड़े, न तृणों पर, बल्कि वह इच्छुक देवताओं के लिये दान होवे ॥११॥

जो घोड़े को पका देखते हैं, जो कहते हैं "उतारो, सौरभ है"। जो घोड़े की मांस भिक्षा (मांस-भोजन) के लिये बैठे हैं, उनकी कामना हमारे कामको पूरा करे ॥१२॥

यन्नीक्षण मास्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामका सूना परिभूषयन्त्यश्व ॥१३॥

निक्रमण निपदन विवर्तन यच्च पड्वीशमर्वत ।
यच्च पपौ यच्च घासि जघास सर्वा ताते अपि देवेष्वस्तु ॥१४॥

मा तवाग्निर्ध्वनयीद्ध मा गन्धिर्मोखा भ्राजत्यभिविक्त जघ्रि ।
इष्ट वीतमभिगूर्तं वषट्कृत त देवास प्रतिगृभ्णन्त्यश्व ॥१५॥

यदश्वाय वास उपस्तृणत्यधीवास या हिरण्यान्यस्मै ।
सदानमर्वंत पड्वीश प्रिया यामयन्ति ॥१६॥

यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ताते ब्रह्मणा सूदयामि ॥१७॥

चतुस्त्रिशद्वाजिनो देववन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधिति समेति ।
अच्छिद्रा गावा वयुना कृणीत परुष्परुनुघुष्या विशस्त ॥१८॥

एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतु ।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डाना प्रजुहोम्यग्नौ ॥१९॥

मा त्वा तपत् प्रिय आत्मापि यन्त मा स्वधितिस्तन्व आतिष्ठपत्ते ।
मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रागात्राण्यसिना मियूक ॥२०॥

न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवा इदेपि पथिभि सुगेभि ।
हरी ते युजा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥२१॥

मांस पकाने की हंडिया का जो परखना है, जो पात्रों में जूस का डालना है, चरुओं का ऊष्मपिधान (ढक्कन), अंकुश, काटने का पीढ़ा अश्व को परिभूषित करते हैं ॥१३॥

जाने का स्थान, बैठने का स्थान, घूमने का स्थान और जो घोड़े की पैर की रस्सी है, एवं जो उसने पिया, जो उसने खाया सो सभी देवों के विषय में होवे ॥१४॥

धूम की गंधवाली अग्नि तुझे शब्दायमान न करे, न पकती हंडिया गंध दे या टूटे। प्रिय, अपेक्षित, वषट्कार द्वारा बलि दिये उस अश्व को देवता ग्रहण करते हैं ॥१५॥

जो अश्व के लिये वस्त्र फैलाते हैं, जो ऊपरी वस्त्र और सोना उसके लिये फैलाते हैं, घोड़े को बांधने की रस्सी, पैर की रस्सी सो प्रिय वस्तुयें देवों के पास प्रदान करते हैं ॥१६॥

हे अश्व, अधिक उतावलेपन से जो तुझे एड़ी से या चाबुक से मारा गया है, उसे हवि-यज्ञों में स्रुचा की तरह मन्त्र के साथ मैं फेंकता हूं ॥१७॥

देव-प्रिय बलशाली अश्व की चौंतीस पसलियों में खड्ग समाता है। चतुराई से गात्रों को छिद्र-रहित काटो, पोर-पोर को गिनके काटो ॥१८॥

त्वष्टा के घोड़े का एक भाग काटनेवाला है, दो सम्भालने वाले रस होता है, ऋतु जैसा (विधान) है। ऋतु के अनुसार तेरे गात्रों को जो मैं काटता हूं, उन-उनके पिण्डों को अग्नि में हवन करता हूं ॥१९॥

बाहर निकलते तेरे प्रिय शरीर को आग न तपावे, खड्ग तेरे शरीर में न पड़ा रहे। लालची अविशस्ता (काटनेवाला) तलवार द्वारा छिन्न गात्र जोड़ को छोड़ कर न बनावे ॥२०॥

यहां तू मरता नहीं है, न पीड़ित होता है। तू सुगम मार्गों से देवों के पास जाता है। इन्द्र के दोनों घोड़े (हरी) रथ के जुआठे (रथ में) जुड़ें। (अश्विनों के वाहन) रासभ (गदहे) के धुरे में दो घोड़े नियुक्त होवें (जुड़ें) ॥२१॥

सुगव्य नो वाजी स्वश्व्य पुस' पुत्रा उत विश्वापुष रयि।
अनागास्त्व नो अदिति कृणोतु क्षत्र नो अश्वो वनता हविष्मान् ॥२२॥
—१।१६२

९ यन्नीक्षण मास्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
उष्मण्यापिधाना चरूणामका सूना. परिभूषन्त्यश्व ॥१३॥
—१।१६२

२. अन्न

१० आजनगर्धि सुरभि वह्वन्नामकृषीवला ।
प्राह मृगाणा मातरमरण्यानिमशसिप ॥६॥
—१०।१४६

११. असौ य एषि वीरको गृह गृह विचाकशत्।
इम जभसुत पिब धानावन्त करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिन ॥२॥
—८।८०

१२ धानावन्त करभिणमपूपवन्तमुक्थिन । इन्द्र प्रातर्जुषस्व न' ॥१॥
पूषण्वते ते चकृमा करम्भ हरिवते हर्यश्वाय धानाः।
अपूपमद्धि सगणो मरुद्भि सोम पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ॥७॥
—३।५२

१३ य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषण । न तेन देव आदिशे ॥१॥
—६।५६

सोममन्य उपासदत्पातवे चम्वो सुत। करम्भमन्य इच्छति ॥२॥
—६।५७

यह अन्न हमें सुन्दर गायोंवाला, सुन्दर अश्वोंवाला, पुरुषों, पुत्रों और सारी स्त्रियों वाला धनवाला करे। अदिति, तुम हमें निष्पाप करो, हविवाला अश्व हमें क्षत्र (राजशक्ति) प्रदान करे ॥२२॥

—दीर्घतमा उचथ्य-पुत्र, १।१६२

९ जो कि मांस पकाने की उखा (हंडिया) का देखना है, जो जूस डालने के पात्र हैं। चरुओं (बर्तनों) को गरम रखने वाले ढक्कन हैं, सूना (काटने के पीढ़े) और चिन्ह-करना (ये) अश्व को तैयार करते हैं ॥१३॥

—दीर्घतमा उचथ्य-पुत्र, १।१६२

१० सुगन्धवाली (सोंधी) बिना किसानों के बहुत अन्नोंवाली, मृगों की माता अरण्यानी (वन) की मैंने स्तुति की ॥६॥

—देवमुनि इरम्मद-पुत्र, १०।१४६

११ यह जो तुम प्रकाशमान वीर घर-घर में जाते हो। (सो) इस धानायुक्त सत्तू-सहित अपूपवान् स्तुति-सहित सोम को पियो ॥२॥

—अपाला आत्रेयी, ८।८०

१२. हे इन्द्र, धानावान् सत्तू-युक्त अपूपवान् स्तुति-समन्वित हमारे सोम को प्रात: स्वीकार करो ॥१॥

पूषन्-सहित, हरे घोड़ोंवाले तुम्हारे इन्द्र के लिये हमने सत्तू और धाना बनाया है। हे शूर, विद्वान्, वृत्रहन्ता, गण-सहित मरुतों के साथ अपूप (रोटी) खाओ, सोम पियो ॥७॥

—विश्वामित्र ३।५२

१३ जो इस सत्तूभक्षी पूषन् का स्मरण करता है, वो (दूसरे) देव को स्मरण करना नहीं पड़ता ॥१॥

—भरद्वाज, ६।५६

पीने के लिये दो चमसों (पात्रों) में इन्द्र सोमके पास एक धन्ना है, उन करम्भ (सत्तू) खाता है ॥२॥

—भरद्वाज, ६।५७

१४. सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखाय सख्यानि जानते भद्रैषा लक्ष्मीर्निहिताधि वाच ।।२।।

—१०।७१

१५ यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुल ।।१।।

—१।२८

१६ यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषाल ये अश्वयूपाय तक्षति।
ये चार्वते पचन स भरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ।।६।।

—१।१६२

आजनगंधि सुरभि बह्वन्नामकृषीवलां।
प्राह मृगाणा मातरमरण्यानिमशंसिष ।।६।।

—१०।१४६

बेर का फल भी खाया जाता था (१५।८५)

१४. जैसे लोग छलनी द्वारा सत्तको छानते, वैसे जब धीरो ने मन द्वारा छानी वाणी बनाई। यहा (इस समय) सखा मित्रता को जानते है, इनकी वाणी में भद्रा लक्ष्मी निहित होती है ॥२॥

—बृहस्पति, १०।७१

१५ जहा मोटे आकारवाले पत्थर सोम चुआने के लिये उठाये जाते है, वहा हे इन्द्र, ध्यानसे के साथ ओखल में निचोडे (सोम) को पिओ ॥१॥

—शुन शेप विश्वामित्र-पुत्र, १।२८

१६ जो यूप (स्तम्भ-काष्ठ) काटते और जो यूप ढोते, जो अश्व यूप के लिये चषाल (कुंडे) गढते है, और जो घोडे के पकाने का पात्र तैयार करते है, उनकी अनुमति हमें प्राप्त हो ॥६॥

—दीर्घतमा उचथ्य-पुत्र, १।१६२

हे इन्द्र, जब तुमने तीन सौ भैंसो का मास खाया सोम के तीन सरोवरो को पिया। सारे देवो ने चिल्लाते हुये इन्द्र के लिये पुकारा, जब तुमने अहि (वृत्र) को मारा ॥८॥

—गौरिवीति शक्ति-पुत्र, ५।२९

हे इन्द्र, तुम्हारे लिये ऋत्विक् शीघ्र मस्त करने वाले सोमो को पत्थर से तैयार करते है, तुम उन्हें पीते हो। वह तुम्हारे लिये साडों (वृषभो) को पकाते है, भोजनार्थ पकाये गये उन्हें हे मघवन्, तुम खाते हो ॥२॥

—वसुक्र, १०।२९

अपने खानेकी ही चीजें आर्य अपने देवताओंको अर्पित करते थे। अश्व, गौ, मेष ये बलिपशु थे। इनके उल्लेखके स्थलोंमें देखो—

अश्व—१।१६२।१-२१, १।१६३।१२

गौ—२।७।५, १०।९१।१४, १०।२८।३, १०।८६।१३, १०।९१।१४

मेष (भेडा)—१०।९१।१४

आर्य दूध देनेवाली गायों 'धेनु' को अघ्न्या (न मारने लायक) मानते थे, लेकिन, वहिला गायें (वेहद्) बलिपशु थीं २।७।५, १०।९१।१४

घरके कुछ पात्र थे १।१६२।१३, १४

३ खेती

१७ सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरी पयसा मा न आ धक्।
जुषस्व न सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥१४॥
—६।६१

१८ हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद् वलो गा ।
अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात् सूर्यामासा मिथ उच्चरात ॥१०॥
—१०।६८

१९. उतोस मह्यमिन्दुभि षड्युक्ता अनुसेषिधत्।
गोभिर्यव न चर्कृषत् ॥१५॥
—१।२३

२० महान्त कोशमुदचा नि षिंच स्यन्दन्ता कुल्या विपिता पुरस्तात्।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाण भवत्वघ्न्याभ्य ॥८॥
—५।८३

२१ शुन वाहा शुन नर शुन कृषतु लागल।
शुन वरत्रा बध्यन्ता शुनमष्ट्रामुदिगय ॥४॥
—४।५७

२२. अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा।
यथा न सुभगासति यथा न. सुफलासति ॥६॥
इन्द्र सीता नि गृह्णातु ता पूषानु यच्छतु।
सा न पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरा समा ॥७॥
—४।५७

सविता ने जिसे प्रदान किया, वह सूर्या की बरात के आगे-आगे गई। मघा नक्षत्रों में बैल मारे गये, दोनों फाल्गुनी (पूर्वा उत्तरा) में वह व्याही गई ॥१३॥

—सूर्या, १०।८५

१७. हे सरस्वती, हमें धन के लिये ले जाओ, हमें न अपने जल से वंचित करो, न हमें दूर करो, हमारी मित्रता और भक्ति स्वीकार करो। हम तुम से दूर के क्षेत्र-अरण्य में न जावें ॥१४॥

—भरद्वाज, ६।६१

१८ जैसे हिम द्वारा अपहृत पत्तेवाले वन, वैसे ही बृहस्पति द्वारा अपहृत गायों के लिये बल रोया। यह न अनुकरणीय, न दोहराया जाने-वाला काम किया, जिससे सूर्य और चद्रमा परस्पर (बारी-बारी से) उगने लगे ॥१०॥

—अयास्य आंगिरस, १०।६८

१९. जैसे बैलों से जौ की खेती होती है, वैसे मेरे लिये सोमों के साथ छ जुटी (ऋतुओं) को लावें ॥१५॥

—शुनःशेप विश्वामित्र-पुत्र, १।२३

२०. हे पर्जन्य, बड़े कोश को उठाओ, सींचो, वेग-युक्त कुल्यायें सामने की ओर बहें। जल से द्यौ और पृथिवी को गीला कर दो, गौओं के (पीनेके) लिये सुन्दर पान होवे ॥८॥

—भौम आत्रेय, ५।८३

२१ बैल सुखी हों, नर सुखी हों, हल सुख-पूर्वक कृषि करे। रस्सी सुखमय बांधी जायें, पैना सुख से चलायें ॥४॥

—वामदेव, ४।५७

२२ हे सुभगे सीते (हराई), पास होओ, हम तुम्हारी वन्दना करते हैं, जिसमें कि तुम हमारे लिये सुभगा हो, जिसमें कि तुम हमारे लिये सुफला हो ॥६॥

इन्द्र सीता को पकड़े, पूषन् उसे प्रदान करे। वह (सीता) जल से भरी-भरी आगे साल हमारे लिये दुहती रहे ॥७॥

—वामदेव, ४।५७

२३ शुन न फाला वि कृपन्तु भूमिं शुन कीनाशा अभि यन्तु वाहै ।
शुन पर्जन्यो मधुना पयोभि शुनासीरा शुनमस्मासु धत्त ॥८॥
—४।५७

२४ न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति ।
स्वादो फलस्य जग्ध्वाय यथाकाम नि पद्यते ॥५॥
—१०।१४६

२५. देखो १४।२६

२६ आरगरेव मध्वेरयेथे सारघेव गवि नीचीनवारे।
कीनारेव स्वेदमासिष्विदाना क्षामेवोर्जा सूयवसात् सचेथे ॥१०॥
—१०।१०६

४. सोम

२७ स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्यो । सोमश्चमूषु सीदति ॥६॥
—९।२०

२८ स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुत ॥१॥
—९।१

२९ अपाम सोममभृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान्।
किं नूनस्मान् कृणवदराति किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥३॥
—८।४८॥

३० सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे ।
अभि त्वामिन्द्र नोनुम ॥५॥
—८।२१

३१ तुविग्रीवो वपोदर सुबाहुरन्धसो मदे। इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥८॥
—८।१७

२३. हमारे लिये फाल सुख से भूमि को जोतें, हलवाहे सुखपूर्वक बैलो के साथ गमन करें। पर्जन्य मधु और जल के साथ सुखमय होवे। शुनासीर (इन्द्र-वायु देवता) हमें सुख प्रदान करें॥८॥

—वामदेव, ५।५७

२४. अरण्यानी (वन) हत्या नही करती, यदि दूसरा हत्या के लिये न आ जाये। (वहा आदमी) स्वादु फल खाता, यथेच्छ पट रहता है॥५॥

—देवमुनि इरम्मद-पुत्र, १०।१४६

२५. देखो १४।२६

२६. हे अश्विद्वय, जैसे भनभनानेवाली दो मक्खियां मधु जमा करती है, वैसे तुम गाय में मधुर (दूध सचारित करते हो)। जैसे मजूरे पसीने-पसीने हो जाता है, वैसे ही तुम पसीने-पसीने हो जाते हो, जैसे सुन्दर घास से दुर्बल (पशु) शक्ति-सम्पन्न होता है, (वैसे तुम होते हो)॥१०॥

—भूतांश काश्यप, १०।१०६

२७. पानी में दुस्तर वाहक वह सोम दोनो हाथो से मीजा जाता चमुओ में अब स्थित होता है॥६॥

—असितदेवल, ९।२०

२८. इन्द्र के पीने के लिये छाने गये हे सोम, तुम स्वादिष्ठ और मदिष्ठ (अत्यन्त नशा-युक्त) धारा से क्षरित होओ॥१॥

—मधुच्छन्दा विश्वामित्र-पुत्र, ९।१

२९. हमने सोम पिया, अमर हो गये, ज्योतिको प्राप्त हुये, देवों को जाना। निश्चय ही शत्रु हमारा क्या कर सकता है। हे अमृत, हिंसक मर्त्य मेरा क्या कर सकता है॥३॥

—प्रगाथ कण्व-पुत्र, ८।४८

३० दुग्ध-मिश्रित मधुर विचक्षण मदिर सोमपान में पक्षियो की तरह बैठे तुम्हें हम हे इन्द्र, नमस्कार करते हैं॥५॥

—नाभांग कण्व-पुत्र ८।१२

३१. देखो अध्याय ३।९

अध्याय ५

प्रधान ऋषि

१. भरद्वाज—

१. नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्व ।
पूर्वीरिषो बृहतीरारे अघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥१२॥
—६।१

२ अभि प्रयासि सुधितानि हि ख्यो नि त्वादधीत रोदसी यजध्यै ।
अवा नो मघवन्वाजसातावग्ने विश्वानि दुरिता तरेम,
ता तरेम तवावसा तरेम ॥१५॥
—६।१५

३. नू नो अग्ने वृकेभि स्वस्ति वेषि राय पथिभि पर्ष्यंह ।
ता सूरिभ्यो गणते रासि सुम्न मदेम शतहिमा· सुवीरा ॥८॥
—६।४

सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिष ।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमा सुवीरा ॥१०॥
—६।२४

४. हुवे व सूनु सहसो युवानमद्रोघवाच मतिभिर्यविष्ठ ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अधुक् ॥१॥
—६।५

अध्याय ५

प्रधान ऋषि

१. भरद्वाज बार्हस्पत्य—

१. हे धनवान् (अग्नि), मनुष्यवत् हमें सदा धन दो, पुत्र-पौत्रों के लिये बहुत पशु दो। निष्पाप, बड़े उत्तम अन्न हमें दो, हमारे भद्र यश होवें॥१२॥

—६।१

२. हे अग्नि, सुन्दर प्रकार से रक्खी हवि को देखो, द्यौ और पृथिवी के यजन करने के लिये तुम्हें स्थापित किया है। हे मघवन (धनवान्), संग्राम में हमारी रक्षा करो, सारी बाधाओं से हम तरें, तुम्हारी रक्षा से हम उन्हें तरें, तरें॥१५॥

—६।१५

३. हे अग्नि, धनके निराबाध मार्गों द्वारा स्वस्ति से हमारे समीप आओ, हमारे दुःखों को हटाओ। स्तुति-कर्त्ता (हम) सूरियों को सुख दो, हम सुन्दर वीर (सन्तानों) सहित सौ जाड़े (वर्ष) आनन्द करें॥८॥

—६।८

हे इन्द्र, संग्राम में (भरत की) रक्षा के लिये सहायक हो, उन की यहां शत्रुओं से रक्षा करो। घर में और अरण्य में शत्रु से इनकी रक्षा करो। हम सुवीर (सन्तानों) सहित सौ जाड़े आनन्द करें॥१०॥

—६।२८

४. अभिप्याशायी, सहस् के पुत्र (अग्नि), पुरातन तुम्हें हम स्तुति से आह्वान करते हैं, जो बहु-स्तुति द्रोह-रहित प्रभावान् सर्वश्रेष्ठ धनों को देता है॥१॥

—६।५

५ ऋजीते परि वृङ्‌ग्धि नो श्मा भवतु नस्तनू ।
सोमो अधि ब्रवीतु नो' दिति शर्म यच्छतु ।।१२।।

—६।७५

६ सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो मा पस्फरी पयसा मा न आ धक् ।
जुषस्व न सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ।।१४।।

—६।६१

७. त्वमिमा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते ।
भरद्वाजाय दाशुषे ।।५।।

—६।१६

८ उत न प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्या भूत् ।।१०।।

—६।६१

९ इय शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्सानु गिरीणा तविषेभिरूर्मिभि ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभि सरस्वती मा विवासेम धीतिभि ।।२।।

—६।६१

१० सनेम ते वसा नव्य इन्द्र प्र पूरव स्तवन्त एना यज्ञै ।
सप्त यत्पुर' शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासो पुरुकुत्साय शिक्षन् ।।१०।।

—६।२०

२ वसिष्ठ—

११. यथा व' स्वाहाग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यै ।
तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभि शत पूर्भिरायसीभिर्निपाहि ।।७।।

—७।३

१२ दण्डा इवेद् गो अजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकास. ।
अभवच्च पुर एता वसिष्ठ आदित्तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ।।६।।

—७।३३

५. हे नीचे जा वालेने (वाण), हमें बचाओ, हमारा तन पत्थर सा होवे, सोम हमसे बात करे, अदिति हमें शरण प्रदान करे ॥१२॥

—६।७५

६. देखो ४।१७

७. हे अग्नि, सोम सवन करनेवाले दिवोदास के लिये इन श्रेष्ठ बहुत धनों को दो, सेवक भरद्वाज के लिये (भी दो) ॥५॥

—६।१६

८. और प्रियाओं में प्रिया सात बहिनोंवाली सुप्रसन्ना सरस्वती हमारे लिये स्तुतियोग्य हो ॥१०॥

९. यह सरस्वती बिस खोदनेवाली की तरह अपने बलों, वेगवती तरंगों द्वारा गिरियों के पादभागको भग्न करती है। तटों को ध्वस्त करनेवाली सरस्वती को रक्षा के लिये हम स्तुतियों और गीतों द्वारा बुलायें ॥२॥

—६।६१

१०. हे इन्द्र, तुम्हारी रक्षा से नये धन पायें, इसलिये यज्ञ द्वारा पूरु लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं। क्योंकि पुरुकुत्सको सहायता करते तुमने दासों की शरदवाली सात नगरियों को नष्ट किया ॥१०॥

—६।२०

२. वसिष्ठ मैत्रावरुण—

११. हे अग्नि, जो कि तुम्हारे से लिए हम घृत-युक्त परिपूजित स्वाहा (सुन्दर हव्य) दान करते हैं, तुम भी (वैसे ही अपने) अनिन्द्य तेजों से सौ पत्थर की पुरियों की तरह हमारी रक्षा करो ॥७॥

—७।३

१२. दण्डे जैसे गौवें, वैसे ही भरत अल्पांग शिशुओं तरह छिन्न-भिन्न थे। वसिष्ठ इनका अगुआ (पुरोहित) हुआ, तो तृत्सुओंकी प्रजायें बढ़ने लगीं ॥६॥

—७।३३

१३ प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वियत्सूर्यो न रोचते बृहद्भा ।
अभि य पूरु पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथि शुशोच ॥४॥
—७।८

१४ धेनु न त्वा सुयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठ ।
त्वामिन्मे गोपति विश्व आहा न इन्द्र सुमति गन्त्वच्छ ॥४॥
—७।१८

१५. आवदिन्द्र यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेद सर्वताता मुषा यत् ।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलि शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि ॥१९॥
—७।१८

१६. न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभि ।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपिगुर्ऋतं न ॥५॥
—७।२१

१७. एवेन्नु क सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु क भेदमेभिर्जघान ।
एवेन्नु क दाशराज्ञे सुदास प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठा ॥३॥
—७।३३

१८. उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधिजात ।
द्रप्स स्कन्न ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवा पुष्करे त्वाददन्त ॥११॥
—७।३३

१९. स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदा न ।
यमेन तत परिधि वयिष्यन्नप्सरस परि जज्ञे वसिष्ठ ॥१२॥
—७।३३

१३. जब यह भरतकी अग्नि अति प्रसिद्ध, सूर्यकी तरह अति प्रकाशवान् हो चमका, जिसने युद्धमें पुरुओंको जीता, वह दीप्तिमान् दिव्य अतिथि प्रज्वलित हुआ ॥८॥

—७।८

१४. दूहनेकी इच्छासे जैसे धेनुको सुन्दर घास (देवे), वैसे ही वसिष्ठने तुम्हारे लिए मन्त्र रचे। सभी मुझसे तुमको ही गोपति बतलाते है, हे इन्द्र, सुमतिके साथ हमारे पास आओ ॥४॥

— ७।१८

१५. यमुनाने और तृत्सुओंने इन्द्रकी सहायता की, जो कि (उसने) भेदका सर्वस्व छीन लिया। अज, शिग्रु और यक्षु घोड़ोंके सिरकी बलि लाये ॥१९।

—७।१८

१६. हे इन्द्र, जादूगर हमें न सतायें । न राक्षस हे बलिष्ट, (अपनी) चालोंसे । स्वामी (इन्द्र), दुष्ट जन्तुओंको मारे । शिश्न-पूजक हमारे ऋतमें न दखल दें ॥५॥

—७।२१

१७. इस प्रकार ही इनके साथ वह सिन्धुको पार हुआ, इस प्रकार ही इनके साथ भेदको मारा। इस प्रकार ही हे वसिष्ठो, तुम्हारे ब्रह्म (ऋचा) द्वारा इन्द्रने दाशराज्ञमें सुदासकी रक्षा की ॥३॥

वसिष्ठ ७।३३

१८. हे ब्राह्मण वसिष्ठ,तुम मित्रावरुण-पुत्र हो, और उर्वशीके मन से उत्पन्न हो। गिरे बूंदकी तरह दिव्य मन्त्र द्वारा सारे देवोंने तुम्हें कमलमें धारण किया ॥११॥

—७।३३

१९. दोनों (लोकों) के प्रकृष्ट विद्वान्, सहस्रदानवाले और दानसहित, यमके बुने वस्त्रको पहिननेवाले वसिष्ठ अप्सरासे पैदा हुए ॥१२॥

—७।३३



२०. अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुपस्य।
अवा स वीरैंर्दशभिर्वियूया यो मा मोघ यातुधानेत्याह॥१५॥

—७।१०४

२१. यदि वाहमनृतदेव आस मोघ वा देवा अप्यूहे अग्ने।
किमस्मभ्य जातवेदो हृणीपे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथ सचन्ता॥१४॥

—७।१०४

२२. विद्युतो ज्योति परि सजिहान मित्रावरुणा यदपश्यता त्वा।
तत्ते जन्मोतैंक वसिष्ठागस्त्यो यत्वा विश आजभार॥१०॥

—७।३३

२३. दश राजान समिता अयज्यव सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधु।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एपामभवन्देवहूतिपु॥७॥
दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वत इन्द्रावरुणावशिक्षत।
श्वित्यचो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सव॥८॥

—७।८३

३—विश्वामित्र—

२४ एभिरग्ने सरथ याह्यर्वाङ नाना रथ वा विभवो ह्यश्वा।
पत्नीवतस्त्रिशत त्रीश्च देवाननुष्वधमावह मादयस्व॥९॥

—३।६

विश्वामित्र-जमदग्नि एक साथ—

२५. प्रसूतो भक्षमकर चरावपि स्तोम चेम प्रथम सूरिरुन्मृजे।
सुते सातेन यद्यागम वा प्रति विश्वामित्रयमदग्नी दमे॥४॥

—१०-१६७

२० यदि मैं जादूगर हूं, या यदि मैंने पुरुषकी आयु नष्ट की, तो आज ही मैं मर जाऊँ। नहीं तो जिसने मुझे व्यर्थ ही यातुधान कहा, वह अपने दस वीर (पुत्रों) से वर्जित हो ॥१५॥

—७।१०४

२१. हे अग्नि, यदि मैं झूठे देवतावाला हूं, या व्यर्थ देवोंको आह्वान करता हूं, (तो भले ही, अन्यथा) हे जातवेद, क्यों हमसे क्रुद्ध हो। तुम्हारे क्रोधको मिथ्याभाषी पावें ॥१४॥

—७।१०४

२२ जब कि मित्र-वरुणने विद्युत्की ज्योतिसे उठने तुम्हें देखा था, वह तुम्हारा एक जन्म था, और हे वसिष्ठ, (दूसरा जन्म वह) जब कि तुम्हें अगस्त्य प्रजाओंके पास लाये ॥१०॥

—७।३३

२३ हे इन्द्र-वरुण, युद्धमें यज्ञ-विमुख दस राजा सुदाससे नहीं लड़ सके। भोजमें बैठे इन आदमियोंकी स्तुति सत्य हुई, इनके देव-निमन्त्रणमें देवगण उपस्थित हुए ॥७॥

हे इन्द्र और वरुण, दाशराज्ञ युद्धमें घिरे हुए सुदासकी (तुमने) सहायता की। जिस दाशराज्ञ (युद्ध) में स्तुति करते श्वेत (गौर) जटाधारी तृत्सु लोग स्तोत्रसे तुम्हारी पूजा करते थे ॥८॥

—७।८३

३ विश्वामित्र कौशिक—

२४. हे अग्नि, उन (देवों) के साथ एक रथपर अथवा नाना रथोंपर (चढ़) पास आओ, तुम्हारे अश्व समर्थ हैं। पत्नियों-सहित तैंतीस देवताओंको स्वधाके अनुसार लाओ, और (सोम पीकर) मस्त होओ ॥९॥

—३।६

२५ अग्नि हो मैंने घरमें भोजन किया, और प्रथम सूरि मैंने इन स्तुतियोंको कहा। हे विश्वामित्र, सोम तैयार होने पर यमदग्नि यहाँ साथ घर से तुम दोनोंके पास आये ॥४॥

—विश्वामित्र-जमदग्नि, १०।१६७

२६ वैश्वानर मनसाग्नि निचाय्या हविष्मन्तो अनुपत्य स्वर्विद।
सुदानु देव रथिर वसूयवो गीर्भीरण्व कुशिकासो हवामहे ॥१॥
अश्वो न क्रन्द जनिभि समिध्यते वैश्वानर कुशिकेभिर्युगे युगे।
स नो अग्नि सुवीर्यं स्व्यश्व्य दधातु रत्नममृतेषु जागृवि ॥३॥
—३।२६

अमित्रायुधो मरुतामिव प्रया प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद्विदु ।
द्युम्नवद ब्रह्म कुशिकास एरिर एक एको दमे अग्नि समीधिरे ॥१५॥
—३।२९

इम काम मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्य विप्रा इन्द्राय वाह कुशिकासो अक्रन् ॥२०॥
—३।३०

रमध्व मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवै ।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनु ॥५॥
—३।३३

त्वा सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे। कुशिकासो अवस्यव ॥९॥
—३।४२

महा ऋषिर्देवजा देवजूतो स्तभ्नात् सिन्धुमर्णव नृचक्षा ।
विश्वामित्रो यदवहत् सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्र ॥९॥
उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्व राये प्रमुचता सुदास ।
राजा वृत्र जघनत् प्रागपागुदगथा यजाते वर आपृथिव्या ॥११॥
—३।५३

२६ मनसे आदर करते हवि-युक्त हम कुशिक लोग सत्य-अनुसारी स्वर्ग-ज्ञाता सुदानी, दिव्य-रथी, फलदाता वैश्वानर (अग्निका) धनकी कामनासे स्तुतियोंसे आह्वान करते हैं ॥१॥

घोड़ेकी तरह हिनहिनाता वैश्वानर (अग्नि) कुशिकों द्वारा युग-युगमें (हर समय) प्रज्वलित किया जाता रहा। वह अमृतोंमें जागरूक अग्नि हमें सुन्दर अश्व-युक्त, सुन्दर वीर्य-युक्त रत्न दे ॥३॥

—३।२६

मरुतोंकी तरह अमित्रोंसे लड़नेवाले अग्रगामी प्रथम उत्पन्न वह मन्त्रोंका सब कुछ जानते हैं। कुशिक तेजस्वी ब्रह्म (स्तुति) प्रस्तुत करते हैं, (उनमें) एक-एक (अपने) घरमें अग्निका समिधान करते हैं ॥१५॥

—३।२९

(हमारी) इस कामनाको गौवों, अश्वों (और) चमत्कारिक धन द्वारा पूरा, और प्रसिद्ध करो। (हे इन्द्र), स्वर्ग कामनावाले सनातन विप्रोंने स्तुतियों द्वारा तुम्हारा सम्मान किया है।

—३।३०।२०।३।५०।४

हे पवित्राओ, मेरे सौम्य वचन (सुनने) के लिये मुहूर्त भर अपनी यात्रासे रुक जाओ। कृपाकांक्षी मैं कुशिक-सुत बड़ी लालसासे नदियोंसे प्रार्थना करता हूँ ॥५॥

—३।३३

हे पुरातन इन्द्र, तुमको रक्षा-प्रार्थी कुशिक लोग इस सोमको पीनेके लिए हम बुलाते हैं ॥९॥

—३।४२

देवज, देव-प्रेरित मनुष्य-उपदेष्टा महान् ऋषि विश्वामित्रने सिन्धुनदको स्तम्भित किया, जब सुदासको (नदी) पार करवाया तो इन्द्रने कुशिकों द्वारा (सुदासके साथ) प्रिय बर्ताव किया ॥९॥

हे कुशिको, पास आओ, चेतो, धन (जीतने) के लिए सुदासके घोड़ेको छोड़ो। राजा (सुदास) ने पूर्व, पश्चिम और उत्तरके शत्रु मारे, फिर पृथिवीके परम स्थानमें यज्ञ करे ॥११॥

—३।५३

२७ अर्णांसि चित् पप्रथाना सुदास इन्द्रो गाधान्यकृणोत्सुपारा।
शर्द्धन्त शिम्युमुचथस्य नव्य शाप सिन्धूनामकृणोदशस्ती ॥५॥
—७।१८

२८. प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥१॥

"इन्द्रेषिते प्रसव भिक्षमाणे अच्छा समुद्र रथ्येव याथ।
समाराणे ऊर्मिभि पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे ॥२॥

रमध्व मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवै।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनु" ॥५॥

"इन्द्रो अस्मा अरदद्वज्रबाहुरपाहन् वृत्र परिधिं नदीना।
देवो नयत सविता सुपाणिस्तस्य वय प्रसवे याम उर्वी" ॥६॥

"ओषु स्वसार कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन।
निषू नमध्व भवता सुपारा अधो अक्षा सिन्धव स्रोत्याभि" ॥९॥

"आ ते कारो शृणवामा वचासि ययाथ दूरादनसा रथेन।
नि ते नसै पीप्यानेव योषा मर्यायेव कन्या शश्वचै ते" ॥१०॥

"यदग त्वा भरता सतरेयुर्गव्यन् ग्राम इषित इन्द्रजूत।
अर्षादह प्रसव सर्गतक्त आ वो वृणे सुमति यज्ञियाना" ॥११॥

अतारिषुर्भरता गव्यव समभक्त विप्र सुमति नदीना।
प्र पिन्वध्वमिषयन्ती सुराधा आ वक्षणा पृणध्व यात शीभ ॥१२॥
—३।३३

२७ स्तुत्य इन्द्रने सुदासके लिए फूली नदियोंको गाध और सुपारा बनाया (उग्र) भयानक नमस्करणीयने स्तुति-शत्रु शिम्युसे निन्दुओं शापको अ-प्रशस्त किया ॥५॥

—वसिष्ठ, ७।१

२८ पर्वतोंकी गोदसे दो मुक्त घोड़ियोंकी तरह अभिलाषवती हंसतं चाटती गाय-माताओंकी तरह, शुभ्र विपाश् और शुतुद्रि जलके सा बह रही हैं ॥१॥

(विश्वामित्र—) "इन्द्र द्वारा प्रेरित आज्ञा सुनती दो रथियोंकी तर तुम समुद्रको जाती हो। हे शुभ्रे, एक साथ प्रवाहित, लहरोंसे फूली, ए दूसरेको (साथ) लिये तुम जाती हो ॥२॥

"हे पवित्राओ, मेरा सौम्य वचन (सुननेके) लिये मुहूर्त भर अप यात्रासे रुक जाओ। कृपाकांक्षी मैं कुशिक-सूनु बड़ी लालसासे नदीं प्रार्थना कर रहा हूँ" ॥५॥

(नदियां—) "वज्रबाहु इन्द्रने नदियोंके घेरनेवाले वृत्रको मार हमें खोदा। सुपाणि सविता देव हमें लाया, उनकी आज्ञामें हम फैली हुई ज रही हैं" ॥६॥

(विश्वामित्र—) "हे बहिनो, ठहरो, कविकी सुनो। वह दूरसे तुम्हा पास शकट-रथ द्वारा आया है। थोड़ा नीची हो सुपारा हो जाओ। हे सिन्धुओ अपनी धाराओंमें हमारे धुरेसे नीची हो जाओ" ॥९॥

(नदियां—) "हे कवि, तेरे वचनोंको हम सुनती हैं, तू जो शकट-रथ द्वारा दूरसे आया है। हम पिलानेवाली माताकी तरह, पतिको आलिंगन करनेवाली तरुणीकी तरह तेरे लिये नीची हो जाती हैं" ॥१०॥

—३।३३

"हे प्रियाओ, इन्द्र-प्रेरित योद्धा-समूह भरत तुम्हें जब पार हो जायें, तो (तुम्हारी) धारा बहने लगे। मैं यज्ञ-योग्य तुम्हारी सुमति चाहता हूँ" ॥११॥

तरनेवाले भरत पार हो गये, विप्रने नदियोंकी सुमति प्राप्त की। धन-युक्त लहरोंसे परिपूर्ण होओ, दूसरी धाराको भरती शीघ्र आओ ॥१२॥

—विश्वामित्र, ३।३३

२९. महा ऋपिर्देवजा देवजूतोस्तम्नात् सिन्धुमर्णव नृचक्षा ।
विश्वामित्रो यदवहत् सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्र ॥९॥

—३।५३

३० इळामग्ने पुरुदस सनि गो शश्वत्तम हवमानाय साध।
स्यान्न सूनुस्तनयो विजावा'ग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥२३॥
—३।१।२३, ३।७।११, ३।१५।७, ३।२२।५, ३।२३।५

३१. शुन हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतम वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्त वृत्राणि सजित घनाना ॥२२॥
—३।३०।२२, ३।३१।२२, ३।३२।१७, ३।३४।११, ३।३६।११,
३।३८।११ ३।४८।५, ३।४९।५ ३।५०।५

३२ य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टव।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेद भारत जन ॥१२॥

—३।५३

४ वामदेव—

३३. महो रजामि वन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय।
त्व नो अस्य वसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूना. ॥११॥

—४।४

३४ ये पायवो मामतेयन्ते अग्ने पश्यन्तो अन्ध दुरितादरक्षन्।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभु ॥१३॥

—४।४

३५. अह पुरो मन्दसानो व्यैर नव साकमवती शम्बरस्य।
शततम वेश्य सर्वताता दिवोदासमतिथिग्व यदाव ॥३॥

—४।२६

२९. देवज देव-प्रेरित मनुष्य-उपदेशक महान् ऋषि विश्वामित्रने सिन्धुनदको स्तम्भित किया, जब इन्द्रने कुशिकोंके द्वारा सुदासने प्रिय बर्ताव किया ॥९॥

—३।५३

३०. हे अग्नि, सदाके स्तुतिकर्त्ता, मुझे अन्न प्रदान करो। हमारे पुत्र-पौत्र सन्तानवाले हों। हमारे लिये वह तुम्हारी सुमति हो ॥२३॥

—३।१

३१. इस युद्धमें श्रेष्ठतम नेता मघवान् उग्र इन्द्रको रक्षाके लिए हम पुकारते हैं, जो कि युद्धोंमें वृत्रों (शत्रुओं) को मारता, धनोंको जीतता, स्तुतियोंको सुनता है ॥२२॥

—३।५३

३२ जो यह दोनों द्यौ-पृथिवी हैं, (उनके धारक) इन्द्रकी मैंने स्तुति की। विश्वामित्रका यह ब्रह्म (ऋचा) भरत जनकी रक्षा करता है ॥१२॥

—३।५३

४. वामदेव गौतम—

३३. हे अग्नितरुण, सुप्रियावान् गृहमित्र होता, वाणियों और वसुतानें, जो मेरे पास पिता गोतमसे आईं, तुम हमारे इन वचनको जानो मैं महान् (शत्रुओं) को नष्ट करता हूँ। ॥११॥

—४।४

३४ हे अग्नि, तुम्हारी जिन रक्षक किरणोंने आपदाओंसे मामतेय अन्धेकी रक्षा की, सारे धनोंवाले सुकर्मी तुमने उन्हें रक्षित किया, नाश करनेकी इच्छावाले रिपु उनको हानि नहीं पहुँचा सके ॥१३॥

—४।४

३५ मैंने सोमसे मस्त हो शम्बरकी नौ-सहित नब्बे पुरियों (नगरियों) को ध्वस्त किया। जब यज्ञ (युद्ध) में अतिथिपूजक दिवोदासकी मैंने रक्षा की, सो सौवींको उसके प्रवेश-योग्य बनाया ॥३॥

—४।२६

३६. गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवाना जनिमानि विश्वा।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नधश्येनो जवसा निरदीय ॥१॥

—४।२७

३७. शतमश्मन्मयीना पुरामिन्द्रो व्यास्यत्। दिवोदासाय दाशुषे ॥२॥

—४।३०

३८. वृषा वृषन्धि चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्या नृतमः शचीवान्।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णा यस्या पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥

—४।२२

३९ बोधद्यन्मा हरिभ्या कुमारः साहदेव्यः। अच्छा न हूत उदर ॥७॥
उत त्या यजता हरी कुमारात् साहदेव्यात्। प्रयता सद्य आददे ॥८॥
एष वा देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः। दीर्घायुरस्तु सोमक ॥९॥

—४।१५

४०. त्व पिप्रू मृगय शूशुवासमृजिश्वने वैदथिनाय रन्धी।
पचाशत् कृष्णा निवप सहस्रात्क न पुरो जरिमा विदर्द ॥१३॥

—४।१६

४१ अय चक्रमिषणात् सूर्यस्य न्येतश रीरमत् ससृमाण।
आकृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्ति त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ॥१४॥
असिक्न्यां यजमानो न होता ॥१५॥

—४।१७

३६. मैंने इन सारे देवोंकी सन्तानोंको गर्भमें रहते जाना। सौ आयसी (दृढ़) पुरियोंने मुझे बन्द रक्खा। तब बाजकी तरह वेगसे मैं निकल गया ॥१॥

—४।२७

३७ इन्द्रने अश्मन्मयी (पत्थरवाली) सौ पुरियोंको यजमान दिवोदासके लिये नष्ट किया ॥२०॥

—४।३०

३८. श्रेष्ठतम नेता शचीवान् बुद्धिमान् उग्र पराक्रमी इन्द्रने दोनों बाहुओंसे वृष्टिकारी चार धारोंवाले वज्रको फेंकते ढापनेवाली परुष्णी (रावी) का सेवन करते जिसके भागोंको मित्रताके लिये ढाका ॥२॥

—४।२२

३९ सहदेव-पुत्र कुमारने मुझे दो घोड़ोंको देना चाहा। पुकारने पर मैं पीछे नहीं हटा ॥७॥
सहदेव-पुत्र कुमारसे दो बढ़िया तेज घोड़ोंको तुरन्त मैंने पाया ॥८॥
हे अश्विनो, तुम्हारी (कृपासे) यह सहदेव-पुत्र कुमार सोमक दीर्घायु हो ॥९॥

—४।१५

४०. हे इन्द्र, तुमने पिप्रु, मोटे मृगयको विदथी-पुत्र ऋजिश्वाके लिए मारा, पचास हजार काल्नोंको मारा, जीर्ण रोगकी तरह पुरोंको नष्ट किया ॥१३॥

—४।१६

४१. इस इन्द्रने सूर्यके चक्रको प्रेरित किया, (युद्धके लिये) जाते एतशको रोका। कुटिलगति चलते (मेघ) ने आकाशके गर्भमें इसके आघातमें सगरेको छिपा लिया ॥१४॥
जैसे अश्विनो (सनाथ) मैं यजमान होता ॥१५॥

—४।१७

४२ एतदस्या अन शये सुसम्पिष्ट विपाश्या। ससार सी परावत ॥११॥

उत दास कौलितर बृहत पर्वतादधि। अवाहन्निन्द्र शम्वर ॥१४॥
उत दासस्य वर्चिन सहस्राणि शता वधी । अधि पच प्रधीरिव ॥१५॥
—।३०

४३. शुन वाहाः शन नर शुन कृपतु लागलं।
शुन वरत्रा वध्यन्ता शुनमष्ट्रामुदिगय ॥४॥
—४।५७

४४. अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा।
यथा न सुभगासति यथा न सुफलासति ॥६॥
इन्द्र सीता नि गृह्णातु ता पूषानुयच्छतु।
सा न पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरा समा ॥७॥
—४।५७

४५ शुन न फाला वि कृपन्तु भूमिं शुन कीनाशा अभि यन्तु वाहै ।
शुन पर्जन्या मधुना पयोभि शुनासीरा शुनमस्मासु धत्त ॥८॥
—४।५७

४६ अभि प्रवन्त समनेव योपा· कल्याण्य स्मयमानासो अग्नि।
घृतस्य धारा समिधो नसन्त ता जुपाणो हर्यति जातवेदा ॥८॥
—४।५८

५ गृत्समद—

४७. असर्जि स्कम्भो दिव उद्यतो मद परि त्रिधातुर्भुवनान्यर्पति।
अशु रिहन्ति मतय. पनिप्नत गिरा यदि निर्णिजमृग्मिणो ययु ॥४६॥

४२. (इन्द्र द्वारा) अतिचूर्णित उषाका शकट विपाश् (व्यास) के किनारे गिरा। वह (उषा) पश्चिम देशको चली गई ॥११॥

हे इन्द्र, तुमने कुलितर-पुत्र शम्बर दासको बृहत् पर्वत (हिमालय) के ऊपर मारा ॥१४॥

और चक्केकी अरोंकी तरह दास वर्चीके १५०० (भट) मारे ॥१५॥

—४।३०

४३. बैल सुखी हों, नर सुखी हों, हल सुखपूर्वक कृषि करें, रस्सी सुखमय बाँधी जाये, पैना सुखसे उठाये ॥४॥

—४।५७

४४ हे सुभगे, पास होओ, हम तुम्हारी वन्दना करते हैं, जिसमें कि तुम हमारे लिए सुफला हो ॥६॥

इन्द्र सीताको पकड़े, पूषन् उसे प्रदान करें, वह सीता दूहनेके अगले-अगले साल हमारे लिये दुग्धवाली हो ॥७॥

—४।५७

४५. हमारे लिये फालसे भूमिको जोतें, हलवाहे सुखपूर्वक बैलोंके साथ गमन करें। पर्जन्य मधु और जलके साथ सुखमय होवे, शुनासीर (इन्द्र-वायु देवता) हमें सुख प्रदान करें ॥८॥

—४।५७

४६ जैसे मुस्कुराती कन्यायें स्त्रियां मेलेमें, (जाती) वैसे ही घृतकी धारा अग्निका अभिगमन करती हैं। घृतकी धारा ईंधन बनती, उन्हें अग्नि प्रसन्न हो सेवन करता है ॥८॥

—४।५८

५. गृत्समद शौनहोत्र—

४७ छोटा बच्चा उत्पन्न होकर जैसा गुफाओंमें विचरण करता है। जब भूमिका प्रज्वलित होकर ... है तो ... सुपिच नोंके योगसे पान करते हैं ॥८६॥

प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्य. पुनानस्य सयतो यन्ति रहय ।
यद् गोभिरिन्दो चम्वोःसमज्यस आ सुवान सोम कलशेषु सीदसि। ४७।

पवस्व सोम ऋतुविन्न उक्थ्यो' व्यो वारे परि धाव मधु प्रिय ।
जहि विश्वान्रक्षस इन्दो अत्रिणो वृहद्वदेम विदथे सुवीरा ।।४८।।
—९।८६

४८ अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधु । विश्वा अधिश्रियो दधे।
।।५।।
—२।८

४९. स रन्धयत् सदिव सारथये शुष्णमशुष कुयव कुत्साय।
दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्र पुरो व्यैरच्छवरस्य ।।६।।
—२।१९

५० अध्वर्यवो य शत शवरस्य पुरो विभेदाश्मनेव पूर्वी ।
यो वर्चिन. शतमिन्द्र सहस्रमपावपद् भरता सोममस्मै ।।६।।

अर्ध्वयवो य शतमासहस्र भूम्या उपस्थे वपज्जघन्वान्।
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान्यावृणग्भरत. सोममस्मै ।।७।।
—२।१४

५१ स वृत्रहेन्द्र कृष्णयोनी. पुरन्दरो दासीरैरयद्वि।
अजनयन्मनवे क्षामपञ्च सत्रा शस यजमानस्य तूतोत् ।।७।।
—२।२०

५२ अध्वर्यवो य स्वश्न जघान य शुष्णमशुष यो व्यस।
य पिप्रु नमुचि यो रुधिक्रां तस्मा इन्द्रायान्धमो जुहोत ।।५।।
—२।१४

छाने जाते (समय) तुम्हारी धारायें भेड़के ऊनका सूक्ष्म वेगसे पार होती हैं। हे सोम, जब तुम दोनों चमुओंमें गौओंसे मिलाये जाते, तो हे सोम, तुम कलशोंमें बैठते हो ॥४७॥

ऋतुके जानकार, हमारी प्रशंसाके योग्य हे सोम, भेड़के लोमों (वाले छनने) में प्रिय और मधुर रसके साथ तुम दौड़ो, सारे राक्षसोंको मारो। हे सोम, सुवीर सन्तानोंवाले हम अग्नि लोग यज्ञमें तुम्हारी महिमा गायेंगे ॥४८॥

—९।८६

४८ स्वयंप्रकाश्य महान् अग्निके लिये उक्थ (मन्त्र) बढ़े। (उसने) सारी शोभा धारण की ॥५॥

—२।८

४९. उन दिव्य इन्द्रने सारथी कुत्सके लिये शुष्ण, अशुष, कुयवको मारा। और दिवोदासके लिये शम्बरकी निन्नानवे पुरियां ध्वस्त कीं ॥६॥

—२।१९

५० हे अध्वर्युओ, जिसने शम्बरकी पत्थर की सौ प्राचीन पुरियोंको नष्ट किया। जिसने वर्चीके सौ-हजारों (भटों) को मारा, उसके लिये सोम ले आओ ॥६॥

—२।१४

५१ उन वृत्रनाशक, पुरन्दर इन्द्रने काले दासोंका विनाश किया। मनुके लिये पृथिवी और जलको पैदा किया। वह यजमानकी अभिलाषा पूरी करता है ॥७॥

—२।२०

५२ हे अध्वर्युओ, जिसने स्वस्नको मारा, जिसने शुष्ण, अशुषको, जिसने व्यंसको मारा। जिसने पिप्रु, नमुचिको जिसने रुधिक्राको मारा, उस इन्द्रके लिए अन्न पकाओ ॥५॥

—२।१४

५३ स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमाव ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ।।९।।
—२।१५

५४ देखो इसी अध्यायमें ४९ ।

५५. यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ।।११।।
—२।१२

५६ देखो यही ४७ ।

६ कक्षीवान्—

५७. परावतं नासत्यानुदेथामुच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मबारम् ।
क्षरन्नापो न पानाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ।।९।।
—१।११६

५८ चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम् ।
सद्यो जंघामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ।।१५।।

शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ।।१६।।

यदयातं दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।
रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता ।।१८।।
—१।११६

५३ जिसने स्वप्न द्वारा निद्रा-अभिभूत कर चुमुरि और धुनि दस्युको मारा, तथा दभीतिकी तुमने रक्षा की। यहाँ अनुचरने भी हिरण्य प्राप्त किया। यह सब इन्द्रने सोमके मदमें मग्न हो किया ॥९॥

—२।१५

५४ देखो यही ४९

५५ जिसने पर्वतमें रहते शम्बरको चालीसवीं शरदमें जा घेरा। जिसने ओजायमान हो सोते हुए दानव अहि¹को मारा। हे लोगो, वह इन्द्र है ॥११॥

—२।१२

५६ देखो ४७

६. कक्षीवान् दैर्घतमस—

५७ नासत्य (अश्विद्वय), तुमने ऊपर पेंदी तिरछी बारीवाले पश्चिमके कुएँको उठाया। उससे प्यासे गोतमके सहस्र (गुण) धन और पानके लिये जल निकाला ॥९॥

—१।११६

५८. खेलकी स्त्रीका एक पैर युद्धमें पक्षीके परकी तरह कट गया। तुमने तुरन्त उसे चलने तथा धनके लिये आयसी (लोहेकी) जंघा प्रदान की ॥१५॥

वृकोंके लिये काट कर सौ भेड़ें देनेवाले उस ऋज्राश्वको पिताने अन्धा कर दिया। उसे दोनों श्रेष्ठ भिषज नासत्योंने जगत् देखनेवाली विचक्षण आँखें प्रदान कीं ॥१६॥

जब पुकारे गये दोनों अश्वि हविके लिये दिवोदासके पास, भरद्वाज (अन्न-प्रदायक या ऋषि) के पास गये, तो वृषभ और शोन युक्त तुम्हारा रथ अन्न-धनको ढोता ले गया ॥१८॥

—१।११६

¹सर्प, नमुचि, वृत्र, शम्बर के लिए यह नाम।

५९. अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे।
यदश्विना म्हयुर्भुज्युमस्त शतारित्रां नावमातस्थिवासं ॥५॥
—१।११६

६०. युव नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्व ददयुर्विश्वकाय।
घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्त ॥७॥

सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाज विप्राय भुरणा रदन्ता।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना स विश्पला नासत्यारिणीत ॥११॥
—१।११७

६१. अमन्दान् स्तोमान् प्रभरे मनीषा सिन्धावधिक्षियतो भाव्यस्य।
यो मे सहस्रममिमीत सवानतूर्तो राजा श्रव इच्छमान. ॥१॥

शत राज्ञो नाधमानस्य निष्काच्छतमश्वान् प्रयतान्त्स सद्य आद।
शतं कक्षीवा असुरस्य गोना दिवि श्रवो' जरमाततान ॥२॥

उप मा श्यावा स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दश रथासो अस्थु ।
षष्टि सहस्रमनुगव्यमागात् सनत् कक्षीवा अभिपित्वे अह्ना ॥३॥

चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणा सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति।
मदच्युत कृशनावतो अत्यान् कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्रा ॥४॥

उपोप मे परामृश मा मे दभ्राणि मन्यथा ।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥७॥
—१।१२६

५९ हे अश्विद्वय, तुमने आश्रय-रहित, शरणस्थान-रहित पकड़नेकी वस्तुसे रहित समुद्रमें वह पराक्रम किया, जब कि सौ पतवारोंवाली नावमें बैठा भुज्युको उठा लाये ॥५॥

—१।११६

६० हे दोनों नेताओ, तुमने स्तुतिकर्त्ता कृष्ण-पुत्र विश्वकके लिये (उनके पुत्र) विष्णापुको दिया। तुमने पिताके घर बैठी बुढ़ानी घोषाको पति प्रदान किया ॥७॥

हे शीघ्रगामी अश्विनो, तुमने पुत्रके माननेसे स्तुत सन्तुष्ट हो विप्रके लिये अन्न प्रदान किया। मन्त्रोंसे बढ़ाये जाते हे नासत्यो, तुमने विश्पलाको अगस्त्यके लिये पुनः प्रदान किया ॥११॥

—१।११७

६१ सिन्धु तटवासी भाव्य (स्वनय) के वास्ते मैं बुद्धि-युक्त अमन्द स्तोत्र लाता हूं। जिस अजेय राजाने यशकी कामनासे मेरे लिये हजार सवन किये ॥१॥

मैं कक्षीवान्ने याचना करनेपर राजासे सौ निष्क (सुवर्ण-माला), दानके सौ घोड़े तुरन्त पाये, और असुरकी सौ गायें (भी)। उसका अजर यश द्यौ में फैला ॥२॥

और स्वनय द्वारा दस काले घोड़ों वाले वधुओं (नारियों) चढ़े दस रथ मेरे पास रहे। पीछे एक हजार साठ गायें भी आईं। कक्षीवान्ने दिनोंकी समाप्तिके समय उन्हें पाया ॥३॥

दशरथके चालीस लाल घोड़े हजार (गायों) की पांती वहन करते थे। कक्षीवान् (लोगों) और पज्रोंने मुक्तावाले वे मस्त घोड़े पाये ॥४॥

समीप-समीप मेरा स्पर्श करो। मुझे छोटा न मानो। गन्धारकी भेड़ोंकी तरह मैं (रोमावली) रोमशा सम्पूर्ण (अंगवाली) हूं ॥७॥

—१।१२६

७ अगस्त्य —

६२ नदस्य मा रुधत काम आगन्नित आजातो अमुत कुतश्चित् ।
लोपामुद्रा वृषण नीरिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्त ॥४॥

—१।१७९

६३ अभूविद वयुनमोषु भूपता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिण ।
धिय जिन्वा धिष्ण्या विश्पला वसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥१॥

—१।१८२

६४ त्व धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरप सीरा न स्रवन्ती ।
प्रयत् समुद्रमतिशूर पर्षि पारया तुर्वश यदु स्वस्ति ॥९॥

—१।१७४

६५. करम्भ ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथि ।
वातापे पीव इद् भव ॥१०॥

—१।१८७

शरास कुशरासो दर्भास सैर्या उत ।
मौंजा अदृष्टा वैरिण सर्वे साक न्यलिप्सत ॥३॥

—१।१९१

६६ यस्य विश्वानि हस्तयो पचक्षितीना वसु ।
स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग्दिव्येवाशनिर्जहि ॥३॥

—१।१७६

७. अगस्त्य मैत्रावरुण—

६२ रोकते हुए भी मुझे यहां-वहां या कहींसे काम-भाव आ गया। अधीर लोपामुद्रा पतिको चाहती है। वह अधीरा श्वास लेती धीर (पति) को चुम्बन करती है ॥४॥

—१।१७९

६३ हे मनीषियो, यह था, कि (अश्विनीकुमारोंका) दृढ़ (घोड़ों) का रथ मौजूद है। आगे होओ, प्रसन्न रहो। स्तुति करो, स्तुति-योग्य है। द्यौके नाती शुचिव्रत, धिष्ण्य विश्पला-सहायक अश्विन सुकर्मा (लोगों) का भला करें॥

—१।१८२

६४. हे इन्द्र, घुननेवाले तुमने नदियोंकी तरह घुननेवाले जलोंको बहाया, कांपनेवाली नौका की तरह नदियोंको गिराया। हे शूर, जब तुम समुद्रमें बाढ़ करो, तब तुर्वश और यदुको कल्याण-सहित पार करो ॥९॥

६५. हे ओषधि (रूप) सत्तू, तुम स्थूल, दृढ़ पोषक बनो। और हे वायुमित्र (वातापि), तुम भी स्थूल बनो ॥१०॥

—१।१८७

शर, कुशर (कुश), दर्भ, सैर्य, मूंज, वीरण (घास) (में रहने) वाली अदृष्ट वैरी (जन्तु) मुझे लगते हैं ॥३॥

—१।१९१

६६ जिसके दोनों हाथोंमें पांचो [illegible] हैं। (जो) [illegible], जो [illegible] है, [illegible] बिच्छू की तरह उसे नष्ट करो ॥३॥

—१।१९६

८. दीर्घतमा—

६७. को वा दाशत्सुमतये चिदस्यै वसू यद्धेथे नमसा पदे गो ।
जिगृतमस्मे रेवती पुरन्धी कामप्रेणेव मनसा चरन्ता ॥२॥

उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मामामिमे पतत्रिणी विदुग्धा ।
मामा मेधो दशतयश्चितो धाक प्रयद्वा वद्धस्त्मनि खादति क्षा ॥४॥

—१।१५८

६८ वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यत नो वृषणावभिष्टौ ।
दस्रा ह यद्रेक्ण औचथ्यो वा प्रयत्सस्राथे अकवाभिरूती ॥१॥

—१।१५८

६९. न मा गरन्नद्यो मातृतमा दासा यदी सुसमुब्धमवाधु ।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत स्वय दास उरो असावपिग्य ॥५॥

—१।१५८

७०. रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रा पद्वती रास्यग्ने ।
अस्माक वीरा उप नो मघोनो जनाश्च या पारयाच्छर्म या च ॥१२॥

—१।१४०

७१. ये वाजिन परिपश्यन्ति पक्व य ईमाहु सुरभिर्निहरेति ।
ये चार्वतो मासभिक्षामुपासत उतो तेपामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥१२॥

—१।१६२

८. दीर्घतमा मामतेय—

६७. हे दोनो वसु (अश्विनीकुमारो), (तुम्हारी) सुमतिके लिये तुम दोनोको हव्य प्रदान कौन करे, जिसे कि तुम नमस्कार (सुन कर) गौके स्थानमें देते हो। हमारे लिये जागो, धनवाली, इच्छापूरक, कामना प्रेरक (गायें) मनके साथ (लिये मानो) तुम विचरण करते हो ॥२॥ (यह) स्तुति उचथ्य-पुत्रकी रक्षा करे। यह उडनेवाले (दोनो) हमारी हानि न करें। दस गुनी चिनी हुई जलती आग मुझे न जलाये, जब कि (वह) तुम्हारे लिये शरीरसे बद्ध पृथिवीको खाता है, लेटता है ॥४॥

—१।१५८

६८ रत्नानेवाले, बहुत ज्ञानी, वर्धनशील, कामनावर्षी हे दोनो वसु, हमें अभीष्ट प्रदान करो, जिसे कि उचथ्य-पुत्र (दीर्घतमा) तुमसे चाहता है। तुम अ-कृपण (हो) रक्षा प्रदान करते हो ॥१॥

—१।१५८

६९ (तुम) अत्यन्त माता (रूपी) नदियां मुझे नहीं निगल गईं, जब कि दासोंने नीचे मुंह करके फेंक दिया। जब त्रैतनने इसका सिर काटा, दासने स्वयं (अपने) उर और कन्धेपर चोट खा लिया ॥५॥

—१।१५८

७०. हे अग्नि, रथके लिये, गृहके लिये सदा हमें पतवारवाली पदवाली नाव प्रदान करो। जो कि हमारे वीरों और धनवाले जनोंको पार करे, और जो शरण हो ॥१२॥

—१।१४०

७१. जो पके घोड़ेको देखते, जो बोलते "उतारो माँगा है" और जो घोड़ेके मांस-भोजनको सेवन करते हैं, उनका उद्यम हमारे यज्ञको पूर्ण करे ॥१२॥

—१।१६२

७२ न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवा इदेषि पथिभि सुगेभि ।
हरी ते युजा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥२१॥
—१।१६२

६ गोतम रहूगण-पुत्र—

७३. अवोचाम रहूगणा अग्नये मधुमद्वच । द्युम्नैरभि प्रणोनुम ॥५॥
—१।७८

७४ यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ्ध धियमतन्वत ।
तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्य ॥१६॥
—१।८०

७५ आदङ्गिरा प्रथम दधिरे वय इद्धाग्नय शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणे समविन्दन्त भोजनमश्वावन्त गोमन्तमा पशु नर ॥४॥

यज्ञैरथर्वा प्रथम पथस्तते तत सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आगा आजदुशना काव्य सचा यमस्य जातममृत यजामहे ॥५॥
—१।८३

७२. हे अश्व, यहा न तुम मरता है न आहत होता है, (बल्कि) सुगम मार्गोंसे देवोंके पास जाता है। इन्द्रके दोनो घोडे मरुतोंके चितकबरे हरिन तुम्हारे (रथमें) जुतेंगे, (अश्वि-वाहन) रासभके धुरेमें दो घोडे (जुतेंगे) ॥२१॥

—१।१६२

९ गोतम रहूगण-पुत्र—

७३ हम रहूगण (लोग) अग्निके लिये मधुर वाणी बोलते हैं। उज्ज्वल (स्तुतियों) से बहुत नमस्कार करते हैं ॥५॥

—१।७८

७४ हे इन्द्र, अथर्वा, (हमारे) पिता मनु, दधीचिने जिन यज्ञको किया। उनमें अपना स्वराज्य प्रकट करते पूर्व जैसे मन्त्र, उक्थ तुम्हें प्राप्त हुए ॥१६॥

—१।८०

७५ ऋतुमें महान् स्वधाके पीछे बलसे भयंकर बढ़े, सुन्दर शिप्रवाले हरित अश्वोंयुक्त इन्द्रने लक्ष्मीके लिये अपने बलिष्ठ दोनों हाथोंमें आयस (कठोर) वज्र (गदा) धारण किया ॥४॥

(तुमने) पृथिवी-लोकको परिपूर्ण किया, द्यौमें तारोंको स्थापित किया। हे इन्द्र, तुम्हारे जैसा न कोई जन्मा, न जन्मेगा। तुम विश्वको अत्यन्त जोरसे धारण करते हो ॥५॥

पहले अंगिराओंने अन्न प्राप्त किया, फिर उनका अग्नि सुकृत्य (यज्ञ) द्वारा प्रज्वलित हुआ। नरोंने पणिके अश्व-युक्त, गो-युक्त सभी पशु, भोजन (धन) लिये ॥४॥

अथर्वाने पहले यज्ञों द्वारा पथ विस्तृत किया, तब व्रतपालक प्रकाशमान सूर्य (इन्द्र) प्रकट हुआ। (जो) कवि-पुत्र उशनाने गायें लाया। यमके अमर पुत्र (इन्द्र) का हम यजन (पूजा) करते हैं ॥५॥

—१।८३

७६ इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुत । जघान नवतीर्नव ॥१३॥
इच्छन्नश्वस्य यच्छिर. पर्वतेष्वपश्रितम् । तद्विदच्छर्यणावति ॥१४॥
—१।८४

७७. गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्द्धन । सुमित्र सोम नो भव॥१२
—१।९१

७८ अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वा यदमुष्णीतमवस पणिं गा ।
अवातिरत बृसयस्य शेषो विन्दत ज्योतिरेक बहुभ्य ॥४॥
—१।९३

१० मेघातिथि कण्व-पुत्र—।

७९. आ त्वा कण्वा अहूषत गृणन्ति विप्र ते धिय । देवेभिरग्न आ गहि ॥२॥
ईळते त्वामवस्यव कण्वासो वृक्तबर्हिष । हविष्मन्तो अरकृत ॥५॥
—१।१४

८० कण्वा इव भृगव सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशु ।
इन्द्र स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥१६॥
—८।३

८१ प्रास्मै गायत्रमर्चत वावातुर्य पुरन्दर ।
याभि काण्वस्योपबर्हिरासद यासद्वज्री भिनत् पुर ॥८॥

यत्सुदत् सूर एतश वङ्कू वातस्य पर्णिना ।
वहत् कुत्समार्जुनेय शतक्रतुस्त्सरद्गन्धर्वमस्तृत ॥११॥

७६. दुर्धर्ष इन्द्रने दधीचिकी हड्डियोंसे वृत्रको नौ नब्बे बार मारा ॥१३॥ पर्वतमें छिपे अश्वके सिरको ढूंढने, उसे शर्यणावत्‌में प्राप्त किया ॥१४॥

—१।८४

७७. हे सोम, तुम हमारे गृहवर्धन, रोगहन्ता, धनदाता, पुष्टिवर्धन और सुमित्र बनो ॥१२॥

—१।९१

७८ हे अग्नि और सोम, वह तुम्हारा पराक्रम प्रसिद्ध है, जिससे कि तुमने पणिसे भोजन और गायें छीनीं, जिससे बृसयके पुत्रको मार गिराया, और बहुतोंके लिये एक ज्योतिको प्राप्त किया ॥४॥

—१।९३

१०. मेधातिथि कण्व-पुत्र—

७९ कण्व (लोग) तुम्हें पुकारते हैं, हे विप्र, तुम्हारी प्रशंसा गाते हैं। हे अग्नि, देवोंके साथ तुम आओ ॥२॥

रक्षा-अभिलाषी कुश-बिछाये हवि-युक्त अन्नवान् कण्व (लोग) तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥५॥

—१।१४

८० भृगु कण्वोंकी तरह सूर्योंकी तरह हैं, (अपनी) सारी कामनायुक्त आयुवाले उन प्रियमेधोंने स्तुतियाँ गाते पूजा की ॥१६॥

—८।३

८१. इस (इन्द्र) के लिये अच्छी तरह गायत्र (गान) द्वारा यजन करो, जो पुरोंका नाशक है, पूजनीय (है)। जिन ऋचाओं द्वारा वह कण्व-पुत्रके यज्ञमें बैठा, (जिनके द्वारा) वज्रधारीने पुरोंको नष्ट किया ॥८॥

जब सूर्यने एतशको आहत किया, (तब) इन्द्रने अपने बड़े रथ द्वारा अर्जुन-पुत्र कुत्सको ग्रहण किया, और अभेद्य गन्धर्व (सूर्य)पर संगमन (आगमन) किया ॥११॥

त्व पुर चरिष्ण्व वधै शुष्णस्य सम्पिणक् ।
त्व भा अनुचरो अध द्विता यदिन्द्र हव्यो भुव ॥२८॥

स्तुहि स्तुहीदेते घाते महिष्ठासो मघोना ।
निन्दिताश्वः प्रपथी परमज्या मघस्य मेध्यातिथे ॥३०॥

आ यदश्वान्वनन्वत श्रद्धयाह रथे रुह ।
उत वामस्य वसुनश्चिकेतति यो अस्ति याद्व पशु ॥३१॥

य ऋज्रा मह्य मामहे सह त्वचा हिरण्यया ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु सौभगासगस्य स्वनद्रथ ॥३२॥

अध प्लायोगिरति दासदन्यानासगो अग्ने दशभि सहस्रै ।
अधोक्षणो दश मह्य रुशन्तो नळा इव सरसो निरतिष्ठन् ॥३३॥

—८।१

तत्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥९॥

शग्धी नो अस्य यद्ध पौरमाविथ धिय इन्द्र सिपासत ।
शग्धि यथा रुशम श्यावक कृपमिन्द्र प्राव स्वर्णर ॥१२॥

कण्वा इव भृगव. सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशु ।
इन्द्र स्तोमेभिर्महयन्त आयव प्रियमेधासो अस्वरन् ॥१६॥

य मे दुरिन्द्रो मरुत पाकस्थामा कौरयाण ।
विश्वेपा त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमान ॥२१॥

रोहित मे पाकस्थामा सुधुर कक्ष्यप्रा ।
अदाद्रायो विबोधन ॥२२॥

तुमने वज्रसे शुष्णके गमनशील दुर्ग (पुर) को ध्वस्त किया। हे इन्द्र, तुम पुकारने योग्य हो, क्योंकि तुम प्रभावका अनुसरण करते हो ॥२८॥

स्तुति करो, स्तुति करो, धनवानोंमें (वह) अतिमहान् है। हे मेध्यातिथि, मेरा अश्व बहुत चलनेवाला धन (छीनने) के लिये मेरा परमआयुध है ॥३०॥

जब कि श्रद्धाके साथ मैं अश्वोंको जोड़ रथपर चढ़ता हूँ। (यदु-पुत्र) सुन्दर धनको जानता है, और (उसे) जो कि यदुओंका पशु है ॥३१॥

जिस (आसंग) ने सुनहले जोहारके साथ मुझे भूरे (घोड़े) दिये, वह यह आसंग स्वनद्रथ सारे (धन) सौभाग्यको पाये ॥३२॥

हे अग्नि, प्लयोग-पुत्र आसंग दस हजार गायोंके (दान) द्वारा दूसरोंसे (आगे) बढ़ गया। फिर सरोवरसे निकलने नालोंकी तरह दीप्तिमान् दस बैल मेरे लिये आये ॥३३॥

—८।१

(हे इन्द्र), प्रार्थनापर प्रसन्न ध्यान देनेके लिये तुमसे उन सुश्लोकोंको माँगता हूँ, जिनके द्वारा तुमने धनके लिये यतियों, भृगुओंको, जिनके द्वारा प्रस्कण्वकी रक्षा की ॥९॥

हे इन्द्र, हमें (वह रक्षा) दो, जिससे तुमने स्तुति द्वारा चाहने पुरु-पुत्रकी रक्षा की। जैसे हे इन्द्र, रुशम, श्यावक स्वर्णर और कृपकी रक्षा की ॥१२॥

भृगु कण्वोंकी तरह सूर्य-किरणोंकी तरह हैं। उन्होंने (स्तवनों) सारी पालना पा ली। आयु याने प्रियमेधोंने स्तुति द्वारा इन्द्र का यजन किया ॥१६॥

जो मुझे इन्द्र और मरुतोंने दिया, उस सारे को, स्वयं अतिशोभन द्यौलोकमें (मानों) दौड़तेको कुरयाण-पुत्र पाकस्थामाने दिया ॥२१॥

पाकस्थामाने मुझे धन-दायक लाल सुन्दर धुरीवाला कक्ष्य-पूरा घोड़ा प्रदान किया ॥२२॥

यस्मा अन्ये दश प्रति धुर वहन्ति वह्नय ।
अस्त वयो न तुग्र्य ।।२३।।
आत्मा पितुस्तनुर्वास ओजोदा अभ्यजन ।
तुरीयमिद्रोहितस्य पाकस्थामान भोज दातारमब्रव ।।२४।।

—८।३

११ श्यावाश्व अत्रि-पुत्र—

८२ अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामि शवस ।
प्र यज्ञ यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्य ।।५।।

—५।५२

८३. सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददु ।
यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्य मृजे नि राधो अश्व्य मृजे ।।१७।।

—५।५२

८४ एतान्रथेषु तस्थुष क शुश्राव कथा ययु ।
कस्मै सस्रु सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टय सह ।।२।।

—५।५३

१२ कुत्स आंगिरस—

८५. इन्द्र कुत्सो वृत्रहण शचीपति काटेनिवाह्ळ ऋषिरह्वदूतये ।
रथ न दुर्गाद्वसव सुदानवो विश्वस्मान्नो अहसो निष्पिपर्तन ।।६।।

—१।१०६

याभि सिन्धु मधुमन्तमसश्चत वसिष्ठ याभिरजरावजिन्वत ।
याभि कुत्स श्रुतर्यं नर्यमावत ताभिरूपु ऊतिभिरश्विना गत ।।९।।

—१।११२

८६. शुष्ण पिप्रु कुयव वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुर शबरस्य ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदिति सिन्धु पृथिवी उत द्यौ ।।८।।

—१।१०३

जिसके (जैसे) दूसरे दस घोड़े धुरेको वहन करते हैं, वह पक्षियोंकी तरह तुग्र-पुत्रको (उड़ा ले गये) ॥२३॥

यह पिताका शरीर आत्मा, वस्त्र, और बलप्रद भोजन है। एव चौथे लाल घोड़ेके दाता भोजकर्ता पाकस्थामाको मैं कहता हूं ॥२४॥

—८।३

११. श्यावाश्व अत्रि-पुत्र—

८२ जो अर्हन्त (पूजनीय), सुदाता बलिष्ठ नेता है, उन द्यौके पूजनीय मरुतों का (हम) यज्ञमें यजन करेंगे ॥५॥

—५।५२

८३. उन्चास शक्तिमान् मरुतोंने एक-एक (करके) हमें सौ दिये। यमुना तीर पर प्रसिद्ध गो-धन हमने पाया, अश्व-धन हमने पाया ॥१७॥

—५।५२

८४ रथपर बैठे इन (मरुतों) को किसने सुना, कहां गये? किस सुदाता के लिये (यज्ञके) अन्नोंके साथ अनुरूप वृष्टियां पड़ी ॥२॥

—५।५३

१२. कुत्स आंगिरस—

८५ कूएमें गिरे कुत्स ऋषिने शचिपति वृत्रहन्ताको रक्षाके लिये पुकारा। जैसे दुर्गम पथसे रथ, वैसे (ही) सुदानी वसु लोग सारे कष्टोंसे हमारा उद्धार करें ॥६॥

—१।१०६

हे अश्विनो, जिन (रक्षाओं) के द्वारा मधुमान् सिन्धुको तुमने प्रवाहित किया, जिनके द्वारा तुम अजरोंने वसिष्ठकी रक्षा की, जिनके द्वारा कुत्स, श्रुतर्य, नर्यकी रक्षा की, उन रक्षाओंके साथ तुम आओ ॥९॥

—१।११२

८६. हे इन्द्र, तूने कुत्सके शुष्ण, पिप्रु, कुयव, वृत्रको (और) शम्बरके पुरोंको नष्ट किया। उसे (सदा ही) हमारे (अभीष्ट) मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ प्रदान करें ॥८॥

—१।१०३

८७ अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन्।
क्षीरेण स्नात कुयवस्य योषे हते ते स्याता प्रवणे शिफाया ॥३॥
—१।१०४

१३ मधुच्छन्दा विश्वामित्र-पुत्र—

८८ नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणवामहे। त्वोतासोन्यर्वता ॥२॥
—१।८

८९ स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुत ॥१॥
—९।१

१४ प्रस्कण्व कण्व-पुत्र—

९० अरित्र वा दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूना रथ । धिया युयुज्र इन्दव ॥८॥
—१।४६

९१ सुदासे दस्रा वसु विभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे धत्त पुरुस्पृह ॥६॥
—१।४७

९२ कुविच्छकत् कुवित् करत् कुविन्नो वस्यसस्करत्।
कुवित् पतिद्विषो यतीरिन्द्रेण सगमामहै ॥१४॥
—८।८०

९३ सप्तापो देवी सुरणा अमृक्ता याभि सिन्धुमतर इन्द्र पूर्भित्।
नवतिं स्रोत्या नव च स्रवन्तीर्देवेभ्यो गातु मनुषे च विन्द ॥८॥
—१०।१०४

८७ वह केवल कामनाका धन फेंकता है, केवल जन्ममें फेन फेंकता है। कुयवकी दोनों स्त्रियां क्षीर से नहाई हैं। वह शिफाकी धारमें मर जायें ॥३॥

—१।१०४

१३ मधुच्छन्दा विश्वामित्र-पुत्र—

८८ (हे इन्द्र), तुम्हारी रक्षासे युक्त हम घोड़े द्वारा, मुष्टि-युद्ध द्वारा शत्रुओंको रोक देवें ॥२॥

—१।८

८९. इन्द्रके पीनेके लिये छाने गये हे सोम, स्वादिष्ठ, मदिष्ठ धाराके साथ (तुम) क्षरित होओ ॥१॥ —९।१

१४. प्रस्कण्व॰ कण्व-पुत्र—

९० हे अश्विनीकुमारो, सोमों नाव तुम्हारी है, सिन्धुओंके घाटपर रथ (तैयार) है। स्तुतिके साथ सोम तैयार है ॥८॥

—१।४६

९१ हे अश्विनीकुमारो, तुमने सुदासको बहुत अन्न दिया, (इसलिये) रथपर धन भरकर लाये। समुद्रसे और द्यौसे बहुत सा वाञ्छनीय धन हमें प्रदान करो ॥६॥

—१।४७

९२ क्या वह हमें शान्ति नहीं देगा, क्या बहुत धनवान् नहीं करेगा? क्या हम स्वामीके द्वेषवाले (बने) जाकर इन्द्रसे नहीं मिलेंगे ॥८॥

—८।८०

९३ हे पुरुहूत इन्द्र, देवों-मनुष्योंके सुख के लिये तुमने अग्नि साथ सुन्दर दिव्य नदियोंको बनाया, जिनसे त्रिपुरों होकर चले और निकलते नावों नदियोंसे पार हुए ॥८॥

—१०।१०४

अध्याय ६

दस्यु (अनार्य)

१. पणि—

१ हे सत्पति अग्नि, तुम (अपने) वज्रसे वृत्रको मारते हो। विप्र (तुम) पणिके धनको (छीन) लेते हो। जानकार ऋत-उत्पन्न हे अग्नि, जिसे तुम धनके लिये प्रेरित करते हो (वह पाता है) ॥३॥

—६।१३

२ हे इन्द्र, यहां युद्धमें कवि दशोणि से अपने सैकड़ों (सैनिकों) के साथ पणि भाग गये। शुष्ण-असुरकी मायाके नाशसे कुछ भी अन्न धन न रहा ॥४॥

—६।२०

३. हे पूषन्, (तुम) न देनेकी इच्छावालेको दानके लिये प्रेरित करो, पणिके मनको कोमल बनाओ। ॥३॥

४ हे कवि पूषन्, पणियोंके हृदयको आरासे वेध दो, और उन्हें हमारे वशमें कर दो ॥७॥

—६।५३

५. वह सुकर्मा है, जो पणियोंके द्वारको खोल हमारे लिये बहुत भोजन देनेवाले सूर्यको लाया। वह मन्द्र होता प्रजाओंका मित्र, रात्रि अंधेरेमें दिखाई देता है ॥२॥

—७।९

६ इसीलिये ग्रथवादी, मृध्रवाची, अक्रतु, अश्रद्धालु, अवर्धक पणियों दस्युओंको अग्निने पूर्वसे भगाया, यज्ञहीनोंको उसने पश्चिम से भगाया ॥३॥

—७।६

७ रेवद्वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरित ऊतिमाहिन।
न वा द्यावोहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वम्पणयो नानशुर्मघ ॥९॥
—१।१५१

८ अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वा यदमुष्णीतमवस पणि गा।
अवातिरत बृसयस्य शेषो विन्दत ज्योतिरेक वहुभ्य ॥४॥
—१।९३

९ अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुर्निधि पणीना परम गुहाहित।
ते विद्वासा प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यत उ आयन्तदुदीयु राविश ॥६॥
—२।२४

१० नि सर्वसेन इषुधी रसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वाम मा पणिभूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥३॥
—१।३३

११ प्रवोधयोप धृणातो मघोन्यवुध्यमाना पणय ससन्तु।
रेवदुच्छ मघयो मघोनि रेवत् स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥१०॥
—१।१२४

१२ समीम्पणेरजति भोजन मुषे वि दाशुषे भजति सूनर वसु।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु जनो यो अस्य तविषीमचुक्रुधत् ॥७॥
—५।३४

७ हे मित्रावरुण, तुम धन-युक्त आयु-युक्त हो, धन-युक्त (करना) चाहते हो। हे नरो, (तुम्हारे द्वारा), मायाओंने भारी रक्षा पाई है। तुम्हारे देवत्वको न दिन और रातने पाया, और न सिन्धुओंने। न पणियोंने (तुम्हारे) धनको प्राप्त किया ॥९॥

—१।१५१

८ हे अग्नि और सोम, वह तुम्हारा पराक्रम प्रसिद्ध है, जिससे तुमने पणिसे गायें और भोजन छीने, जिससे बृसयके पुत्रको मार गिराया, और बहुतोंके लिये एक ज्योतिको प्राप्त किया ॥४॥

—१।९३

९ खोजते हुए चारों ओर जिन अंगिराओंने परम गुहानिहित पणियों की निधिको प्राप्त किया। वे विद्वान् ऋतको प्रत्याख्यान करके जहांसे आये थे, फिर वहीं चले गये ॥६॥

—२।२४

१० सारी सेनामें तरंग लगाता (वह) सम्राट् स्वामी इन्द्र जिसको चाहता, उसकी गायें (छीन) ले जाता। बहुत सा धन जमा करने हे प्रवृद्ध इन्द्र, हमारे लिये तुम बनिया (पणि) न बनना ॥३॥

—१।३३

११ हे धनवती उषा, दाताओंको जगाओ, (पर) पणि बिना जागे सोये रहें। हे धनशालिनी, धनवालोंको तुम धनवाला बनाओ। हे सूनृते (मधुरभाषिणी), [illegible] स्तोताओंको सम्पत्ति प्रदान करो ॥१०॥

—१।१२४

१२ (यह) वणिक् (पणि) [illegible] भोजन छीननेके लिये [illegible], [illegible] ॥७॥

—[illegible]

१९. "किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानट् दूरे ह्यध्वा जगुरि पराचैं ।
कास्मे हिति का परितक्म्यासीत् कथ रसाया अतर पयासि" ॥१॥

"इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि मह इच्छन्ती पणयो निधीन् व ।
अतिष्कदो भियसा तन्न आवत्तथा रसाया अतर पयासि" ॥२॥

"कीदृङ ङिन्द्र सरमे का दृशीका यस्येद दूतीरसर पराकात् ।
आ च गच्छान्मित्रमेना दधामाथा गवा गोपतिर्नो भवाति" ॥३॥

"नाह त वेद दभ्य दभत् स यस्येद दूतीरसर पराकात् ।
न त गूहन्ति स्रवतो गभीरा हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे" ॥४॥

"इमा गाव सरमे या ऐच्छ परि दिवो अन्तान्त्सुभगे पतन्ती ।
कस्त एना अवसृजादयुध्व्युतास्माकमायुधा सन्ति तिग्मा" ॥५॥

"असेन्या व पणयो वचास्यनिषव्यास्तन्व सन्तु पापी ।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था बृहस्पतिर्व उभया न मृळात्" ॥६॥

"अय निधि सरमे अद्रिबुध्नो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्न्यृष्ट ।
रक्षन्ति त पणयो ये सुगोपा रेकु पदमलकमा जगन्थ" ॥७॥

"एह गमन्नृषय सोमशिता अयास्यो अगिरसो नवग्वा ।
त एतमूर्व वि भजन्त गोनामथैतद्वच पणयो वमन्नित्" ॥८॥

१९ (पणिगण)—सरमा, क्या इच्छा करके तुम आई? नाना स्थानोंको जानेवाला बहुत दूरका रास्ता है। हमसे क्या चाहती हो? क्यों घूमी? कैसे तुमने रसा (नदी) के[1] जलको पार किया॥१॥

(सरमा—) हे पणियो, मैं इन्द्रकी दूती होकर तुम्हारी भारी निधियोंको ढूंढने आई हूं। उनके भारी भयने मुझे बचाया, ऐसे मैं रसाके जलको पार हुई॥२॥

(पणि—) सरमा, कैसा इन्द्र है, कैसी (उसकी) आकृति (है), जिसकी दूती होकर तुम दूरसे आई? वह इन्द्र आवे, हम उसे मित्र मानेंगे। वह हमारी गायोंका चरवाहा बनेगा॥३॥

(सरमा—) मैं उसको (किसीसे) हारने योग्य नहीं जानती, वह हरा सकता है, जिस (इन्द्र) की दूती बन कर मैं आई हूं। गहरी नदियां भी उसको नहीं छिपा सकतीं। हे पणियो, उस इन्द्र द्वारा निहत तुम सो जाओगे॥४॥

(पणि—) हे सुभगे सरमा, आकाशके अन्तिम भाग तक इतनी यह गायें हैं, जिनकी इच्छा करके आई हो। उन (गायों) को युद्धके बिना कौन छीन सकता है? हमारे आयुध तीक्ष्ण हैं॥५॥

(सरमा—) पणियो, तुम्हारे वचन धारदार नहीं हैं, तुम्हारे पापी शरीर बाणसे अभेद्य नहीं हैं। जानेका मार्ग यदि अनतिक्रान्त हो, तो भी बृहस्पति तुम्हें सन्तापग्रस्त किये बिना नहीं रहेगा॥६॥

(पणि—) सरमा, पर्वत कोठरियोंमें (हमारी) यह निधि सोनों, अश्वों, गायों और वसुओं (धनों) से पूर्ण है। सुरक्षक पणि उसकी रक्षा करते हैं। हमारे एकान्त स्थानमें तुम व्यर्थ ही आई॥७॥

(सरमा—) यहां सोमसे मस्त अयास्य आंगिरस नवग्व (आदि) ऋषि आवेंगे। वह इन गायोंको बांट लेंगे, फिर पणियो यह तुम्हारा वचन वमन मात्र है॥८॥

---

[1] नदी का नाम, जो सिंध के उत्तर पूर्व में थी।

"एवा च त्व सरम आजगन्थ प्रवाधिता सहसा दैव्येन।
स्वसार त्वा कृणवै मा पुलर्गा अप ते गवा सुभगे भजाम" ॥९॥

"नाह वेद भ्रातृत्व नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरगिरसश्च घोरा ।
गोकामा मे अच्छदयन् यदायमपात इत पणयो वरीय" ॥१०॥

"दूरमित पणयो वरीय उद्गावो यन्तु मिनती ऋतेन।
वृहस्पतिर्या अविन्दन्निगूह्ळा सोमो ग्रावाण ऋषयश्च विप्रा" ॥११॥
—१०।१०८

अध्याय ७

आदिम आर्य राजा

१ मनु—

१ एता धिय कृणवाम सखायो'प यामातां ऋणुत व्रज गो ।
यया मर्नुर्विशिशिप्र जिगाय यया वणिग्वकुरापा पुरीप ॥६॥
—५।४५

२. आ त्वा कण्वा अहूपत गृणन्ति विप्र ते धिय । देवेभिरग्न आ गहि ॥२॥
—१।१४

(पणिगण—) हे सरमे, ऐसे ही देवताओंसे बाधित हो कर तुम यहा आई। हम तुम्हें (अपनी) बहिन बनाते हैं, तुम लौटके मत जाओ। हे सुभागी, हम तुम्हें गायें देंगे ॥९॥

(सरमा—)न मैं भ्रातृत्व जानती, न स्वसृत्व। इन्द्र और घोर अंगिरावंशी (इसे) जानते हैं, जो गायके इच्छुक हैं। अब मैं चली। पणियो, यहा से दूर भाग जाओ ॥१०॥

पणियो, यहासे बहुत दूर भाग जाओ। (वह) गायें ऋतकी आज्ञासे बाहर करती जायें, जिन निगूढ़ (गौओं) को बृहस्पति, सोम, (सोम पीसनेके) पत्थरो और विप्रो (ऋषियोंने) प्राप्त किया।

—१०।१०।८

अध्याय ७

आदिम आर्य राजा

१. मनु—

१ हे सखो, आओ, हम स्तुतिको बनावें, जिस मार्गसे गायोंका ब्रज खोल दिया था, जिसके द्वारा मनुने विशिशिप्रको जीता, जिसके द्वारा बहुत भटकते वणिक्ने जल प्राप्त किया था ॥६॥

—[illegible] ऋग्वेद, ५।४५

२. हे अग्नि, तुम्हें मनु बुलाते हैं, जिस (यजन) तुम्हारे कामोंको मनाया करते हैं, देवताओंके साथ तुम आओ ॥७॥

—[illegible], १।१४

३. या वो भेषजा मरुत शुचीनि या शन्तमा वृषणो या मयायोभु।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता श च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥१३॥
—२।३३

४ नू म आ वाचमुप याहि विद्वान्विश्वेभि सूनो सहसो यजत्रैं ।
ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुर्ये मनु चक्रुरुपरं दसाय ॥११॥

५. तन्नु सत्य पवमानस्यास्तु यत्र विश्वे कारव सन्नसन्त।
ज्योतिर्यदह्ने अकृणोदु लोक प्रावन्मनु दस्यवे करभीक ॥५॥
—९।९२

प्रश्येनो न मदिरमशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
प्रवन्नमी साप्य सत परणग् रायासमिषा स स्वस्ति ॥६॥
—भरद्वाज, ६।२०

२. पुरूरवा—

६. त्वमग्ने मनवे धामवाशय पुरूरवसे सुकृते सुकृत्तर।
श्वात्रेण यत्पित्रोर्मुच्यसे पर्या त्वा पूर्वमनयन्नापर पुन.॥४॥
—१।३१

७ "हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचासि मिश्रा कृणवावहै नु।
न नौ मन्त्रा अनुदितास एते मयस्करन् परतरे चनाहन्" ॥१॥

३ हे समर्थ मरुतो, जो तुम्हारी शुचि ओषधियां हैं, सो तुम्हारी अतिकल्याणकारी सुखदायक (ओषधियां) हैं। तुम्हारी जिन ओषधियोंको हमारे पिता मनुने चुना था। मैं (उनके द्वारा) रुद्रसे मंगल और हित चाहता हूं ॥१३॥

—गृत्समद, २।३३

४ हे विद्वान् सहस्-सूनु (अग्नि), मेरी वचनसे सारे यजन-योग्य देवताओंके साथ मेरे पास आओ। जो (देवता कि) अग्नि-रूपी जीभवाले, जो यज्ञके जाननेवाले हैं। जिन्होंने मनुको दासोंके ऊपर (विजयी) किया ॥११॥

—भरद्वाज, ६।२१

५ यह पवमानका सत्य हो, जहां सारे कवि एकत्रित होते हैं। जिसने दिनमें ज्योति और लोक बनाया, जिसने दस्युका हनाया, मनुकी रक्षा की ॥४॥

—कश्यप मरीचि-पुत्र, ९।९२

इन्द्रने उत्पीड़क दास नमुचिके सिरको तोड़ा, जैसे बाज मदिरवाले सोमको। उसने सोते सप्य-पुत्र नमीकी रक्षा की, अन्न, [illegible], सम्पत्तिके साथ स्वस्ति प्रदान किया ॥६॥

—भरद्वाज, ६।२०

२. पुरूरवा ऐल—

६. हे अग्नि, तुमने सुकृत-मनुके लिये, सुकृत् (सुकर्मी) पुरूरवाके लिये द्यौको बनाया। दोनों (अरणीरूपी) माता-पिताके जब तुम शीघ्रतया मुक्त होते हो, तो तुम्हें (ऋत्विक्) पूर्वकी ओर फिर पश्चिमकी ओर ले जाते हैं ॥४॥

—हिरण्यस्तूप आङ्गिरस-पुत्र, १।३१

७. (पुरूरवा—) हे जाया, हे घोरे (निष्ठुर), मन लगाकर ठहर। हम आपसमें बातें करें। हमारी न कही ये मन्त्रणायें हमारे लिये पहिले सुखद नहीं हुईं ॥१॥

"किमेता वाचा कृणवा तवाह् प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव।
पुरूरवः पुनरस्त परेहि दुरापना वात इवाहमस्मि" ॥२॥

इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोषा शतसा न रंहि ।
अवीरे क्रतौ वि दविद्युतन्नोरा न मायु चितयन्त धुनय ॥३॥

सा वसु दधती श्वशुराय वय उषो यदि वष्ट्यन्ति गृहात्।
अस्त ननक्षे यस्मिन् चाकन्दिवा नक्त श्नथिता वैतसेन ॥४॥

"त्रि. स्म माह्न. श्नथयो वैतसेनोत स्म मे व्यत्यै पृणासि।
पुरूरवो नु ते केतमाय राजा मे वीर तन्वस्तदासी ॥५॥

सचा यदासु जहतीष्वत्कममानुषीषु मानुषो निषेवे।
अप स्म मत्तरसन्ती न भुज्युस्ता अत्रसन् रथस्पृशो नाश्वा ॥८॥

यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक् स क्षोणीभि क्रतुभिर्न पृङक्ते।
ता अन्तयो न तन्व शुम्भत स्वा अश्वासो न क्रीळयो दन्दशाना ॥९॥

विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद् भरन्ती मे अप्या काम्यानि।
जनिष्टो अपो नर्य सुजात प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायु ॥१०॥

जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि दधाथ तत् पुरूरवो म ओज ।
अशास त्वा विदुषी सस्मिन्नहन्न म आशृणो किमभुग्वदासि" ॥११॥

"कदा सूनु पितर जात इच्छाच्चक्र नाश्रु वर्तयद्विजानन्।
को दम्पती समनसा वि यूयोदध यदग्नि श्वशुरेषु दीदयत् ॥१२॥

(उर्वशी—)तेरी इन बातोंको मैं क्या करूं? प्रथम उषा सी मैं तेरे पास चली आई। हे पुरूरवा, अपने घर लौट जा, मैं वायुकी तरह दुर्लभ हूं ॥२॥

(पुरूरवा—)श्रीके लिए जैसे तूणीरसे फेंका बाण, जैसे सैकड़ो गायोंको, जीतनेवाला तेज घोड़ा, अधीरवाले कार्य में जैसे बिजली चमके, जैसे आफतमें गाय मेमनेकी तरह चिल्लाये, वैसे मैं विलाप करता हूं ॥३॥

(उर्वशी—)हे उषा, जब (पति ने) चाहा, वह (उर्वशी) पासके घरसे, श्वसुरको जीवन-धन देती। उसने घर चाहा, जिसमें दिन-रात पतिसे आलिंगिता हो सुख पाया ॥४॥

दिनमें तीन बार अपनी प्रियासे आलिंगन करता, यद्यपि वह मुझे पसन्द नहीं था। हे पुरूरवा, (तो भी) तेरी इच्छा पूरी करती, तब हे वीर, तुम मेरे शरीरके राजा थे ॥५॥

(पुरूरवा—) जब मानुष (पुरूरवा) मैं वस्त्रहीना अमानुषियोंको सेवन करने चला, तो भयभीत होकर हरिणीकी तरह या रथके अश्वोंकी तरह भागीं ॥८॥

जब मरणधर्माने अमृताओंसे अनुमति पा उनसे बात की, तो हंसोंकी तरह उन्होंने शरीर-शोभा दिखाई, दंशते अश्वोंकी तरह वह खेलीं ॥९॥

जो गिरती बिजलीकी तरह चमकी, वह (उर्वशी) मेरे लिए जलकी कमनीय भेंट लाई, जिसने मेरे लिए सुजात, नेता, पुत्र जना, वह उर्वशी दीर्घायु हो ॥१०॥

(उर्वशी—)हे पुरूरवा, ऐसे पार्थिव दूध पीनेके लिए पुत्र पैदा किया, मेरेमें यह ओज रखा। मैं जानती थी, मैंने तुझे कहा था। उस समय मेरी बात तूने नहीं सुनी, (अब) क्यों व्यर्थ बोलता है ॥११॥

(पुरूरवा—)कब पुत्र पैदा हो पिताके (जानेकी) इच्छा करेगा, जानकर मानो रोता क्या आंसू गिरायेगा? (कहाँ—) ऐसी (पति-पत्नी) को कौन विलग करेगा, जबकि श्वसुरके घरमें (तेजस्वी) अग्नि जल रही है ॥१२॥

प्रति श्रवाणि वर्तयते अश्रु चक्र नक्र ददाध्ये शिवायै।
प्र तत्ते हिनवा यत्ते अस्मे अपरेह्यस्त नहि मूर माप ॥१३॥

सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत् परावत परमा गन्तवा उ।
अधा शयीत निऋतेरुपस्थेधैन वृका रभसासो अद्यु" ॥१४॥

"पुरूरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उक्षन्।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणा हृदयान्येता ॥१५॥

यद्विरूपाचर मर्त्येष्ववस रात्रि शरदश्चतस्र।
घृतस्य स्तोक सकृदह्न आश्ना ता देवेदन्तातृपाणा चरामि" ॥१६॥

"अन्तरिक्षप्रा रजसो विमानीमुपशिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठ।
उप त्वा राति सुकृतस्य तिष्ठान्निवर्तस्व हृदय तम्यते मे" ॥१७॥

"इति त्वा देवा इम आहुरैळ यथेमेतद् भवसि मृत्युवन्धु।
प्रजा ते देवान् हविपा यजाति स्वर्ग उ त्वमपि मादयासे" ॥१८॥
—१०।९५॥

३. नहुष—

८ यो देह्यो अनमयद्वधस्नैर्यो अर्यपत्नीरुपसश्चकार।
स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्निर्विशश्चक्रे बलिहृत सहोभि ॥५॥
—७।६

(उर्वशी—)आयुचक्र गिराते समय उससे मैं सान्त्वना वचन कहूँगी, (वह) स्नेहके लिए नहीं रोवेगा। हमारे बीच जो तेरा (पुत्र) है, उसे मैं तेरे पास भेज दूँगी। तू घर लौट जा, मूर्ख, तू मुझे नहीं पा सकता ॥१३॥

(पुरूरवा—) सुदेव (पुरूरवा) आज गिरेगा, अत्यन्त दूर जाके फिर नहीं लौटेगा। (फिर) तो वह आपदाओंकी गोदमें सोये, उसे खूंखार भेड़िये खा जावें ॥१४॥

(उर्वशी—)नहीं, हे पुरूरवा, तू मत मर, मत गिर, न अशिव भेड़िये तुझे खायें। स्त्रियोंकी मित्रता (स्थायी) नहीं होती, उनके ये हृदय सालावृकों (लकड़बग्घों) के (हृदय) हैं ॥१५॥

नाना रूपमें घूमती मैंने मनुष्योंमें चार शरदों (सालों) की रातें बिताईं। थोड़ा सा घी मैंने एक बार चखा, उससे तृप्त (हो) अब भी विचरण करती रही ॥१६॥

(पुरूरवा—)मैं उसका महत्तम प्रेमी (हूँ), आकाशको पूरनेवाली लोकोंकी नापनेवाली उर्वशीसे मैं प्रार्थना करता हूँ। तेरे पास मेरे सुकृतका दान पहुँचे। लौट आ, मेरा हृदय तप्त हो रहा है ॥१७॥

(उर्वशी—)हे ऐल (इलापुत्र), यह देवता तुझसे ऐसा कहते हैं, कि तू मृत्युका बंधुआ होगा, तेरी सन्तान हविसे देवोंकी पूजा करेगी और तू भी स्वर्गमें सुखी होगा ॥१८॥

—१०।९५

२. नहुष—

५. जिसने शस्त्रसे असुरोंकि (दस्युओंकी) कोटोंको तोड़ दिया, जिसने उषाओंको आर्यपत्नी बनाया। उस महान् अग्निने नहुषकी प्रजाओंको बलसे दबा कर उन्हें बलिहारी (करद) बनाया ॥५॥

—वसिष्ठ, ७।६

९ त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन् नहुषस्य विश्पति ।
इळामकृण्वन्मनुषस्य शासनी पितुर्यत्पुत्रो ममकस्य जायते ॥११॥
—१।३१

४ ययाति नहुष-पुत्र—

१०. परावतो ये दिधिषन्त आप्य मनुप्रीतासो जनिमा विवस्वत ।
ययातेर्ये नहुष्यस्य वर्हिषि देवा आसते ते अधिब्रुवन्तु न ॥१॥

११. मनुष्वदग्ने अगिरष्वदगिरो ययातिवत् सदने पूर्ववच्छुचे ।
अच्छ याह्या वहा दैव्य जनमासादय वर्हिषि यक्षि च प्रिय ॥१७॥
—१।३१

५. मन्धाता—

१२ यो अग्नि सप्त मानुष श्रितो विश्वेषु सिन्धुषु ।
तमागन्म त्रिपस्त्य मन्धातुर्दस्युहन्तममग्नि यज्ञेषु पूर्व्यं,
नमन्तामन्यके समे ॥८॥
—८।३९

अध्याय ८

शंबर

§१ दस्यु

१. स वृत्रहेन्द्र कृष्णयोनी पुरन्दरो दासीरैरयद्वि ।
अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शस यजमानस्य तूतोत् ॥७॥
—२।२०

हे अग्नि, देवोंने नहुषके प्रजा-पति, प्रथम आयुवाले तुमको आयु वाले (मनुष्य) के लिए इळा (अन्न) को मनुष्यकी उपदेशिका बनाया। (कैसा था समय) जब मेरे पिताके (यहाँ) पुत्र जनमा ॥११॥

—हिरण्यस्तूप आंगिरस, १।३१

. ययाति नहुष-पुत्र—

०. मनुने प्रसन्न विवस्वान्‌की सन्तानें जो पश्चिमसे आ वन्दना करती हैं, जो देवता नहुष-पुत्र ययातिके यज्ञमें बैठते हैं, वे हमसे मंगलालाप करें ॥१॥

—गय प्लति-पुत्र, १०।६३

.१ शुचि अग्नि, हे अंगिरा, अंगिराकी तरह, ययातिकी तरह (हमारे) पूर्वजोंकी तरह (हमारे) सदनमें आओ। यज्ञमें आओ, दिव्य जनोंको लाओ, (उन्हें) यज्ञमें बैठाओ, और प्रिय (वस्तु) प्रदान करो ॥१७॥

—हिरण्यस्तूप आंगिरस, १।३१

. मन्धाता—

२ सारी सात सिन्धुओं (नदियों) में बसने आनेवाले सानुओंके स्वामी त्रिधातु (द्यौ-पृथिवी-अन्तरिक्ष)-निवासी मन्धाताके लिए अवधिर दस्युओंके हन्ता, यज्ञोंमें प्रधान अग्निको हम चाहते हैं। अन्य सारे मर जायँ ॥८॥

—नाभाक काण्व, ८।३९

अध्याय ८

शंबर

§१. दस्यु

१ उस [illegible] पुरुकुत्स (पुरुकुत्स[illegible]) (इन्द्र) ने [illegible] सात [illegible] नगरियोंको [illegible]। [illegible] [illegible] भूमियाँ और [illegible] दिये। [illegible] ॥७॥

—[illegible] इन्द्रोत-पुत्र, [illegible]

२ इन्द्र समत्सु यजमानमार्यं प्रावद्विश्वेषु शतमूतिराजिषु
स्वर्मीह्ळेष्वाजिषु ।

मनवे शासदव्रतान् त्वचं कृष्णामरन्धयत्
दक्षन्नविश्वं ततृपाणमोषति न्यर्शसानमोषति ॥८॥

—१।१३०

३ न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः ।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः ॥५॥

—७।२१

४. स वाजं यातापदुष्पदा यन्त्स्वर्षाता परिषदत् सनिष्यन् ।
अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदो घ्नन्छिश्नदेवाँ अभि वर्पसा भूत् ॥३॥

—१०।९९

५ प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः ।
न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् ॥२१॥

—७।१८

६ अरोरवीद्वृष्णो अस्य वज्रोऽमानुषं यन्मानुषो निजूर्वात् ।
नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत्पपिवान्त्सुतस्य ॥१०॥

सनेम येत ऊतिभिस्तरन्तो विश्वा स्पृध आर्येण दस्यून् ।
अस्मभ्यं तत्त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रिताय ॥१९॥

—२।११

७ अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः ।
त्वं तस्यामित्रहन् वधर्दासस्य दम्भय ॥८॥

—१०।२२

२ युद्धमें इन्द्रने आर्य यजमानकी रक्षा की, युद्धोंमें जिनकी सारी सैकड़ों रक्षायें स्वर्गदायक (हैं)। उसने मनुके लिए व्रतहीन काली चमड़ीवालोंको दण्ड दिया, नाश किया। जलाते हुए सारे हिंसकोंको जला डाला, निष्ठुरोंको जला डाला ॥८॥

—परुच्छेप दिवोदास-पुत्र, १।१३

३ हे इन्द्र, जादू (पिशाच) हमें न मारें, हे बलिष्ठ, न दुष्ट अपनी चालोंसे (मारें)। वह स्वामी विषम जन्तुको मारे, शिश्नपूजक हमारे ऋतके पास न आयें ॥५॥

—वसिष्ठ, ७।२१

४ वह अच्छे रास्ते युद्धमें गये, वह स्वर्ग इच्छुक श्रम करते, वह सौ दरवाजोंवाले नगरकी निधिको लाये, अविचलित हो उन्होंने शिश्न-पूजकोंको (अपने) तेजसे अभिभूत किया ॥३॥

—वभ्रु वैखानस, १०।९९

५ हे इन्द्र, जिनने तुम्हें प्रसन्न किया, (वे हैं) पराशर शोक सौ जादू-वाले वसिष्ठ। तुम (जैसे) भोजकी मित्रताको जो नहीं भूलेगा, उन सूरियोंके[1] लिए सुन्दर दिन होंगे ॥२१॥

—वसिष्ठ, ७।१८

६ मनुष्य-हितकारी (इन्द्र) ने जब सूर्यको उगाया, तो दासकी (इन्द्र) का वज्र बार-बार गरजने लगा। इनसे (सोम) को पीकर इन्द्रने सारी दानवी मायाको मिटा दिया ॥१०॥

तुम्हारी स्तुतियोंसे युक्त हो, और बल पा शत्रु-सेनाओंको मारें। हमारे लिए सो कि त्वष्टा-पुत्र विश्वरूपको तुमने त्रितके लिए मारा ॥१९॥

—त्रिशिरा त्वष्टा-पुत्र, १०।८

---

[1]सूरि, राजकुमार, विद्वान् ।

७ हमारे चारो ओर कर्महीन, मन्त्रहीन, व्रतहीन, अमानुष दस्यु हैं।
हे अमित्रहन्ता (इन्द्र), उस दस्यु दासका वध करते नाश करो ॥८॥
—विमद, १०।२२

८ येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाक ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँलक्षमाददर्य पुष्टानि, स जनास इन्द्र ॥४॥
—२।१२

९ वधीर्हि दस्यु धनिन घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र।
धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वान सनका प्रेतिमीयु ॥४॥
—१।३३

१० त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्व मित्रो भवसि दस्म ईळ्य ।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य सम्भुज त्वमशो विदथे देवमाजयु ॥४॥
—२।१

११ अग्ना तुर्वश यदुं परावत उग्रादेव ह्वामहे।
अग्निर्नय नववास्त्व वृहद्‍रथ तुर्वीति दस्यवे सह ॥१८॥
—१।३६

१२ त्व पिप्रु मृगयं शूशुवासमृजिश्वने वेदथिनाय रन्धी ।
पचाशत् कृष्णा निवप सहस्रा' त्क न पुरो जरिमा विदर्द ॥१३॥
—४।१६

१३ तस्मै तवस्यमनुदायि सत्रेन्द्राय देवेभिरर्णसातौ।
प्रति यदस्य वज्र वाह्वोर्धुर्हत्वी दस्यून् पुर आयसीर्नितारीत् ॥८॥
—२।२०

स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नवला अस्य सेना ।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिन्द्र ॥९॥
—५।३०

८ जिसने इस सारे नश्वर (संसार) का निर्माण किया, जिस गुह्य (देवता) ने दास वर्णको नीच बनाया, जो शिकारीकी तरह लक्ष्य जीतकर पुष्ट धन लेता है। हे लोगो, वह इन्द्र है ॥४॥

—गृत्समद, २।१२

९ हे इन्द्र शक्तिशाली (मरुतो) के साथ जा अकेले तुमने धनी दस्युको घन (वज्र) से मारा। पुरातन यज्ञहीन चारों ओरसे आये (दस्यु) द्यौके नीचे मृत्यु प्राप्त हुए ॥४॥

—हिरण्यस्तूप, १।३३

१०. हे अग्नि, तुम व्रतधारी राजा वरुण हो, तुम स्तुति-योग्य अद्भुत मित्र हो। तुम अर्यमा सच्चे स्वामी, जिनका सम्यक् भोज है। हे देव, तुम अंश (सूर्य) यज्ञमें भोजदायक हो ॥४॥

—गृत्समद, २।१

११ अग्निके द्वारा पश्चिम (देश) से उग्र-पूजक (उग्रादेव) तुर्वश-यदुको हम बुलाते हैं। अग्नि (देवता) नववास्त्व बृहद्रथ और तुर्वीतिको दस्युओंको हरानेके लिए लावे ॥१८॥

—कण्व घोर-पुत्र, १।३६

१२. हे इन्द्र, तुमने विदथि-पुत्र ऋजिश्वाके लिए पिप्रु, (और) कृष्ण मृगयको मारा। तुमने पचास हजार कालोंको नष्ट किया, जिस तरह जरा कंचुकको उसी तरह तुमने पुरोंको ध्वस्त किया ॥१३॥

१३ उस इन्द्रकी देवताओंने रणमें सदा प्रभुता मानी। जब उसके दोनों बाहोंमें वज्र रखा, तो उसने दस्युओंको मारा, आयसी पुरियोंको नष्ट किया ॥८॥

—गृत्समद, २।२०

१४ दास (शवर) ने स्त्रियोंको आयुध (सैनिक) बनाया, इसकी दुर्बल सेना मेरा क्या करेगी? उसके दो स्तन प्रसिद्ध हुए। तब इन्द्र लड़नेके लिए आगे बढ़ा ॥९॥

१५. त्व जघन्थ नमुचि मखस्यु दास कृण्वान ऋषये विमाय।
त्व चकर्थं मनवे स्योनान् पथो देवत्राजसेव यानान् ॥७॥
—१०।७३

१६. प्र श्येनो न मदिरमशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन्।
प्रावन्नमी साप्य ससन्त पृणग्राया समिषा स स्वस्ति ॥६॥
—६।२०

१७. विषूमृधो ननुषा दानमिन्वन्नहन् गवां मधवन्त्सचकान ।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन् ॥७॥

युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
अश्मान चित्स्वयं वर्तमान प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्य ॥८॥
—५।३०

१८ अस्वापयद्दभीतये सहस्रा त्रिंशत हथे । दासानामिन्द्रो मायया ॥२१॥
—४।३०

१९. स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्सुमन्तु नामा चुमुरिं धुनिं च।
वृणक्पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्र पुरा च्यौत्नाय शयथाय नू चित् ॥८॥
—६।१८

२० उरु यज्ञाय चक्रथुरु लोक जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निं।
दासस्य चिद्वृषशिप्रस्य माया जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु ॥४॥
—७।९९

१५. हे इन्द्र, तुमने लडाकू नमुचिको मारा, ऋषिके लिए दासको माया-रहित बनाया। तुमने मनुके लिए सुखमय पथ बनाया, जो कि देवोंके पास शीघ्र ले जाता है ॥७॥

—गौरिवीति शक्ति-पुत्र, १०।७३

१६. इन्द्रने उत्पीडक दास नमुचिके सिरको तोडा, जैसे बाज मदिर नाल (सोम) को। उसने सोते सय-पुत्र नमीकी रक्षा की, अन्न, सफलता, सम्पत्तिके साथ स्वस्ति प्रदान किया ॥६॥

—भरद्वाज, ६।२०

१७. हे मघवा, जन्मसे ही तुमने शत्रुओंका नाश किया। मनुकेलिए सुखकी इच्छासे यहा तुमने दास-नमुचिके सिरको काटा।।७॥

हे इन्द्र, शब्द करते घूमते बादलकी तरह दास नमुचिके सिरको चूर्ण करते मुझे सहायक बनाया। तब स्वर्गीय पत्थरको पृथिवी और द्यौ चक्रकी तरह घूमती मरुतोंके पास लाये ॥८॥

—बभ्रु, ५।३०

१८. इन्द्रने दभीतिके लिए अपनी माया (शक्ति) और हथियारोंसे तीस हजार दासोंको मार कर सुला दिया ॥२१॥

—वामदेव, ४।३०

१९. जो इन्द्र, संग्राममें कभी नही विमूढ हुआ, जिसने वृथा काम नहीं किया, जो प्रसिद्ध नामवाला है, उस तुम इन्द्रने, चुमुरि, धुनि, पिप्रु, शम्बर, शुष्ण को मारा, पुरोंको नष्ट होनेको छोड दिया ॥८॥

—भरद्वाज, ६।१८

२० इन्द्र और विष्णुने विस्तृत यज्ञके लिए सूर्य, उषा, अग्निको उत्पन्न करके विशाल लोकोंको बनाया। हे नेताओ, तुमने वृषशिप्र दासकी मायाको संग्राममें नष्ट कर दिया ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।९९

२७ मायाभिरिन्द्र मायिन त्व शुष्णमवातिर ।
विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषा श्रवास्युत्तिर ॥७॥

—१।११

२८ स तुर्व्वणिर्महा अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शव ।
येन शुष्ण मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि ॥३॥

—१।५६

२९ मा कस्य यक्ष सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापे ।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋण वेर्मा सख्युर्दक्ष रिपोर्भुजेम ॥१३॥

—४।३

३०. त्व ह त्यदिन्द्र कुत्समाव. शुश्रूपमाणस्तन्वा समर्ये ।
दास यच्छुष्णं कुयव न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥२॥

—७।१९

३१. वृपा जजान वृपण तमु चिन्नारी नर्यं ससूव ।
प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्तीन सत्वा गवेपण स घृष्णु ॥५॥

—७।२०

३२ मा कस्य यक्ष सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापे ।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋण वेर्मा सख्युर्दक्ष रिपोर्भुजेम ॥१३॥

—४।३

३३. त्व कवि चोदयोऽर्कसातौ त्व कुत्साय शुष्ण दाशुपे वर्क् ।
त्व शिरो अमर्मण पराहन्नतिथिग्वाय शस्य करिष्यन् ॥३॥

—६।२६

२७. हे इन्द्र, तुमने मायावी शुष्णको मायाओ द्वारा पछाड़ा। वैसे (ही) तुम्हें मेधावी जानते है, उन्हें यश (गान) में उतारो ॥७॥

—जेता मधुच्छन्दा-पुत्र, १।११

२८ यह (इन्द्र) विजयी और महान् है। (वह) निर्मल, निर्दोष, पौरुष-मय, संग्राममें पर्वतके शिखरकी तरह दमकता है। जिसने मस्त हो बलपूर्वक मायावी शुष्णको आयस (ताम्बेकी) शृंखला से पकड़कर बन्द किया ॥३॥

—सव्य आंगिरस, १।५६

२९ हे अग्नि, हमारे किसी प्रतिहिंसकके भोजमें तुम मत जाना, मत मत दुष्ट विचारवाले पड़ोसीके पास, मत बन्धुके पास। मत अयोग्य भाईका ऋण भोगना। मित्र और शत्रुके विनमको हम भोगें ॥१३॥

—वामदेव, ४।३

३० हे इन्द्र, जब तुमने अर्जुन-पुत्रका भला चाहते उसके लिए शुष्ण, कुयव दासको मारा, तब तुमने शरीरसे शुश्रूषा करते युद्धमें कुत्सकी रक्षा की ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।१९

३१. रणके लिए वृष (पराक्रमी) ने वृष (इन्द्र) को पैदा किया। नारीने उस नर्य (महानर) को जना, जो मनुष्योंके लिए सेनानी, दृढ़, वीर, (धन) लूटनेवाले और (शत्रु-) परा जेता है ॥५॥

—वसिष्ठ, ७।२०

३२. हे अग्नि, हमारे किसी प्रतिहिंसकके भोजमें तुम मत जाना, मत मत दुष्ट विचारवाले पड़ोसीके पास, मत बन्धुके पास। मत अयोग्य भाईका ऋण भोगना। मित्र और शत्रुके विनमको हम भोगें[1] ॥१३॥

—वामदेव, ४।३

[1] मिलाओ यहीं २९

३३ (हे इन्द्र), तुमने सूर्य-प्राप्तिके लिए कविको प्रेरित किया, भक्त कुत्सके लिए तुमने शुष्णको मारा। तुमने अतिथिग्वकी भलाई करनेकी इच्छासे मर्महीन (शम्बर) का सिरका काटा ॥३॥

—भरद्वाज, ६।२६

३४. त्व सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान्त्वमृभुक्षा नर्यस्त्व पाट्।
त्व शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ॥३॥

—१।६३

३५ त्व कुत्स शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शवर।
महान्त चिदर्बुदं नि क्रमी पदा सनादेव दस्युहत्याय यज्ञिषे ॥६॥

—१।५१

३६. मुपाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा।
वह शुष्णाय वध कुत्स वातस्याश्वै ॥४॥

—१।१७५

३७. कुत्साय शुष्णमशुष निवर्ही प्रपित्वे अह्न कुयवं सहस्रा।
सद्यो दस्यून् प्रमृण कुत्स्येन प्र सूरश्चक्र वृहतादमीके ॥१२॥

—४।१६

३८ देखो ३५

३९ अव त्मना भरते केतवेदा अवत्मना भरते फेनमुदन्।
क्षीरेण स्नात कुयवस्य योषे हते ते स्याता प्रवणे शिफायाः ॥३॥

—१।१०४

४०. सो अप्रतीनि मनवे पुरुणीन्द्रो दाशद्दाशुषे हन्ति वृत्र।
सद्यो यो नृभ्यो अतसाय्योभूत् पस्पृधानेभ्य सूर्यस्य सातौ ॥४॥

—२।१९

३४ हे इन्द्र, तुम इनके सच्चे घर्षणकर्ता हो। तुम ऋभुक्षा (ऋभुओंके स्वामी), श्रेष्ठ नर, तुम विजेता हो। तुमने युद्धमें द्युतिमान् तरुण कुत्सके लिए शुष्णको घोडे (चढकर) के रथ पर मारा ॥३॥

—नोधा गोतम-पुत्र, १।६३

३५ शुष्णके युद्धमें तुमने कुत्सकी रक्षा की, अतिथिग्व (दिवोदास) के लिए शम्बरको मारा। बडे अर्बुद (विघ्न) को भी पादाक्रान्त किया, सदासे ही तुम दस्युओंकी हत्याके लिए जनमे हो ॥६॥

—सव्य आंगिरस, १।५१

३६. हे कवि, ईशान (इन्द्र), तुमने अपने ओजसे सूर्यके एक चक्केको छीन लिया। शुष्णके वधके रूपमें कुत्सको वायुवेगवाले घोडों द्वारा लाओ ॥४॥

अगस्त्य, १।१७५

३७. (हे इन्द्र,) कुत्सके लिए तुमने शुष्ण, अशुषको मारा, प्रात कुयव और सहस्रोंको मारा। कुत्सीयोंके साथ हो तुरन्त दस्युओंको तुमने नष्ट किया। सूर्यके चक्केको (हमारे) पास लाओ ॥१२॥

—वामदेव, ४।१६

३८. देखो ३५।

३९ वह केवल कामनाका धन फाँकता है, जलमें फेन फाँकता है, कुयवकी दोनों स्त्रियाँ क्षीरसे नहाई हैं। वह शिफाकी धारमें मर जायें[1] ॥३॥

—१।१०४

४० उस (इन्द्र) ने भक्त मनुके लिए अमित बहुत (धन) दिया, शुष्ण (शत्रु) का नाश किया। जो (इन्द्र) सूर्य की (प्रकाश) प्राप्तिमें मनुष्योंका स्पर्धा करते तुरन्त सहायक हुआ ॥४॥

—गृत्समद, २।१९

---

१ मिलाओ ५।८७

४१ उशना यत्सहस्यैरयात गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वैः ।
वन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्णं ॥९॥
—५।२९

२. पिप्रु—

४२ त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांसमृजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः ।
पचाशत् कृष्णा निवपः सहस्रात्कं न पुरो जरिमा विदर्दः ॥१३॥
—४।१६

४३. अस्य स्तोमेभिरौशिज ऋजिश्वा व्रजं दरयद्वृषभेण पिप्रोः ।
सुत्वा यद्यजतो दीदयद् गाः पुर इयानो अभि वर्पसा भूत् ॥१०॥
—१०।९९

४४ स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुं ।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन् पक्तीरपिबः सोममस्य ॥११॥
—५।२९

४५ त्वं मायाभिरप मायिनो धमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत ।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथा ॥१॥
—१।५१

३. वंगृद, ४. करज, ५. पर्णय—

४६ त्वं करजमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वंगृदस्या भिनत् पुरो नानुदः परिपूता ऋजिश्वना ॥८॥[1]
—१।५३

---

[1] देखो ८।३९।८ भी

४१ हे इन्द्र, हे उशान, तुम जब शक्तिशाली शीघ्रगामी अश्वो द्वारा (कुत्स) के गृहमें आये, तो रथ द्वारा यहां से (शत्रुओंको) नाश करने गये, कुत्स और देवताओंके साथ (जा) शुष्णको मारा ॥९॥

—गौरिवीति शक्ति-पुत्र, ५।२९

२. पिप्रु—

४२ देखो १२

४३ उशिज-पुत्र ऋजिश्वा ने इस इन्द्र की स्तुतियो द्वारा, वृषभ (परा-क्रमी इन्द्र) द्वारा पिप्रुके गोष्ठ को विदीर्ण किया। जब याजको ने सोम सवन करके स्तुति की, तो(इन्द्र ने)आकर शत्रुकी पुरियोको बलात् ध्वस्त किया ॥११॥

—वभ्रु वैखानस, १०।९९

४४ हे इन्द्र, गौरिवीति के स्तोम तुम्हें बढायें। तुमने विदथि-पुत्र (ऋजिश्वा) के लिये पिप्रु को मारा। ऋजिश्वा ने तुम्हारी मित्रता के लिये पुरोडाश पका कर तैयार किया। तुमने उनके सोमको पिया ॥११॥

—गौरिवीति शक्ति-पुत्र, ५।२९

४५ (हे इन्द्र) तुमने मायाओ द्वारा मायावियोको उडा दिया, जो कि अन्नो द्वारा मुख में हवन करते है। मनुष्यो के लिये तुमने पिप्रुके पुरो को नष्ट किया, दस्यु-युद्धो में ऋजिश्वा की सुरक्षा की ॥५॥

—सव्य आंगिरस, १।५१

३. वगृद, ४. करज, ५. पर्णय—

४६ हे इन्द्र, तुमने करज और पर्णय को मारा, अतिथिग्व (दिवोदास) की भलाईके लिये अत्यन्त तीक्ष्ण (हथियारो) से मारा। निरा-बाध तुमने ऋजिश्वा द्वारा घेरी गई वगृद की सो पुरियोंको ध्वस्त किया ॥८॥

—सव्य आंगिरस, १।५३

४७. प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो य कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषण वज्रदक्षिण मरुत्वन्त सख्याय हवामहे ॥१॥
—१।१०१

४८ वि सूर्यो मध्ये अमुचद्रथ दिवो विदद्दासाय प्रतिमानमार्य ।
दृह्ळानि पिप्रोरसुरस्य मायिन इन्द्रो व्यास्यच्चकृवां ऋजिश्वना ॥३॥
—१०।१३८

६.वर्ची—

४९ इन्द्राविष्णू दृहिता शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्ट।
शत वर्चिन॰ सहस्र च साक हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥५॥
—७।९९

५०. अध्यवर्यवो य शत शंबरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वी ।
यो वर्चिनः शतमिन्द्र सहस्रमपावपद् भरता सोममस्मै ॥६॥

अध्वर्यवो य शतमासहस्र भूम्या उपस्थे वपज्जघन्वान्।
कुत्सस्यायो रतिथिग्वस्य वीराञ्यावृणग्भरता सोममस्मै ॥७॥
—२।१४

५१ उत दासस्य वर्चिन॰ सहस्राणि शता वधी । अधि पच प्रधीरिव ॥१५॥
—४।३०

५२ य सुन्वन्तमवति य पचन्त य शसन्त य शसमानमूती।
यस्य ब्रह्म वर्धन यस्य सोमो यस्येद राध, स जनास इन्द्र ॥१४॥
—२।१२

४७ जिस (इन्द्र) ने ऋजिश्वा के साथ हो कृष्णगर्भो (कालो) को मारा। उस आनदी (इन्द्र) की हवि-युक्त वाणीसे अर्चना करो। रक्षाकी कामनासे मरुतोवाले दाहिने हाथमें वज्र धारे पराक्रमी इन्द्रको हम मित्रताके लिये पुकारते है॥१॥

—कुत्स अंगिरा-पुत्र, १।१०१

४८ द्यौके मध्यमें सूर्य ने अपने रथ को छोड दिया। दानके लिये आर्यने प्रतिद्वंद्वी पाया। इन्द्रने ऋजिश्वासे मित्रता करके मायावी पिप्रु, असुरके दृढ (दुर्गो) को नष्ट किया॥३॥

—अंग उरु-पुत्र, १०।१३८

६. वर्ची—

४९ हे इन्द्र और विष्णु, तुमने शम्बरकी निन्नानवे दृढ पुरियोको ध्वस्त किया। साथ ही तुमने वर्ची असुरके सौ हजार अप्रतिम वीरोंको नष्ट किया।

—वसिष्ठ, ७।९९

५० हे अध्वर्युओ (पुरोहितो), जिस इन्द्र ने शम्बरकी पत्थर की सौ प्राचीन पुरियोको छिन्न-भिन्न किया, जिस इन्द्रने वर्चीके सौ हजार (वीर) मारे, उसके लिये सोम प्रदान करो॥६॥
हे अध्वर्युओ, जिस (इन्द्र) ने सौ हजार असुरो को मार भूमिकी गोद में फेंक दिया, जिसने कुत्स, आयु, अतिथिग्वके शत्रुवीरोंका वध किया, उसके लिये सोम प्रदान करो॥७॥

——गृत्समद शुनहोत्रपुत्र, २।१४

५१ और दास वर्चीके सौहजार पाच (भटो) को चक्रोके अरोकी तरह मारा॥१५॥

—वामदेव, ४।३०

५२ जो (इन्द्र) सोम-सवनकर्त्ताकी जो पकानेवालेकी रक्षा करता है, जो रक्षा की स्तुति करता की, जो प्रशंसा करने की रक्षा करता है। मन्त्र जिसका वर्धक है, जिसका सोम है, जिसका यह अन्न है हे लोगो, यह इन्द्र है॥१४॥

—गृत्समद, २।१२

७. गुंगु, ८. वृत्रतुर—देखो (६।३६) भी

५३ अह गुगुभ्यो अतिथिग्वमिष्करमिष न वृत्रतुर विक्षु धारय।
यत् पर्णयघ्न उत वा करजहे प्राह महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि ॥८॥
—१०।४८

§ शंवर

५४ न त इन्द्र सुमतयो न राय सचक्षे पूर्वा उपसो न नूत्ना ।
देवक चिन्मान्यमान जघन्याव त्मना बृहत शम्बर भेत् ॥२०॥
—७।१८

५५ यस्य त्यच्छम्बर मदे दिवोदासाय रन्धय ।
अय स सोम इन्द्र ते सुत पिब ॥१॥
—६।४३

५६. उत दास कौलितर बृहत पर्वतादधि। अवाहन्निन्द्र शम्बरं ॥१४॥
—४।३०

५७. यो नन्त्वान्यनमन्न्योजसो ता दर्दर्मन्युना शम्बराणि वि ।
प्राच्यावयदच्युता ब्रह्मणस्पतिराचाविशद्वसुमन्त वि पर्वत ॥२॥
—२।२४

५८ य शम्बर पर्वतेषु क्षियन्त चत्वारिंश्या शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमान यो अहि जघान दानु शयान, स जनास इन्द्र । ११॥
—२।१२

५९. त्व तदुक्थमिन्द्र बर्हणा क प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि।
अव गिरेर्दास शम्बर हन् प्रावो दिवोदास चित्राभिरूती ॥५॥
—६।२६

७. गुंगु, ८. वृत्रतुर—

५३. मैंने गुंगोओंके विरुद्ध अतिथिग्व (दिवोदास) को बलवान् किया। लोगोंमें वृत्र-नाशक की तरह मैंने स्थापित किया। जब मै पर्णय-हत्या अथवा करज-हत्या, महान् वृत्र-हत्यामें बहुत प्रसिद्ध हुआ॥८॥

—१०।४८

§३ शंबर

५४ हे इन्द्र पुरानी और नूतन उषाकी तरह तुम्हारी सुमतिया और न धन, कहनेके हैं। तुमने मन्यमान-पुत्र देवकको मार, स्वय बडे (पर्वत) से शम्बर को छिन्न-भिन्न किया॥२०॥

—वसिष्ठ, ७।१८

५५ जिसके मद में तुमने दिवोदासके लिये शम्बरको मारा। हे इन्द्र, वह सोम तुम्हारे लिये छना हुआ है, पियो॥१॥

—भरद्वाज, ६।४३

५६ और हे इन्द्र, तुमने कुलितर-पुत्र शम्बर दासको वृहत् पर्वतके ऊपर मारा॥४॥

—वामदेव, ४।३०

५७. हे ब्रह्मणस्पति, ओजसे तुमने झुकाने योग्योंको झुकाया, क्रोधमें शबरके पुरोंको नष्ट किया। न च्युत होनेवालो को च्युत किया। धनवाले पर्वतमें प्रवेश किया॥२॥

—गृत्समद, २।२४

५८. जिसने पर्वतमें रहते शम्बरको चालीसवें शरदमें जा धरा। जिसने ओजायमान हो सोते हुये दानव अहिको मारा। हे लोगो, वह इन्द्र है॥११॥

—गृत्समद, २।१२

५९ हे इन्द्र तुम दस्युहन्ता हो। उस स्तुतिको अच्छा किया, हे शूर, उस तुमने सौ सहस्रोंको दहराया। तुमने पहाड़से दास शम्बरको मारा, विचित्र सहायता से दिवोदास की रक्षा की॥५॥

—भरद्वाज, ६।२६

६०. इन्द्राविष्णू दृंहिता शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्ट।
शत वर्चिनः सहस्र च साक हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥५॥

—७।९९

६१. अह पुरो मन्दसानो व्यैर नव साकन्नवती शम्बरस्य।
शततम वेश्य सर्वताता दिवोदासमतिथिग्व यदाव ॥३।

—४।२६

६२. भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो,
वज्रेण दाशुषे नृतो।

अतिथिग्वाय शम्बर गिरेरुग्रो अवाभरत्।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥७॥

—१।१३०

६३. त्व शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्था प्रतीनि दस्यो·।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय।
सुन्वते सुतक्रे भरद्वाजाय गृणते वसूनि ॥४॥

—६।३१

६४. दिवे दिवे सदृशीरन्यमर्द्धं कृष्णा असेधदप सद्मनो जा।
अहन्दासा वृषभोव वस्नयन्तोदव्रजे वर्चिना शम्बर च ॥२१॥

प्रस्तोक इन्नु रावसस्त इन्द्र दश कोशयीर्दश वाजिनो दात्।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राध शम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ॥२२॥

—६।४७

६० हे इन्द्र और विष्णु, तुमने शवरकी निन्नानवे दृढ पुरियोको ध्वस्त किया। साथ ही तुमने वर्ची असुरके सौ हजार अप्रतिम वीरोको नष्ट किया ॥५॥

—वसिष्ठ, ७।९९

६१. मैंने सोम से मस्त हो शवरकी नौ-सहित नव्वे गढियोको ध्वस्त किया। जब युद्धमें अतिथिग्व दिवोदासकी रक्षा की तो सौवीको (उसके) प्रवेश योग्य बनाया।

—वामदेव, ४।२६

६२. हे नृत्य करनेवाले (इन्द्र) तुमने सग्राम में भक्त पुरु दिवोदासके लिये वज्रसे निन्नानवे पुरिया नष्ट की। अतिथिग्वके लिये तुम उग्रने शवरको गिरि से नीचे पटका। बडी निधिको बाटते, अपने पराक्रमसे सारी निधि बाटते ॥७॥

—परुच्छेप दिवोदास-पुत्र,१।१३०

६३ (हे इन्द्र) जहा शचिमान् (बुद्धिमान्), तुमने शक्ति के साथ सोमक्रेता, सवनकर्ता दिवोदासके लिये शवर दस्युके नौ पुरोको नष्ट किया। स्तुति करनेवाले भरद्वाज को धन दिये ॥८॥

—सुहोत्र, ६।३१

६४ दिन-प्रतिदिन समान प्रकारसे (उगते) उसने दूसरे आधेमें कालेको दूर करते सद्‌गमे उत्पन्न कृष्णा (रात्रि)को दूर किया। वृषभ (पराक्रमी) इन्द्रने धन-लोभी वर्ची और शवर को उदव्रजमें मारा ॥२१॥

हे इन्द्र, प्रस्तोकने दस और दस घोडे दिये। दिवोदास अतिथिग्वने शम्बरवाला धन हमने पाया ॥२२॥

—गर्ग भरद्वाज-पुत्र, ६।४७

अध्याय ६

दिवोदास

§१. पूर्वकाल के आर्य नेता

१. दध्यङ्—

१. दध्यङ् ह मे जनुष पूर्वो अगिरा प्रियमेध. कण्वो
अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पुर्वे, मनुर्विदु ।

तेषा देवेष्वायतिरस्माक तेषु नाभय ।
तेषा पदेन मह्यानमे गिरेन्द्राग्नी, आनमे गिरा ॥९॥

—१।१३९

२. सम, ३. रुशम, ४. श्यावक, ५. कृप—

२. शग्धी नो अस्य यद्ध पौरमाविय धिय इन्द्र सिपासत ।
शग्धि यथा रुशम श्यावक कृपमिन्द्र प्राव स्वर्णरं ॥१२॥

—८।३

३. यद्धा रुमे रुशमे श्यावके कृत इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभि स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्यागहि ॥२॥

—८।४

६. वध्र्यश्व—

४. भद्रा अग्नेर्वध्र्यश्वस्य सदृशो वामी प्रणीति सुरणा उपेतय ।
यदी सुमित्रा विशो अग्र इन्धते घृतेनाहुतो जरते दविद्युतत् ॥१॥

अध्याय ९

दिवोदास

§१ आर्य नेता

१. दधीचि—

१. वे पूर्वज दधीचि, अंगिरा, प्रियमेध, कण्व, अत्रि, मनु मेरे जन्मको जानते हैं, वे मेरे पूर्वज (और) मनु जानते हैं। उनका देवोंमें विस्तार है, उनमें हमारे सम्बन्धी हैं। हे इन्द्राग्नि, उनको गति द्वारा पूजता हूँ, वाणीसे नमस्कार करता हूँ, वाणीसे नमस्कार करता हूँ॥९॥

—परुच्छेप दिवोदास-पुत्र, १।१३९

२. रुम, ३. रुशम, ४. श्यावाक, ५. कृप—

२. हे इन्द्र, हमारी स्तुतिसे इस यजमान को वही (सहायता) दो। जैसे तुमने पुरु-पुत्र की रक्षा की, जैसे रुशम, श्यावक, कृपकी तुमने रक्षा की, वैसे (ही) हविवाले यजमान की रक्षा करो॥१२॥

—मेध्यातिथि कण्व-पुत्र, ८।३

३. हे इन्द्र, जब कि तुम रुम, रुशम, श्यावाक, कृपके साथ होते हो। स्तोम वहन करनेवाले कण्व लोग मन्त्रो द्वारा तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, आओ॥२॥

—देवातिथि कण्व-पुत्र, ८।४

६. वध्र्यश्व—

४ वध्र्यश्व-का अग्नि दर्शनीय है। उसका नेतृत्व भद्र है, उसका आगमन रमणीय है। जब सुमित्र प्रजायें इसे पहिले प्रज्वलित करती हैं, तो घृतसे हवन किया दीप्तिमान् होता है, जलता है॥१॥

१३. प्रस्तोक—

९ प्रस्तोक इन्नु राधसन्त इन्द्र दशकोशयीर्दश वाजिनो दात् ।
दिवोदासादर्तिथिग्वस्य राध शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ।।२२।।
—६।४७

भरद्वाज

१० अग्निरत्रिं भरद्वाज गविष्ठिर प्रावन्न कण्वं त्रसदस्युमाहवे ।
अग्नि वसिष्ठो हवते पुरोहितो मृळीकाय पुरोहित ।।५।।
—१०।१५०

१४. कुत्स आर्जुनेय—

११ महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत्पतने पादि शुष्ण ।
उरु ष सरथ सारथये करिन्द्र कुत्साय सूर्यस्य सातौ ।।५।।
—६।२०

१२ प्र ते अस्या उषस प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृदणा ।
अनु त्रिशोक शतमावहन्नृन्दन् कुत्सेन रथो यो असत् ससवान् ।।२।।
—१०।२९

१५. श्रुतर्य, १६. तुर्वीति, १७. दभीति, १८. ध्वसति १९. पुरुषन्ति

१३ याभि सिन्धु मधुमन्तमसश्चत वसिष्ठ याभिरजरावजिन्वत ।
याभि कुत्स श्रुतर्यं नर्यमावत ताभिरू पु ऊतिभिरश्विना गत ।।९।।

याभि कुत्समार्जुनेय शतक्रतु प्र तुर्वीति प्र च दभीतिमावत ।
याभिर्ध्वसन्ति पुरुषन्तिमावत ताभिरू पु ऊतिभिरश्विना गत ।।२३।।
—१।११२

१३. प्रस्तोक—

९. हे इन्द्र, प्रस्तोक ने तुम्हारे स्तोताओंको युद्धधनमेंसे दस कोश और दस घोड़े दिये। अतिथिग्व दिवोदाससे हमने शवरवाला धन पाया ॥२२॥

—गर्ग भरद्वाज-पुत्र, ६।४७

भरद्वाज—

१० युद्धमें अग्निने हमारे अत्रि, भरद्वाज, गविष्ठिर, कण्व, त्रसदस्युकी रक्षा की। वसिष्ठ पुरोहित अग्निको पुकारता है, सुखके लिये पुरोहित (पुकारता है) ॥५॥

—मृळीक वसिष्ठ-पुत्र १०।१५०

१४. कुत्स अर्जुन-पुत्र—

११ जब वज्रके गिरने पर शुष्ण गिर गया, तो महान् द्रोहीकी सारी आयु (प्राण) विनिष्ट हो गई। सूर्यके (प्रकाश के) पानेपर सारथि कुत्सके लिये इन्द्रने रथको विस्तृत किया ॥५॥

—भरद्वाज, ६।२०

१२ (हे इन्द्र) इस उषाकाल में नेताओं मे महानतम नेताके दूसरे नृत्यमें हम अच्छे सेवक बनें। त्रिशोक सौ आदमियोंको लायें, जो कुत्सके साथ एक रथपर बैठा था ॥२॥

—वसुक्र, १०।२९

१५ श्रुतर्य, १६ तुर्वीति, १७ दभीति, १८ ध्वसन्ति, १९ पुरुषन्ति—

१३ हे अजर अश्विद्वय, जिन उपायोंसे तुमने मधुमयी सिन्धुको बहाया। जिन उपायोंसे तुमने वसिष्ठको सुखी किया, जिनसे तुमने कुत्स, श्रुतर्य, नर्यकी सहायता की, उन सहायता के साथ आओ ॥९॥ जिनसे हे शतक्रतु (इन्द्र) तुमने कुत्स आर्जुनेय, तुर्वीति और दभीतिकी सुरक्षा की, जिनसे ध्वसन्ति, पुरुषन्तिकी रक्षा की, उन रक्षाओंके साथ हे अश्विद्वय, आओ ॥२३॥

—कुत्स आंगिरस, १।११२

१४. प्रतत्ते अद्या करण कृत भूत्कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै ।
पुरू सहस्रा नि शिशा अभि क्षमुत्तुर्वयाणं धृषता निनेथ ॥१३॥
—६।१८

२०. देवक मान्यमान—

१५. न त इन्द्र सुमतयो न राय सचक्षे पूर्वा उपसो न नूत्ना ।
देवक चिन्मान्यमानं जघन्थाव त्मना बृहत. शम्वर भेत् ॥२०॥
—७।१८

२१. सुश्रवा—

१६. त्वमेतान् जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुष ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥९॥
—१।५३

२२. तुर्वयाण—

१७ त्वमाविथ सुश्रवस तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाण।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनाय ॥१०॥
—१।५३

२३. ऋणचय—

१८. भद्रमिद रुशमा अग्ने अक्रन् गवा चत्वारि ददत सहस्रा ।
ऋणंचयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृदणाम् ॥१२॥
औच्छत्सा रात्री परितक्म्या या ऋणचये राजनि रुशमाना ।
अत्यो न वाजीरघुरज्यमानो बभ्रुश्चत्वार्यसनत्सहस्रा ॥१४॥
—५।३०

१४ (हे इन्द्र) वह तुम्हारा काम आज भी प्रसिद्ध है। तुमने जो कुत्स आयु, अतिथिग्व और बहुत हजार (दूसरे) दबाये। तुमने पिटते, तुर्वयाणको बचाया ॥१३॥

—भरद्वाज, ६।१८

२०. देवक मान्यमान—

१५ हे इन्द्र पुरानी और नूतन उषाकी तरह न तुम्हारी सुमतिया और न धन, कहनेके हैं। तुमने मन्यमान-पुत्र देवकको मारा, स्वय बड़े (पर्वत पर) शबरको नष्ट किया ॥२०॥(८।५४)

—वसिष्ठ ७।१८

२१. सुश्रवा—

१६ हे प्रसिद्ध इन्द्र, बंधु-हीन सुश्रवा पर चढ़ आये बीस राजाओ और (उनके) साठ हजार निन्यानवे अनुचरोको दुर्लंघ्य रथचक्र द्वारा तुमने पराजित किया ॥९॥

—सव्य आंगिरस, १।५३

२२. तुर्वयाण—

१७ हे इन्द्र, तुमने अपनी रक्षाओंसे सुश्रवाकी रक्षा की, तुम्हारी त्रानियोंने तुर्वयाण की रक्षा की। तुमने कुत्स, अतिथिग्व, आयुको इन तरुण महान् राजा (तुर्वयाण) के लिये अधीनकर किया ॥१०॥

—सव्य आंगिरस, १।५३

२३ ऋणचय—

१८. हे अग्नि रुशमोंने चार हजार गायें मुझे देते भव्य किया। नेताओंमें महानतम नेता ऋणचयके धनको हमने तत्परतासे ग्रहण किया ॥१७॥ रुशमोंके राजा ऋणचयके पास वह सर्वगामिनी गाय चली गई। अग्नितप्त घटकी तरह आगे बढ़ हमने चार हजार (गायें) पाईं ॥१८॥

—बभ्रु, ५।३०

२४. पाकस्थामा कौरयाण—

१९ य मे दुरिन्द्रो मरुत पाकस्थामा कौरयाण.।
विश्वेषा त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमान ॥२१॥

रोहित मे पाकस्थामा सुधुर कक्ष्यप्रा।
अदाद्रायो विबोधन ॥२२॥

आत्मा पितुस्तनुर्वास ओजोदा अभ्यजन।
तुरीयमिद्रोहितस्य पाकस्थामान भोज दातारमब्रव ॥२४॥

—८।

२५. देवश्रवा, २६. देववात—

२० अमन्थिष्टा भारता रेवदग्नि देवश्रवा देववात. सुदक्ष।
अग्ने वि पश्य बृहताभि रायेषा नो नेता भवतादनुद्यून् ॥२॥

दशक्षिप पूर्व्यं सीमजीजनन्त्सुजात मातृषु प्रिय।
अग्नि स्तुहि दैववात देवश्रवो यो जनानामसद्वशी ॥३॥

—३।२

२७. सृंजय दैववात, २८. वृचीवान्—

२१ यस्य गावावरुपा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा।
स सृंजयाय तुर्वश परादाद् वृचीवतो दैववाताय शिक्षन् ॥७॥

—६।२

२२ अय य सृंजये पुरो दैववाते समिध्यते। द्युमा अमित्रदम्भन ॥४॥

—४।१

२४. पाकस्थामा कौरयाण—

१९ घोके पास दौडनेवाला सा स्वय सवमें अत्यन्त शोभनीय (घोडा) है जिसे मुझे इन्द्र और मरुतो ने कुरयाण-पुत्र पाकस्थामाने दिया। ॥२१॥

पाकस्थामा ने मुझे धनप्राप्त करानेवाला रस्सी-सहित सुधुर[1] लाल (घोडा) दिया ॥२२॥

वह पिता का शरीर है, आत्मा वस्त्र और बलप्रद भोजन। चौथा लाल घोडेके दाता भोजनकर्त्ता पाकस्थामाको मैं कहता हू ॥२४॥ (५।८१)

—मेध्यातिथि काण्व-पुत्र ८।३

२५. देवश्रवा, २६. देववात—

२० भरत-सन्तान देवश्रवा और देववातने सुदक्ष, धनवान् अग्निको मथित किया। हे अग्नि, तुम बडे धनके साथ हमारी ओर देखो। प्रतिदिन हमारे नेता बनो ॥२॥

(अरणी) माताओ में प्रिय पूर्वतन सुजात अग्निको दस अगुलियो ने उत्पन्न किया। हे देवश्रवा देववात-कृत अग्निकी स्तुति करो, जो कि जनोको वशमें करनेवाला है ॥३॥

—देवश्रवा, देववात, ३।२३

२७. सृजय देववात-पुत्र, २८ पृचीवान्—

२१ जिसके दो सुन्दर धारण करनेवाले लालना भरे लाल (घोडे) (द्यौ-पृथिवी के) मध्यमें विचरते हैं। उस (इन्द्र) ने सृंजयको पास तुर्वशको समर्पित किया, देववात-पुत्रके लिये वृचीवान् को ॥७॥

—भरद्वाज, ६।२७

२२ यह अमित्रनाशक द्युतिमान अग्नि है, जो कि देववात-पुत्र सृजय के यहा प्रज्वलित होता है ॥४॥

—वामदेव, ४।१५

---

[1] रथमें जुतने लायक।

२९. साञ्जंय महिराध—

२३ महिराधो विश्वजन्य दधानान्भरद्वाजान्त्साञ्जंयो अभ्ययष्ट ।।२५।।
—६।४७

३०. पुरुकुत्स—

२४. सनेम ते वसा नव्य इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त एना यज्ञै ।
सप्त यत्पुर शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन् ।।१०।।
—६।२०

२५. दनो विश इन्द्र मृध्रवाच सप्त यत् पुर शर्म शारदीर्दत् ।
ऋणोरपो अनवद्यार्णं यूने पुरुकुत्साय रन्धी ।।२।।
—१।१७४

२६ त्व ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन् पुरो वज्रिन् पुरुकुत्साय दर्द ।
वर्हिर्न यत् सुदासे वृथा वर्गंहो राजन् वरिव पूरवे क ।।७।।
—१।६३

२७ याभि शुचन्ति धनसा सुपसद तप्त धर्ममोम्यावन्तमत्रये ।
याभि पृश्निगुं पुरुकुत्समावत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गत ।।७।।
—१।११२

३१. त्रसदस्यु पौरुकुत्स—

२८ त्व धृष्णो धृषता वीतहव्य प्रावो विश्वाभिरूतिभि सुदास ।
प्र पौरुकुत्सि त्रसदस्युमाव क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरु ।।३।।
—७।१९

२९. सृंजय-पुत्र—

२३. सभी जनोंके हितार्थ महान् धनको तपानेवाले भरद्वाजोंका सम्मान सृंजय-पुत्रने किया ॥२५॥

३०. पुरुकुत्स—

२४ हे इन्द्र, तुम्हारी रक्षा द्वारा हम नवीन धन चाहते हैं। (अपने) यज्ञों द्वारा पुरु लोग ये स्तुतियां करते हैं। जब पुरुकुत्सकी सहायता करते तुमने दासोंकी सात शरद-कालीन शरणस्थानीय नगरियोंको नष्ट किया ॥१०॥

—भरद्वाज, ६।२०

२५ हे दनु इन्द्र, जब तुमने बकवादी दानव प्रजाओंको शरणस्थानीय सात शरदकालीन पुरियोंको नष्ट किया। हे निर्दोष, तुमने बाढ़के जलको चलाया। तुमने तरुण पुरुकुत्सके लिये शत्रु को मारा ॥२॥

—अगस्त्य, १।१७४

२६ हे वज्रधारी इन्द्र, तुमने लड़ते हुये पुरुकुत्सके लिये जो सात पुरियोंको ध्वस्त किया। हे राजन्, सुदासके लिये जो कुशकी तरह तुमने व्यर्थके पापी (शत्रु) को मारा, पुरुको धन और मंगल दिया ॥७॥

—नोधा गोतम-पुत्र, १।६३

२७ जिन रक्षाओं द्वारा तुमने शुचन्तिको धन और सुन्दर सदन दिया, अत्रिके लिये रक्षावाला तपने घामको बनाया। जिन (रक्षाओं) से पृश्निगु, पुरुकुत्स की तुमने रक्षा की। हे अश्विद्वय, उन रक्षाओंके साथ आओ ॥७॥

—कुत्स आङ्गिरस, १।११२

३१. त्रसदस्यु पुरुकुत्स-पुत्र—

२८ हे (इन्द्र) शत्रुओं का दमन करनेवाली सारी रक्षाओं द्वारा वीत-हव्य सुदास की रक्षा करो। क्षेत्र पाने के लिये वृत्र-युद्धमें पुरुकी पौरुकुत्सि त्रसदस्युकी रक्षा करो ॥३॥

—वसिष्ठ, ७।१९

२९ अस्माकमत्र पितरस्त आसन्त्सप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने।
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रतुरमर्धदेवं ॥८॥

३०. पुरुकुत्सानी हि वामदाशद्धव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
अथा राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददथुरर्धदेवं ॥९॥

—४।४२

३१ उप त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणा
वहन्तु मा दश श्येतासो अस्य गैरिक्षितस्य ऋतुभिर्नु सश्चे ॥८॥

—५।३३

३२ उतो हि वा दात्रा सन्ति पूर्वा या पुरुभ्यस्त्रसदस्युर्नितोशे।
क्षेत्रासा ददथुरुर्वरासा घनं दस्युभ्यो अभिभूतिमुग्रं ॥१॥

—४।३८

३३ अदान्मे पौरुकुत्स्यः पचाशतं त्रसदस्युर्वधूना।
महिष्ठो अर्यः सत्पतिः ॥३६॥

उत मे प्रयियोर्वयियोः सुवास्त्वा अधि तुग्वनि।
तिसृणा सप्ततीना श्यावः प्रणेता भुवद्वसुर्दियाना पतिः ॥३७॥

—८।१९

३२. कुरुश्रवण त्रसदस्यु-पुत्र—

३४ तमागन्म सोभरय सहस्रमुष्कं स्वभिष्टिमवसे।
सम्राजं त्रासदस्यवं ॥३२॥

—८।१९

३५ एतानि भद्रा कलश क्रियाम कुरुश्रवण ददतो मघानि।
दानं इद्वो मघवा न स अस्त्वयं च सोमो हृदि यं बिभर्मि ॥९॥

—१०।३२

२९ यहा हमारे वे सात पितर ऋषि थे, दुर्गह-पुत्रके बंदी होने के समय उन्होने इन्द्र जैसे अर्धदेव शत्रुनाशक त्रसदस्युको पाया ॥८॥

३०. हे इन्द्र-वरुण, नमस्कारो के साथ पुरुकुत्सानीने तुम्हें हवि प्रदान किया। फिर तुमने उसे शत्रु-नाशक राजा त्रसदस्युको प्रदान किया ॥९॥

—वामदेव, ४।४२

३१ सुवर्णवाले सूरि पुरुकुत्स-पुत्र त्रसदस्युके वे दस श्वेत रमणीय घोडे मुझे वहन करते हैं। उस गिरिक्षित-पुत्रके यज्ञोंसे हम शीघ्र आये ॥८॥

—सवर्ण प्रजापति-पुत्र, ५।३३

३२. (हे द्यौ-पृथिवी) तुम्हारे पास से पहले धन पाकर दाता त्रसदस्युने पुरुओंको प्रदान किया। तुमने उसे उर्वर क्षेत्र दिया, दस्युओंको पराजित करनेके लिये कठोर अस्त्र दिया ॥१॥

—वामदेव ४।३८

३३ अतिमहान् स्वामी सत्पति पुरुकुत्स-पुत्र त्रसदस्युने मुझे पचास वधुयें (दासियां) दीं ॥३६॥
और प्रणेता दानपति श्यावने सुवास्तुके तट पर शीघ्र जानेवाला मुझे मजबूत घोड़ा, दो सौ दस बैल दिये ॥३७॥

—सोभरि काण्व, ८।१९

३२. कुरुश्रवण त्रसदस्यु-पुत्र—

३४. रक्षाके लिये हम सोभरि सम्राट् त्रसदस्युके उन बहुत तेजस्वी मुख्य (अग्नि) के पास आये ॥३२॥

—सोभरि काण्व, ८।१९

३५. हे मनुष्य, हम ये मंगल करते हैं, हे धनोंके दाता कुरुश्रवण तुम्हें मघवा (इन्द्र) रक्षा दे और सोम भी, जिसे कि मैं हृदयमें धारण करता हूँ ॥९॥

—कवष ऐलूष, १०।३३

कुरुश्रवणमावृणि राजान त्रासदस्यव। महिष्ठ वाघतामृषि ॥४॥

—१०।३३

३३. अभ्यावर्ती चायमान—

द्वया अग्ने रथिनो विंशति गा वधूमतो मघवा मह्य सम्राट्।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेय दक्षिणा पार्थवानाम् ॥८॥

—६।२७

३४. (चित्र) सरस्वती-तट—देखो १६।४३।

३५. कशु चैद्य

ता मे अश्विना सनीना विद्यात नवाना।
यथा चिच्चैद्य. कशु शतमुष्ट्राणा ददत्सहस्रा दश गोना ॥३॥

यो मे हिरण्यसन्दृशो दश राज्ञो अमहत।
अधस्पदा इच्चैद्यस्य कृष्टयश्चर्मन्मा अभितो जना ॥३८॥

माकिरेना पथा गाद्येनेमे यन्ति चेदय.।
अन्यो नेत् सूरिरोहते भूरिदावत्तरो जन ॥३९॥

—८।५

§२ दिवोदास के कार्य

१. दिवोदास—

३६ प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखाय ।
नि तुर्वश नि याद्व शिशीह्यतिथिग्वाय शस्य करिष्यन् ॥८॥

—७।१९

३७ पुर सद्य इत्या धिये दिवोदासाय शम्बर। अध त्य तुर्वश यदु ॥२॥

—९।६१

मैं (कवष) ऋषि दाताओं में महान्‌तम त्रसदस्यु-पुत्र राजा कुरुश्रवण को पसंद करता हूं ॥४॥

—कवष, १०।३३

३३. अभ्यावर्ती चायमान—

३५ हे अग्नि, धनवान्‌ पार्थवोंके सम्राट्‌ चायमान-पुत्र अभ्यावर्तीने मुझे वधुओं (दासियों) सहित दो रथके घोड़े और बीस गायें प्रदान की ॥८॥

—भरद्वाज, ६।२७

३४. चित्र (सरस्वती तट)—

देखो १६।४३

दिवोदास-सुदासके समय आर्योंके भिन्न-भिन्न जनोंमें अनेक प्रतापी राजा थे, जिनका उल्लेख ऋषियों ने अपनी ऋचाओंमें किया है—जैसे अरव्य (८।४६।३३) जिनके लिये सुवर्ण आभूषित अच्छी सुन्दरी लाई गई थी।

३५ कशु चैद्य—चेदी जन सप्तसिन्धु के गुमनाम से जनों में एक था, जिसका राजा कशु अपने दानके लिये बहुत मशहूर था। ब्रह्मातिथि काण्वने इसकी प्रशंसा में लिखा है ८।५।३७।३९—

३५ हे अश्विनो, मुझे मिले नये दानोको जानो। कशु चैद्यने सौ ऊंट और दस हजार गायें दी ॥३७॥

जिसने मुझे सुवर्ण समान दस राजाओं को प्रदान किया। वाले लिये आदमी जन घेरकर चैद्य (कशुके) पैरोंमें खड़े हुये ॥३८॥

जिस रास्ते से यह चेदि लोग जाते हैं, दूसरा नहीं जाता। उससे अधिक देने वाला राजा सूरि नहीं है ॥३९॥

§२. दिवोदासके कार्य

१. दिवोदास—

३६ हे मघवन्‌, तुम्हारी शरण में हम निरन्तर नव पात्रमें सोमको रखें। अतिथिग्व (दिवोदास) की भलाई करने तुर्वश और याद्वको पराजित करो ॥८॥

—[illegible]

३८ त्व करंजमुत पर्णय वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी।
त्व शता वंगृदस्याभिनत् पुरो नानुद परिपूता ऋजिश्विना ॥८॥
—१।५

३९ अभीदमेकमेको अस्मि निष्पाळभी द्वा किमु त्रय करन्ति।
खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्रा ॥७

अह गुगुम्यो अतिथिग्वमिष्करमिष न वृत्रतुर विक्षु धारय।
यत् पर्णयघ्न उत वा करंजहे प्राह महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि ॥८॥
—१०।४

४०. यदयात दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता।
रेवदुवाह स चनो रथो वा वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता ॥१८॥
—१।११

४१ याभिर्महामतियग्व कशोजुव दिवोदासं शम्बरहत्य आवत।
याभि पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावत ताभिरूपु ऊतिभिरश्विना गत ॥१४
—१।११

४२ युव भुज्यु भुरमाण विभिर्गत स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ।
यासिष्ट वर्तिर्वृषणा विजेन्य दिवोदासाय महि चेति नामव ॥४॥
—१।११

३७ (सोमने) इस प्रकार तुरन्त ही शवरकी पुरियोंको और उस तुर्वश यदुको दिवोदास लिये नष्ट किया ॥२॥

—अमहीयु आंगिरस, ९।६१

३८. हे इन्द्र, तुमने करज और पर्णयको मारा, अतिथिग्व दिवोदासकी भलाई के लिये अत्यन्त तीक्ष्ण हथियारोंसे मारा। तुमने निराबाध ऋजिश्वा द्वारा घेरी गई वगृदकी सौ पुरियोंको ध्वस्त किया ॥८॥ (८।४६)

—सव्य आंगिरस १।५३

३९. आर्ये, एक (शत्रु) को मैं अकेला पराजित करनेवाला हूं। दो या तीन मेरी क्या कर सकते हैं। खलिहानमें धान्यकी तरह मैं खूब मारूंगा। इन्द्रहीन शत्रु मेरी क्या निन्दा करेंगे ॥७॥

मैंने गुगुओंके विरुद्ध अतिथिग्व (दिवोदास) को दृढ़ किया, और प्रजाओंमें अन्नकी तरह शत्रुनाशक हो धारण किया। पर्णय-हत्या अथवा करज-हत्या या महान् वृत्र-हत्यामें मैं बहुत प्रसिद्ध हुआ ॥८॥

—इन्द्र, १०।४८

४०. हे अश्विद्वय, पुकारे जाने पर जब तुम दिवोदासके पास, भरद्वाज के पास आये। तो उस समय तुम्हारे उपयोगका रथ धन लेकर आया था, (उसमें) वृषभ और शिशुमार जुते हुये थे ॥१८॥

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।११६

४१. हे अश्विद्वय, तुमने जिन रक्षाओंसे शम्बरयुद्धमें कशाधारी अतिथिग्व दिवोदासकी रक्षा की। जिनसे पुरोंके तोड़ने के समय तुमने त्रसदस्यु की रक्षा की, उन (रक्षाओं) के साथ आओ ॥१४॥

—कुत्स आंगिरस, १।११२

४२. हे अश्विद्वय, तुम पक्षियोंके साथ जलमें डूबते भुज्युको अपनी शक्तियोंसे निकाल पिताओंके पास ले गये। पराक्रमियो, तुम दूर गये। दिवोदासको तुम्हारी रक्षा महान् है। ४॥

—कक्षीवान दीर्घतमा-पुत्र, १।११९

२. शम्वर-हत्या—

४३. त्व कविं चोदयोऽर्कसातो त्व कुत्साय शुष्णं दाशुषे वर्क्।
त्व शिरो अमर्मण पराहन्नतिथिग्वाय शस्य करिष्यन् ॥३॥

—६।२६

४४. भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो,
वज्रेण दाशुषे नृतो।

अतिथिग्वाय शम्वरं गिरेरुग्रो अवाभरत्।
महो वनानि दयमान ओजसा, विश्वा धनान्योजसा ॥७॥

—१।१३०

४५. त्वमिभा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते।
भरद्वाजाय दाशुषे ॥५॥

—६।१६

४६ आग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतन ।
दिवोदासस्य सत्पति ॥१९॥

—६।१६

४७ यस्य त्यच्छम्वर मदे दिवोदासाय रन्धय ।
अय स सोम इन्द्र ते सुत पिव ॥१॥

—६।४३

४८ अह पुरो मन्दसाना व्यैर नव साकन्नवती. शम्वरस्य।
शततम वेश्य सर्वताता दिवोदासमतिथिग्व यदाव ॥३॥

—४।२६

§३. हथियार

१. इषु, २ निषंग—

४९ सक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना।
तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्व युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥२॥

२. शंबर-युद्ध—

४३. (हे इन्द्र) तुमने प्रकाश-प्राप्तिके लिये कविको प्रेरित किया, भक्त कुत्सके लिये तुमने शुष्णको मारा। तुमने अतिथिग्वकी भलाई करनेकी इच्छासे मर्महीन (शंबर) के सिरको काटा॥३॥

—भरद्वाज ६।२६

४४. हे नृत्य करनेवाले इन्द्र, तुमने संग्राममें भक्त पुरु दिवोदासके लिये वज्रसे निन्नानवे पुरियां नष्ट की। अतिथिग्वके लिये तुम उगते शंबरको गिरिसे नीचे पटका। बड़ी निधिको अपने पराक्रमसे बांटते, अपने पराक्रमसे सारी निधिको बांटते॥७॥ (८।६२)

—परुच्छेप दिवोदास-पुत्र, १।१३०

४५ हे अग्नि, तुमने सोम सवन करनेवाले पुरु दिवोदासके लिये इन श्रेष्ठ (धनों) को दिया, और भक्त भरद्वाज के लिये (भी)॥५॥

—भरद्वाज, ६।१६

४६ बहुत चेतनावाला शत्रुनाशक भरतोंवाला दिवोदासका सत्पति अग्नि आया॥१९॥

—भरद्वाज, ६।१६

४७ जिनके मदमें मस्त हो हे इन्द्र, तुमने दिवोदासके लिये शंबरको मारा। सो यह सोम तुम्हारे लिये छना हुआ है, पियो॥१॥

—भरद्वाज, ६।४३

४८ मैंने मस्त हो शम्बरकी निन्नानवे पुरियोंको ध्वस्त किया, सबोंको प्रवेश करनेके लिये (रक्खा), जब (युद्धमें) दिवोदास अतिथिग्व की मैंने रक्षा की थी॥३॥

—वामदेव, ४।२६

९३. हथियार

१. बाण, २. तरकश—

४९. कोलाहल करनेवाले बराबर देखने, जय करनेवाले, जोड़नेवाले, शिन न होनेवाले, लपटनेवाले, बाणहन्ता, पराक्रमी इन्द्रके साथ हो युद्धमें हे नरो, (शत्रुको) पराजित निताड़ित, करो॥२॥

स इषुहस्तैः स निषंगिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन।
ससृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३॥

—१०।१०३

३. धनुष, ४. ज्या, ५. वर्म—

५० जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥१॥

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥२॥

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिषस्वजाना।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वन् ज्या इयं समने पारयन्ती ॥३॥

ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे।
अप शत्रून्विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥४॥

—६।७५

५१. प्रोष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत।
अभीके चिदु लोककृत् सगे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता।
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥१॥

—१०।१३३

६. कुलिश—

५२ वैश्वानराय धिषणामृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि।
द्विता होतारं मनुषश्च वाघतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति ॥१॥

—३।२

वह बाण-हस्तो, तुणीर वालो, के साथ, गुणसे युक्त युद्धमें भिडन्त करनेवाले, भीड जीतनेवाले सोम-पायी, बाहुबल-युक्त उग्र धनुर्धर उन इन्द्रने फेंके बाणोंसे शत्रुओंको गिराया ॥३॥

—अप्रतिरथ इन्द्र-पुत्र १०।१०३

३. धनुष, ४. प्रत्यचा, ५. कवच—

५०. कवचधारी (वीर) जब युद्धके बीच जाता है, तो मानो मेघका प्रतीक होता है। तुम घावरहित शरीर वाले होओ, कवचकी वह महिमा तुम्हारी रक्षा करे ॥११॥

हम धनुषसे गायोंको जीतें, धनुषसे युद्धको जीतें, धनुषसे तीव्र सेनाओंको जीतें। धनुष शत्रुमें भगदड मचाता है, धनुषसे हम सारी दिशाओंको जीतें ॥२॥

कानतक खिंची युद्धमें पार कराती धनुषके ऊपर फैली यह प्रत्यचा प्रिय सखा को आलिंगन करती स्त्री की तरह बोलती है ॥३॥

ये (दोनों धनुषके कोर) प्रेमीमें स्त्रीकी तरह लडाईमें उपस्थित होनेपर पुत्रमें माताकी तरह आचरण करती गोदमें लेती है। यह कोर मिलकर हिलते शत्रुओं अमित्रोंको वेधें ॥४॥

—पायु भरद्वाज-पुत्र, ६।७५

५१. जो रथके समान रस्सेंगा उग्र इन्द्रके लिये बलको पूजो। युद्धमें समीप आ जानेपर लोपकर्त्ता प्रेरक शत्रुनाशक(इन्द्र) हमें बतलायें। दुष्टोंकी प्रत्यचायें धनुषोंमें टूट जावें ॥१॥

—सुदास पिजवन-पुत्र, १०।१३३

६. कुल्हाडा—

५२. हम स्तुतयोंसे वैश्वानर अग्निके लिये घृतकी तरह पवित्र स्तुति करते हैं। जैसे रथको कुल्हाड़ा (बसूला) ठीक गढ़ता है, वैसे ही दो ज्ञानसे होता (अग्नि) को मनुष्योंके स्तुतिसे गढ़ते हैं ॥१॥

—विश्वामित्र, ३।२

७. परशु—

५३. परशु चिद्वितपति शिम्बल चिद्विवृश्चति।
उखा चिदिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥२२॥

—३।५३

देखो १८।१५ (५) भी।

८. वाशी, ९. ऋष्टि (छुरा) —

५४ वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिण सुधन्वान इषुमन्तो निषगिण ।
स्वस्वा स्थ सुरथा पृश्निमातर स्वायुधा मरुतो याथमाशुभ ॥२॥

—५।५७

५५ वाशीमेको विभर्ति हस्त आयसीमन्तर्देवेषु निध्रुवि ॥३॥

—८।२९

१०. वज्र—

५६. वज्रमेको विभर्ति हस्त आहित तेन वृत्राणि जिघ्नते ॥४॥

—८।२९

११. अत्क—

५७ त्व त इन्द्रोभया अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर।
वधींवनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणा नृत ॥३॥

—६।३

७. फरसा—

५३ हे इन्द्र, फरसा जैसे तपाता, सेमल जैसे काटता, (जैसे) पकाई जाती हंडिया खोलती फेन छोड़ती है ॥२२॥

—विश्वामित्र, ३।५३

८. बसूला, ९. छुरा—

५४ बसूलेवाले, छुरेवाले, मनीषी सुधनुष-युक्त बाणवान्, तूणीरधारी, सुन्दर घोड़ेवाले, सुन्दर रथवाले, सुन्दर आयुधवाले हो पृश्नि-माता के पुत्र हे मरुतो, हमारे विजयके लिये आओ ॥२॥

—श्यावाश्व, ५।५७

५५ देवोंके बीच निश्चल स्थानमें स्थित एक पुरुष हाथमें आयसी (तांबेके) बसूलेको धारण करता है ॥३॥

—कश्यप मरीचि-पुत्र, ८।२९

१०. वज्र—

५६ एक हाथमें वज्र धारे, उससे शत्रुओंको मारता है ॥४॥

—कश्यप मरीचि-पुत्र, ८।२९

११. अत्क—

५७ हे शूर इन्द्र, तुम दास और आर्य इन दोनों वृत्रों (शत्रुओं) को, हे नेताओंमें श्रेष्ठतम नेता, तीक्ष्ण धारवाले अत्कों (कुल्हाड़ों) द्वारा जैसे वनको, वैसे युद्धमें मारते हो ॥३॥

—शुनहोत्र, ६।३३

१२. नाव—

१८. अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्त शतारित्रां नावमातस्थिवांस ॥५॥
—१।११६

१३ अष्ट्रा (आरा)—
देखो १५।५२

१४. स्वधिति (छुरा), १५. क्षणोत्र (शान)
देखो १८।१२ (७)।

अध्याय १०

सुदास

§१ सुदास वीतहव्य

१. वसिष्ठ पुरोहित—

१ दण्डा इवेद्गो अजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकास ।
अभवच्च पुर एता वसिष्ठ आदित्तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥६॥
—७।३३

२ इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवत नीचीः।
दुर्मित्रास प्रकलविन् मिमाना जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे ॥१५॥
—७।३३

१२. नाव[1]—

५८. हे अश्विद्वय, तुमने निरालम्ब, ठहरनेके स्थानसे रहित समुद्रमें वीरता दिखलाई, जब कि भुज्युको सौ पतवारोंवाली नावमें बैठा कर घर ले गये ॥५॥

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।११६

अध्याय १०

सुदास

§१ सुदास वीतहव्य

१. वसिष्ठ पुरोहित—

१. दण्डसे जैसे गौवें, वैसे ही भरत जनहीन शिशुओंकी तरह छिन्न-भिन्न थे। वसिष्ठ इनका अगुआ (पुरोहित) हुआ, तो तृत्सुओंकी प्रजायें बढ़ने लगीं ॥६॥ (५।१२)

—वसिष्ठ, ७।३३

२. इन्द्र द्वारा प्रताड़ित ये तृत्सु छोड़े हुए जलकी तरह नीचेकी ओर भागे। दुष्ट मित्रोवाले विकलबुद्धि उन्होंने बाधित हो सारे भोजन सुदासके लिये फेंक दिये ॥१५॥

—वसिष्ठ, ७।१८

[1] घरके उपयोगके हथियारोंका उल्लेख निम्न प्रकार है—
आरा—६।५३।५
क्षुर (अस्तुरा)—८।४।१६, १०।२९।८
परशु, कुठार, स्वधिति—१।१६२।९, १८, २०; १०।२८।८ (परशु)
वाशी (बसूला)—२८।२९।२
सूची (सूई)—१।१९१।७, २।३२।४
घर मृन्मय (मिट्टीके) होने पे ७।८९।१

३ श्वित्यचो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियं जिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः ।
उत्तिष्ठन्वोचे परि बर्हिषो नृन्न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः ॥१॥

दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रं ।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात् सुतादिन्द्रो वृणीता वसिष्ठान् ॥२॥

एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु कं भेदमेभिर्जघान ।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ॥१३॥
—७।३३

२. सुदास—

४ द्वे नप्तुर्देववतः शते गोर्द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः ।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्म पर्येमि रेभन् ॥२२॥

५ चत्वारो मा पैजवनस्य दानाः स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके ।
ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासस्तोकं तोकाय श्रवसे वहन्ति ॥२३॥
—७।१८

६ इमं नरो मरुतः सश्चतानु दिवोदासं न पितरं सुदासः ।
अविष्टना पैजवनस्य केतं दूणाशं क्षत्रमजरं दुवोयु ॥२५॥

—७।१८

७ त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासं ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुं ॥३॥
—७।१९

१. गोरे दाहिनी ओर जूडा रखनेवाले सुबुद्धि वे (वसिष्ठ) मुझे बहुत प्रसन्न करते हैं। यज्ञसे उठते मैं आदमियोंको कहता हूँ "वसिष्ठ-संतान मुझसे दूर न जायें" ॥१॥ (३।६)

वयत-पुत्र पाशद्युम्नके छाने सोमसे इन्द्रने वसिष्ठोंके (सोमको) पसन्द किया। छाने हुए सोमके साथ पात्रमें स्थित सोमको बहुत पीनेसे उग्र इन्द्रको वसिष्ठ वैशन्तसे लाये ॥२॥

ऐसे ही इनके द्वारा (वह) सिन्धुको पार हुआ, ऐसे ही इनके द्वारा (उसने) भेदको मारा। ऐसे ही हे वसिष्ठो, तुम्हारे ब्रह्म (ऋचा) द्वारा इन्द्रने दाशराज्ञमें सुदासकी रक्षा की ॥३॥

—वसिष्ठ, ७।३३

२. सुदास पैजवन—

४. हे अग्नि, अर्हत्, देववान्के नाती पैजवन सुदासकी दो सौ गायें और वधुओं-सहित दो रथोंको दानके तौरपर पा होताकी तरह गान करते मैं घर जाता हूँ ॥२२॥

५. पैजवनके दिये सोनेके अलंकारोंवाले हमारे निश्चित सरलगामी, मोती-मंडित पृथिवीपर स्थित चार घोड़े मुझे और पुत्र-पौत्रोंको यशपूर्वक वहन करते हैं। ॥२३॥

—वसिष्ठ, ७।१८

६. हे नेता मरुतो, पिता दिवोदासकी तरह सुदासकी सहायता करो, पैजवनकी इच्छाकी पूर्ति करो, उसके स्थिर, अजर राज्यकी रक्षा करो ॥२५॥

—वसिष्ठ, ७।१८

७. हे धर्षक इन्द्र, तुमने शत्रुओंका धर्षण करते वीरराज सुदासकी सारी रक्षाओंसे रक्षा की। वृत्र-युद्धमें क्षेत्र पानेके लिए पुरुकी पुरुकुत्स-पुत्र त्रसदस्युकी रक्षा की ॥३॥

—वसिष्ठ, ७।१९

८. सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाज ॥६॥
—७।१९

९. हन्ता वृत्रमिन्द्र. शूशुवान प्रावीन्नु वीरो जरितारमूती।
कर्ता सुदासे अह वा उ लोक दाता वसु मुहुरा दाशुषे भूत् ॥२॥
—७।२०

१० शत ते शिप्रिन्नूतय सुदासे सहस्र शसा उत रातिरस्तु।
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्यास्मे द्युम्नमधि रत्न च धेहि ॥३॥
—७।२५

११. नकि सुदासो रथ पर्यास न रीरमत्।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत् स गोमति वज्रे ॥१०॥
—७।३२

१२ युवा नरा पश्यमानास आप्य प्राचा गव्यन्त पृथुपर्शवो ययु ।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावत ॥११॥
—७।१८

९२. दाशराज्ञ युद्ध

१. शत्रु—

१३ युवा हवन्त उभयास आजिष्विन्द्र च वस्वो वरुण च सातये।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधित प्र सुदासमावत तृत्सुभि· सह ॥६॥

दस राजान· समिता अयज्यव सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधु ।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु ॥७॥
—७।८३

८. हे इन्द्र, रातहव्य (हविदाता) सुदासके लिये तुम्हारे भोजन (सम्पत्ति) सदासे हैं। हे पराक्रमी, तुम्हारे दोनों मजबूत घोडे रथमें जोड़ता हूं। तुम बड़े शक्तिशाली हो, तुम्हारे पास हमारे पद (ब्रह्म) शक्ति के लिये जायें ॥६॥

—वसिष्ठ, ७।१९

९. सुपुष्ट शत्रुको मारता वह वीर इन्द्र स्तोताकी शीघ्र रक्षा करता है। सुदासके लिये उसने लोकको बनाया, भक्तको उसने बार-बार धन दिया ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।२०

१०. हे उष्णीषधारी इन्द्र, सुदासके लिये तुम्हारे सहस्रों उपकार और होवें, घातक मर्त्यको नष्ट करो। हमें तेज और रथ प्रदान करो ॥३॥

—वसिष्ठ ७।२५

११ सुदासके रथको कोई नहीं दूर फेंक सका, न रोक सका, जिसका रक्षक इन्द्र, जिसके (रक्षक) मरुत् है, वह गौवोंवाले गोष्ठमें जाता है ॥१०॥

—वसिष्ठ, ७।३२

१२ हे इन्द्र-वरुण नेताओ, तुम्हें और तुम्हारी मित्रताको देखते हुए गौ लूटनेवाले पृथु और पर्शु पूर्वकी ओर गये। तुमने (उसके) आर्य और दास शत्रुओंको मारा, और सुदासको (अपनी) रक्षासे बचाया ॥१॥

—वसिष्ठ, ७।८३

२ दाशराज्ञ युद्ध

१. शत्रु—

१३ दोनों संग्रामोंमें धनकी इच्छा करते दोनों (पक्षों) ने तुम इन्द्र और वरुणको सहायताके लिये बुलाया। जहां दस राजाओंसे तृत्सुओंके साथ सताये हुए सुदासकी तुमने रक्षा की ॥६॥

हे इन्द्र-वरुण, यज्ञ-निष्ठुर दस राजा युद्धमें सुदासको नहीं जीत सके। यज्ञमें बैठे हुए इन नरोंकी स्तुति सत्य हुई, देव लोग इनके देव-निमन्त्रणमें उपस्थित हुए ॥७॥

—वसिष्ठ, ७।८३

नि गव्यवोऽनवो द्रुह्यव च षष्टि शता सुषुपु षट् सहस्रा ।
षष्टिर्वीरासो अधि षड्दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ॥१४॥
—७।१८

१८ शश्वन्तो हि शत्रवो रारधुष्टे भेदस्य चिच्छर्द्धतो विन्द रन्धि ।
मर्तां एन' स्तुवतो य कृणोति तिग्म तस्मिन्नि जहि वज्रमिन्द्र ॥१८॥
—७।१८

१९ यस्य श्रवो रोदसी अन्तरुर्वी शीर्ष्णे शीर्ष्णे विवभाजा विभक्ता ।
सप्तेदिन्द्र न स्रवतो गृणन्ति नि युध्यामधिमशिशादभीके ॥२४॥

इम नरो मरुत सश्चतानु दिवोदास न पितर सुदासः ।
अविष्टना पैजवनस्य केत दूणाश क्षत्रमजर दुवोयु ॥२५॥
—७।१८

२. युद्ध—

२० यवा नरो पश्यमानास आप्य प्राचा गव्यन्त' पृथुपर्शवो ययु ।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावत ॥१॥

यत्रा नर समयन्ते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति किंचन प्रिय ।
यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दृशस्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचत ॥२॥

सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षतेन्द्रावरुणा दिवि घोप आरुहत् ।
अस्थुर्जनानामुप मामरातयोऽर्वागवसा हवनश्रुता गत ॥३॥

गो लूट के इच्छुक साठ सौ, छ हजार, और छियासठ अनु और द्रुह्यु (वीर) (मरकर) सो गये। (भक्तोंके लिये) यह सब इन्द्रके पराक्रमके काम हैं॥१४॥

—वसिष्ठ, ७।१८

१८ हे इन्द्र, तुम्हारे प्राय सभी शत्रु पराजित होवें, सुनकार भेदको भी पराजित किया। स्तुतिकर्त्ता मनुष्योंकी जो हानि करता है, उसके ऊपर तीक्ष्ण वज्र मारो॥१८॥

—वसिष्ठ, ७।१८

१९ जिन (सुदास) की कीर्ति द्यौ और पृथिवीके बीचमें फैली मौजूद है, जो प्रति शिरपर बांट कर धन देता है, इन्द्रकी तरह सात नदियां जिसकी प्रशंसा करती हैं। युद्धमें युधामधि का जिसने विनाश किया था॥२४॥

हे नेता मरुतो, पिता दिवोदासकी तरह सुदासकी सहायता करो। पैंजवन (सुदास) के घरकी रक्षा करो, उसके क्षत्र (राज्य) को दुर्धर्ष और अजर बनाओ॥२५॥

—वसिष्ठ, ७।१८

२. युद्ध—

२० हे इन्द्र-वरुण नेताओ, तुम्हें और तुम्हारी मित्रताको देखते हुए गो लूटने वाले पृथु और पर्शु पूर्व की ओर गये। तुमने आर्य और दास शत्रुओंको मारा, और सुदासको (अपनी) रक्षासे बचाया॥११॥ (वहीं १२)

जिस (युद्ध) में ध्वजा फहराते आदमी लड़ते हैं, जिसमें कुछ भी प्रिय नहीं होता। जहां सुख दिखनेवाली (चीजें) भय देती हैं, वहां हे इन्द्र और वरुण, तुम हमारी बात करना॥२॥

भूमिकी सीमायें सब ध्वस्त होती दिखाई दीं, हे इन्द्र और वरुण, कोलाहल द्यौ तक पहुंचा। हमारे जनके शत्रु पास आ गये। हे पुकार सुनने-वाले इन्द्र-वरुण, रक्षाके साथ हमारे पास आओ॥३॥

इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं वन्वन्ता प्र सुदासमावतं।
ब्रह्माण्येषां शृणुत हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत् पुरोहित ॥४॥

इन्द्रावरुणावभ्या तपन्ति माघान्यर्यो वनुषामरातयः।
युवं हि वस्व उभयस्य राजथो ध स्मा नोवत पार्ये दिवि ॥५॥

युवा हवन्त उभयास आजिष्विन्द्रं च वस्वो वरुण च सातये।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितं प्र सुदासमावत तृत्सुभि. सह ॥६॥

दश राजान. समिता अयज्यव. सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधु.।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु ॥७॥

दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वत. सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षत।
श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः ॥८॥

वृत्राण्यन्य. समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा।
हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छतं ॥९॥

अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्न यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः।
अवध्र ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोक सवितुर्मनामहे ॥१०॥
—७।८३

२१. आवदिन्द्र यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेदं सर्वताता मुषायत्।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि ॥१९॥
—७।१८

हे इन्द्र-वरुण, तुमने आयुधो द्वारा अप्रतिम भेदको मारते हुए सुदासकी रक्षा की। इनकी स्तुतियोको सुनो, तृत्सुओंकी पुरोहिताई युद्धमें सत्य सिद्ध हो ॥४॥

हे इन्द्र-वरुण, चारो ओरसे शत्रुके हथियार मुझे सतप्त कर रहे हैं। वह बाधा दे रहे हैं। तुम दोनो दिव्य और पार्थिव उभय प्रकारके धनोंके राजा हो, इसलिए धोके पार हमारी रक्षा करो ॥५॥

दोनो सग्रामोंमें धनकी इच्छा करते दोनो (पक्षो) ने तुम इन्द्र और वरुणको सहायताके लिये बुलाया जहा दश राजाओंसे तृत्सुओंके साथ तुमने सकटग्रस्त सुदासकी रक्षा की ॥६॥ (१३।६)

हे इन्द्र वरुण, यज्ञ-विमुख दस राजा युद्धमें सुदाससे नहीं लड़ सके। यज्ञमें बैठे हुए इन नरोंकी स्तुति सत्य हुई, देव लोग इनके देव-निमन्त्रणमें उपस्थित हुए ॥७॥ (१३।७)

दाशराज्ञ (युद्ध) में घिरे हुए सुदासकी इन्द्र व औरुणने सहायता की। जिस (दाशराज्ञ युद्ध) में श्वेत (गोर) जूटाधारी स्तुति पाठी तृत्सु लोग नमस्कार और स्तोत्रसे तुम्हारी पूजा करते थे ॥८॥ (१३।१५)

एक (इन्द्र) युद्धमें शत्रुओंको मारता है, दूसरा (वरुण) सदा व्रतोंकी रक्षा करता है हम कामनापर्वक तुम दोनो पराक्रमियोंको सुन्दर स्तुतियोंसे पुकारते है। हे इन्द्र-वरुण, हमें शरण प्रदान करो ॥९॥ इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा हमें धन देवें, विस्तृत महान् घर देवें। अदितिकी ऋतवर्धक ज्योति अहानिकर हो, हम सविता देवके श्लोकको गाते है ॥१०॥

—वसिष्ठ, ७।८३

१. यमुनाने और तृत्सुओंने इन्द्रकी सहायता की। युद्धमें वहा भेदको बिल्कुल लूट लिया। अज, शिग्रु और यक्षु घोड़ोंके सिरकी बलि लेकर आये ॥१९॥

—वसिष्ठ, ७।१८

२२. प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वियत्सूर्यो न रोचते बृहद्भा.।
अभि य पूरु पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथि. शुशोच ॥४॥
—७।८

३. सुदेवी रानी—

२३. याभि पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षत।
याभि. सुदास ऊहथु सुदेव्य ताभिरू पु ऊतिभिरश्विना गत ॥१९॥
—१।११२

§६. अश्वमेध

१. विश्वामित्र पुरोहित—

२४. य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टव।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जन ॥१२॥
—३।५३

२५. महा ऋपिर्देवजा देवजूतो स्तम्नात् सिन्धुमणर्वं नृचक्षा।
विश्वामित्रो यदवहत् सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्र ॥९॥
—३।५३

२६ अश्वो न क्रन्दन् जनिभि समिध्यते वैश्वानर कुशिकेभिर्युगे युगे।
स नो अग्नि सुवीर्यं स्वश्व्य दधातु रत्नममृतेषु जागृवि ॥३॥
—३।२६

२२. यह भरतका अग्नि अति प्रसिद्ध है, जो सूर्यकी तरह बड़े प्रकाशसे चमकता है, जिसने युद्धमें पूरुओंको हराया, दीप्तिमान् वह दिव्य अतिथि प्रज्वलित हुआ ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।८

३. रानी सुदेवी—

२३ हे अश्विद्वय, जिन सहायताओं द्वारा तुम विमदके लिये पत्निया (विवाहार्थ) लाये, जिनके द्वारा लाल गायें दीं, जिनके द्वारा सुदासके लिये तुम सुदेवीको लाये, उन रक्षाओंके साथ आओ ॥१९॥

—कुत्स आंगिरस, १।११२

६३. अश्वमेध

१. विश्वामित्र पुरोहित—

२४. यह जो दोनों द्यौ-पृथिवी है, उनके (रक्षक) इन्द्रकी मैंने स्तुति की। विश्वामित्रका यह ब्रह्म (ऋचा) भारतजनकी रक्षा करता है ॥१२॥

—विश्वामित्र, ३।५३

२५ देवज, देव-प्रेरित मनुष्य-उपदेशक महान् ऋषि विश्वामित्रने सिन्धुनदको स्तम्भित किया, जब सुदासको (नदी) पार कराया, तो इन्द्रने कुशिकोंके द्वारा (सुदासके साथ) प्रिय वर्ताव किया ॥९॥ (५।२६।९)

—विश्वामित्र, ३।५३

२६ घोड़ेकी तरह हिनहिनाता वैश्वानर (अग्नि) माताओं कुशिकों द्वारा युग-युगमें (हर समय) प्रज्वलित किया जाता रहा। यह अमृतोंमें जागरूक अग्नि हमें सुन्दर अश्व-युक्त, सुन्दर वीर्य-युक्त रत्न दे ॥३॥५।२६।६

—विश्वामित्र, ३।२६

२७. अमित्रायुधो मरुतामिव प्रया प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद्विदु ।
घुम्नवद् ब्रह्म कुशिकास एरिर एक एको दमे अग्नि समीधिरे ॥१५॥
—३।२९

२. अश्वमेध—

२८. ये वाजिन परिपश्यन्ति पक्व य ईमाहु सुरभिनिर्हरेति।
ये चार्वतो मासभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥१२॥
—१।१६२

२९. उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्व राये प्रमुचता सुवासः।
राजा वृत्र जघनत् प्रागपागुदगथा यजाते वर आपृथिव्या ॥११॥
—३।५३

३०. इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्व चिकितुर्न प्रपित्व।
हिन्वन्त्यश्वमरण न नित्य ज्यावाज परिणयन्त्याजौ ॥२४॥
—३।५३

२७. मरुतोंकी तरह अमित्रोंसे लड़नेवाले अग्रगामी प्रथम उत्पन्न वह सब कुछ जानते हैं। कुशिक तेजस्वी ब्रह्म (स्तुति) प्रेरित करते हैं, (उनमें) एक-एक (अपने) घरमें अग्निका समिधान करते हैं ॥१५॥ (५।२६।१५)

—विश्वामित्र, ३।२९

२. अश्वमेध—

२८. जो पके घोड़ेको देखते, जो बोलते "सोंधा है उतारो" और जो घोड़ेके मांस-भोजनका सेवन करते हैं, उनका संकल्प हमारा सहायक हो ॥१२॥ (४।२)

दीर्घतमा उचथ्य-पुत्र, १।१६२

२९ हे कुशिको, पास आओ, चेतो, धन (जीतने) के लिए सुदासके अश्वको छोड़ो। राजा (सुदास) पूर्व, पश्चिम और उत्तरके शत्रु मारे, फिर पृथिवीके वरस्थानमें यज्ञ करे ॥११॥ (५।२६।११)

—विश्वामित्र, ३।५३

३० हे इन्द्र, भरतके ये पुत्र (सन्तानें) न अमिलन जानते, न मिलन, वह घरकी तरह नित्य युद्धमें (अपना) घोड़ा भेजते हैं, धनुष झुकाते हैं ॥२४॥

—विश्वामित्र, ३।५३

अध्याय ११

राजव्यवस्था

१ ग्रामणी

१ सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनुः सूर्येणास्य यतमानैतु दक्षिणा।
सावर्णेर्देवा प्रतियुर्यरन्त्वास्मिन्नश्रान्ता असनाम वाज ॥११॥
—१०।६२

२. राष्ट्र

२ आचष्ट आसा पाथो नदीना वरुण उग्र. सहस्रचक्षा ॥१०॥
राजा राष्ट्राणा पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्र विश्वायु ॥११॥
—७।३४

३ हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन्।
न दूताय प्रह्ये तस्थ एपा यथा राष्ट्र गुपित क्षत्रियस्य ॥३॥
—१०।१०९

३. विश

४ अपामुपस्थे महिषा अगभ्णत विशो राजानमुपतस्थुर्ऋग्मियं।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानर मातरिश्वा परावत ॥४॥
—६।८

अध्याय ११

राज-व्यवस्था

१. ग्रामणी

१ सहस्र (गौओंके) दाता ग्रामणी मनु मत अनिष्ट करे, इसकी दक्षिणा सूर्यके समान होवे। सावर्णि (मनु) को देवता आयु प्रदान करें, जिसके पास हम अश्रान्त हो अन्न पाते हैं ॥११॥

—नाभानेदिष्ट, १०।६२

२. राष्ट्र

२. सहस्र-चक्षु उग्र वरुण इन नदियोंके जलको देखते हैं ॥१०॥ वह (वरुण) राष्ट्रोंके राजा, नदियोंके रूप हैं। उनका क्षत्र (राज्य) अनुपम और सर्वत्र है ॥११॥

—वसिष्ठ, ७।३४

३. "इसकी देहको हाथसे ही ग्रहण करना चाहिये, यह ब्रह्म-जाया है।" यह सबने कहा। भेजे दूतको वह नहीं वनी जिस तरह क्षत्रियका राष्ट्र रक्षित ॥३॥

—जुहू, १०।१०९

३. प्रजा

४. महान् (जलों) ने अन्तरिक्षमें ग्रहण किया, पूजनीय राजा मान प्रजाओंने उनका उपस्थान (सत्कार) किया। विवस्वान्‌का दूत वायु दूरसे वैश्वानर अग्निको यहाँ लाया ॥४॥

—भरद्वाज, ६।८

४. राजा

५ विद्मा हि सूनो अस्यद्मसद्वा चक्रे अग्निर्जनुषाज्मान्न।
स त्वं न ऊर्जं सन ऊर्जं धा राजेव जेर वृके क्षेष्यन्त ॥४॥

—६।४

६ आ यस्मिन्त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद्राजन् त्सर्वतातेव नु द्यौ ।
त्रिषधस्थस्ततरुषो न जहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यै ॥२॥

—६।१२

७ त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृळह मरुज पर्वतस्य।
राजा भवो जगतश्चर्षणीना साक सूर्यं जनयन्द्यामुषास ॥५॥

—६।३०

८ स रायस्खामुप सृजा गृणान पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्व।
पतिर्बभूथासमो जानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥४॥

—६।३६

९. इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विपुरूप यदस्ति।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥३॥

—७।२७

१० आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक्।
इळ नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वत जीरदानू ॥२॥

—७।६४

११. त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुताना । त्व राजा जनाना ॥३॥

—८।५३

४. राजा

५ हे सूनु (अग्नि), तुम गायक, सहभोजी है। जन्मते अपना पथ घर और अन्न तैयार करता तू हमें पुष्टि दे, पुष्टि हममें रख निरुपद्रव गृहमें राजाकी तरह शत्रुओंको जीतो ॥४॥

—भरद्वाज, ६।४

६. हे पूज्य राजन्, जिस तुम ज्ञानी में घी पूर्णताके लिये है। तीनों स्थानोंमें रह चलते हो, सूर्यकी तरह मनुष्योंके हव्य और धनको यजनके लिये जाते हो ॥२॥

—भरद्वाज, ६।१२

७. (हे इन्द्र), तुमने जलको चारों ओर बहनेके लिये पर्वतको जोरसे ध्वस्त किया। तुम द्यौ, उषा और सूर्यको एक साथ उत्पन्न करते जगत्के लोगोंके राजा हो ॥५॥

—भरद्वाज ६।३०

८ हे इन्द्र, स्तुति किये जाते तुम बहुत बढ़िया चमचते धन-सम्पत्तिकी धारा बहाओ। तुम जनोंके अद्वितीय पति, अकेले सारे भुवनके राजा हो ॥४॥

—भरद्वाज, ६।३६

९ जगत्के मनुष्योंका राजा इन्द्र है, जो कुछ पृथिवीपर नाना प्रकारकी (वस्तु) है, (उसका भी)। तिससे भक्तको वह धन देता है। स्तुति किया गया वह हमारे पास धन भेजे ॥३॥

—वसिष्ठ, ७।२७

१० महान् ऋतके रक्षक, सिन्धुपति, क्षत्रिय, मित्र-वरुण दोनों राजा, हमारे पास आवें। शीघ्र देनेवाले मित्र और वरुण हमें अन्न दें, दोनों पुष्टि भेजें ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।६४

११. हे इन्द्र, तुम दाने न दाने (दोनों) के स्वामी हो। तुम जनोंके राजा हो ॥३॥

—प्रगाथ, ८।५३

(१) राजाभिषेक—

१२. आ त्वा हार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलि ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत ॥१॥
इहैवैधि माप च्योष्ठा पर्वत इवा विचाचलि ।
इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय ॥२॥
इममिन्द्रो अदीधरद् ध्रुव ध्रुवेण हविषा ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवत्तस्मा उ ब्रह्मणस्पति ॥३॥
ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवास पर्वता इमे ।
ध्रुव विश्वमिद जगद् ध्रुवो राजा विशामय ॥४॥
ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुव देवो बृहस्पति ।
ध्रुव त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्र धारयता ध्रुव ॥५॥
ध्रुव ध्रुवेण हविषाभि सोम मृशामसि ।
अथो त इन्द्र केवलीर्विशो बलिहृतस्करत् ॥६॥

—१०।१७३

(२) सम्राट्—

१३ मूर्द्धान दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्नि ।
कवि सम्राजमतिथि जानामासन्ना पात्र जनयन्त देवा ॥१॥
१४ अभि य देव्यदितिर्गृणाति सव देवस्य सवितुर्जुषाणा ।
अभि सम्राजो वरुणो गृणन्त्यभि मित्रासो अर्यमा सजोषा ॥४॥

—७।३८

(३) शास—

१५ मरुत्वन्त वृषभ वावृधानमकवारि दिव्य शासमिन्द्र ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्र सहोदामिह त हुवेम ॥५॥

—३।४७

(१) राजाभिषेक—

१२. मै तुम्हें लाया, (देशके) भीतर बढो, अचल ध्रुव बने रहो। सारी प्रजायें तुम्हें चाहें, तुम्हारा राष्ट्र (राज्य) भ्रष्ट न हो ॥१॥

यहीं रहो, अचल रहो, पर्वतकी तरह च्युत मत होओ। इन्द्रकी तरह यहा ध्रुव रहो, यहा राष्ट्रको धारण करो ॥२॥

ध्रुव हवि द्वारा इन्द्रने इस ध्रुव (अचल) को स्थापित किया। उनसे सोम बोले और उससे ब्रह्मणस्पति भी ॥३॥

द्यौ ध्रुवा (अचल) है, पृथिवी ध्रुवा, यह पर्वत भी ध्रुव है। यह सारा जगत् ध्रुव है। प्रजाओंका यह राजा ध्रुव है ॥४॥

राजा वरुण तुम्हारे ध्रुव है, देव बृहस्पति ध्रुव, वह इन्द्र और अग्नि ध्रुव। (वे) राष्ट्रको ध्रुव धारण करें ॥५॥

ध्रुव हवि द्वारा, ध्रुव सोमको हम मिलाते है। फिर इन्द्र, तेरी प्रजाको एक-परायण और कर-प्रदाता बनायें ॥६॥

—ध्रुव आंगिरस, १०।१७३

(२) सम्राट्—

१३ देवोंने वैश्वानर अग्निको द्यौका मस्तक, पृथिवीका दूत, यज्ञके लिये उत्पन्न, कवि, सम्राट्, जनोंका अतिथि, मुख और रक्षक उत्पन्न किया ॥१॥

—भरद्वाज, ६७

१४ सविता देवके सवन (उत्पत्ति) का सेवन करती देवी अदिति जिसकी स्तुति करती है, वरुण सम्राट् पत्नियों-सहित स्वयं और मित्र भी स्तुति करता है ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।३८

(३) शासक—

१५. मरुतोंवाले, वृषभ (बलवान्), सदा बढ़ने योग्य गाय, दिव्य शासक (राजा), सर्वजेता, उग्र, बलदाता उस इन्द्रको हम नई रक्षाके लिये यहां बुलाते हैं ॥५॥

विश्वामित्र, ३।४७

(४) ईशान—

१६. अभि त्वा शूर नोनुमो दुग्धा इव घनव.
ईशानमस्य जगत. स्वदृंशमीशानमिन्द्र तस्थुष.॥२२॥
—७।३२

(५) स्वराट्—

१७ अस्येदेव प्र रिरिचे महित्व दिवस्पृथिव्या पर्यन्तरिक्षात्।
स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूर्त स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय॥९॥
—१।६१

(६) नृपति—

१८. त्रिविष्टि घातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना।
अतीद विश्वं भुवन ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि॥८॥
—१।१०२

(७) पती राजा—

१९ पिवा सोम मदाय कमिन्द्र श्येनाभृत सुत।
त्व हि शश्वतीना पती राजा विशामसि॥३॥
—८।८४

(८) राजपुत्र, राजदुहिता—

२०. प्रातर्जरेथे जरणेव कापया वस्तोर्वस्तोर्यजता गच्छथो गृह।
कस्य ध्वस्रा भवथ कस्य वा नरा राजपुत्रेव सवनाव गच्छथ।३॥
युवा ह घोषा पर्यश्विना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वा नरा।
भूत मे अह्न उत भूतमक्तवेऽश्वावते रथिने शक्तमर्वते॥५॥
—१०।४०

(४) ईशान—

१६. हे शूर, न दुही धेनुओंकी तरह हम तुम्हें जोरसे पुकारते हैं। जो कि इस जगत्का स्वर्गदर्शक हे इन्द्र, स्थावरके ईशान हो ॥२२॥ —वसिष्ठ, ७।३२

(५) स्वराट्—

१७. द्यौ, पृथिवी से परे अन्तरिक्षने भी इन्द्रकी महिमा बढ कर है। अपने गृहमें सर्वकारी निपुण इन्द्र स्वराट् (स्वय राजा) गभीर-घोष, रणके लिये बलिष्ठ है ॥९॥ —नोधा गोतम-पुत्र, १।६१

(६) नृपति—

१८ हे नृपति इन्द्र, तुम तेहरी रस्सी के समान ओजकी गाय हो। तीनो भूमि (द्यौ, पृथिवी, आकाश), तीन प्रकाश (सूर्य, बिजली, अग्नि) हो। तुम इस सारे भुवनको वहन करते हो। तुम सदा जन्मसे (ही) शत्रु-रहित हो ॥८॥ —कृत्स आंगिरस, १।१०२

(७) राजा—

१९. हे इन्द्र, श्येन (पक्षी) द्वारा लाये छाने गये सुरामय सोमको मदके लिये पियो। तुम्ही शाश्वत प्रजाओंके पतिराजा हो ॥३॥ —तिरश्ची आंगिरस, ८।८४

(८) राजपुत्र, राजदुहिता—

२० हे अश्विद्वय, वृद्ध (राजाओं) की तरह सबेरे तुम स्तुति गाते हो। पूजनीयो, दिन-दिन घर जाते हो। किसके ध्वंसक होते हो। हे दोनों नेताओ, किसके (सोम)-सवनमें राजपुत्रकी तरह तुम जाते हो ॥३॥ हे अश्विद्वय, मैं घोषा राजदुहिता घोषा तुम दोनों नेताओंके पास आई, तुमसे पूछती हूँ। मेरे पास दिनमें रहो, रातमें रहो, अश्वयाले रथी सनु (पुत्र) मुझे प्रदान करो ॥५॥ —घोषा, १०।४०

२७. समानो मन्त्र समितिः समानी समान मन सहचित्तमेषा।
समान मन्त्रमभिमन्त्रये व समानेन वो हविषा जुहोमि ॥३॥
—१०।१९१

(३) कुलप, (४) व्राजपति

२८ श्रात हविरोष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो विमध्य।
परि त्वासते निधिभि. सखाय कुलपा न व्राजपति चरन्त ॥२॥
—१०।१७९

(५) पुरोहित (प्रधान-मन्त्री)

२९ यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण।
त प्रत्नास ऋषयो दीध्याना पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्व ॥१॥
—४।५०

३०. इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं वन्वन्ता प्र सुदासमावतं।
ब्रह्माण्येषा शृणुत हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत् पुरोहिति ॥४॥
—७।८३

२७. (इनका) मन्त्र समान हो, समिति समान हो, चित्त-सहित मन समान हो। तुम्हें एकसे मन्त्र अभिमन्त्रण करता हूं, एक सी हविसे तुम्हारे लिये हवन करता हूं ॥३॥

—सवनन, १०।१९१

(३) कुलप, (४) व्राजपति

२८. हे इन्द्र, हवि पक गई, आओ, सूर्य मध्यकाल (दोपहर) में पहुंच गया। जैसे विचरते व्राजपतिको कुलप, वैसे निधियोंके साथ सखा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं॥२॥

—प्रतर्दन काशिराज, १०।१७

(५) पुरोहित (प्रधान-मन्त्री)

२९. जिस बृहस्पतिने एकाएक (अपनी) शक्तिसे पृथिवीके अन्तों तक को थाम्हा। जो गड़गड़ाहटसे तीनों स्थानोंमें है। उस मधुर जिह्वावाले (बृहस्पति) को प्राचीन ध्यानी विप्र ऋषियोंने (अपने) सम्मुख रक्खा॥१॥

—वामदेव, ४।५०

३०. हे इन्द्र-वरुण, तुमने दुर्धर्ष आयुधों द्वारा अप्रतिम भेदको मारते हुए सुदासको रक्षा की। इनके मन्त्रोंको युद्धमें सुनो, तृत्सुओंकी पुरोहिताई सत्य सिद्ध हुई॥४॥

—वसिष्ठ, ७।८३

अध्याय १२

शिक्षा आदि

§१ शिक्षा

१. य इन्द्र शुष्मो मघवन्ते अस्ति शिक्षा सखिभ्य: पुरुहूत नृभ्य ।
त्व हि दृळ्हा मघवन्विचेता अपा वृधि परिवृत न राध ॥२॥

—७।२७

२. यदेषामन्यो अन्यस्य वाच शाक्तस्येव वदति शिक्षमाण. ।
सर्वं तदेषा समृधेव पर्व यत् सुवासो वदथ नाध्यप्सु ॥५॥

—७।१०३

३. य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टव ।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेव भारत जन ॥१२॥

—३।५३

§२ स्वास्थ्य

४. नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै । त्वोतासोन्यर्वता ॥२॥

—१।८

५. ससेन चिद्विमदायावहो वस्वाजावद्रि वावसानस्य नर्तयन् ॥३॥

—१।५१

§३ रोग

६. यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे ।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥११॥

अध्याय १२

शिक्षा, स्वास्थ्य

§१. शिक्षा

१. हे मघवन् पुरुहूत (बहुनिमन्त्रित) इन्द्र, जो तुम्हारा बल है, उसे (हमारे) सखा नरोंको प्रदान करो। हे मघवन्, तुमने दृढ़ (पुरियों) को नष्ट किया, किन्तु तुम (अपनी) छिपी निधिको हमारे लिए प्रकट कर दो ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।२७

२. इन (मेंढकों) में से एक दूसरे का वचन शिष्यको सिखाने सा बोलता है। जब जलमें तुम सुवाच बोलते हो, तो इनका सारा अंग बढ़ सा जाता है ॥५॥

—वसिष्ठ, ७।१०३

§२. स्वास्थ्य

४. (हे इन्द्र), जिस तुम्हारी रक्षासे हमलोग इन शत्रुओंको मुष्टि-युद्ध द्वारा रोक दें ॥२॥

—मधुच्छन्दा विश्वामित्र-पुत्र, १।८

५. हे इन्द्र, तुमने युद्धमें पाषाण (वज्र) नचाते स्तुतिकर्ता विमदको अन्न प्रदान किया ॥३॥

—सव्य आङ्गिरस, १।५१

§३. रोग

६. जब शक्ति रखती इन ओषधियोंको मैं हाथमें लेता हूँ, तो यक्ष्मा रोगकी आत्मा नाशो और पकड़नेके पूर्व (ही) नष्ट हो जाती है ॥११॥

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्ग परुष्परुः।
ततो यक्ष्मं वि बाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥२१॥

—१०।९७

७. मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनं ॥१॥
—१०।१६१

८. उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवं।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥११॥
—१।५०

९. अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१॥

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात्।
यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥२॥

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोर्हृदयादधि।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः प्लाशिभ्यो वि वृहामि ते ॥३॥

ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां[1] प्रपदाभ्यां।
यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदाद् भंससो वि वृहामि ते ॥४॥

मेहनाद्वनंकरणाल्लोमभ्यस्ते नखेभ्यः।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ॥५॥

अङ्गादङ्गाल्लोम्नो लोम्नो जातं पर्वणि पर्वणि।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ॥६॥

—१०।१६३

---

[1] पार्णिभ्यां—निर्णय सागर प्रेस की पुस्तक में

जैसे उग्र (पुरुष) संघर्षमें, वैसे ही ओषधियो, तुम जिसके अंग-अंग पोर-पोरमें प्रविष्ट होती हो, तो (उसके) यक्ष्मा (रोग) को बाधित करती हो ॥१२॥

—भिषग् अथर्वा-पुत्र, १०।९७

७ जीनेके लिए हवि द्वारा मैं तुम्हें अज्ञात यक्ष्मा (रोग) या राजयक्ष्मासे मुक्त करता हूं। यदि भूतग्रहने इसे पकड़ा, तो उससे इसे इन्द्र और अग्नि मुक्त करें ॥१॥

—यक्ष्मनाशन, १०।१६१

८ मित्र-प्रकाशवाले सूर्य, आज उगते उच्चतम द्यौपर आरोहण करते मेरे हृद्रोग, पीलियाको नष्ट करो ॥११॥

—प्रस्कण्व कण्व-पुत्र, १।५०

९ तेरी दोनों आंखोंसे, दोनों नाकोंसे, दो कानोंसे, ठुड्डीके ऊपरसे, मस्तिष्कसे, जिह्वासे, शीर्षस्थानसे तेरे यक्ष्म (रोग) को मैं दूर करता हूं ॥१॥

तेरी ग्रीवासे, धमनियोंसे, हड्डीके जोड़ोंसे, दोनों कन्धोंसे, दोनों बाहुओंसे, हाथसे तेरे यक्ष्मको मैं दूर करता हूं ॥२॥

तेरी आंतोंसे, गुदाओंसे, हृदयसे, मूत्राशयसे, यकृत्से, प्लीहासे तेरे यक्ष्मको दूर करता हूं ॥३॥

तेरे दोनों ऊरुओंसे, दोनों जांघोंसे, दोनों गुल्फोंसे, दोनों पैरके पंजोंसे, दोनों नितंबोंसे तेरी कटि और मलद्वारसे यक्ष्मको दूर करता हूं ॥४॥

तेरे मूत्रक काम-तत्त्व (लिंग) से, तेरे रोमोंसे, नखोंसे, तेरी सारी आत्मा (शरीर) से उस यक्ष्मको दूर करता हूं ॥५॥

अंग-अंगसे, रोम-रोमसे, पोर-पोरमें पैदा हुए सारे आत्मा (शरीर) से तेरे उस यक्ष्म को दूर करता हूँ ॥६॥

—विवृहा [redacted], १०।१६३

१० युव नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय।
घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्त ।।७।।
—१।११७

§४ चिकित्सा

११. यत्रौषधी: समग्मत राजान: समिताविव।
विप्र: स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातन: ।।६।।

१२. उत त्या दैव्या भिषजा शं न: करतो अश्विना।
युयुयातामितो रपो अप स्त्रिध: ।।८।।
—८।१८

१३. त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रि: पार्थिवानि त्रिरुदत्तमद्भ्य: ।
ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म्म वहतं शुभस्पती ।।६।।

क्व त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क्व त्रयो वन्धुरो ये सनीळा: ।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथ: ।।९।।
—१।३४

१४ सोमस्य मित्रावरुणोदिता सूर आ ददे। तदातुरस्य भेषजं।।१७।।
—८।६१

१५ याभि: पक्थमवथो याभिरध्रिगुं याभिर्बभ्रुं विजोपस: ।
ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गतं भिषज्यतं यदातुरं।।१०।।
—८।२२

१०. हे दोनो नेताओ, तुमने स्तुतिकर्त्ता कृष्ण-पुत्र विश्वकके लिये (उसके पुत्र) विष्णापुको दिया। तुमने पिताके घर बैठी बुढ़ाती घोषाको पति प्रदान किया ॥७॥ (५।६०।७)

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।११७

६४. चिकित्सा

११ समितिमें राजाओंकी तरह जहां ओषधियां एकत्रित होती हैं, वह विप्र राक्षसनाशक रोग-निवारक भिषग् कहा जाता है ॥६॥

—भिषग् अथर्वा-पुत्र, १०।९७

१२ और वे दिव्य भिषग् अश्विद्वय हमारा मंगल करें, यहांसे पाप हटावें, शत्रुओंको दूर भगावें ॥८॥

—इरिम्बिठि, ८।१८

१३ हे अश्विद्वय, हमें द्यौसे तीन बार पृथिवीसे, तीन बार आकाशसे भेषज (दवा) दो। हे शुभके स्वामियो, मेरे पुत्रके लिये शुभ स्वास्थ्य दो, तीन प्रकारका शरण लाओ ॥६॥

हे नासत्यो, तुम्हारे तेहरे रथके तीन चक्र कहां हैं? नाभि-युक्त जो धुरे तुम्हारे वह तीनों कहां हैं? बलवान् गर्दभका जोतना कब होगा, जिसके द्वारा तुम यज्ञमें आते हो ॥९॥

—हिरण्यस्तूप, १।३४

१४ हे मित्र और वरुण, सूर्य उगने में सोम ग्रहण करता हूं। यह आतुर (रोगी) का भेषज है ॥१७॥

—हर्यत प्रगाथ-पुत्र, ८।६१

१५ जिन (ओषधियों) के द्वारा तुमने पक्थकी रक्षा की, जिनसे अध्रिगु, जिनसे असहाय बभ्रुकी रक्षा की, उन्हीं साथ हे अश्विनो, शुभ्र तेजोंसे आओ, आतुरकी चिकित्सा करो ॥१०॥

—सोभरि काण्व-पुत्र, ८।२२

अध्याय १३

वेष-भूषा

§१ वस्त्र

१. युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमान ।
त धीरास कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्त ॥४॥
—३।८

२. अभ्रातेव पुस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनाना।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव निरिणीते अप्स ॥७॥
—१।१२४

३. उत त्व पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्व शृण्वन्न शृणोत्येना।
उतो त्वस्मै तन्व वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासा॰॥४॥
—१०।७१

४. एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवति शुक्रवासाः।
विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अद्येह सुभगे व्युच्छ ॥७॥
—१।११३

५. दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना वि जागृविर्विदथे शस्यमाना।
भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना सेयमस्मे सनजा पित्र्याधी.॥२॥
—३।३९

अध्याय १३

वेष-भूषा

§१ वस्त्र

१ सुन्दर वस्त्र पहने ढका युवा (यूप) आया, उत्पन्न हो वह श्रेयान होता है। ज्ञानी धीर कवि मनमें देवोंकी कामना करते उस (यूप) को उठाते हैं॥४॥

—विश्वामित्र, ३।८

२ भ्राता-विहीना जैसे पुरुषोंको, रथपर चढ़ी मानो धनोंकी प्राप्तिके लिए जाती है। जैसे पतिको चाहती सुवस्त्रा जाया, वैसे ही उषा हँसती हुई अपने सौंदर्यको खोलती है॥७॥

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।१२४

३ किसीने देखते हुए (भी) वाणीको नहीं देखा, किसीने सुनते हुए भी इसे नहीं सुना, और जैसे सुवस्त्रा स्निग्ध जाया पतिके लिये, वैसे किसीके लिये अपने शरीरको खोलती है॥४॥

—बृहस्पति, १०।७१

४. यह (अन्धकार) दूर करती, शुभ्र-वस्त्रा युवती द्यौ-दुहिता सबकी स्वामिनी दिखाई पड़ी। हे सुभगे उषा, आज यहाँ पार्थिव धन हमें प्रदान कर॥७॥

—कुत्स आंगिरस, १।११३

५ (हे इन्द्र), पहले द्यौमें उत्पन्न हो जागरूक, विदथ (यज्ञ-स्थान) में गाई जाती, सो यह सुन्दर-वस्त्रा हमारे पितरोंकी सनातन (स्तुति) है॥२॥

—विश्वामित्र, ३।३९

६. आधीपमाणाया पति. शुचायाश्च शुचस्य च।
वासो वायो' वीनामा वासांसि मर्मृजत् ॥६॥

—१०।२६

७. मा नो अग्ने वीरते परा दा॰ दुर्वाससे मतये मा नो अस्यै।
मा न क्षुधे मा रक्षस ऋतावो मा नो दमे मा वन आ जुहूर्था ॥१९॥

—७।१

१. द्रापी—

८ यो वा यज्ञेभिरावृतोऽधिवस्त्रा वधूरिव।
सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना ॥१३॥

—८।२६

९ दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापति पिशंग द्रापिं प्रति मुचते कवि'।
विचक्षण प्रथयन्नापृणन्नुर्वजीजनत् सविता सुम्नमुक्थ्य ॥२॥

—४।५३

१० जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चत द्रापिमिव च्यवानात्।
प्रातिरत जहितस्यायुर्दस्रादित् पतिमकृणुत कनीना ॥१०॥

—१।११६

११. बिभ्रद् द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजं। परिस्पशो निषेदिरे ॥१३।

—१।२५

२. अत्क—

१२ श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्धृष्णुर्वज्री शवसा दक्षिणावान्।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वर्णनृतविषिरो बभूथ ॥३॥

—६।२९

६. इच्छा करती शुचा (बकरी) और शुच (बकरे) के पति (पूषन्) भेड़के (लोमके) वस्त्र बुनते वस्त्रोंको चमकाते हैं ॥६॥

—विमद, १०।२६

७. हे अग्नि, हमारे वीर (सन्तान)-धनको न दूर करना, बुरे वस्त्र न देना, न कुबुद्धि, न हमें भूख देना। हे ऋत(सत्य)-वान्, हमें राक्षसको मत देना, हमें न घरमें दुखाना, न वनमें ॥१९॥

—वसिष्ठ, ७।१

८ वस्त्र पहनी वधूकी तरह, हे अश्विद्वय, जो यज्ञसे परिवृत हो तुम्हारी पूजा करता है, उसको तुम यशमंगल देते हो ॥१३॥

—विश्वमना आंगिरस, ८।२६

१. द्रापि (कंचुक, चोगा)—

९ धीरा धारक, भुवनका प्रजापति, कवि, पीली द्रापि पहनता है। विचक्षण सविता प्रख्यात होते, परिपूर्ण करते स्तुत्य सुख उत्पन्न करता है ॥२॥

—वामदेव, ४।५३

१० हे अश्विद्वय, जैसे जीर्ण द्रापिको, वैसे ही च्यवानके बुढ़ापेको तुमने निकाल फेंका। हे दर्शनीय-द्वय, तुमने अनाथ च्यवनकी आयु बढ़ाई, उसे कन्याओंका पति बनाया ॥१०॥

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।११६

११. वरुण सुनहली द्रापिको पहने चमकीली पोशाकवाले हैं चारों ओर (उनके) चर गुप्तचर बैठे हैं ॥१३॥

—शुनःशेप अजीगर्त-पुत्र, १।२५

२. अत्क—

१२ हे वज्रधारी, वस्त्रसे साधु फैलानेवाली, धर्मा (इन्द्र) स्तोताओंके लिये तुम्हारे पैरोंको (सोम) सेवा करते हैं। हे नेता, सुर्वाणका सुन्दर अत्क पहने तुम मधु नाशनेको दिखाई देते हो ॥३॥

—भरद्वाज, ६।२९

१३. ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात् प्रत्यङ् चित्रा विभ्रदस्यायुधानि।
वसानो अत्कं सुरभि दृशे कं स्वर्ण नाम जनत प्रियाणि ॥७॥
—१०।१२३

३. शिप्र—

१४ शतं ते शिप्रिन्नूतयः सुदासे सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु।
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्यास्मे द्युम्नमधि रत्नं च धेहि ॥३॥
—७।२५

१५ पीवो अश्वाः शुचद्रथा हि भूतायः शिप्रा वाजिनः सुनिष्काः।
इन्द्रस्य सूनो शवसो न पातो नु वश्चेत्यग्रिय मदाय ॥४॥
—४।३७

§२ भूषण

१. कर्णाभरण—

१६ उत न कर्णशोभना पुरूणि धृष्णवा भर। त्वं हि शृण्विषे वसो ॥३॥
—८।६७

१७ हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः।
अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरोस्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे ॥१४॥
—१।१२२

१३. वह गन्धर्व ऊपर स्वर्गमें अवस्थित है, वह (हमारे) सामने विचित्र आयुध धारण करते, सुगन्धित सुवर्ण अत्क पहने, देखनेमें सुन्दर प्रिय (वस्तुओं) को उत्पन्न करता है ॥७॥

—वेन भार्गव, १०।१२३

३. शिप्र (मुकुट, पगड़ी)—

१४. हे उष्णीषधारी (इन्द्र), सुदासको अपनी सैकड़ों सहायतायें (रक्षायें) हैं। तुम्हारे सहस्रों उपकार और दान (उसे प्राप्त) होवें। (हमारे) हिंसक मर्द को मारो। हमें यश और रत्न प्रदान करो ॥३॥

—वसिष्ठ, ७।२५

१५. हे ऋभुओ, तुम्हारे अश्व पीन हैं, रथ चमकीले हैं। (तुम) सोने के शिप्रवाले निष्कधारी[1] अन्नवाले हो। इन्द्रके पुत्रो, बलके नातियो, तुम्हारी प्रसन्नता (नशा) के लिये (यह) श्रेष्ठ (सानपान) है ॥४॥

—वामदेव, ४।३७

९२. भूषण

१. कर्णभूषण—

१६. हे दानुवर्षक, धन-सम्पन्न वसु (इन्द्र), तुम्ही (सर्वत्र) सुने जाते हो, हमारे लिए बहुत सारे कर्णशोभन (कुण्डल) लाओ ॥३॥

—कुरुसुति ८।७६

१७. सारे देव और मरुद्गण हमें सुवर्ण-कर्ण, मणिग्रीव, (पुत्र) प्रदान करें। यह अर्य (उषा) तुरन्त स्तुति को चाहती आवें, हम दोनों पर प्रसन्न हों ॥१४॥

—कक्षीवान् दीर्घतमापुत्र, १।१२२

[1] सोने का कड़ा पहिननेवाला।

२. सोने का कण्ठा (निष्कग्रीव)—

१८. आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद्वर्धन्त कृष्टय ।
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एनामध्वा न वाजयु ॥३॥

—५।१९

१९. स्वायुधास इष्मिण सुनिष्का उत स्वय तन्व शुम्भमाना ॥११॥

—७।५६

२०. देखो १७

३. रुक्मवक्ष—

२१ असेष्वा मरुत खादयो वो वक्ष सु रुक्मा उपशिश्रियाणा ।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमान ॥१३॥

—७।५६

४. खादि, ५ ऋष्टि, ६. शिप्र—

२२. असेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्ष सु रुक्मा मरुतो रथे शुभ ।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्यो शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययी ॥

—५।५४

२३ त्वेष गण तवस खादिहस्त धुनिव्रत मायिन दातिवार।
मयोभुवो ये अमिता महित्वा वदस्व विप्र तु विराधसो नृन् ॥२॥

—५।५८

२४ आ य हस्ते न खादिनं शिशु जात न विभ्रति।
विशामग्नि स्वध्वर॥४०॥

—६।१६

२. सोनेका कंठा—

१८ श्वैत्रेयके सारे जन्तु, मनुष्य यज्ञके साथ बढ़े। निष्कग्रीव बृहदुक्थ मानो इस (सोम) द्वारा (लूट-) धन चाहता ॥३॥

—वव्रि आत्रेय, ५।१९

१९ सुन्दर आयुधवाले, फुर्तीले, सुन्दर निष्क पहने वह मरुद्गण स्वयं (हमारे) शरीरको सजाते हैं ॥११॥

—वसिष्ठ, ७।५६

२० देखो ऊपर १७

३. सुनहली माला—

२१ हे मरुतो, तुम्हारे कन्धोंपर खादियाँ, तुम्हारी छातियोंपर स्वर्णाभूषण पड़े हुए हैं। पानी देती वृष्टिमें बिजलीकी तरह चमकते आयुध तुम चलाते हो ॥१३॥

—वसिष्ठ, ७।५६

४. खादि (कंकण), ५. ऋष्टि (भाला), ६. शिप्र (शिरस्त्राण)—

२२ हे मरुतो, तुम कन्धोंपर ऋष्टि (भाले), पैरोंमें खादि (कड़े), छातियोंपर सोना आभूषण, धारे रथपर अग्निकी तरह चमकने वाले बिजली तुम्हारे हाथोंमें, और सिरपर फैली सुनहरी शिप्रा (पगड़ी) हैं ॥११॥

—श्यावाश्व, ५।५४

२३ हे शिप्र, दीप्तिमान्, शक्तिशाली, हाथमें खादि (कड़ा) धारे, सुखदायक, मायावी, दाता, सुखदायक, अमित महिमावाले, विशाल ऐश्वर्य-युक्त, सेना (मरुतों) की तुम वन्दना करो ॥२॥

—श्यावाश्व, ५।५८

२४. जिन सुन्दर अश्ववाले अग्नियो (अग्निवत् वीर) हाथमें खादियो वाले नवजात शिशुकी तरह पहन सकते हैं ॥४०॥

—भरद्वाज, ६।१६

७. ओपश—

२५. स्तोमा आसन् प्रतिधय. कुरीर छन्द ओपश.।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगव ॥८॥

—१०।८५

§३ सज्जा

१. कपर्द

२६ रथीतम कपर्दिनमीशान राधसो मह् । राय सखायमीमहे ॥२॥

—६।५५

२७. श्वित्यचो मा दक्षिणतस्कपर्दा धिय जिन्वासो अभि हि प्रमन्दु ।
उत्तिष्ठन् वोचे परि बर्हिषो नृभ्न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः ॥१॥

—७।३३

२८ चतुष्कपर्दा युवति सुपेशा घृतप्रतीका वयुनानि वस्ते।
तस्या सुपर्णा वृषणा निषेदतुर्यत्र देवा दधिरे भागधेय ॥३॥

—१०।११४

२. क्षौर

२९ यदुद्वतो निवतो यासि बप्सत् पृथगेषि प्रगर्धिनीव सेना।
यदा ते वातो अनवाति शोचिर्वप्तेव श्मश्रु वपसि प्रभूम ॥४॥

—१०।१४२

७. ओपश—

२५. सूर्याके लिए स्तोम (स्तोत्र) चक्के थे, कुरीर छन्द ओपश[1] था, अश्विद्वय वर थे, अग्नि अगुवा था ॥८॥

—सूर्या, १०।८५

६३. सज्जा

१ कपर्द (वेणी)—

२६. सर्वश्रेष्ठ रथी, कपर्दधारी, महान् ऐश्वर्यके ईशान, (अपने) सखा पूषन्से हम धन मांगते हैं ॥२॥

—भरद्वाज, ६।५५

२७ गोरे, दाहिनी ओर जूड़ा रखनेवाले सुबुद्धि वे (वसिष्ठ) मुझे बहुत प्रसन्न करते हैं। यज्ञसे उठते मैं आदमियोंको कहता हूँ, "वसिष्ठ-सन्तान मुझसे दूर न जायें" ॥१॥ (३।६)

—वसिष्ठ, ७।३३

२८ चार वेणियोंवाली, सुरूपा, सुवस्त्रा। उस (वनस्पति) भुवन में पराक्रमी दो पक्षी बैठते हैं। जहाँ देवता लोग अपना-अपना भाग पाते हैं ॥३॥

—ऋषि वैरूप, १०।११४

२. क्षौर—

२९ (हे अग्नि), जब तुम ऊंचे (पहाड़ों) निचले (उपत्यकाओं) में जाते, छुरे सजी सेनाकी तरह अलग-अलग जाते हो। जब वायु तुम्हारा अनुगमन करता है। क्षुरधारोंसे जैसे नाई वैसे तुम वहांकी भूमिको मूड़ते हो ॥४॥

—अग्नि, १०।१४२

---

[1] सपटीरा (?)

अध्याय १४

क्रीड़ा, विनोद

§१. नृत्य

१. देखो (१२।५)

—१।५१

§२ संगीत

२. मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततन । गाय गायत्रमुक्थ्य ॥१४॥

—१।३८

§३. पान

१. सोम—

३ य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुत । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥७॥
यो अप्सु चन्द्रमा इव सोमश्चमूषु ददृशे । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥८॥

—८।७१

स्वादिष्टया मदिष्टया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुत ॥१॥

—९।१

४ एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीयति । अभि द्रोणान्यासदं ॥१॥

—९।३

अध्याय १४

क्रीडा-विनोद

६१. नृत्य

१ देखो १२।५, १३।१२

६२. संगीत

२ मुखमें श्लोक रचो, मेघकी तरह फैलो, उक्थ (गान)-योग्य गायत्र गाओ ॥१४॥

—कण्व घोर-पुत्र, १।३८

६३. पान

१. सोम—

३ हे इन्द्र तुम्हारे लिए जो सोम चमसोंमें (प्यालों) और चमुओं (सुराहियों) में छाना गया। इसे तुम पियो, तुम स्वामी हो ॥७॥ पानीमें चन्द्रमाकी तरह जो सोम चमुओंमें दिखाई देता है। इसे तुम पियो, तुम स्वामी हो ॥८॥

—कुसीदी कण्व-पुत्र, ८।७१

हे सोम, छाने हुए स्वादिष्ट, मदिष्ट धारा-सहित इन्द्रके पीनेके लिए तुम क्षरित होओ ॥१॥

—मधुच्छन्दा विश्वामित्र-पुत्र, ९।१

४. यह अमर देव (सोम) पात्रों में बैठनेके लिए पक्षीकी तरह उड़कर जाता है ॥२॥

—शुनःशेप, ९।३

५ समिद्धो विश्वतस्पति पवमानो वि राजति । प्रीणन् वृषा कनिक्रदत् ॥१
—९।५

६ मृजन्ति त्वा दश क्षिप्रा हिन्वन्ति सप्त धीतय ।
अनु विप्रा अमादिषु ॥४॥

पुनान कलशेष्वावस्त्राण्यरुपो हरि । परि गव्यान्यव्यत ॥६॥
—९।८

७ उपास्मै गायता नर पवमानायेन्दवे । अभि देवा इयक्षते ॥१॥

स न पवस्व श गवे श जनाय शमर्वते । श राजन्नोषधीभ्य ॥३॥

नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन । इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥६॥
—९।११

८ एप धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभि । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृत ॥१॥
एप पुरू धियायते बृहते देवतातये । यत्रामृतास आसते ॥२॥

एप शृगाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो वृषा । नृम्णा दधान ओजसा ।४॥
—९।१५

९ आ कलशेषु धावति पवित्रे परिपिच्यते । उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते ॥४॥

तमु त्वा वाजिन नरो धीभिर्विप्रा अवस्यव । मृजन्ति देवतातये ॥७॥
—९।१७

५ पराक्रमी पति उद्दीप्त पवमान (सोम) शब्द करता है। प्रसन्न करता चारों ओर विराजता है ॥१॥

—असितदेवल काश्यप,

६. (हे सोम,) दस फुर्तीली (अंगुलियां) तुम्हें माँजती हैं, सात स्तोता तुम्हें प्रेरित करते हैं। फिर विप्र मस्त होते हैं ॥४॥

लाल सुनहला (सोम) कलशों में क्षरण करता दूध रूपी वस्त्र पहनता है ॥६॥

—असितदेवल, ९।८

७. हे सखो, देवोंकी उपासना करने, इन क्षरण करते सोमका गान करो ॥१॥

हे राजन् (सोम), सो तुम हमारी गौओंके लिए मंगल क्षरण करो, जनके लिए मंगल, घोड़ेके लिए मंगल, ओषधियोंके लिए मंगल क्षरण करो ॥३॥

नमस्कारके साथ (सोमके) पास जाओ, दहीके साथ मिलाओ। इन्द्रको सोम प्रदान करो ॥६॥

—असितदेवल, ९।११

८ यह शूर (सोम) सूक्ष्म धारासे तेज रथों द्वारा इन्द्रके (निम्न) स्थानमें जाता है ॥१॥

जहाँ अमर रहते हैं, उस महान् देवयज्ञमें यह (सोम) बहुत ध्यान करता है ॥२॥

यह ओजसे पराक्रम करता, यूथपति वृषभकी तरह दोनों तीक्ष्ण सींगोंको हिलाता है ॥४॥

—असितदेवल, ९।१५

९. यह (सोम) कलशोंमें शोभता है, पवित्र (छन्ने) में सींचा जाता है, उषाओं (गायों) द्वारा यज्ञोंमें बढ़ता है ॥८॥

(हे सोम), उन तुम्हें रक्षा की कामनावाले मित्र सब मांजते हैं ॥७॥

१० एते सोमास आशवो रथा इव प्र वाजिन । सर्गा सृष्टा अहेषत ॥१॥
एते वाता इवोरवपर्जन्यस्येव वृष्टय । अग्नेरिव भ्रमा वृथा ॥२॥
एते पूता विपश्चित सोमासो दध्याशिरः। विपा व्यानशुर्धिय ॥३॥
त्व सोम पणिभ्य आ वसु गव्यानि धारय । तत तन्तुमचिक्रद ॥७॥
—९।२२

११ वीन्द्र यासि दिव्यानि रोचना वि पार्थिवानि रजसा पुरुष्टुत।
ये त्वा वहन्ति मुहुरध्वरा उप ते सु वन्वन्तु वग्वना अराधस ॥२॥
—१०।३२

१२ स सुत पीतये वृषा सोम पवित्रे अर्षति। विघ्नन्रक्षासि देवयु ॥१॥
—९।३७

१३ असृग्रन् देववीतये त्यास कृत्व्या इव। क्षरन्त पर्वतावृध ॥१॥
परिष्कृतास इन्दवो योषेव पित्र्यावती। वायु सोमा असृक्षत ॥२॥
स पवस्व धनजय प्रयन्ता राधसो मह । अस्मभ्य सोम गातुवित् ॥५॥
—९।४६

१४ अभि त्वा योषणो दश जारं न कन्यानूषत।
मृज्यसे सोम सातये ॥३॥
—९।५६

१५ पवस्व गोजिदश्वजिद्विश्वजित् सोम रण्यजित्। प्रजावद्रत्नमाभर ॥१॥
—९।५९

१६ प्र गायत्रेण गायत पवमान विचर्षणिम्। इन्दु सहस्रचक्षुस ॥१॥
—९।६०

१० ये श्येनोंकी तरह शीघ्रगामी सोम, छोड़े घोड़ों से हिनहिनाते हैं ॥१॥
ये विस्तृत वायु से, पर्जन्य-वृष्टि से, अग्निशिखा से, चलते हैं ॥२॥
यह विद्वान् विप्र पवित्र, दधि-मिश्रित सोम मन को प्राप्त करते हैं ॥३॥
हे सोम, तुम पणियोंसे गो-धनको (छीन) लेते हो, फैले तन्तु(यज्ञ) में शब्द करते हैं ॥७॥

—असितदेवल, ९।२२

११ हे बहुस्तुत वीर, इन्द्र, द्यौ और पृथिवी-सम्बन्धी लोकोंको प्रकाशित करते तुम जीते हो। जो तुम्हें प्राय यज्ञ में ले जाते हैं, वह अ-दानी बकवादियों को जीतें ॥२॥

—कवष ऐलूष, १०।३२

१२. यह राक्षसोंका नाश करता है, देवकामी, पराक्रमी सोम पीनेके लिये छाना हुआ पवित्र (चषक) में जाता है ॥१॥

—रहूगण ९।३७

१३. पत्थरोंसे बढ़े, कार्यपरायण घोड़ोंकी तरह देवपानके लिए क्षरित होते (सोम) भेजे गये हैं ॥१॥
पितावाली परिष्कृत वधू की तरह सोम (इन्दु) वायुके पास जाते हैं ॥२॥
हे धन जीतनेवाले, मार्गवेत्ता सोम, हमें धन, यश देने क्षरित होओ॥४॥

—अयास्य आंगिरस, ९।४६

१४. हे सोम, कन्या जैसे प्रियतमको, वैसे तुम्हें दस अंगुलियां बुलाती हैं, देनेके लिए तुम सींचे जाते हो ॥३॥

—अवत्सार, ९।५६

१५ हे गो-विजयी, अश्व-विजयी, विश्व-विजयी, सुर-विजयी सोम, क्षरित होओ, पुत्र-सहित रत्न ले आओ ॥१॥

—अवत्सार, ९।५९

१६ सहस्र-चक्षु सोम, मा, बहुस्तवन पवमानका गायत्र (साम) द्वारा गान करो ॥१॥

—अवत्सार, ९।६०

१७. अया वीती परिस्रव यस्त इन्दो मदेष्वा। अवाहन् नवतीर्नव ॥१॥
पुर सद्य इत्था धिये दिवोदासाय शवरं। अध त्य तुर्वश यदुं ॥२॥
जघ्निर्वृत्रममित्रिय सस्निर्वाजं दिवेदिवे।
गोषा उ अश्वसा असि ॥२०॥

—९।६१

१८. सुत इन्द्राय विष्णवे सोम कलशे अक्षरत्।
मधुमा अस्तु वायवे ॥३॥
एते असृग्रमाशवोति ह्वरासि बभ्रव । सोमा ऋतस्य धारया ॥४॥
इन्द्र वर्धन्तो अप्तुर कृण्वन्तो विश्वमार्यं। अपघ्नन्तो अराव्ण ॥५॥
—९।६३

१९ अभ्यर्ष सहस्रिण रयिं गोमन्तमश्विन । अभि वाजमुत श्रव ॥१२॥
[1]सोमो देवो न सूर्योऽद्रिभि पवते सुत । दधान कलशे रस ॥१३॥
—९।६३

२० हिन्वन्ति सूरमुस्रय स्वसारो जामयस्पतिं । महामिन्दु महीयुव ॥१॥
यस्य वर्णं मधुश्चुत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभि [1]। इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥८॥
यस्य ते मद्य रस तीव्र दुहन्त्यद्रिभि । स पवस्वाभिमातिहा ॥१५॥
—९।६५

२१ ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे। ये वाद शर्यणावति ॥२२॥

---

[1] यद्रिचि—निर्णय सागर प्रेस

१७ हे सोम, उस पानके साथ बहो, तुम्हारे जिस (पानके) मदमें हो
(इन्द्रने) निन्नानवे (पुरियों) का संहार किया ॥१॥
इस प्रकार तुरन्त शम्बरको, पुरोंको दिवोदासके लिए (नष्ट किया),
और उस तुर्वश और यदुको भी ॥२॥
हे सोम, तुमने अमित्र वृत्रको मार कर, रोज-रोज अन्न दिया, तुम
गोदाता और अश्वदाता हो ॥२०॥

—अमहीयु आंगिरस, ९।६१

१८ इन्द्रके लिए, विष्णुके लिए छाना सोम कलशमें क्षरित हुआ। वह
वायुके लिए मधुर होवे ॥३॥
पिंगल-वर्ण शीघ्रगामी सोम ऋत (यज्ञ) की धारा द्वारा सुतासोंसे
होते बहते हैं ॥४॥
इन्द्रको बढ़ाते, जल लाते, सब आर्य (कर्म) करते शत्रुओंको विनाश
करते (बहते) हैं ॥५॥

—निध्रुव काश्यप, ९।६३

१९ गाय-अश्व-सहित हजारोंवाला धन, वस्त्र, अन्न और यश हमें दो ॥१२॥
सूर्यकी तरह सोम पत्थरोंसे (तैयार किया) कलशमें रस डालता
क्षरित होता है ॥१३॥

—निध्रुव काश्यप, ९।६३

२० महानताकी कामना करनेवाली (अंगुली रूपी) बहिनें सूरको,
जिससे महान् पति सोमको बनाती हैं ॥१॥
(अध्वर्यु लोग) इन्द्रके पीनेके लिए पत्थरों द्वारा जिस मधुवाले
पीले वर्ण इन्दुओं (सोम) बनाते हैं ॥८॥
हे सोम, तेरे तीव्र मदवालों पत्थरोंसे (पिसकर) निकलते हैं
जो (तुम) दुष्टोंका नाश करने वाले ॥१५॥

—जमदग्नि भृगु-पुत्र, ९।६५

२१. जो सोम परावत (दूर) में जो पास (नजदीक) में छाने गये अथवा
जो यहाँ शर्यणावतमें ॥२२॥

य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्याना। ये वा जनेषु पचसु ॥२३॥
ते नो वृष्टि दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यं। सुवाना देवास इन्दव ॥२४
पवते हर्यंतो हरिर्गृणानो जमदग्निना। हिन्वानो गोरधि त्वचि ॥२५॥
—९।६५

२२. पवित्र ते वितत ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वत।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत् समाशत ॥१॥
—९।८३

२३. प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्य पुनानस्य सयतो यन्ति रहय ॥
यद् गोभिरिन्दो चम्वो समज्यस आ सुवान सोम कलशेषु सीदसि ॥४७
—९।८६

२४ शूरग्राम सर्ववीर सहावा जेता पवस्व सनिता धनानि।
तिग्मायुध. क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाह्ळ साह्वान् पृतनासु शत्रून् ॥३॥
—९।९०

२५ प्र सेनानी शूरो अग्रे रथाना गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना।
भद्रान्कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥१॥
सोम पवते जनिता मतीना जनिता दिवो जनिता पृथिव्या।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णो ॥५॥
ब्रह्मा देवाना पदवी कवीनामृषिर्विप्राणा महिषो मृगाणा।
श्येनो गृध्राणा स्वधितिर्वनाना सोम पवित्रमत्येति रेभन् ॥६॥

जो आर्जीकों (ऋचीकों), जो कर्मनिष्ठों, जो पस्त्योंके बीच अथवा जो पाँचों जनोंमें छाने गये ॥२३॥

छाने जाते वे सोम हमारे लिए द्यौके ऊपरसे वृष्टि और सुवीरताको प्रदान करते क्षरण करें ॥२४॥

यमदग्नि द्वारा स्तुति किया जाता सुनहरा सोम गायके चमड़ेके ऊपर तैयार होता क्षरित होता है ॥२५॥

—यमदग्नि, भृगु-पुत्र, ९,६५

२२ हे ब्रह्मणस्पति (मन्त्रपति सोम), तुम्हारा पवित्र (प्याला) फैला हुआ है, प्रभु तुम गात्रोंमें चारों ओर पहुँचे हो। अतप्त-शरीर (कच्चा व्यक्ति) उसे नहीं पाता। पके वहन करते उसे ठीकसे पाते हैं ॥१॥

—पवित्र आंगिरस, ९,८३

२३. हे सोम, छाने जाते तुम्हारी धारायें सूक्ष्म मेष-लोमको लाँघकर वेगवती हो बहती हैं। जब दो चमुओंमें दूधमें मिलाये जाते हो, तब छाने जाकर कलशोंमें बैठते हो ॥४७॥

—गृत्समद, ९,८६

२४ हे शूर-समूहवाले, सारे वीरोंवाले, पराक्रमी, विजेता धनोंके दाता तीक्ष्ण आयुधवाले, क्षिप्र धनुष चलानेवाले, युद्धमें अजेय, सेनाओंमें शत्रुओंको पराजय करनेवाले हे सोम, तुम क्षरित होओ ॥३॥

—वसिष्ठ, ९,९०

२५ लूटनेवाला सेनानी, शूर, रथोंके आगे जाता है, उसकी सेना हर्षित होती है। इन्द्रके आह्वानको सच्चा बनाता सोम सखाओंके लिए शीघ्र वस्त्र प्रदान करता है ॥१॥

बुद्धियोंका जनक (उत्पादक), द्यौका जनक, पृथिवीका जनक अग्निका जनक, सूर्यका जनक और विष्णुका जनक सोम क्षरित होता है ॥

देवोंका ब्रह्मा, कवियोंका पदज्ञ, विप्रोंका ऋषि, मृगोंका महिष, गिद्धोंका बाज, वनोंका कुल्हाड़ा सोम शब्द करता पवित्र (छान) को पार करता है ॥६॥

त्वया हि न पितर सोम पूर्वे कर्माणि चक्रु पवमान धीरा ।
वन्वन्नवात परिधीरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा न ॥११॥

यथा पवथा मनवे वयोधा अमित्रहा वरिवोविद्धविष्मान् ।
एवा पवस्व द्रविण दधान इन्द्रे स तिष्ठ जनयायुधानि ॥१२॥

—९।९६

२६ उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
षष्टि सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्ष न पक्व धूनवद्रणाय ॥५३॥

—९।९

२७ त गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपन्त धीतयो देवाना नाम बिभ्रती ॥४॥

—९।९९

२८ अव्यो वारेभि. पवते सोमो गव्ये अधि त्वचि ।
कनिक्रदद्वृषा हरिरिन्द्रस्याभ्येति निष्कृत ॥१६॥

—९।१०१

२९ शर्यणावति सोममिन्द्र पिबतु वृत्रहा ।
बल दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्य महदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१॥

आ पवस्व दिशा पत आर्जीकात् सोम मीढ्व ।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत, इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥२॥

हे पवमान सोम, तुम्हारे साथ हमारे पूर्वज धीर पितरोंने कर्म किये। वीरों तथा अश्वों द्वारा तुम शत्रुओंको वेगसे मारते हो। सो तुम हमारे धनिक (मघवा) बनो ॥११॥

जैसे मनुके लिए आयुधधारी, शत्रुनाशक, धन-युक्त, हवि-युक्त हो तुम क्षरित हुए थे, वैसे ही धन धारण करते (हमारे लिए) क्षरित होओ। इन्द्रका आश्रय लो, आयुध पैदा करो ॥१२॥

—प्रतर्दन दिवोदास-पुत्र, ९।९६

२६ हे सोम, तुम हमारे लिए यशस्वी हो प्रसिद्ध तीर्थमें इस धारासे क्षरित होओ। जैसे पका फल पानेके लिए वृक्षको हिलाते हैं, वैसे ही (मारनेपर) शत्रुनाशक सोमने साठ हजार धन हमें दिये ॥५३॥

—कुत्स आंगिरस, ९।९७

२७. क्षरित होते (समय) उस सोमकी पुरानी गाथा द्वारा स्तुति करते हैं। चलनेवाली (सोम रूपी) देवोंकी अंगुलियां हवि (को) धारण करती हैं ॥४॥

—रेभ काश्यप, ९।९९

२८. सोम गोके चमड़े[1]पर भेड़के लोमों के बीच छाना जाता है। पारसमी सुनहला सोम शब्द करता इन्द्रके (मिलन-)स्थानमें जाता है ॥१६॥

—विश्वामित्र वाम्-पुत्र ९।१०१

२९. वृत्रहन्ता (इन्द्र) शर्यणावतमें सोमको पिये। शरीर में बलधारण करते महान् पराक्रम करे। हे सोम, इन्द्रके लिए क्षरित होओ ॥१॥

ऋतवचन-सत्य-श्रद्धा-तपस्या द्वारा छाने गये हे दिशाओंके पति, सेचक, सोम आर्जीकसे क्षरित होओ ॥२॥

---

[1] चमड़ेमें खाने-पीनेकी चीजोंके रखनेका उस समय बहुत रवाज था। सुरा रखनेके चमड़ेकी थैली (१।१९१।१०) और सोम रखनेकी चम थैली (४।१५।१) का उल्लेख मिलता है।

यत्र ज्योतिरजस्त्र यस्मिन्ल्लोके स्वर्हित ।
तस्मिन् मा धेहि पवमानामृते लोके अक्षित, इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥७॥

यत्रानुकाम चरण त्रिनाके त्रिदिवे दिव ।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृत कधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥९॥

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुद प्रमुद आसते।
कामस्य यत्राप्ता कामास्तत्र माममृत कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥११॥
—९।११३

२. सुरा—

३०. हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुराया।
ऊधर्न नग्ना जरन्ते ॥१२॥

—८।२

३१. नस स्वो दक्षो वरुण ध्रुति सा सुरा मर्युर्विभीदको अचित्ति ।
अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥६॥
—७।८६

३२ भोजा जिग्यु सुरभि योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्व या सुवासा ।
भोजा जिग्युरन्त पेय सुराया भोजा जिग्युर्ये अहूता प्रयन्ति ॥९॥
—१०।१०७

§४. जूआ

३३ प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्वृताना ।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान् ॥१॥

न मा मिमेथ न जिहीळ एपा शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत् ।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोरनुव्रतामप जायामरोध ॥२॥

जहाँ निरन्तर ज्योति है। जिस लोकमें स्वर्ग अवस्थित है। हे पवमान सोम, उस अक्षुण्ण, अमर लोकमें मुझे ले चलो, ०॥७॥
जहाँ द्यौके त्रि-स्वर्ग, त्रि-द्योमें इच्छानुसार विचरण होता है, जहाँ लोक ज्योतिष्मान् हैं, वहाँ मुझे अमर बनाओ, ०॥९॥
जहाँ आनन्द और मोद और मुद, प्रमुद अवस्थित हैं, कामकी कामनायें जहाँ प्राप्त होती हैं, वहाँ मुझे अमर बनाओ, ०॥११॥

—कश्यप मारीचि-पुत्र ९।११३

२. सुरा—

३०. जैसे अतरिक्त पिये सुरामें बदमस्तने लड़ते हैं, (गो-)स्तनकी तरह नंगे बकते हैं ॥१२॥

—मेधातिथि काण्व-पुत्र ८।२

३१. हे वरुण, वह दोष अपनेसे नहीं होता, वह सुरा, क्रोध, जुआ, अज्ञान है, (जो) बड़े छोटोंको पथभ्रष्ट करते हैं, नींद भी अनृत जोड़नेवाली, होती है ॥६॥

—वसिष्ठ, ७।८६

३२. भोजदाता (सबसे) पहले सुगन्धित स्थान पाते हैं, भोज सुवस्त्र वधुओंको पाते हैं, भोज आन्तरिक पेय सुराको पाते हैं, भोज उनको जीत लेते हैं, जो बिना बुलाये चढ़ आते हैं ॥९॥

—दिव्य आंगिरस, १०।१०७

९४ जूआ

३३ प्रवातीय बड़े (वृक्ष) की गतिशील पट्टीपर घूमने (पासे) मुझे आनन्दित करते हैं, जैसे मूजवान् (पर्वत) वाले सोमका भक्ष, वैसे (ही) जागरूक काठके पासे मुझे उत्तेजित करते हैं ॥११॥
न मुझे वह हैरान करती थी न क्रोध करती थी। मित्रों और मेरे लिये कल्याणिनी थी। केवल जूयेके घरमें पड़नेसे कारण मैंने अनुरागिनी जायाको तिरस्कार कर दिया ॥२॥

द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितार।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य नाह विदामि कितवस्य भोग ॥३॥

अन्ये जाया परिमृशन्त्यस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्यक्षः।
पिता माता भ्रातर एनमाहुर्न जानीमो नयता बद्धमेत ॥४॥

यदा दीध्ये नदविषाण्येभि परायद्भ्यो' वहीये सखिभ्य ।
न्युप्ताश्च वभ्रवो वाचमक्रत एमीदेषा निष्कृत जारिणीव ॥५॥

सभामेति कितवः पृच्छमानो "जेष्यामीति" तन्वा शूशुजान ।
अक्षासो अस्य वितिरन्ति काम प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि ॥६॥

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरत क्व स्वित्।
ऋणावा विभ्यद् धनमिच्छमानो न्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥१०॥

स्त्रिय दृष्ट्वाय कितव ततापान्येपा जाया सुकृत च योनि।
पूर्वाह्णे अश्वान्युयुजे हि वभ्रून्त्सो अग्नेरन्ते वृषल पपाद ॥११॥

अक्षैर्मा दीव्य कृषिमित् कृपस्व वित्ते रमस्व वहु मन्यमान ।
तत्र गाव कितव तत्र जाया तन्मे विचष्टे सवितायमर्य ॥१३॥

—१०।३४

६५. (समन मेला)

यक्ष, (समन मेला) देखने जाते थे वसिष्ठ, ७।६६।१६,-प्रस्कण्व, १।४८।६, कक्षीवान्, १।१२४।८, सुमित्र वाध्र्यश्व, १०।६९।११,

सास द्वेष करती है, स्त्री छोड़ देती है। मांगनेपर वह (जुआरी) किसीको देनेवाला नहीं पाता। जैसे मूल्यवान् बूढ़े घोड़ेको, वैसे ही जुआरीके लिए (मिलनेवाला) कोई भोग मैं नहीं जानता ॥३॥

जिसके धनका लोभ बलवान् पासा करते हैं, उसकी पत्नीको दूसरे भोगते हैं। उसके बारेमें पिता, माता, भाई कहते हैं—"हम नहीं जानते, इसे बांध कर ले जाओ" ॥४॥

जब मैं कहता हूँ "इन (पासों) के साथ नहीं खेलूंगा", तो मित्र जुआरियोंसे दूर होता हूँ। पर, जब भूरे पासे फलकपर पड़े शब्द करते हैं, तो व्यभिचारिणीकी तरह उन (जुआरियों) के मिलन-स्थान में जाता हूँ ॥५॥

"मैं जीतूंगा" कह पूछता शरीर फुलाता, जुआरी सभामें जाता है। पासे इसकी कामना बढ़ाते हैं। प्रतिद्वन्द्वीके भागको पूरा करते हैं ॥६॥ जुआरीकी पत्नी हीन होकर सन्तप्त होती है, वही भटकते पुत्रकी मा। (भी) महाजनोंसे डरता, धनलोभी वह दूसरेके घरमें रातको जाता है ॥१०॥

पासोंसे मत खेलो, खेती करो, (उसे) बहुत मानते हुये धनसे सन्तुष्ट रहो। हे जुआरी, यहां (तेरे लिए) गायें हैं, यहीं पत्नी है, स्वामी सविताने मुझे यह बतलाया ॥१३॥

—ऋग्वेद, १०।३४

अध्याय १५

देवता (धर्म)

§१. देवता

१ नहि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारक ।
विश्वे सतो महान्त इत् ॥१॥

—८।३०

१. नाम, सख्या—

२ हुवे वो देवीमदिति नमोभिर्मृळीकाय वरुण मित्रमग्नि।
अभिक्षदामर्यमण सुशेव त्रातृन्देवान्त्सवितार भग च ॥१॥

आ नो रुद्रस्य सूनवो नमन्तामद्या हूतासो वसवो'धृष्टा ।
यदीमर्भे महति वा हितासो बाधे मरुतो अह्वाम देवान् ॥४॥

अभि त्य वीर गिर्वणसमर्चेन्द्र ब्रह्मणा जरितर्नवेन।
श्रवदिद्धवमुप च स्तवानो रासद्वाजा उप महो गृणान ॥६॥

ओमानमापो मानुषीरमृक्त धात तोकाय तनयाय श यो ।
यूय हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्री ॥७॥

उत त्या मे हवमा जग्म्यात नासत्या धीभिर्युवमग विप्रा ।
अत्रि न महस्तमसो मुमुक्त तूर्वत नरा दुरितादभीके ॥१०॥

ते नो रुद्र सरस्वती सजोषा मीह्ळुष्मन्तो विष्णुर्मृळन्तु वायु ।
ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्या वाता पिप्यतामिष न ॥१२॥

—६।५०

अध्याय १५

देवता, धर्म

१. देवता

१ हे देवो, तुम्हारे में न कोई शिशु है, न बच्चा। तुम सभी महान् हो ॥१॥

—मनु वैवस्वत ८।३०

१ नाम, संख्या—

२ हे देवो, तुम्हारे लिए मैं नमस्कार करता हूँ—देवी अदिति को, वरुण को, मित्र को, अग्नि को, बिना मांगे [illegible] [illegible] [illegible] अर्यमा को, [illegible] [illegible], सविता और भग [illegible] ॥१॥
तुम्हारे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] में होते हैं, तो [illegible] [illegible] [illegible] तुम्हारे ॥४॥
हे [illegible], [illegible] [illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
इस प्रकार तुम और [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥६॥
आप ([illegible]) [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तुम मङ्गलकारिणी हो [illegible] [illegible]। तुम [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] धन और अन्नदात्री हो ॥७॥
हे [illegible] [illegible] ([illegible] [illegible]), [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तुमने [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तुम्हें [illegible] में [illegible] [illegible] ॥१०॥
हे [illegible], [illegible], [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible], [illegible] ([illegible] [illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥१३॥

—ऋग्वेद ६।५०

३. द्यौष्पितः पृथिवी मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृळता न ।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्य शर्म बहुल वि यन्त ॥५॥
—६।५१

४ अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमाना ।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ॥४॥

विश्वदानी सुमनस स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरत ।
तथा करद्वसुपतिर्वसूना देवा ओहानोऽवसागमिष्ठ ॥५॥

इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठ सरस्वती सिन्धुभि· पिन्वमाना ।
पर्जन्यो न औषधीभिर्मयोभुरग्नि सुशस सुवह पितेव ॥६॥
—६।५२

५. श न इन्द्राग्नी भवतामवोभि श न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय श यो श न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१॥

श नो भग· शमु न शसो अस्तु श न पुरन्धिः शमु सन्तु राय ।
श न सत्यस्य सुयमस्य शस श नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२॥

श नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु श न उरूची भवतु स्वधाभि ।
श रोदसी बृहती श नो अद्रि श नो देवाना सुहवानि सन्तु ॥३॥

३ हे पिता द्यौ, हे द्रोहहीन माता पृथिवी, हे भ्राता अग्नि, हे वसुओ, हमें सुखी करो। हे सारे आदित्यो, हे अदिति, इकट्ठे हो हमारे लिये बहुत शरण प्रदान करो ॥५॥

—ऋजिश्वा, ६।५१

४ उगती उषायें मेरी रक्षा करें, फूलती हुई नदियां मेरी रक्षा करें, अचल पर्वत मेरी रक्षा करें। देवों की पुकार में पितर मेरी रक्षा करें ॥४॥

सदा हम सुमनवाले हों, उगते हुए सूर्यको हम देखें। वैसा ही वसुओंके वसुपति (धनपति) करें। देवताओंको बहुत करने रक्षाके साथ यह हमारे पास आवें ॥५॥

रक्षाके साथ इन्द्र फूलती हुई सिन्धुओंके साथ सरस्वती हमारे अति नजदीक आवे। ओषधियोंके साथ पर्जन्य, सुप्रशंसनीय सुआह्वनीय पिता तुल्य अग्नि सुखमय होवें ॥६॥

—ऋजिश्वा, ६।५२

५ इन्द्र-अग्नि (दोनों) रक्षाओंके साथ हमारे लिये कल्याणकारी हों।। हव्य प्रदान किये गये (रातहव्य) इन्द्र-वरुण हमारे लिये कल्याणकारी हों। इन्द्र-सोम कल्याण उत्पादनके लिये हों। यज्ञमें इन्द्र-पूषन् हमारे लिये कल्याणकारी हों ॥१॥

भग हमारे लिये कल्याणकारी हो, हमारे लिये (नर) शंस कल्याणकारी हो, पुरन्धि हमारे लिये कल्याणकारी हो, धन कल्याणकारी होवें। अर्यमा सत्यकी प्रशंसा हमारे लिये कल्याणकारी हो। बहु-चार प्रकट अर्यमा हमारे लिये कल्याणकारी होवे ॥२॥

धाता हमारे लिये कल्याणकारी हो, धर्त्ता हमारे लिये कल्याणकारी हो। अन्नोंके साथ उरूची (पृथिवी) हमारे लिये कल्याणकारी हो, द्यौ-पृथिवी हमारे लिये कल्याणकारी हों, अद्रि (पर्वत) हमारे लिये कल्याणकारी हो। देवताओंके लिये सुहव स्तव हमारे लिये कल्याणकारी हों ॥३॥

श नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु श नो मित्रावरुणावश्विना श।
श न सुकृता सुकृतानि सन्तु श न इषिरो अभि वातु वात.॥४॥

श नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्ष दृशये नो अस्तु।
श न ओषधीर्वनिनो भवन्तु श नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णु ॥५॥

श न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुण सुशस ।
श नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाप श नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥

श न सोमो भवतु ब्रह्म श न श नो ग्रावाण शमु सन्तु यज्ञा ।
श न स्वरूणा मितयो भवन्तु श न प्रस्व श वस्तु वेदि ॥७॥

श न सूर्य उरुचक्षा उदेतु श नश्चतस्र प्रदिशो भवन्तु।
श न पर्वता ध्रुवयो भवन्तु श न सिन्धव. शमु सन्त्वाप ॥८॥

श नोऽदितिर्भवतु व्रतेभि श नो भवन्तु मरुत स्वर्का ।
श नो विष्णु शमु पूषा नो अस्तु श नो भवित्र शवस्तु वायु ॥९॥

श नो देव सविता त्रायमाण श नो भवन्तूषसो विभातीः ।
श न पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्य श न क्षेत्रस्य पतिरस्तु शभु. ॥१०॥

श नो देवा विश्वदेवा भवन्तु श सरस्वती सह धीभिरस्तु।
शमभिषाच शमु रातिपाच श नो दिव्या पार्थिवा श नो अप्या॥११॥

श न सत्यस्य पतयो भवन्तु श नो अर्वन्त शमु सन्तु गाव ।
श न ऋभव सुकृत सुहस्ता श नो भवन्तु पितरो हवेषु॥१२॥

श नो अज एकपाद्देवो अस्तु श नोऽहिर्बुध्न्यः श समुद्र.।
श नो अपानपात् पेरुरस्तु श न पृश्निर्भवतु देवगोपा॥१३॥

आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तेद ब्रह्म क्रियमाण नवीय ।
शृण्वन्तु नो दिव्या पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियास ॥१४॥

ये देवाना यज्ञिया यज्ञियाना मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञा ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूय पात स्वस्तिभि सदा न ॥१५॥

—७।३५

६. प्रातरग्नि प्रातरिन्द्र हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषण ब्रह्मणस्पतिं प्रात सोममुत रुद्र हुवेम॥१॥

रक्षा करते हुये सविता देव हमारे लिये कल्याणकारी हो, चमकने वाली उषायें हमारे लिये कल्याणकारी हो, पर्जन्य हमारी प्रजाओं (सन्तानो) के लिये कल्याणकारी हो, क्षेत्रपति शम्भु हमारे लिये कल्याणकारी हो ॥१०॥

विश्वदेव (सारे देवता) देव हमारे लिये कल्याणकारी हो, बुद्धियो के साथ सरस्वती कल्याणकारी हो। सम्मुख दान देनेवाले कल्याणकारी हो, दिव्य (द्योवाले), पार्थिव (पृथिवीवाले), अप्य (जलवाले) प्राणी हमारे लिए कल्याणकारी हो ॥११॥

सत्यके पति हमारे लिये कल्याणकारी हो, अर्वन्त (घोड़े) हमारे लिये कल्याणकारी हो, गायें हमारे लिये कल्याणकारी हो। सुकृत (सुकर्मा) सुहस्त ऋभु हमारे लिये कल्याणकारी हो। हवनोंमें हमारे लिये पितर कल्याणकारी हो ॥१२॥

एक पैरवाला अज देव हमारे लिए कल्याणकारी हो, अहिर्बुध्न्य (गम्भीर सर्प) हमारे लिए कल्याणकारी हो, समुद्र कल्याणकारी हो, आपदेनियोंका नाती पेरु हमारे लिए कल्याणकारी हो, देवरक्षिता पृश्नि हमारे लिए कल्याणकारी हो ॥१३॥

इस अभिनवीन बनाये जाते ब्रह्म (मन्त्र) को आदित्य, रुद्र, वसु लोग सेवन करें। दिव्य, पार्थिव गौवें (वाणी या गाय) से उत्पन्न और जो यज्ञीय हैं, वे (देव) हमारी स्तुति सुनें ॥१४॥

जो यज्ञीय देवोंके यज्ञीय (पूजनीय), मनु (राजा) के पूजनीय अमर ऋत (सत्य)-ज्ञाता है। वे आज हमें विस्तृत स्थान (घर) प्रदान करें, तुम सदा स्वस्तियोंके साथ हमारी रक्षा करो ॥१५॥

—ऋग्वेद, ७।३५

६ प्रात अग्निको प्रात इन्द्रको हम पुकारते हैं, प्रात मित्र-वरुणको प्रात अश्विद्वय को। प्रात भगको पूषनको ब्रह्मणस्पति (?) को, प्रात सोम और रुद्र को हम पुकारते हैं ॥१॥

प्रातर्जित भगमुग्र हुवेम वय पुत्रमदितेर्यो विवर्ता।
आध्रश्चिद्य मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्य भग भक्षीत्याह ॥२॥
—७।४१

७ अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा वायुः पूषा सरस्वती सजोषस ।
आदित्या विष्णुर्मरुत' स्वर्बृहत् सोमो रुद्रो अदितिर्ब्रह्मणस्पति. ॥१॥

इन्द्राग्नी वृत्रहत्येषु सत्पती मिथो हिन्वाना तन्वा समोकसा ।
अन्तरिक्ष मह्या पप्रुरोजसा सोमो घृतश्रीर्महिमानमीरयन् ॥२॥
—१०।६५

८ ऐभिरग्ने सरथ याह्यर्वाङ् नाना रथ वा विभवो ह्यश्वा ।
पत्नीवतस्त्रिशत त्रींश्च देवाननुष्वधमावह मादयस्व ॥९॥
—३।६

९ त्रीणि शता त्रीसहस्राण्यग्नि त्रिशच्च देवा नव चासपर्यन्।
औक्षन्घृतैरस्तृणन्वर्हिरस्मा आदिद्धोतार न्यसादयन्त ॥९॥
—३।९

२. देवोंके वास स्थान—

१० नाकस्य पृष्ठे अधितिष्ठति श्रितो य पृणाति सहदेवेषु गच्छति ।
तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवस्तस्मा इय दक्षिणा पिन्वते सदा ॥५॥
—१।१२५

§ २ देवों के स्वरूप

१. अग्नि—

११. त्व हि क्षैतवद्यशोग्ने मित्रो न पत्यसे।
त्व विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टि न पुष्यसि ॥१॥

वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशा।
समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमगिर ॥१०॥

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोच सुमति रोदस्योः।
वीहि स्वस्ति सुक्षिति दिवो नृन्द्विषो अहासि दुरिता।
तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥११॥

—६।२

१२ तिग्म चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा।
विजेहमान परशुर्न जिह्वा द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ॥४॥

—६।३

यथा होतर्मनुषो यज्ञेभि सूनो सहसो यजासि।
एवा नो अद्य समना सामानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ॥१॥

—६।४

१३ हुवे व सूनु सहसो युवानमद्रोघवाच मतिभिर्यविष्ठ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक् ॥१॥

—६।५

§२. देवोंके स्वरूप

१. अग्नि—

११. हे अग्नि, मित्र की तरह राजयशवाले स्वामी हो। हे सक्रिय वसु (बसानेवाले) तुम पुष्टिसे पुष्ट करते हो ॥१॥

हे अग्नि, यज्ञकी इच्छावाले विशोंके घरमें होता होकर तुम प्रविष्ट होते हो। हे विशापति (प्रजाओंके स्वामी) समृद्ध करो, हे अंगिरा, हव्यका सेवन करो ॥१०॥

हे मित्र-तेजवाले अग्नि देव, रोदसी (द्यौ और पृथिवी) में देवोंके लिये हमारी स्तुतिको कहो। द्यौसे स्वस्ति लाओ, मनुष्य का सुन्दर वास हो। पापवाले दुष्ट शत्रुओंसे (हम) बचें। तुम्हारी सहायता से हम तरें, हम तरें, हम तरें ॥११॥

—भरद्वाज, ६।२

१२. तीक्ष्ण सा (इसका) आकार है, महान् शरीर है, अश्वकी तरह मुहसे तृण-काष्ठ[1] खाता, कुठारकी तरह जिह्वाको हिलाता है, लोहारकी तरह काष्ठको जलाने लगाता है ॥४॥

—भरद्वाज, ६।३

हे सहस-पुत्र[2] होता अग्नि, जैसे मनुष्य के यज्ञमें हवि द्वारा तुमने देवों का यजन किया, इसी प्रकार आप आज हमारे यज्ञमें देवोंको साथ ले आओ और यजन करो ॥१॥

—भरद्वाज, ६।४

१३. तुम अद्रोहवाणी प्रसन्न तरुण सहस-पुत्र (अग्नि) को स्तुतियों द्वारा हम स्तवन करते हैं, जो कि प्राज्ञ अद्रोही बहुवारा बहु श्रेष्ठ धनोंको प्रदान करता है ॥१॥

—भरद्वाज, ६।५

---

[1] संग्राम [2] शक्ति (साहस) के पुत्र।

§ २ देवों के स्वरूप

१. अग्नि—

११. त्व हि क्षैतवद्यशोग्ने मित्रो न पत्यसे।
त्व विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टि न पुष्यसि ॥१॥

वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशां।
समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमगिर ॥१०॥

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोच सुमति रोदस्यो।
वीहि स्वस्ति सुक्षिति दिवो नॄन्द्विषो अहासि दुरिता।
तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥११॥

—६।२

१२ तिग्म चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा।
विजेहमान परशुर्न जिह्वा द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ॥४॥

—६।३

यथा होतर्मनुषो यज्ञेभि सूनो सहसो यजासि।
एवा नो अद्य समना सामानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ॥१॥

—६।४

१३ हुवे व सूनु सहसो युवानमद्रोघवाच मतिभिर्यविष्ठ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक् ॥१॥

—६।५

§२. देवोंके स्वरूप

१. अग्नि—

११ हे अग्नि, मित्र की तरह राजयशवाले स्वामी हो। हे नित्य वसु (वसानेवाले) तुम पुष्टिसे पुष्ट करते हो ॥१॥

हे अग्नि, यज्ञकी इच्छावाले विशोंके घरमें होता होकर तुम प्रविष्ट होते हो। हे विशापति (प्रजाओंके स्वामी) समृद्ध करो, हे अंगिरा, हव्यका सेवन करो ॥१०॥

हे मित्र-तेजवाले अग्नि देव, रोदसी (द्यौ और पृथिवी) में देवोंके लिये हमारी स्तुतिको कहो। द्यौसे स्वस्ति लाओ, मनुष्य का सुन्दर वास हो। पापवाले दुष्ट शत्रुओंसे (हम) बचें। तुम्हारी सहायता से हम तरें, हम तरें, हम तरें ॥११॥

—भरद्वाज, ६।२

१२ तीक्ष्ण सा (इनका) आकार है, महान् शरीर है, अश्वकी तरह मुखसे तृण-काष्ठ¹ खाता, कुठारकी तरह जिह्वाको हिलाता है, स्वर्णकारकी तरह काष्ठको जलाने भगाता है ॥८॥

—भरद्वाज, ६।३

हे सहस-पुत्र² होता अग्नि, जैसे मनुष्य के यज्ञमें हवि द्वारा तुमने देवों का यजन किया, उसी प्रकार आज हमारे यज्ञमें देवोंके साथ ले आओ और यजन करो ॥१॥

—भरद्वाज, ६।४

१३. तुम अभिव्याभागी प्रकट तरुण सहस-पुत्र (अग्नि) को स्तुतियों द्वारा हम स्पर्श करते हैं, जो कि प्राप्त अन्नोंको बढ़ाता बहुत श्रेष्ठ धनोंको प्रदान करता है ॥१॥

—भरद्वाज, ६।५

¹ सगाम ² शक्ति (साहस) के पुत्र।

१४ स जायमान परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत।
व्यन्तरिक्षमभिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् ॥२॥

अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुपतस्थुर्ऋग्मियं।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावत ॥४॥

—६।८

१५ त्वां दूतमग्ने अमृतं युगे युगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्य।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा निषेदिरे ॥८॥

—६।१५

१६ वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्या हविष्मन्तो अनुषत्यं स्वर्विदं।
सुदानुं देवं रथिरं वसूयवो गीर्भीरण्वं कुशिकासो हवामहे ॥१॥

अश्वो न क्रन्दन् जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगे युगे।
स नो अग्निः सुवीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृविः ॥३॥

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्।
अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो धर्मो हविरस्मि नाम ॥७॥

—३।२६

१७ आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्यो।
अग्निं पुरास्तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वं ॥१॥

अयं योनिश्चकृमा यं वयन्ते जायेव पत्य उशती सुवासा॥
अर्वाचीनः परिवीतो निषीदेमा उ ते स्वपाक प्रतीची ॥२॥

—४।३

१८. नित्वा दधे वर आपृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह् ना।
वृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्या रेवदग्ने दिदीहि॥४॥

—३।२३

२. अरण्य—

१९ न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति।
स्वादो फलस्य जग्ध्वाय यथाकाम नि पद्यते॥५॥

—१०।१४६

आजनगंधि सुरभि वह् वन्नामकृषीवला।
प्राह मृगाणा मातरमरण्यानिमशंसिष॥६॥

—१०।१४६

। महे रणाय चक्षसे॥१॥

। उशतीरिव मातर ॥२॥

जनयथा च

रान ए

१८. हे अग्नि, दिनोंके सुदिनमें लिये पृथिवीके उत्तम अन्न-स्थान में तुम्हें स्थापित करता हूं। तुम दृषद्वती (घग्घर) आपया (मरकण्डा), सरस्वती पर आदमियोंके लिये धन-युक्त दीप्तिमान् होओ॥४॥ (१।९)

—देवश्रवा-देववात भारत, ३।२३।

२. अरण्य—

१९. दूसरा यदि न आक्रमण करे, तो अरण्यानी (जंगल) नहीं मारती। (वहां) स्वादु फल खाकर यथेच्छ पड़ा (रहा) जा सकता है॥५॥ आंजनके गंधवाली सौंधी (सुरभि) बिना किसानोंके बहुअन्नवाली, मृगोंकी माता अरण्यानीकी मैं बहुत स्तुति करता हूं॥६॥ (४।१६६)

—देवमुनि ऐरम्मद-पुत्र, १०।१४६

२. अश्विद्वय देखो १७।५

३. आप (जल) देवी—

२०. हे आप, तुम सुखमय हो। वह (आप) हमें शक्ति (रस) महान् रमणीयता देखने के लिये दे॥१॥

जो तुम्हारा कल्याणतम रस है। उसे स्नेहमयी माताओं सदृश हमें प्रदान करो॥२॥

हे आपो, जिसके स्थान में (हमें) भेजते हो, [illegible] तुम्हारे पास आते हैं। हमें (प्रजा) जनन कराओ॥३॥

दिव्य आप कल्याण और आनन्द के वास्ते हमारे पीनेके लिये होवें। (तुम) हमारे स्वास्थ्यके लिये दाता होओ॥४॥

—सिन्धुद्वीप अम्बरीष-पुत्र १०।९

१८ नित्वा दधे वर आपृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्ना।
वृषद्वत्या मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥४॥
—३।२३

२. अरण्य—

१९ न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति।
स्वादो फलस्य जग्ध्वाय यथाकाम नि पद्यते ॥५॥
—१०।१४६

आजनगधि सुरभि वह्वन्नामकृषीवलां।
प्राह मृगाणा मातरमरण्यानिमशसिष ॥६॥
—१०।१४६

३. आप—

२०. आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ॥१॥
यो व शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह न। उशतीरिव मातर ॥२॥
तस्मा अरगमामवो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च न ॥३॥
श नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शयोरभि स्रवन्तु न ॥४॥
—१०।९

१८. हे अग्नि, दिनोंके सुदिनमें लिये पृथिवीके उत्तम अन्न-स्थान में तुम्हें स्थापित करता हूं। तुम दृषद्वती (घग्घर) आपया (मरकण्डा), सरस्वती पर आदमियोंके लिये धन-युक्त दीप्तिमान् होओ ॥४॥ (३।९)

—देवश्रवा-देवव्रात भारत, ३।२३।

२. अरण्य—

१९. दूसरा यदि न आक्रमण करे, तो अरण्यानी (जंगल) नहीं मारती। (वहां) स्वादु फल खाकर यथेच्छ पड़ा (रहा) जा सकता है ॥५॥ आंजनके गंधवाली सोंधी (सुरभि) बिना किसानोंके बहुअन्नवाली, मृगोंकी माता अरण्यानीकी मैं बहुत स्तुति करता हूं ॥६॥ (४।१६६)

—देवमुनि ऐरम्मद-पुत्र, १०।१४६

२. अश्विद्वय देखो १७।५

३. आप (जल) देवी—

२०. हे आप, तुम सुखमय हो। वह (आप) हमें शक्ति (रस) महान रमणीयता देखने के लिये दे ॥१॥

जो तुम्हारा कल्याणतम रस है। उसे स्नेहमयी माताओं तरह हमें प्रदान करो ॥२॥

हे आपो, जिसके स्थान में (हमें) भेजती हो, हम प्रसन्नता पूर्वक तुम्हारे पास जाते हैं। हमें (प्रजा) जनक बनाओ ॥३॥

दिव्य आप स्नान और आनन्द के वास्ते हमारे पीनेके लिये होवें। (तुम) हमारे स्वास्थ्यके लिये हर्षित होओ ॥४॥

—सिन्धुद्वीप अम्बरीष-पुत्र १०।९,

४. इळा, भारती, सरस्वती—

२१. आ भारती भारतीभि सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्नि.।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेद सदन्तु ॥८॥
—३।४

५. इन्द्र—

२२. स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो य शिप्रवान्वृषभो यो मतीना।
यो गोत्रभिद्वज्रभृद्यो हरिष्ठा स इन्द्र चित्रा अभितृन्धि वाजान् ॥२॥
—६।१७

२३ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्र हवे हवे सुहव शूरमिन्द्र।
ह्वयामि शक्र पुरुहूतमिन्द्र स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्र ॥११॥
रूपरूप प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूप प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभि पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरय शता दश ॥१८॥
—६।४७

२४. अय सोम इन्द्र तुभ्य सुन्वे आ तु प्र याहि हरिवस्तदोका.।
पिबा त्वस्य सुषुतस्य चारोर्ददो मघानि मघवन्नियान.॥१॥
—७।२९

२५ इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिर•।
ता आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्या याह्योक आ ॥४॥
—७।३२

४. इळा, भारती, सरस्वती—

२१. भारतीयोंके साथ भारती, देवोंके साथ इळा (दिव्य अन्न), मनुष्यों के साथ अग्नि, सरस्वती-तीरवाले (देवों) के साथ सरस्वती— तीनों देवियां आकर इस कुश (-आसन) पर बैठें॥८।

—विश्वामित्र, ३।४

५. इन्द्र—

२२. वह सोम को पान करे, जो घातक-ऋजीषी (विजयी), जो शत्रु-रक्षक है, जो शिप्र (मुकुट) धारी, जो मतियों का वृषभ (स्वामी) है, जो पर्वत-ध्वंसक, वज्रधर, जो अश्वारोही है, वह इन्द्र अद्भुत बलोंको बेधे॥२॥

—भरद्वाज, ६।१७

२३. त्राता इन्द्र, सहायक इन्द्र, हवन-हवनमें अच्छी तरह पुकारने लायक शूर इन्द्र, शक्र (शक्तिशाली) पुरुहूत (बहुतों द्वारा पुकारे गये) इन्द्रको मैं पुकारता हूं। वह मघवा (इन्द्र) हमारे लिये स्वस्ति प्रदान करे॥११॥

जो रूप-रूपमें प्रतिरूप हुआ, वह है उसके रूपको प्रकट करनेके लिये। मायाओंसे इन्द्र बहुत रूपोंवाला (बना) डोलता है, उसके दस सौ घोड़े जुते हुये हैं॥१८॥

—गर्ग भरद्वाज-पुत्र, ६।४७

२४. हे इन्द्र, तुम्हारे लिये यह सोम छाना गया है, हे घोड़ेवाले, उसके स्थान पर जल्दी आओ। इस अच्छे प्रकार छाने गये सोमको पियो। हे मघवन्, आकर मघ (धन) दो॥१॥

—वसिष्ठ, ७।२९

२५ यह दध्याशिर (दधि-मिश्रित) सोम इन्द्रके लिये छाने गये हैं। हे वज्रहस्त, उनके पीने, मस्त होनेके लिये दोनों घोड़ोंके साथ (हमारे) घर आओ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।३२

४. इळा, भारती, सरस्वती—

१. आ भारती भारतीभि सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्नि.।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेद सदन्तु ॥८॥
—३।४

५. इन्द्र—

२. स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो य शिप्रवान्वृषभो यो मतीना।
यो गोत्रभिद्वज्रभृद्यो हरिष्ठा स इन्द्र चित्रा अभितृन्धि वाजान् ॥२॥
—६।१७

३. त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्र हवे हवे सुहव शूरमिन्द्र।
ह्वयामि शक्र पुरुहूतमिन्द्र स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्र ॥११॥
रूपरूप प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूप प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभि पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरय शता दश ॥१८॥
—६।४७

२४. अय सोम इन्द्र तुभ्य सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोका।
पिबा त्वस्य सुषुतस्य चारोर्ददो मघानि मघवन्नियान ॥१॥
—७।२९

२५ इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिर.।
ता आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्या याह्योक आ ॥४॥
—७।३२

२६ इन्द्र जहि पुमास यातुधानमुत स्त्रिय मायया शाशदाना।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्तू सूर्यमुच्चरत ॥२४॥
—७।१०४

२७. गवाशिर मन्थिनमिन्द्र शुक्र पिबा सोम ररिमा ते मदाय।
ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व ॥२॥

ये ते शुष्म ये तविषीमवर्धन्नर्चन्तु इन्द्र मरुतस्त ओज ।
माध्यन्दिने सवने वज्रहस्त पिबा रुद्रेभि सगण सुशिप्र. ॥३॥
—३।३२

२८. आमन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः।
मा त्वा केचिन्नियमन्वि न पा शिनोति धन्वेवता इहि ॥१॥
—३।४५

०

२९ सूर उपाके तन्वं दधानो वियत्ते चेत्यमृतस्य वर्प ।
मृगो न हस्ती तविषीमुपाण सिंहो न भीम आयुधानि विभ्रत् ॥१४॥

तिग्मा यदन्तरशनि पताति कस्मिंचिच्छूरमुहुके जनाना।
घोरा यदर्य समृतिर्भवात्यधस्मानस्तन्वो बोधि गोपा ॥१७॥

भुवोविता वामदेवस्य धीना भुव सखा वृको वाजसाती।
त्वामनु प्रमतिमाजगन्मोरुशसो जरित्रे विश्वधस्या ॥१८॥
—४।१६

६ हे इन्द्र, पुरुष यातुधान (राक्षस) को और माया द्वारा हानि पहुंचाती स्त्री यातुधानको मारो। मूर (मारक या मूर्ख) देव (राक्षस) बिना गर्दनके हो नष्ट होवें, वह उगते सूर्य को न देख पावे ॥२४॥

—वसिष्ठ, ७।१०४

७ हे इन्द्र सवे गवाशिर (गोरस-मिश्रित) शुक्र (श्वेत) सोमको पियो, तुम्हारे मद के लिये हम उसे देते हैं। (उसे) ब्रह्म (ऋचा)-कृत्, मरुतो, रुद्रोंके साथ तृप्ति होने तक पियो ॥२॥

हे इन्द्र, जिन्होंने तुम्हारे बलको, जिन्होंने तेजको बढ़ाया, वे मरुत तुम्हारे ओजको पूजें। हे वज्रहस्त, सुशिप्र (सुमुकुट) रुद्रों-सहित, गणयुक्त माध्यंदिन सवन (मध्यान्हके पान) में सोम पियो ॥३॥

—विश्वामित्र ३।३२

८. हे इन्द्र, मादक मयूर रोमवाले मस्त घोड़ोंके साथ आओ। पक्षी फसानेवाले की तरह कोई तुम्हें न रोकें। मरुभूमि की तरह उन्हें पार करके आओ ॥१॥

—विश्वामित्र, ३।४५

९. हे इन्द्र, सूर्यके पास बैठने जब तुम्हारा शरीर तुम्हारा [illegible] रूप विस्तृत होता है, तब मृगहस्तीकी तरह तेजसे शत्रुओंको जलाने, भयंकर सिंह की तरह आयुधों को धारण कर तैयार होते हो ॥१४॥

हे शूर इन्द्र, जब हमारे मित्रों जनोंके युद्ध बीच [illegible] गिरे, हे स्वामी, जब घोर युद्ध होवें, तो तुम हमारे शरीरोंके रक्षक होना जानो ॥१७॥

वामदेवके विचारोंके तुम रक्षक होना, तुम युद्ध में अकुटिल सखा होना। रक्षक तुम्हारे पास हम आते हैं। सदा तुम स्तोताके लिये बहु-प्रशंसित सदा स्वयं स्थिर हो ॥१८॥

—वामदेव, ४।१६

३०. त्व महा इन्द्र तुभ्य ह क्षा अनुक्षत्र महना मन्यत द्यौ ।
त्व वृत्र शवसा जघन्वान्त्सृज सिन्धुरहिना जग्रसानान् ॥१॥

तव त्विषो जनिमन्रेजत द्यौरेजद् भूमिर्भियसा स्वस्य मन्यो ।
ऋघायन्त सुभ्व पर्वतास आर्दन्धन्वानि सरयन्त आप ॥२॥

—४।१७

३१ वृषा वृषन्धि चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्या नृतम शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्या पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥

यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मै ।
दधानो वज्र बाह्वोरुशन्त द्याममेन रेजयत् प्रभूम ॥३॥

—४।२२

३२. अह मनुरभव सूर्यश्चाह कक्षीवा ऋषिरस्मि विप्र ।
अह कुत्समार्जुनेयन्यृञ्जेऽह कविरुशना पश्यता मा ॥१॥

अह भूमिमददामार्यायाह वृष्टि दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनय वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥२॥

अह पुरो मन्दसानो व्यैर नव साकन्नवती शम्बरस्य ।
शततम वेश्य सर्वताता दिवोदासमतिथिग्व यदाव ॥३॥

—४।२६

३३. यस्याश्वास प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथास ।
य सूर्य य उषस जजान य अपा नेता स जनास इन्द्र ॥७॥

३०. त्व महा इन्द्र तुभ्य ह क्षा अनुक्षत्र महना मन्यत द्यौ ।
त्व वृत्र शवसा जघन्वान्त्सृज. सिन्धुरहिना जग्रसानान् ॥१॥

तव त्विषो जनिमन्रेजत द्यौरेजद् भूमिर्भियसा स्वस्य मन्यो.।
ऋघायन्त सुभ्व पर्वतास आर्दन्धन्वानि सरयन्त आप ॥२॥
—४।१७

३१. वृषा वृषन्धि चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्या नृतम शचीवान्।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्या पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥

यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मै.।
दधानो वज्र बाह्वोरुशन्त द्याममेन रेजयत् प्रभूम ॥३॥
—४।२२

३२. अह मनुरभव सूर्यश्चाह कक्षीवा ऋषिरस्मि विप्र ।
अह कुत्समार्जुनेयन्यृजे'ह कविरुशना पश्यता मा ॥१॥

अह भूमिमददामार्यायाह वृष्टि दाशुषे मर्त्याय।
अहमपो अनय वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥२॥

अह पुरो मन्दसानो व्यैर नव साकन्नवती शम्बरस्य।
शततम वेश्य सर्वताता दिवोदासमतिथिग्व यदाव ॥३॥
—४।२६

३३. यस्याश्वास प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथास ।
य' सूर्य य उषस जजान य अपां नेता स जनास इन्द्र. ॥७॥

जिसने पर्वतमें रहते शबरको चालीसवीं शरद (वर्ष) में जा घेरा। जिसने ओजायमान हो सोते दानव अहिको मारा। हे लोगो, वह इन्द्र है ॥११॥

—गृत्समद, २।१२

३४. हे इन्द्र, जो कि हमारे स्तोता पितरोंने तुमसे ही सारे धन प्राप्त किये, तुमने सुन्दर दुहानेवाली गायें, तुमसे अश्व प्राप्त किये। देवों के भक्तों केलिये अत्यन्त दाता तुम धन जीतते हो ॥१॥

स्त्रियोंके साथ जैसे राजा, वैसे तुम रहते हो। विद्वान् कवि हमें यश दो। गौवों और अश्वों द्वारा हे मघवन्, (हमारी) वाणी को मानो। अपने (भक्त) हमें धन प्रदान करो ॥२॥

हे इन्द्र, स्पर्धा करती हर्षप्रद, देवोंकी कामना करती ये हमारी स्तुतियां तुम्हारे पास जाती हैं। तुम्हारा पथ धन के लिये हमारे पास आवे, तुम्हारी सुमतिमें हम शरण पायें ॥३॥

दुहनेकी इच्छासे धेनुको जैसे सुन्दर घास, वैसे ही वसिष्ठने तुम्हारे लिये मन्त्र रचे। सभी मुझसे तुमको ही गोपति कहते हैं, इन्द्र हमारी सुगति (स्तुति) सुनने पास आवे ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।१८

३५ वज्रधारी इन्द्रके लिये गायें मीठा दूध (आशिर) दुहती हैं। जब वह उन्हें पास पाये ॥६॥

हे प्रियमेधो, पूजा करो, खूब पूजा करो, पूजा करो, हे पुत्रो, पूजा करो, दृढ़ पुर की तरह पूजा करो ॥८॥

गर्गर (घड़ा-बाजा) आवाज दे रहा है। इन्द्रके लिये स्तुत्य (मन्त्र) उद्घोषित हुआ। गोधा (चर्मनाद) बाजा और [illegible] रहा है। पिंगा (तनु-नाद) बाजा और [illegible] रहा है ॥९॥

[illegible] तुम्हारी तरह नये [illegible] पर इन्द्र बैठा है। [illegible] हमारे लिये [illegible] ॥१०॥

य. शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्त चत्वारिंश्या शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमान यो अहिं जघान दानु शयान स जनास इन्द्र ॥११॥
—६।१२

अत्यासो न ये मरुतः स्वचो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्या ।
ते हर्म्येष्ठा शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिन पयोधा. ॥१६॥
—७।५६

३४ त्वे ह यत् पितरश्चिन्न इन्द्र विश्वा वामा जरितारो असन्वन्।
त्वे गाव सुदुघास्त्वे ह्यश्वास्त्व वसु देवयते वनिष्ठ ॥१॥
राजेव हि जनिभि क्षेष्येवाव द्युमिरभि विदुष्कवि सन्।
पिशा गिरो मघवन् गोभिरश्वैस्त्वायत शिशीहि राये अस्मान् ॥२॥
इमा उ त्वा पस्पृधानासोत्र मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुपस्थुः।
अर्वाची ते पथ्या राय एतु स्याम ते सुमताविन्द्र शर्मन् ॥३॥
धेनु न त्वा सुयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठ.।
त्वामिन्मे गोपति विश्व आहा न इन्द्र सुमति गन्त्वच्छ ॥४॥
—७।१८

३५. इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु। यत् सीमुपह्वरे विदत् ॥६॥
अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुर न धृष्ण्वर्चत ॥८॥
अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत्।
पिंगा परि च निष्कददिन्द्राय ब्रह्मणोद्यत ॥९॥
अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नव रथ।
स पक्षन्महिष मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतु ॥१५॥

जिसने पर्वतमें रहते शवरको चालीसवी शरद (वर्ष) में जा घेरा। जिसने ओजायमान हो सोने दानव अहिको मारा। हे लोगो, वह इन्द्र है ॥११॥

—गृत्समद, २।१२

३४ हे इन्द्र, जो कि हमारे स्तोता पितरोंने तुमसे ही सारे धन प्राप्त किये, तुमने सुन्दर दुहानेवाली गायें, तुमने अश्व प्राप्त किये। देवों के भक्तों केलिये अत्यन्त दाता तुम धन जीतते हो ॥१॥

स्त्रियोंके साथ जैसे राजा, वैसे तुम रहते हो। विद्वान् कवि हमें यश दो। गौवों और अश्वों द्वारा हे मघवन्, (हमारी) वाणी को मानो। अपने (भक्त) हमें धन प्रदान करो ॥२॥

हे इन्द्र, स्पर्धा करती हर्षप्रद, देवोंकी कामना करती ये हमारी स्तुतियां तुम्हारे पास जाती हैं। तुम्हारा पथ धन के लिये हमारे पास आवे, तुम्हारी सुमतिमें हम शरण पावें ॥३॥

दुहनेकी इच्छासे धेनुको जैसे सुन्दर घास, वैसे ही वसिष्ठने तुम्हारे लिये मन्त्र रचे। सभी मुझसे तुमको ही गोपति कहते हैं, इन्द्र हमारी सुमति (स्तुति) सुनने पास आये ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।१८

३५. वज्रधारी इन्द्रके लिये गायें मीठा दूध (आशिर) दुहाती हैं। जब वह उन्हें पास पाये ॥६॥

हे प्रियमेधो, पूजा करो, खूब पूजा करो, पूजा करो, हे पुत्रो, पूजा करो, दृढ पुर की तरह पूजा करो ॥८॥

गर्गर (घड़ा-बाजा) आवाज दे रहा है। इन्द्रके लिये ब्रह्म (मन्त्र) उच्चरित हुआ। गोधा (धनुर्ज्या) बोली और शब्द [illegible] रहा है। पिंगा (धनु-ज्या) बोली और शब्द करती है ॥९॥

[illegible] सुन्दर [illegible] इन्द्र [illegible] है। [illegible] लिये [illegible] ॥१०॥

इद सु मे जरितरा चिकिद्धि प्रतीप शाप नद्यो वहन्ति।
लोपाश सिह् प्रत्यचमत्सा क्रोष्टा वराह् निरतक्त कक्षात् ॥४॥

शश क्षुर प्रत्यच जगाराद्रि लोगेन व्यभेदमारात्।
वृहन्त चिदृहते रन्धयानि वयद्वत्सो वृषभ शूशुवान. ॥९॥

सुपर्ण इत्या नखमासिषायावरुद्ध परिपद न सिहः।
निरुद्धश्चिन्महिपस्तर्प्यावान् गोधा तस्मा अयथ कर्षदेतत् ॥१०॥
—१०।२

४०. सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्यो ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥३॥

हरिश्माशरुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिपद्धरी ॥८॥
—१०।९६

६. ऋभु—

४१. आगन्नृभूणामिह रत्नधेयमभूत् सोमस्य सुपुतस्य पीतिः ।
सुकृत्यया यत् स्वपस्यया च एक विचक्र चमसं चतुर्वा ॥२॥

कि मयस्विच्चमस एप आस य काव्येन चतुरो विचक्र।
अया सुनुध्व सवन मदाय पात ऋभवो मधुन सोम्यस्य ॥४॥

हे स्तोता, मेरी यह (पहेली) बतलाओ —(इन्द्रकी इच्छा होनेपर) नदियां (अपनी) बाढ उलटी बहावें, लोमडी आते सिंहको ले जाये, स्यार वराहको वनसे भगा दे ॥४॥

इन्द्रकी इच्छा होनेपर खरगोश तीक्ष्ण विरोधीको निगल जाये, एक ढेलेसे दूरके पत्थर (पहाड) को मैं तोड दूं। छोटेके बनसे मैं बडेको पार सकूं, बछडा भी फूत्कार वृषभ (साँड) को खा जाये ॥९॥

यहां सुपर्ण (गरुड) नखको छोड दे, जैसे कि पकडा सिंह पिंजरेको। प्यासा महिष पकडा जाये, चमडेकी रस्सी उसके उलझे पैरोंको पकडे रहे ॥१०॥

—वसुक्र, १०।२८

४०. गो जो बहुत आकर्षक, सुनहला आयस ताम्रमय वज्र उसके हाथोंमें है। यह द्युतिमान्, सुशिप्र,[1] महारक, ओजस्वी बाणवाले इन्द्रके लिये पीले रूपवाले सोम (सिक्त) करते हैं ॥३॥

जो सुनहले मूछ-दाढी, सुनहले केशवाला, पत्थरसे दृढ, जो अन्न-स्वामी बढता है। अन्वयनिक, घोडोंके स्वामी अपने द्रुतगामी घोडोंको सारे कष्टोंसे पार कराता है ॥८॥

—वरु आंगिरस, १०।९६

६. ऋभु—

४१. यहां (तृतीय सवनमें) ऋभुओंका रत्नदान है। तुम्हारे लिये छाने सोमका पान हुआ। सुन्दर कर्म द्वारा और सुन्दर कौशल द्वारा जब एक चमसको चार किया ॥२॥

किस चीजका यह चमस था, जिसे तुमने काव्य (कौशल) द्वारा चार किया? हे वाणिजो, मदके लिये फिर सोम छानो, हे ऋभुओ, तुम मधुर सोमको पिओ ॥४॥

---

[1] शिप्र—शिरस्त्राण (खिफिप)

यत्तृतीय सवन रत्नधेयमकृणुध्व स्वपस्या सुहस्ता ।
तदृभव परिषिक्त व एतत् स मदेभिरिन्द्रियेभि पिवध्व ॥९॥
—४।३५

४२. अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्र परिवर्तते रज ।
महत्तद्वो देवस्य प्रवाचन द्यामृभवः पृथिवी यच्च पुष्यथ ॥१॥
—४।३६

७. क (प्रजापति)—

४३ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जात पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवी द्यामुतेमा कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥

य आत्मदा वलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिष यस्य देवा. ॥
यस्य छायामृत यस्य मृत्यु कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो वभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पद कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्र रसया सहाहुः ।
यस्येमा प्रदिशो यस्य वाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृह्ळा येन स्व. स्तभित येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

प्रजापते न त्वदेतान्यान्यो विश्वा जातानि परिता वभूव ।
यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वय स्याम पतयो रयीणा ॥१०॥
—१०।१२१

हे सुहस्त ऋभुओ, तृतीय सवन (सायंकालीन सोमपान) में जो तुम सुन्दर कौशल से अर्जित रत्न दान करते हो, सो मस्त इन्द्रियोंसे परिपिक्त (सोम) को पियो ॥१॥

—वामदेव ४।३५

४२ हे ऋभुओ, तुम्हारा काम स्तुत्य है। लोगोंका अश्विद्वयको दिया त्रिचक्र रथ, बिना अश्वके, बिना लगामके आकाशमें चारों ओर घूमता है। हे ऋभुओ, वह तुम्हारे दिव्यत्वका बड़ा ख्यापन है, जो कि तुम द्यौ और पृथिवीका पोषण करते हो ॥१॥

—वामदेव, ४।३६

७ क (देवता)—

४३ पहले हिरण्यगर्भ (सुनहले गर्भवाला) मौजूद था। (वह) उत्पन्न भूतोंका एकमात्र पति था। उसने पृथिवी और इस द्यौको धारण किया। उस क (देवता) के लिये हम हवि से (पूजा) करते हैं ॥१॥

जो आत्मदायक, बलदायक है, जिसकी सभी उपासना करते हैं। देवगण जिसकी प्रशंसा करते हैं। जिसकी छाया अमृत है, जिसकी (छाया-हीनता) मृत्यु, उस क (देवता) ॥२॥

जो सांस लेनेवाले, पलक मारनेवाले जगत्का एकमात्र राजा बना हुआ। जो इन दो पाये-चौपाये प्राणियोंका स्वामी है, उस क (देवता)० ॥३॥

जिसकी महिमा से यह हिमवान्, पृथिवी सहित समुद्र जिसका बतलाते हैं, जिसकी ये दिशायें हैं, जिसकी (वह) बाहु हैं, उस क (देवता)० ॥४॥

जिसके द्वारा द्यौ उग्र है, और पृथिवी दृढ़ है। जिसने स्वर्गको, जिसने नाक को थामा है। जिसने अन्तरिक्षमें लोकों को नापा, उस क (देवता)० ॥५॥

—हिरण्यगर्भ प्रजापति-पुत्र, १०।१२१

यत्तृतीय सवन रत्नधेयमकृणुध्व स्वपस्या सुहस्ता ।
तदृभव परिषिक्तं व एतत् स मदेभिरिन्द्रियेभि पिवध्व ॥९॥
—४।३५

४२. अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्र परिवर्तते रज ।
महत्तद्वो देवस्य प्रवाचन द्यामृभव पृथिवी यच्च पुष्यथ ॥१॥
—४।३६

७. क (प्रजापति)—

४३ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जात पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवी द्यामुतेमा कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥

य आत्मदा वलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिष यस्य देवाः ॥
यस्य छाया'मृत यस्य मृत्यु कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

य' प्राणतो निमिपतो महित्वैक इद्राजा जगतो वभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पद कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्र रसया सहाहु' ।
यस्येमा' प्रदिशो यस्य वाहू कस्मै देवाय हविपा विधेम ॥४॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृह्ळा येन स्व. स्तभित येन नाक. ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमान कस्मै देवाय हविपा विधेम ॥५॥

प्रजापते न त्वदेतान्यान्यो विश्वा जातानि परिता वभूव ।
यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वय स्याम पतयो रयीणा ॥१०॥
—१०।१२१

हे सुहस्त ऋभुओ, तृतीय सवन (सायंकालीन सोमपान) में जो तुम सुन्दर कौशल से अर्जित रत्न दान करते हो, सो मस्त इन्द्रियोंसे परिषिक्त (सोम) को पियो ॥९॥

—वामदेव ४।३५

४२. हे ऋभुओ, तुम्हारा काम स्तुत्य है। लोगोंका अश्विद्वयको दिया त्रिचक्र रथ, बिना अश्वके, बिना लगामके आकाशमें चारों ओर घूमता है। हे ऋभुओ, वह तुम्हारे दिव्यत्वका बड़ा स्थापन है, जो कि तुम द्यौ और पृथिवीका पोषण करते हो ॥१॥

—वामदेव, ४।३६

७. क (देवता)—

४३. पहले हिरण्यगर्भ (सुनहले गर्भवाला) मौजूद था। (वह) उत्पन्न भूतोंका एकमात्र पति था। उसने पृथिवी और इस द्यौको धारण किया। उस क (देवता) के लिये हम हवि से (पूजा) करते हैं॥१॥

जो आत्मदायक, बलदायक है, जिसकी सभी उपासना करते हैं। देवगण जिसकी प्रशंसा करते हैं। जिसकी छाया अमृत है, जिसकी (छाया-हीनता) मृत्यु, उस क (देवता) ॥२॥

जो सांस लेनेवाले, पलक मारनेवाले जगत्‌का एकमात्र राजा बना हुआ। जो इस दो पाये-चौपाये प्राणियोंका स्वामी है, उस क (देवता)० ॥३॥

जिसकी महिमा से यह हिमवान्, पृथिवी सहित समुद्र जिसका बतलाते हैं, जिसकी ये दिशायें हैं, जिसकी (यह) बाहु है, उस क (देवता)० ॥४॥

जिसके द्वारा द्यौ उग्र है, और पृथिवी दृढ़ है। जिसने स्वर्गको, जिसने नाक को थामा है। जिसने अन्तरिक्षमें लोकों को नापा, उस क (देवता)० ॥५॥

—हिरण्यगर्भ प्राजापत्य, १०।१२१

११. पूषन्

४७. वयमु त्वा पथस्पते रथ न वाजसातये। धिये पूषन्नयुज्महि ॥१॥
अदित्सन्त चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय। पणेश्चिद्वि म्रदा मन ॥३॥
—६।५३

४८ पूषन्विदुषा नय यो अजसानुसासित। य एवेदमिति ब्रवत् ॥१॥
माकिर्नेशन् माकी रिषन् माकी सशारि केवटे। अथारिष्टाभिरागहि।७।
परि पूषा परस्ताद्धस्त दधातु दक्षिण। पुनर्नो नष्टमाजतु ॥१०॥
—६।५४

४९. रथीतमं कपर्दिनमीशानं राधसो महः। राय सखायमीमहे ॥२॥
—६।५५

५०. य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणं। न तेन देव आदिशे ॥१॥

उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा। इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥२॥

उताद परुषे गवि सूरश्चक्र हिरण्यय। न्यैरयद्रथीतमः ॥३॥
—६।५६

५१ सोममन्य उपासदत्पातवे चम्वोः सुत। करम्भमन्य इच्छति ॥५
अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य सम्भृता।
ताभ्या वृत्राणि जिघ्नते ॥३॥
—६।७

११. पूषन्—

४७. हे मार्गोंके पति पूषन्, अन्न लाभ के लिये हमने तुम्हें रथकी तरह जोत दिया ॥१॥
हे पूषन्, अ-दाता को दानके लिये प्रेरित करो, पणिके मन को कोमल करो ॥३॥

—भरद्वाज, ६।५३

४८ हे पूषन्, हमें तुम ऐसे विद्वान् के पास ले चलो, जो हमारा ठीक अनुशासन करे, जो (हमसे) "यही है" कहे ॥१॥
(हमारे गौ-अश्व) नष्ट न हों, उन्हें कोई न मारे, कूपें-गड्ढेमें न गिरें, तुम (उन्हें लिये) अरिष्टों (मंगलों) के साथ आओ ॥७॥
पूषन् दूरसे दाहिने हाथको पसारे, हमारा खोया पशु फिर आवे ॥१०॥

—भरद्वाज, ६।५४

४९ (जो) महानतम रथी कपर्द(जूड़ा)-धारी महान् वैभवका स्वामी है, (उस) पूषन् सखासे हम धन मांगते हैं ॥२॥

—भरद्वाज, ६।५५

५० जो इस पूषन्को "करम्भ (सत्तू) भक्षी" कह स्तुति करता है, उसे (दूसरे) देवताकी स्तुति नहीं करनी पड़ती ॥१॥
(वह) महानतम रथी, सत्पति है। इन्द्र अपने सखा (पूषन्) के साथ मिलकर शत्रुओंको मारता है ॥२॥
महानतम रथी पूषा सूर्यके रथके चक्कोंको इस मेघ में चलाता है।

—भरद्वाज, ६।५६

५१ (हे इन्द्र-पूषन्, तुममेंसे) एक (इन्द्र) तो सत्तुओंमें छाने सोमको पीने जाता है, दूसरा पूषन् करम्भ (सत्तू) चाहता है ॥२॥
एक (पूषन्) के वाहन छाग हैं, दूसरे (इन्द्र) को दो हरे रंगवाले दो घोड़े। इनके द्वारा शत्रुओंको मारते हैं ॥३॥

—भरद्वाज, ६।५७

५२. अजाश्व पशुपा वाजपास्त्यो धिय जिन्वो भुवने विश्वे अर्पित ।
अष्टा पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत् सचक्षाणो भुवना देव ईयते ॥२॥

यास्ते पूषन्नावो अन्त समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति।
ताभिर्यासि दूत्या सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमान ॥३॥

पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मघवा दस्मवर्चा ।
य देवासो अदद् सूर्यायै कामेन कृत तवस स्वच ॥४॥

—६।५८

१२. प्रजापति—

५३. नासदासीन्नो सदासीत्तदानी नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीव कुह कस्य शर्मन्नम्भ किमासीद् गहन गभीर ॥१॥

न मृत्युरासीदमृत न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेत ।
आनीदवात स्वधया तदेक तस्माद्धान्यद्ध पर किंचनास ॥२॥

तम आसीत्तमसा गूह्ळमग्रे प्रकेत सलिल सर्वमा इद।
तुच्छ्येनाभ्वपिहित यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैक ॥३॥

कामस्तदग्रे समवर्तताधिमनसो रेत प्रथम यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामध स्विदासीदुपरि स्विदासीत्।
रेतोधा आसन महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात प्रयति परस्तात ॥५॥

५२ जो अजवाहन, पशुपालक, शक्तियुक्त अन्नवाला, स्तुति-प्रेरक, सारे भुवन में व्याप्त है। वह पूषन् देव सारे भुवनको प्रकाशित करते हाथमें तीक्ष्ण आरा धारे जाता है ॥२॥

हे पूषन्, समुद्र के मध्यमें अन्तरिक्षमें जो तुम्हारी सोनेकी नौकायें चलती हैं, उनसे साथ तुम सूर्यकी दूतता के लिये प्रेमवश, श्रव (यश, धन) की इच्छा से जाते हो ॥३॥

पूषन् द्यौ और पृथिवीका सुबन्धु, अन्नपति, मघ(धन)वान्, दर्शनीय तेजवाला है। जिस सुगामी, शक्तिशाली प्रेमपरवशको देवोंने सूर्याके लिये प्रदान किया ॥४॥

—भरद्वाज, ६।५८

१२. प्रजापति—

५३ उस समय न असत् था न सत् था, न रज (लोक) था, न जो व्योमसे परे है (वह था)। क्या आवरण था? कहां किसका शरण था? जल कैसा गहन-गम्भीर था ॥१॥

उस समय न मृत्यु थी, न अमृतता न रात-दिनका भेद था। बिना वायुका वह अकेला अपनी प्रकृति से सांस ले रहा था। उससे दूसरा कुछ भी नहीं था ॥२॥

तम था, पूर्वकालमें तम से ढंका यह सब अज्ञात सलिल था। जब तुच्छसे ढंका हुआ था, तपस्याकी महिमा द्वारा वह एक उत्पन्न हुआ ॥३॥

सब पहले काम (कामना) मौजूद था, जो कि मन में प्रथम रेत (बीज) था। पण्डित बुद्धि द्वारा हृदयमें विचार करके असत्में स- म्बन्धको प्राप्त किया ॥४॥

इनकी किरण तिरछी फैली नीचे थी या ऊपर थी। रेतोधा थे, महिमायें थीं, नीचे स्वधा (अपनी शक्ति) थी, ऊपर प्रयति, थी ॥५॥

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत आजाता कुत इय विसृष्टि'।
अर्वाग्देवा अस्य विसजर्नेनाथा को वेद यत आवभूव॥६॥

इय विसृष्टिर्यत आवभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्ष परमे व्योमन्त्सो अग वेद यदि वा न वेद॥७॥
—१०।१२९

५४ यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशत देवकर्मेभिरायत।
इमे वयन्ति पितरो य आययु प्र वया'प वयेत्यासते तते॥१॥

कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्य किमासीत् परिधि क आसीत्।
छन्द. किमासीत् प्रउग किमुक्थ यद्देवा देवमयजन्त विश्वे॥३॥

अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वोष्णिहया सविता स वभूव।
अनुष्टुभा सोम उक्थमंहस्वान् बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत्॥४॥

विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुविह भागो अह्न।
विश्वान् देवान् जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्र ऋषयो मनुष्या॥५॥

सहस्तोमा सह छन्दस आवृत सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्या।
पूर्वेपा पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन्॥७॥
—१०।१३०

१३. मन्यु—

५५. यस्ते मन्यो विधद्वज्रसायक सह ओज पुष्यति विश्वमानुपक्।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता॥१॥

ठीक कौन जानता है। कौन यहा उसको कहे? कहा से पैदा हुई, कहा से यह सृष्टि आई? देवलोक इसके सृजनके पीछे पैदा हुये। कौन जानता है, जहासे वह आई॥६॥

यह सृष्टि जहासे आई (किसने) बनाया या (किसने) नही बनाया। जो इसका अध्यक्ष परम व्योममें है, सो हे दोस्त, जानता है अथवा नही जानता॥७॥

—प्रजापति, १०।१२९

५४ जो यज्ञ तन्तुओंमे चारो ओर ताना, एक सौ देवकर्मों द्वारा लम्बा बना। उसे, जो यह पितर आये हैं, वह बुनते है। लम्बा बुनो, चौडा बुनो, यह कहते तने (वस्त्र) पर लगे हैं॥१॥

जब सारे देवोंने देव (प्रजापति) का यजन किया, तब यज्ञका नाप (प्रतिकृति) क्या थी, निदान (संकल्प) क्या था, घी क्या था, परिधि (पलाश आदिका माप) क्या था, छन्द क्या था, प्रउग और उक्थ (स्तोत्र) क्या था॥३॥

अग्नि की जोडीदार गायत्री हुई, उष्णिक्के साथ सविता सम्मिलित हुआ। अनुष्टुब्से सोम, उक्थोंमे तेजस्वी बृहस्पतिकी वाणीको बृहतीने सहायता की॥४॥

विराट् मित्र-वरुणकी आश्रित हुई, दिनको इन्द्र का भाग यहा त्रिष्टुब् हुआ। सारे देवताओंको जगती व्याप्त हुई, इस प्रकार ऋषियों और मनुष्यों ने यज्ञ किया॥५॥

स्तोम, छन्द, माप के साथ घिरे सात दिव्य ऋषि थे। जैसे सारथी लगामको वैसे धीरोंने पूर्वजोंके पथको देखकर पकडा॥७॥

—यज्ञ प्रजापति-पुत्र, १०।१३०

१३. मन्यु (क्रोध)—

५५ हे वज्र, बाण, मन्यु, जिनने तुम्हें पूजा, वह सर्व-विजयी ओजका पोषण करता है। साहसकारी बल-युक्त बल (-रूप) तुम्हारे साथ

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत आजाता कुत इय विसृष्टि.।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आवभूव ॥६॥

इय विसृष्टिर्यत आवभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्ष परमे व्योमन्त्सो अग वेद यदि वा न वेद ॥७॥

—१०।१२९

५४ यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशत देवकर्मेभिरायत ।
इमे वयन्ति पितरो य आययु प्र वया'प वयेत्यासते तते ॥१॥

कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्य किमासीत् परिधि क आसीत्
छन्द' किमासीत् प्रउग किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ॥३॥

अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वोष्णिहया सविता स बभूव।
अनुष्टुभा सोम उक्थर्महस्वान् बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत् ॥४॥

विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भागो अह्न ।
विश्वान् देवान् जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्र ऋषयो मनुष्या ॥५॥

सहस्तोमा सह छन्दस आवृत सहप्रमा ऋषय सप्त दैव्या' ।
पूर्वेषा पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन् ॥७॥

—१०।१३

१३. मन्यु—

५५ यस्ते मन्यो विधद्वज्रसायक सह ओज पुष्यति विश्वमानुषक्।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥१॥

ठीक कौन जानता है। कौन यहा उसको कहे? कहा से पैदा हुई, कहा से यह सृष्टि आई? देवलोक इसके सृजनके पीछे पैदा हुये। कौन जानता है, जहासे वह आई॥६॥

यह सृष्टि जहासे आई (किसने) बनाया या (किसने) नही बनाया। जो इसका अध्यक्ष परम व्योममें है, सो हे दोस्त, जानता है अथवा नही जानता॥७॥

—प्रजापति, १०।१२९

५४ जो यज्ञ तन्तुओंसे चारो ओर ताना, एक सौ देवकर्मों द्वारा लम्बा बना। उसे, जो यह पितर आये है, वह बुनते है। लम्बा बुनो, चौड़ा बुनो, यह कहते तने (वस्त्र) पर लगे है॥१॥

जब सारे देवोंने देव (प्रजापति) का यजन किया, तब यज्ञका नाप (प्रतिकृति) क्या थी, निदान (सकल्प) क्या था, घी क्या था, परिधि (पलाश आदिका माप) क्या था, छन्द क्या था, प्रउग और उक्थ (स्तोत्र) क्या था॥३॥

अग्नि की जोडीदार गायत्री हुई, उष्णिक्के साथ सविता सम्मिलित हुआ। अनुष्टुब्से सोम, उक्थोंने तेजस्वी बृहस्पतिकी वाणीकी बृहतीने सहायता की॥४॥

विराट् मित्र-वरुणकी आश्रित हुई, दिनको इन्द्र का भाग यहा त्रिष्टुब् हुआ। सारे देवताओंको जगती व्याप्त हुई, इस प्रकार ऋषियो और मनुष्यो ने यज्ञ किया॥५॥

स्तोम, छन्द, माप के साथ घिरे सात दिव्य ऋषि थे। जैसे सारथी लगामको वैसे धीरोंने पूर्वजोंके पथको देखकर पकड़ा।७॥

—यज्ञ प्रजापति-पुत्र, १०।१३०

१३. मन्यु (क्रोध)—

५५ हे वज्र, बाण, मन्यु, जिसने तुम्हें पूजा, वह सर्व-विजयी ओजका पोषण करता है। साहसकारी बल-युक्त वज्र (-रूप) तुम्हारे साथ मिलकर हम दास और आर्योंको पराजित करेंगे॥१॥

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदा ।
मन्यु विश ईळते मानुषोर्या पाहि नो मन्यो तपसा सजोषा ॥२॥

अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान् तपसा युजा वि जहि शत्रून् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्व न ॥३॥
—१०।८३

५६ त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणासो धृषिता मरुत्व ।
तिग्मेषव आयुधा सशिशाना अभि प्र यन्तु नरो अग्निरूपा ॥१॥

अग्निरिव मन्यो त्विषित सहस्व सेनानीर्न सहुरे हूत एधि ।
हत्वाय शत्रून् विभजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ॥२॥
—१०।८४

१४. मित्र—

५७. मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो मित्रो-दाधार पृथिवीमुत द्या ।
मित्र कृष्टीरनिमिषाभिचष्टे मित्राय हव्य घृतवज्जुहोत ॥१॥

प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥२॥

महा आदित्यो नमसोपसद्यो यात यज्जनो गृणते सुशेव ।
तस्मा एतत् पन्यतमाय जुष्टमग्नौ मित्राय हविराजुहोत ॥५॥

मन्यु इन्द्र है, मन्यु ही देव है, मन्यु होता, वरुण, अग्नि है।' मानुषी प्रजायें मन्यु की स्तुति करती है। हे मन्यु, तपसे युक्त हो तुम हमारी रक्षा करो ॥२॥

हे बलवानोमें अत्यन्त बलवान् मन्यु, तपके साथ आओ, और शत्रुओको मारो। अमित्रहन्ता, वृत्र-हन्ता और दस्यु-हन्ता तुम हमारे लिये सारे धनोको लाओ ॥३॥ —मन्यु तपस्-पुत्र, १०।८३

५६ हे मन्यु, तुम पर आरूढ हो प्रहार करते, हर्षित होते, घर्षण करते मरुतवाले, तीक्ष्ण बाणवाले, आयुधोको तेज करते, अग्निरूप नेता आक्रमण करने के लिये जायें ॥१॥

हे मन्यु, अग्निकी तरह दीप्तिमान् हो, युद्धमें पुकारे जाकर, हमारे सेनानी हो, बढो। शत्रुओको मारकर धनको बाटो, ओजको बढाते दुश्मनो को दबाओ ॥ —मन्यु तपस्-पुत्र, १०।८४

मित्र—

मित्र बोलता हुआ लोकोको प्रेरित करता है, मित्रने पृथिवी और द्यौको धारण किया, मित्र आदमियोको अनिमिष दृष्टिसे देखता है, मित्रके लिए घृत-युक्त हवि हवन करो ॥१॥

हे मित्र आदित्य, जो व्रत (यज्ञ) द्वारा तुम्हारी सेवा करता है, वह मनुष्य सर्व प्रथम होवे। तुम्हारे द्वारा रक्षित आदमी न मारा जाता है, न जीता जाता है, न उसे नजदीक या दूरसे नष्ट गाता ॥२॥

महान् आदित्य नमस्कार से सेवनीय है। जन-प्रेरक वह स्तुतिकर्ताओं पर कृपालु है। उस अत्यन्त स्तुत्य मित्रके लिये इस प्रिय हविको आगमें हवन करो ॥५॥

पुरोहित

मित्राय पच येमिरे जना अभिष्टिशवसे । स देवान्विश्वान्विर्भात ॥८॥
—३।५९

१५. यम—

देखो १५।७८, ७९

१६. रुद्र—

५८. इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिर क्षिप्रेषवे देवाय स्वधान्वे।
अपाह्ळाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु न ॥१॥

या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरित परि सा वृणक्तु न ॥
सहस्रन्ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिष ॥३॥

मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य।
आ नो भज बर्हिषि जीवशसे यूय पात स्वस्तिभि सदा न ॥४॥
—७।४६

५९. इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मती ।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्व पुष्ट ग्रामे अस्मिन्ननातुरं ॥१॥

त्वेष वय रुद्र यज्ञसाध वकु कविमवसे नि्वयामहे।
आरे अस्मद् दैव्य हेळो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे॥४॥

दिवो वराहमरुप कपर्दिन त्वेष रूप नमसा नि हवयामहे।
हस्ते विभ्रद् भेषजा वार्याणि शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्य यमत् ॥५॥
—१।११४

बहुत बली मित्रके लियें पाचो जन नियम करते हैं, वह सारे देवो का पालन करता है ॥८॥

—विश्वामित्र, ३।५९

यम—

देखो यही (१५,७८, ७९)

१५. रुद्र—

५८ हे भरतो, स्थिरधनुष, क्षिप्र-बाण, स्वधा-युक्त, अजेय, जेता, विधाता, तीक्ष्ण-आयुध रुद्र के लिये यह हमारी स्तुतिया है, इन्हें सुनो ॥१॥

हे रुद्र, द्यौके ऊपरसे छोडी जो तुम्हारी बिजली पृथ्वीपर विचरण करती है, वह हमें छोड दे। हे स्वपिवात (कृपामय), तुम्हारी हजारो औषधिया है। हमारे पुत्र-पौत्रो को हानि न पहुंचाओ ॥३॥

हे रुद्र, हमें न मारो, न दूर करो। क्रुद्ध हुये तुम्हारे बन्धन में हम न होवें। हमारे प्राणि-हितकर यज्ञमें आओ। तुम हमेशा स्वस्तिके साथ हमारी रक्षा करो ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।४६

५९ शक्तिशाली, जूडाधारी, वीर, पति रुद्रके लिये हम यह स्तुतिया लाते है, जिसमें कि इस ग्राम में दो-पायो-चौपायोका कल्याण हो, सभी पुष्ट और निरोग हो ॥१॥

हम दीप्तिमान्, यज्ञसाधक, वक्र, कवि रुद्रको पुकारते हैं। वह (अपने) दिव्य क्रोधको हमसे दूर फेंके। हम उनकी सुमति (कृपा) की प्रार्थना करते है ॥४॥

हम द्यौ के लाल वराह कपर्दधारी दीप्तिमान् रूप (रुद्र) को पुकारते है। हाथमें श्रेष्ठ औषधियों को धारण किये वह हमें सुख, रक्षा, गृह प्रदान करें ॥५॥

—कुत्स आंगिरस, १।११४

१७. वरुण—

६० आचष्ट आसा पाथो नदीना वरुण उग्र सहस्रचक्षा ॥१०॥
राजा राष्ट्राणा पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्र विश्वायु ॥११॥
—७।३४

६१ ता नो रासन्रातिपाचो वसून्या रोदसी वरुणानी श्रृणोतु।
वरुत्रीभि सुशरणो नो अस्तु त्वष्टा सुदत्रो विदधातु राय ॥२२॥
—७।३४

६२ यदद्य सूर्य ब्रवो नागा उद्यन्मित्राय वरुणाय सत्य।
वय देवत्रादिते स्याम तव प्रियासो अर्यमन् गृणन्त ॥१॥
—७।६०

६३. धीरा त्वस्य महिना जनूपि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी।
प्र नाकमृष्व नुनुदे बृहन्त द्विता नक्षत्र पप्रथच्च भूम ॥१॥

पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षुपो एमि चिकितुपो विपृच्छ।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरय तुभ्य वरुणो हृणीते ॥३॥

किमाग आस वरुण ज्येष्ठ यत् स्तोतार जिघाससि सखाय।
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावोव त्वानेना नमसा तुर इया ॥४॥

अर दासो न मीह्ळुपे कराण्यह देवाय भूर्णये नागा ।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्स राये कवितरो जुनाति ॥७॥
—७।८६

१६. वरुण—

६० सहस्र-नेत्र, उग्र, वरुण इन नदियो के पाथ को जानता है॥१०॥ वह राष्ट्रोंके राजा नदियोका गौरव है, उसका क्षत्र (राज्य) विश्वव्यापी और अनुपम है॥११॥

—वसिष्ठ, ७।३४

६१ वे दान-निपुण (देवपत्निया) हमें धन दें। द्यौ-पृथिवी, वरुणानी हमारी प्रार्थना सुनें। सुदानी, सुशरण, त्वष्टा रक्षिका देवियो के साथ हमारे लिये धन प्रदान करे॥२॥

—वसिष्ठ, ७।३४

६२ हे सूर्य, जो कि उगते हुये (हमें) पाप-रहित करो, मित्र-वरुणको सत्य कहो। हे अदिति, हम देवोंके प्रिय हों। हे अर्यमा, स्तुति करते हम (तुम्हारे) प्रिय हो॥१॥

—वसिष्ठ, ७।६०

६३. इस (वरुण) की महिमासे लोग धीमान् होवें, जिसने विशाल द्यौ-पृथिवीको थामा, जिसने दोनो उच्च नाक (स्वर्ग) और वृहत् नक्षत्रको प्रेरित किया, और भूमिको विस्तृत किया॥१॥

हे वरुण, देखनेकी इच्छासे मैं (अपने) उस पापके बारेमें तुमसे पूछता हू। पूछते हुए मैं विद्वानोंके पास जाकर पूछता हू। कवियोंने एक सी ही (बात) मुझे कही, "यह वरुण तुम पर क्रुद्ध है"॥३॥

हे वरुण, मेरा कौन सा पाप है, जो कि तुम अपने ज्येष्ठ सखा स्तोताको मारना चाहते हो। हे दुर्धर्ष शक्तिशाली, उसे मुझे बतलाओ, (कि) मैं इस नमस्कारके साथ तुरन्त तुम्हारे पास आऊ॥४॥

निष्पाप हो दासकी तरह सेवक वरुणदेवकी सेवा करूँगा। इस अज्ञानियोंको स्वामी (वरुण) देव चेतावे, अत्यन्त कवि वरुण स्तुतिकर्ताको धन दिलवावे॥७॥

—वसिष्ठ, ७।८६

६४. अयमु वा पुरुतमो रयीयन् छश्वत्तममवसे जोहवीति।
सजोपाविन्द्रावरुणा मरुद्भिर्दिवा पृथिव्या शृणुत हव मे ॥२॥

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षत। मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥१६॥
—३।६२

६५. (देखो ६१)

१८. वायु—

६६. वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरङ्कृता। तेषां पाहि श्रुधी हव ॥१॥
वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितार। सुतसोमा अहर्विद ॥२॥
—१।२

१९. वास्तोष्पति—

६७ अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन्।
सखा सुशेव एधि न ॥१॥

यदर्जुन सारमेय दत पिशंग यच्छसे।
वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्वेषु वप्सतो नि षु स्वप ॥२॥
—७।५५

२०. विश्वकर्मा—

६८. य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता न।
स आशिषा द्रविणमिच्छमान प्रथमच्छदवरा आ विवेश ॥१॥

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भण कतमत् स्वित् कथासीत्।
यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षा ॥२॥

६४. हे इन्द्र-वरुण, धन-इच्छुक यह महान् (यजमान) तुम दोनोंको रक्षाके लिये सदा पुकारता है। मरुतो, द्यौ-पृथिवीके नाथ मेरी पुकार (स्तुति) सुनो॥२॥

सुकर्मा मित्र-वरुण, हमारे गोठोंको घृतसे पूर्ण करे, हमारे आवासोंको मधुसे (पूर्ण करे)॥१६॥

—विश्वामित्र, ३।६२

१७. वायु—

६६ हे दर्शनीय वायु, यह सोम सजाये हैं, उन्हें पियो और पुकार सुनो॥१॥ हे वायु, सोम छाने दिन-ज्ञ स्तोता उक्थों (गानों) द्वारा तुम्हारी खूब स्तुति करते हैं॥२॥

—मधुच्छन्दा विश्वामित्र-पुत्र, १।२

१८. वास्तुपति (गृहोंका अधिष्ठाता देवता)—

६७. हे वास्तुपति, तुम रोगनाशक हो, सारे रूपोंको धारे हमारे सखा और सुखकारी बनो॥१॥

हे श्वेत, पिंगल, सरमा-पुत्र, जब तुम दांत दिखलाते हो, उस समय (वह) ओष्ठके पास ऋष्टियों (छुरों) की तरह निकले शोभा देते हैं। तुम सो जाओ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।५५

१९. विश्वकर्मा—

६८ जो इस सारे भुवनोंको हवन करता होता, ऋषि हमारा पिता (विश्वकर्मा) बैठा है। वह आशीर्वाद द्वारा धनकी इच्छा करते प्रथम भक्तोंमें प्रविष्ट हुआ॥१॥

उस समय कौन सा अधिष्ठान था? कौन सा आलम्ब और कैसे था, जिससे कि विश्वदर्शी विश्वकर्माने भूमिको उत्पन्न कर अपनी महिमासे द्यौको खोला॥२॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ।
स बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥३॥

किं स्विद्वन क उ स वृक्ष आस यतो द्यावा पृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदुतद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥४॥
—१०।८१

२१. विष्णु—

६९. त्रिर्देव पृथिवीमेष एतां विचक्रमे शतर्चसं महित्वा ।
प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान्त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥३॥

विचक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ॥४॥
—७।१००

२२. सरस्वती—

७०. प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः ।
प्रबाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ॥१॥

एकाचेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आसमुद्रात् ।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ॥२॥

अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः ।
वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

सब ओर चक्षु, सब ओर मुख, सब ओर बाहु, और सब ओर पैरवाला वह अकेला देव, द्यौ-भूमिको उत्पन्न करके दोनों बाहु रूपी पखोंसे धौंकता है ॥३॥

कौन सा वन और कौन सा वह वृक्ष था, जिससे (उसने) द्यौ-पृथिवी-को गढ़ा। हे मनीषियो, (अपने) मनसे यह पूछो, भुवनोंको धारण करते जिसपर वह खड़ा रहा ॥४॥

—विश्वकर्मा भुवन-पुत्र, १०।८१

२०. विष्णु—

६९. सौ तेजोंसे युक्त इस (विष्णु देव) ने अपनी महिमासे पृथिवीका चंक्रमण किया। विष्णु बलियोंमें अत्यन्त बलवान् होवें, इस स्थायीका नाम दीप्तिमान् हो ॥३॥
इस विष्णुने मनुको क्षेत्र देनेकी इच्छासे इस पृथिवीका चंक्रमण किया। इसके स्तोता जन अचल होते हैं। (इसने) विस्तृत क्षितिको सुन्दर जनों-युक्त बनाया ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।१००

२१. सरस्वती—

७० आयसी (पत्थरवाली) पुरीकी तरह यह धारा-धारिणी सरस्वती जलके साथ बहती है। यह सिन्धु रथीकी तरह (दूसरी) सभी नदियोंको अपनी महिमासे बाधित करती जाती है ॥१॥

गिरियोंसे समुद्र तक जाती नदियोंमें शुचि यह सरस्वती अद्वितीय है। भुवनके भूरि-भूरि धनको चेताती मनुष्योंके लिये घृत और दूध दुहाती है ॥२॥

हे सरस्वती, सुभगे, यह वसिष्ठ तुम्हारे लिये यज्ञके द्वारको खोलता है। हे शुभ्रे, बढ़ो और स्तुति करनेवालेको अन्न प्रदान करो, तुम सदा स्वस्तिके साथ हमारी रक्षा करो ॥६॥

—वसिष्ठ, ७।९५

—७।९५

७१. वृहदु गायिषे वचोसुर्या नदीना।
सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभि स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥१॥

उभे यत्ते महिमा शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः।
सा नो वोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोना ॥२॥

—७।९६

७२. आ भारती भारतीभि सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्नि ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्वहिरेद सदन्तु ॥८॥

—३।४

७३ नित्वा दधे वर आपृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्ना।
दृषद्वत्या मानुष आपयाया सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥४॥

—३।२३

७४. इयमदादद्रभसमृणच्युत दिवोदास वध्र्यश्वाय दाशुषे।

या शश्वन्तमाचखादावस पणि ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥१॥
इय शुष्मेभिर्विसखा इवारुजत् सानु गिरीणा तविषेभिरूर्मिभि ॥

पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभि सरस्वतीमा विवासेम धीतिभि ॥२॥
उत न प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा। सरस्वती स्तोम्या भूत्॥१०॥

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो मा प स्फरी पयसा मा न आ धक्।
जुषस्व न सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यारणानि गन्म ॥१४॥

—६।६१

७१ नदियोंमें शक्तिशालिनी सरस्वतीके लिये बृहद् वाणी (गीत) गाता हूँ। वसिष्ठ, द्यौ-पृथिवी तक सुरचित स्तोमों (गानों) द्वारा सरस्वतीकी ही पूजा करो ॥१॥

हे शुभ्रे, तेरी महिमा है, जो कि पुरु लोग दोनों तटोंपर बसते हैं। सो तुम रक्षिका हमें बोध दो। मरुतोंकी सखी होकर धनवानोंके धनको भेजो ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।९६

७२ भारतीयोंके साथ भारती, देवोंके साथ इळा (अन्न), मनुष्योंके साथ अग्नि, सारस्वतो (सरस्वती-तीरके देवों) के साथ सरस्वती—तीनों देवियां (हमारे) सामने इस कुशपर बैठें ॥८॥

—विश्वामित्र, ३।४

७३. हे अग्नि, दिनोंके सुदिनके लिये पृथिवीके उत्तम अन्न-स्थानमें मैं तुम्हें स्थापित करता हूँ। तुम दृषद्वती (घग्घर) आपया (मरकण्डा), सरस्वती पर आदमियोंके लिये धन-युक्त दीप्तिमान् होओ ॥४॥ (११९)

—देवश्रवा-देववात भारत, ३।२३

७४ इस (सरस्वती) ने मुझ वध्र्यश्वको ऋणमोचक भयंकर दिवोदास (पुत्र) प्रदान किया। जिस (त) ने दानहीन पणिको बराबर खाया, हे सरस्वती, तेरे वे दान बलिष्ठ हैं ॥१॥ (९।५)

यह सरस्वती बिस खोदनेवालेकी तरह अपने बलों, वेगवती तरंगों द्वारा गिरियोंके पाद-भागको भग्न करती है। रक्षाके लिये तटोंको ध्वस्त करनेवाली सरस्वतीको हम स्तुतियों और गीतों द्वारा बुलावें ॥२॥

और प्रियाओंमें प्रिया सात बहिनोंवाली सुप्रसन्ना सरस्वती हमारी स्तुति-योग्य हो ॥१०॥ (५।८)

हे सरस्वती, हमें धनके लिये ले जाओ, हमें न अपने जलसे वंचित करो, न हमें दूर करो। हमारी मित्रता और भक्ति स्वीकार करो। हम तुमसे दूर क्षेत्र अरण्यमें न जावें ॥१४॥ (५।६)

—भरद्वाज, ६।६१

२३. सविता—

७५. तत् सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो न प्रचोदयात् ॥१०॥
—३।६२

७६. उदुष्य देव सविता हिरण्यया बाहू अयस्त सवनाय सुक्रतु ।
घृतेन पाणी अभिप्रष्णुते मखो युवा सुदक्षो रजसो विधर्मणि ॥१॥

अदब्धेभि सवित पायुभिष्ट्व शिवेभिरद्य परि पाहि नो गय ।
हिरण्यजिह्व सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशस ईशत ॥३॥

उदु ष्य देव सविता दमूना हिरण्यपाणि. प्रतिदोषमस्थात् ।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरि वाम ॥४॥

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्य सावी ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाज स्याम ॥६॥
—६।७१

२४. सोम—

७७. स्वादुष्किलाय मधुमा उताय तीव्र किलाय रसवा उताय।
उतो न्वस्य पपिवासमिन्द्र न कश्चन सहत आहवेषु ॥१॥

अय स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद।
पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्बरस्य वि नवति नव च देह्यो हन् ॥२॥

अय स यो वरिमाण पृथिव्या वर्ष्माण दिवो अकृणोदय स ।
अय पीयूष तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्वन्तरिक्ष ॥४॥
—६।४७

७५ सवितादेवके उस अतिश्रेष्ठ तेजको हम पावें, जो (सविता) हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करे ॥१०॥

—विश्वामित्र, ३।६२

२२. सविता—

७६ वह सुकर्मा सवितादेव (जीवन) देनेके लिये अपनी सुनहली बाहोंको ऊपर उठाता है। महान् युवा, सुदक्ष सविता लोकोंकी रक्षाके लिये घृत (जल) से युक्त (अपने) हाथोंको चुपड़ता है ॥१॥

हे सविता, हिंसा-रहित कल्याणकारी रक्षाओं द्वारा आज हमारे गये (निवास) की चारों ओरसे रक्षा करो। तुम हिरण्यजिह्व हो। नवीन सुखके लिये रक्षा करो, हमारे ऊपर बुराई चाहनेवाला शासन न करे ॥३॥

और यशस्वी, गृह-रक्षक, लोहेके जबड़ेवाले, सुवर्णपाणि, वह सविता देव प्रदोषमें उठे, और वह मनोहर वचनवाला भक्त यजमानके लिये बहुत सा धन पठाये ॥४॥

हे सविता, आज हमें धन, कल धन, दिन-दिन धन प्रदान करो। हे देव, तुम बहुत धन, गृह के स्वामी हो। इस स्तुति द्वारा हम धनके भागी हों ॥६॥

—भरद्वाज, ६।७१

२३. सोम—

७७. यह सोम स्वादु है, और मधुर है, यह तीव्र भी, और रसवान् है। इसे पी लिये इन्द्रको युद्धमें कोई दबा नहीं सकता ॥१॥

यहां यह स्वादु है, अत्यन्त मदयक्ता है, जिसने इन्द्र वृत्र-युद्धमें मग्न हुआ। जिसने शम्बरके बहुतेरे (सैनिकों) को हनया, निन्यानवे पुरियों (देहियों) को नष्ट किया ॥२॥

यह वह है, जो पृथिवीको वरिमा, है। (जिसने) द्यौकी ज्योतिको बनाया, यह वह है। तीनों वस्तियोंमें यह पीयूष (जल) है। सोमने विस्तृत अन्तरिक्षको धारण किया है ॥४॥

—गर्ग भरद्वाजपुत्र, ६।४७

§३. अन्य पूज्य

१ पितर—

७८. यमो नो गातु प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ।
यत्रा न पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वा ॥२॥

मातली कव्यैर्यमो अंगिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधान ।
याश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ॥३॥

इम यम प्रस्तरमा हि सीदा गिरोभि पितृभिः सविदान ।
आ त्वा मन्त्रा कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषा मादयस्व ॥४॥

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयु ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यम पश्यासि वरुण च देव ॥७॥

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ ।
ताभ्यामेन परि देहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीव च धेहि ॥११॥

उरुणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जना अनु
तावस्मभ्य दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्र ॥१२॥

मायय सोम सुनुत यमाय जुहुता हवि ।
यम ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरङ्कृत ॥१३॥

यमाय मधुमत्तम राज्ञे हव्य जुहोतन।
इद नम ऋषिभ्य पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्य पथिकृद्भ्य ॥१५॥

—१०।१४

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमा पितरः सोम्यास ।
असु य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥१॥

§२ अन्य (पितर आदि)

१. पितर—

७८ सबमें प्रथम यमने हमारे मार्गको जाना। यह चरागाह (हमसे) नही छीनी जा सकती। जहा हमारे पूर्वज पितर गये, वहा (जगमें) उत्पन्न (जन) अपने मार्गसे जायेंगे ॥२॥

काव्य (पितरोंकी हवि) के साथ मातली, अंगिरोंके साथ यम, ऋक्वोंके साथ बृहस्पति बढ़े—जिन्हें देवोंने बढ़ाया, और जिन्होंने देवोंको। कोई (देवता) स्वाहासे, कोई (पितर) स्वधासे प्रसन्न होते है ॥३॥

अंगिरा पितरोंके साथ हे यम, इस प्रस्तरपर आकर बैठो। कवियो द्वारा प्रशस्त मंत्र तुम्हें लायें। हे राजन्, इस हविसे तुम तृप्त होओ ॥४॥

(उन) पूर्ववाले पथोंसे (वहा) जाओ, जहा हमारे पूर्वज पितर गये, स्वधासे यम और वरुण दोनों राजाओं को आनन्दित देखोगे ॥७॥

हे यम, रक्षक, मार्गरक्षी मनुष्यों की देखभाल करनेवाले, चार आंखों वाले जो तुम्हारे दोनों श्वान (कुत्ते) है, हे राजन्, इसे उनकी रक्षामें दो, इसे स्वस्ति और निरोग करो ॥११॥

विस्तृत नाकवाले, प्राणभोजी, काले, दोनों यम-दूत जनोंके पीछे-पीछे चलते है। वे सूर्यके दर्शनके लिये यहा हमें भद्र प्राण प्रदान करें ॥१२॥

यमके लिये सोम छानो, यमके लिये हवि हवन करो, अग्नि-दूतवाला अलंकृत यज्ञ यमके पास जाता है ॥१३॥

राजा यमके लिये अत्यन्त मधुर हविका हवन करो। पूर्वज ऋषियोंके लिये, पूर्वके मार्गकर्ताओंके लिये यह नमस्कार है ॥१५॥

—यम वैवस्वत, १०।१४

७९. निचले, ऊपरले और बीचवाले सोमपायी पितर उठ खड़े हों। जो अहिंसक ऋतज्ञ (सत्यज्ञाता) पितर (यज्ञोंमें) प्राणको प्राप्त हुए, वे पुकारनेपर हमारी रक्षा करें ॥१॥

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु ॥२॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत त इहोर्जं दधात ॥७॥

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासो नूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः सरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥८॥

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
तेभिः स्वराळसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व ॥१४॥

—१०।१५

§ ४. सकाम कर्म

८०. आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्यस्तरुत्र ।
बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि ॥११॥

नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः ।
पूर्वीरिषो बृहतीरारेअघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥१२॥

पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन् वसुता ते अश्याम् ।
पुरूणि हि त्वे पुरुवार सन्त्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे ॥१३॥

—६।१

आज यह पितरोंके लिये नमस्कार है, जो कि पहले या पीछे मरे, जो पार्थिव लोकोंमें या जो वहाँ प्रजाओंके बीचमें बैठे हैं ॥२॥

लाल (किरणों) के पास बैठे तुम भक्त पुरुषको धन प्रदान करो। हे पितरो, उसके पुत्रोंको धन प्रदान करो, वे यहाँ शक्ति प्रदान करें ॥७॥

जो हमारे पूर्वके सोमपायी वसिष्ठ (श्रेष्ठ) पितर सोम-पानमें बुलाये गये। उनके साथ खुश हो यम भी रुचिसे हविको यथेच्छ भोजन करें ॥८॥

जो अग्निमें जले, जो अग्निमें न जले[1] (हमारे) पितर द्यौमें स्वधासे प्रसन्न हैं। उनको हे स्वराज् (स्वय प्रकाशित अग्नि), यथाशक्ति प्राणवाला शरीर प्रदान करो ॥१४॥

—शंख यम-पुत्र, १०।१५

६४ सकाम कर्म

८० हे अग्नि, अपनी प्रभा द्वारा तुमने द्यौ-पृथिवीको ढाक दिया, और (तुम) यशोंसे यशस्वी और विजयी हो। बहुत शक्ति-युक्त स्थायी धन प्रदान करते प्रकाशित होओ ॥११॥

हे वसु (धनी), हमें तुम मनुष्यों जैसा धन दो, हमारे पुत्र-पौत्रोंके लिए बहुत पशु दो। पाप-रहित दूर तक फैला-सा पहलेका अन्न भद्र, सुन्दर यशवाले हमारे लिए होवें ॥१२॥

हे दीप्तिमान् राजा अग्नि, हम तुम्हारे पाससे बहुत सा धन पावें, हम तुम्हारी वसुता (धन) को प्राप्त करें। हे सर्वप्रिय, अग्नि, तुम राजामें बहुत धन निहित है ॥१३॥

—भरद्वाज, ६।१

---

[1] शवोंको दफनानेका भी आर्योंमें रवाज था। केवल जलानेकी प्रथा पीछे अपनाई गई (१०।१५।१४)। दफनानेका उल्लेख (१०।१८।९, १०) हुआ है।

८८. अनुद्रा जहिता नयोव श्रोण च वृत्रहन्। न तत्ते सुम्नमष्टवे ॥१९॥
—४।३०

८९. पिशगभृष्टिमम्भृण पिशाचिमिन्द्र समृण[1]। सर्वं रक्षो निवर्हय ॥५॥
—१।१३३

९०. इहैव स्त मा वियोष्ट विश्वमायुर्व्यश्नुत।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥४२॥
—१०।८५

§५. अर्चनाकी सामग्री

१. हवि—

९१ अग्ने जुषस्व नो हवि पुरोळाश जातवेद । प्रात सावे धियावसो ॥१॥
पुरोळा अग्ने पचतस्तुभ्य वाघा परिष्कृत । त जुषस्व यविष्ठ्य ॥२॥

अग्ने वीहि पुरोळाशमाहुत तिरो अह्न्य। सहस सूनुरस्यध्वरे हित ।३।
माध्यन्दिने सवने जातवेद पुरोळाशमिह कवे जुषस्व । ,

अग्ने हवस्य तव भागधेय न प्रमिनन्ति विदथेषु धीरा ॥४॥
अग्ने तृतीये सवने हि कानिष पुरोळाश सहस सूनवाहुत ।

अथा देवेष्वध्वर विपन्यया धा रत्नवन्तममृतेषु जागृवि ॥५॥
अग्ने वृधान आहुति पुरोळाश जातवेद । जुषस्व तिरो अह्न्य ॥६॥
—३।२८

संभृण—निर्णयसागर प्रेस-पुस्तकमें

८८. हे वृत्रहन्ता, तुमने परित्यक्त अन्धे और पंगु पर कृपा की। वह तुम्हारा (दिया) सुख पाया नहीं जा सकता ॥१९॥

—वामदेव, ४।३०

८९ हे इन्द्र, पीले दांतवाले भयंकर पिशाचको नष्ट करो, सब राक्षसोंको खतम करो ॥५॥

—परुच्छेप दिवोदास-पुत्र, १।१३३

९०. (हे पति-पत्नी), तुम दोनों यहीं रहो, वियुक्त मत होओ, सारी आयुको प्राप्त करो, पुत्र-नातियोंके साथ खेलने-आनन्द करते अपने घरमें रहो ॥४२॥

—सूर्या, १०।८५

§५ अर्चनकी सामग्री

१. हवि—

९१. हे स्तुतिके धनी, सर्वज्ञ अग्नि, हमारे प्रातः सवनमें हवि (पुरोडाश)को स्वीकार करो ॥१॥

हे अग्नि, पकाया और परिष्कृत पुरोडाश तैयार है। हे तरुणतम, उसे स्वीकारो ॥२॥

हे सहस्-पुत्र, तुम यज्ञमें स्थित हो। हे अग्नि, दिनके अन्तमें हवन किये गए पुरोडाशका आहार करो ॥३॥

हे कवि जातवेदा (सर्वज्ञ), माध्यन्दिन सवन (दोपहर पूजा) में यहां पुरोडाशको सेवन करो। हे बलिष्ट अग्नि, तुम्हारे भागको यज्ञमें धीर लोग नष्ट नहीं करते ॥४॥

हे सहस्-पुत्र अग्नि, तृतीय सवन (सायं पूजा) में हवन किये गये पुरोडाशको पसन्द करो। फिर अविनाशी, रत्न-युक्त जागरूक सोमको स्तुतिके साथ अमर देवोंके पास ले जाओ ॥५॥

हे वर्धमान जातवेद अग्नि, दिनके अन्तमें आहुति दिये पुरोडाशका सेवन करो ॥६॥

—विश्वामित्र, ३।२८

९२. इममिन्द्र गवाशिर यवाशिर च न पिब। आगत्या वृपपि सुत ।।७।।

तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये सोम चोदामि पीतये। एप रारन्तु ते हृदि ।।८।।

त्वा सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे। कुशिकासो अवस्यव ।।९।।
—३।४२

९३ धानावन्त करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनं। इन्द्र प्रातर्जुपस्व न ।।१।।

पुरोळाश पचत्य जुपस्वेन्द्रा गुरस्व च। तुभ्य हव्यानि सिस्रते ।।२।।

पुरोळाश च नो घसो जोपयासे गिरश्च न। वधूयुरिव योपणा ।।३।।

पुरोळश सनश्रुत प्रात सावे जुपस्व न। इन्द्र ऋतुर्हि ते बृहन् ।।४।।

माध्यन्दिनस्य सवनस्य धाना पुरोळाशमिन्द्र कृष्वेह चारु।
प्र यत् स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थो वृपायमाण उप गीर्भिरीट्टे ।।५।।

तृतीये धाना सवने पुरुष्टुत पुरोळाशमाहुत मामहस्व न।
ऋभुमन्त वाजवन्त त्वा कवे प्रयस्वन्त. उपशिक्षम धीतिभि ।।६।।

पूपण्वते ते चकृमा करम्भ हरिवते हर्यश्वाय धाना।
अपूपमद्धि समणो मरुद्‌भि सोम पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।।७।।
—३।५२

१२ हे इन्द्र, हमारे इस यवाशिर (जौ-दूध मिले) गवाशिर (दूध-दही मिले) छने सोमको पराक्रमियोंके साथ आकर पियो ॥७॥

हे इन्द्र, अपने घरमें तुम्हारे पीनेके लिये सोमको मैं प्रस्तुत करता हूं, यह तुम्हारे हृदयको प्रसन्न करे ॥८॥

हे इन्द्र, सहायतेच्छुक हम कुशिक तुम पुरातनको छाना सोम पीनेके लिए पुकारते हैं ॥९॥

—विश्वामित्र, ३।४२

१३ हे इन्द्र, प्रात:काल हमारे धाना (भुने अन्न)-युक्त करम्भ (सत्तू)-युक्त, अपूप(रोटी)-युक्त उक्थ(गीत)-सहित सोमको स्वीकार करो ॥१॥

हे इन्द्र, पके पुरोडाशका सेवन करो, और खाओ। (यह) हव्य तुम्हारे लिये परोसी गई है ॥२॥

हमारे पुरोडाशको खाओ, और जैसे वधूको वर वैसे हमारे गीतोंको स्वीकार करो ॥३॥

हे सनातनसे प्रसिद्ध इन्द्र, प्रात:सवनमें हमारे पुरोडाशका सेवन करो। तुम्हारी क्षमता महान् है ॥४॥

हे इन्द्र, यहां माध्यन्दिन सवन (दोपहरकी पूजा) के धाना (भुने दाना) और चारु पुरोडाश तुम्हें रुचिकर हों। जब जल्दी करते गायक स्तोता वृषभोंकी तरह वचनों द्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥५॥

बहुस्तुत, तृतीय सवनमें हमारे धाना और आहुति दिये पुरोडाशको भक्षण करो। हे कवि, वाजवान् ऋभुवान् हविके लिये तुम्हारी हम स्तुतियोंसे सेवा करते हैं ॥६॥

पूषन्वान् हरिवान् (हरे अश्वोंवाले) तुम्हारे लिये हम करम्भ और धाना तैयार करते हैं। मरुतों-सहित गण-द्वारा अपूप (रोटी) खाओ। हे विद्वान् शूर वृत्रहन्ता तुम, सोमको पियो ॥७॥

—विश्वामित्र ३।५२

९४. अपा सोममस्तमिन्द्र प्रयाहि कल्याणीर्जाया सुरण गृहे ते।

—३।५३

यत्रा रथस्य वृहतो विधान विमोचन वाजिना दक्षिगावत् ॥६॥

पुरोळाश च नो घसो जोपमासे गिरश्च न । वधूयूरिव योपणा॥१६॥

९५. सहस्र व्यतीना युक्तानामिन्द्रमीमहे। शत सोमस्य खार्य. ॥१७॥

—४।३२

९६. त हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देव घृतश्चुता। अग्नि हव्याय वोह्ळवे ॥३॥

—५।१४

२. पशु-वलि—

९७. यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मति जनये चारुमग्नये ॥१४॥

अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृत चम्वीव सोमः।
वाजसनि रयिमस्मे सुवीर प्रशस्त धेहि यशस वृहन्त ॥१५॥

—१०।९१

९८. असत् सु मे जरित साभिवेगो यत् सुन्वते यजमानाय शिक्ष।
अनाशीर्दामहमस्मि प्रहन्ता सत्यध्वृत वृजिनायन्तमाभु ॥१॥

यदीदह युधये सनयान्यदेवयून् तन्वा शूशुजानान्।
अमा ते तुम्र वृषभ पचानि तीव्र सुत पचदश निषिंच॥२॥

—१०।२७

९९. पीवान मेषमपचन्त वीरा न्युप्ता अक्षा अनु दीव आसन्।
द्वा धनु वृहतीमप्स्वन्त पवित्रवन्ता चरत पुनन्ता॥१७॥

—१०।२७

९४ हे इन्द्र, जल्दी सोम पी चुके, (अब) जाओ। तुम्हारी पत्नी कल्याणी है, सुरमणीय तुम्हारा गृह है। जहां तुम्हारे बृहत् रथका अवस्थान है, घोड़ोंका दक्षिणा-युक्त विमोचन है ॥६॥

—विश्वामित्र, ३।५३

९५ हम इन्द्रसे जुतनेवाले हजार घोड़े और सोमकी सात खारियां मांगते हैं ॥१७॥

—वामदेव, ४।३२

९६. हव्य वहन करनेके लिये उस अग्निदेवकी सदा घृत चुवानेवाली श्रुवाओंसे पूजा करते हैं ॥३॥

—सुतम्भर, ५।१४

२. पशुबलि—

९७ जिसमें अश्व, वृषभ (सांड), उक्षा (तरुण बैल), वशा (वहिला गाय), भेड़ दिये और हवन किये गए, उस रसपायी, सोम छिड़के विधाता अग्निके लिये मैं हृदयसे सुन्दर स्तुति बनाता हूं ॥१४॥
हे अग्नि, जैसे घृत श्रुवामें, जैसे सोम चमूमें, वैसे तुम्हारे मुखमें हवि हवन की गई। तुम हमारे लिये अन्न-युक्त धनको, सुवीर-सन्तान-युक्त बड़े प्रशस्त यशको प्रदान करो ॥१५॥

—अरुण वीतहव्य-पुत्र, १०।९१

९८ हे स्तोता (भक्त), मेरा यह स्वभाव है कि सोम-यज्ञ करनेवाले यजमानको (फल) देता हूं। बिना यज्ञवाले, कुटिल, सत्यनाशक, आशीष न देनेवालेको (मैं) नाश करता हूं ॥१॥
शरीरसे फूले अदेव-भक्तोंके विरुद्ध जब मैं लड़नेके लिये अभियान करता हूं, तो तुम्हारे लिये पन्द्रह गुने तक छाने गये तीव्र सोमको पिलाते मोटे वृषभ (सांड) को पकाता हूं ॥२॥

—वसुक इन्द्र-पुत्र, १०।२७

९९ वीरोंने मोटे भेड़को पकाया। दावपर पासे फेंके गये। दो बड़े सफेद पान पानीके भीतर शुद्ध पवित्र हुए विचरण करते हैं ॥१७॥

—वसुक, १०।२७

१००. ये वाजिन परिपश्यन्ति पक्व य ईमाहु सुरभिनिर्हरेति।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेपामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥१२॥

यन्नीक्षण मास्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामका सूना परिभूषयन्त्यश्व ॥१३॥

—१।१६२

§६. मन्त्र-तन्त्र

१०१. इमा खनाम्योषधि वीरुध वलवत्तमा।
यया सपत्नी वाधते यया सविन्दते पति ॥१॥

उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति ।
सपत्नीं मे परा धम पति मे केवल कुरु ॥२॥

उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्य ।
अथा सपत्नी या ममाधरा साधराभ्य ॥३॥

नह्यस्या नाम गृम्णाभि नो अस्मिन्रमते जने।
परामेव परावत सपत्नीं गमयामसि ॥४॥

अहमस्मि सहमानाथ त्वमसि सासहि ।
उभे सहस्वती भूत्वी सपत्नीं मे सहावहै ॥५॥

—१०।१४५

§७. परलोक

१ यमलोक—

१०२ यमो नो गातु प्रथमो विवेद नैपा गव्यूतिरपभर्तवा उ।
यत्रा न पूर्वे पितर परेयुरेना जज्ञाना पथ्या अनु स्वा ॥२॥

—१०।१४

१०० जो पके घोडेको देखते, जो बोलते "सोधा है, उतारो" और जो घोडेके मास भोजनका सेवन करते हैं, उनका सकल्प हमारा सहायक हो ॥१२॥
जो कि मास पकानेकी उखा (हडिया) का देखना है, जो जूस डालनेके पात्र हैं। चरुओ (बर्तनो) को गरम रखनेवाले ढक्कन हैं, सूना (पशु काटनेके पीढ़े) और चिन्ह-करना (ये) अश्वको तैयार करते हैं ॥१३॥ (४।९)

—दीर्घतमा उचथ्य-पुत्र, १।१६२

§६ मन्त्र-तन्त्र

१०१ इस अत्यन्त बलवान् लता औषधिको मैं खोदता हू, जिसके द्वारा (पत्नी) अपनी सपत्नीको बाधित करती है, जिसके द्वारा वह पतिको प्राप्त करती है। देवप्रिया, बलवती सुभगा हे उत्तानपर्णी, मेरी सौतको दूर भगा, पतिको केवल मेरी (ही) बना ॥२॥
हे उत्तरा (उत्तम), मै उत्तरा (प्रधाना) होऊ, उत्तराओंसे भी मै उत्तरा होऊ, और जो मेरी सौत है, वह अधरा (हेठी) से भी अधरा होवे ॥३॥
उस सौत का नाम मैं नही लेती, उस जनमें मन नही रमता। मैं सौतको दूरसे दूर भेजती हू ॥४॥
हे औषधि, मैं पराक्रमी हू, तुम भी अत्यन्त पराक्रमी हो। दोनो बलवती हो मेरी सौतको दबायें ॥५॥

—इन्द्राणी, १०।१४५

§७ परलोक

१. यमलोक—

१०२ सबमें प्रथम यमने हमारे मार्गको जाना। यह चरागाह (हमसे) नही छीनी जा सकती। जहा हमारे पूर्वज गुजर गये, उनसे (जन) वहा अपने मार्गसे जायेंगे ॥२॥ (५।७८।२

—यम वैवस्वत, १०।१४

२. स्वर्ग—

१०३. नाकस्य पृष्ठे अधितिष्ठति श्रितो यः पृणाति सहदेवेषु गच्छति।
तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवस्तस्मा इयं दक्षिणा पिन्वते सदा।५।
—१।१२५

१०४. यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिन्ल्लोके स्वर्हितम्।
तस्मिन् मा धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥७॥

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते।
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥११॥
—९।११३

अध्याय १६

ज्ञान-विज्ञान

§१ कृषि

१. हल, फाल—

१. पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून्।
परिष्ठिता अतृणद्बद्बधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ॥८॥
—४।१९

२ युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमेयात् ॥३॥

२. स्वर्ग—

१०३ जो दान करता है, वह देवोंके पास जाता है, नाक (स्वर्ग) की पीठपर अधिष्ठान करता है। उसके लिये सिन्धु आप (जल देवियां) घृत प्रदान करती है, यह दक्षिणा उसको सदा तृप्त करती है ॥५॥

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।१२५

१०४ जहां निरन्तर ज्योति है। जिस लोकमें स्वर्ग अवस्थित है। हे पवमान सोम, उस अक्षुण्ण अमर लोकमें मुझे ले चलो। हे सोम, इन्द्रके लिये क्षरित होओ ॥७॥ (१४।२८।७)

जहां आनन्द और मोद और मुद-प्रमुद अवस्थित है, कामकी कामनायें जहां प्राप्त होती हैं, वहां मुझे अमर बनाओ ॥११॥ (४।२९।११)

—कश्यप मारीचि, ९।११३

अध्याय १६

ज्ञान-विज्ञान

§१ कृषि

१ पुरानी उषायें और सुंदर शरदोंमें उसने वृत्रको मारा और सिन्धुओंको मुक्त किया। इन्द्रने घेरी गयी धाराओंको पृथिवीपर बहनेके लिए फाड़ा और मुक्त किया ॥८॥

—वामदेव, ४।१९

१ हल, फाल—

२. सीर (हल) को जोतो, जुओंको तानो, यहां तैयार खेतमें बीज बोओ। हमारी वाणियोंके साथ खेती हरी-भरी हो। पक्व अन्नके नजदीक हँसुये जावें ॥३॥

सृण्य' युजन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नया ॥४॥
निराहावान् कृणोतन सवरत्रा दधातन।

सिंचामहा अवतमुद्रिण वय सुषेकमनुपक्षित ॥५॥
इष्कृताहावमवत सुवरत्र सुषेचन। उद्रिण सिंचे अक्षित ॥६॥

प्रीणीताश्वान् हित जयाथ स्वस्तिवाह रथमित् कृणुध्व।
द्रोणाहावमवतमश्चक्रमसत्रकोश सिंचता नृपाण ॥७॥
—१०।१०१

२. कुआ—

३ या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा या स्वयजा।
समुद्रार्था या शुचय पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥२॥
—७।४९

४ माकिर्नशेन्माकी रिषन्माकी सगारि केवटे। अथारिष्टाभिरागहि ॥७॥
—६।५४

५ प्र ते नाव न समने वचस्युव ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषि।
कुविन्नो अस्य वचसो निवोधिषदिन्द्रमुत्स न वसुन सिचामहे ॥७॥
—२।१६

३. कुल्या—

६ आपो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन्त्सोमास इन्द्र कुल्या इव ह्रद।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यव न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥७॥
—१०।४३

देवोंमें सुखके लिये धीर कवि लोग हल जोतते हैं, जूआ तानते हैं ॥४॥
मोट बनाओ, रस्सा रक्खो। सुन्दर सिंचाईवाले, अक्षय जलवाले महाकुएके जलको हम सींचेंगे ॥५॥
अन्नकारक मोंट, (चरसा) सुन्दर रस्सा, सुन्दर सेचनवाले अक्षय जल-युक्त अवत (कूआ) से मैं सींचता हूं ॥६॥
अश्वोंको तृप्त करो, हितको जीतो, रथको स्वस्ति-वाहक बनाओ। काठकी मोटवाले, पत्थरकी मनवाले कवच-कोशवाले मनुष्य-प्याव कूपोंसे सींचो ॥७॥

—बुध सोम-पुत्र, १०।११

२. कुआ—

३. जो आप (जल) आकाशीय हैं अथवा खोदी जाकर बहती हैं, अथवा जो स्वयं उत्पन्न हैं। जो शुचि पवित्र समुद्रके लिये (जाती) हैं, (वह) आप देवियां यहां हमारी रक्षा करें ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।४९

४ (गौ-अश्व) नष्ट न हों, उन्हें (कोई) न मारे। वह कूए-गड्ढेमें न गिरें। तुम अरिष्टों (सुरक्षातों) के साथ आओ ॥७॥

—भरद्वाज, ६।५४

५. युद्धमें ललकारते नाव जैसे इन्द्रके पास स्तवनोंमें श्रेष्ठ ही स्तव (मन्त्र) मैं लाता हूं। हमारे इस वचनको अवश्य वह समझेगा, हम धनों उत्स (चश्मे) की तरह इन्द्रको सींचेंगे ॥७॥

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।१६

३. कुल्या (नहर)—

६ सिन्धुमें जैसे नदियां, ह्रदमें जैसे कुल्यायें, वैसे इन्द्रके पास जब सोम क्षरित होते हैं, तो (यज्ञ-)सदनमें विप्र इसके तेजको वैसे ही बढ़ाते हैं, जैसे वृष्टि (जलको) दिव्य दानसे जौको ॥७॥

—कृष्ण आङ्गिरस, १०।४३

७ महान्त कोशमुदचा निषिंच स्यदता कुल्या विषिता पुरस्तात्।
घृतेन द्यावा पृथिवी न्युंधि सुप्रपाण भवत्वघ्न्याभ्य ॥८॥
—५।८३

§२ वास्तु

८ अत्यासो न ये मरुत स्वचो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्या ।
ते हर्म्येष्ठा शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिन पयोधा ॥१६॥
—७।५६

९ अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यन्त्रासाथे वरुणेळा स्वन्त ।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्त्रस्थूण विभृथ सह द्वौ ॥६॥
—५।६२

§३ काल

१. मास—

१०. वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावत । वेदा य उपजायते ॥८॥
—१।२५

२. ऋतु—

११ स पूर्व्यो महाना वेन ऋतुभिरानजे।
यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे ॥१॥
—८।५२

१२ न य जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति।
वृद्धस्य चिद्वर्धतामस्य तनू स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ॥७॥
—६।२४

७. (हे पर्जन्य), महान् कोश (मेघ) को ऊपर उठाओ, सींच दो। बंधी हुई कूलें आगेको बहें। द्यौ-पृथिवीको जलसे भिगो दो, गायोंके लिये सुन्दर प्याव होवे ॥८॥

—भौम आत्रेय, ५।८३

§२ गृह

८ जो मरुत् घोड़ोंकी तरह सुन्दर गतिवाले हैं, यक्ष (मेला) दर्शकोंकी तरह मनुष्य (अपनेको) सवारते हैं। वे हम्र्यमें स्थित शिशुओंकी तरह शुभ्र, खिलाड़ी बछड़ोंकी तरह जलधर हैं ॥१६॥

—वसिष्ठ, ७।५६

९. सुकृत (यज्ञ) में अ-रक्षतपाणि, भक्तपाल हे वरुण, स्तुतिसे सुन्दर हृदयवाले जिसकी रक्षा करते हो। न क्रुद्ध होने (हे मित्र-वरुण) राजाओ, हजार खम्भेवाले क्षत्र (राज्य) को तुम दोनो मिल कर धारण करते हो ॥६॥

—श्रुतविद् आत्रेय, ५।६२

§३ काल

१. मास—

१० धृतव्रती वरुण, प्रजावाले बारह मास जानता है, जो अधिक (मास) उत्पन्न होता है, (उसे भी) जानता है ॥८॥

—शुनःशेप अजीगर्त-पुत्र, १।२५

२. ऋतु—

११. यह प्रिय (इन्द्र) प्रथम (पूजनीय) महानोंकी कमनाके साथ गतज्ञ हैं। पिता मनुने जिनके द्वारा देवोंमें (प्रिय) स्तुतियां तैयार की ॥१॥

—प्रगाथ, कण्व-पुत्र, ८।५२

१२ जिसे न शरद, न मास वृद्धा करते हैं, न इन्द्रको दिन दुर्बल बनाते हैं। इस (बढ़े) का यह तनु स्तोमों और उक्थों द्वारा प्रशंसित हो बढ़े ॥७॥

—भरद्वाज, ६।२४

१३ सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिप ।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमा. सुवीरा ॥१०॥

—६।२४

१४. यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्य ग्रीष्म इध्म शरद्धवि ॥६॥

—१०।९०

१५. शत जीव शरदो वर्धमान शत हेमन्तान् छतमु वसन्तान् ।
शतमिन्द्राग्नी सविता वृहस्पति शतायुषा हविषेम पुनर्दु ॥४॥

—१०।१६१

१६. अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते सवत्सरे वावृधे जग्धमी पुन ।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषान्यन्येन वनिनो मृष्टवारण ॥२॥

—१।१४०

ऋतुओ के अनुसार चिडियो का वोलना । (देखो १८।९)

३ नक्षत्र—

१७ सूर्याया वहतु प्रागात् सविता यमवासृजत् ।
अघासु हन्यन्ते गोवोऽर्जुन्यो पर्युह्यते ॥१३॥

—१०।८५

§४ तोल-माप

१ तोल—

१८ सहस्र व्यतीना युक्तानामिन्द्रमीमहे शत सोमस्य खार्य ॥१७॥

—४।३२

१३. हे इन्द्र, रक्षाके लिये तुम स्तोताके पास आओ। यहा उसे शत्रुओंसे बचाओ। घर और अरण्यमें शत्रुओंसे इसकी रक्षा करो। हम सुन्दर वीर सन्तानोवाले हो सौ हिमो (वर्षों) तक आनन्दसे रहें॥१०॥ (१५।८३)

—भरद्वाज, ६।२४

१४. जब पुरुषरूपी हविद्वारा देवोंने यज्ञ रचा, तो इसका घी वसंत था, ईंधन ग्रीष्म और शरद हवि थी॥६॥

—नारायण, १०।९०

१५ बढ़ते हुए सौ शरद जियो, सौ हेमन्त और सौ वसंत (जियो)। इन्द्र-अग्नि, सविता, बृहस्पति हवि द्वारा इसे फिर शतायु प्रदान करें॥५॥

—यक्ष्मनाशन, १०।१६१

१६. दो (अरणियोंसे) जन्मनेवाला (अग्नि) त्रिविध अन्नो (सोम, घृत, पुरोडाश) को खाता है, फिर खाया हुआ संवत्सर (साल) भस्में (नया) बढ़ता है। अन्यके मुख (श्रुवा) और जिह्वा (दावानल) द्वारा वह पराक्रमी सबको दूर करता है (मत्त हाथी) वृक्षोंको (जलाता) है॥२॥

—दीर्घतमा उचथ्य-पुत्र, १।१४०

३. नक्षत्र—

१७ सविताने जिसे प्रदान किया, (वह) सूर्याकी बरातके आगे-आगे गई। मघा नक्षत्रोंमे (विवाह भोज के) बैल मारे गये, दोनों फाल्गुनी (पूर्वा, उत्तरा) में वह ब्याही गई॥१३॥

—सूर्या, १०।८५

६४ भार और नाप

१. भार—

१८ हम इन्द्रसे जोतनेके हजार घोड़े मागते हैं, और सौ सोमकी खारियाँ[1]॥१७॥

—वामदेव, ४।३२

---

१. एक खारी ≈बुशल है।

१९ प्रीणीताश्वान् हित जयाथ स्वस्तिवाह रथमित् कृणुध्व।
द्रोणाहावमवतमश्चक्रमसत्रकोश सिंचता नृपाण ॥७॥

—१०।१०१

२ माप—

२० सहस्रशीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपात्।
स भूमि विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशागुल ॥१॥

—१०।९०

२१ सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो दीर्घं सचते वरुणस्य धाम।
अनवघास्त्रिशत योजनान्येकैका ऋतु परियति सद्य ॥८॥

—१।१२३

२२ धन्व च यत् कृन्तत्र च कति स्वित् ता वियोजना।
नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहा ॥२०॥

—१०।८६

§५ संख्या

१ एक, अर्ध, उभे—

२३ भूय इद्वावृधे वीर्याय एको अजुर्यो दयते वसूनि।
प्र रिरिचे दिव इन्द्र पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे ॥१॥

—६।३०

२ द्वाविंशति—

२४ द्वयां अग्ने रथिनो विंशति गा वधूमतो मघवा मह्य सम्राट्।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेय दक्षिणा पार्थवाना ॥८॥

—६।२७

१९ अश्वोंको तृप्त करो, हितको जीतो, रथको स्वस्ति-वाहक बनाओ। काठकी मोटवाले, पत्थरकी मनवाले, कवच कोशवाले मनुष्य-प्याव कूयेंसे सींचो ॥७॥ (१६।२०७)

—बुध सोम-पुत्र, १०।१०१

२. माप—

२० सहस्र-सिर, सहस्र-नेत्र, सहस्र-पाद वह पुरुष भूमिको चारो ओर लपेट कर दस अंगुल अधिक बढ़ कर अवस्थित है ॥१॥

—नारायण, १०।९०

२१ (उषायें) आज वैसी, कल भी वैसी ही, वरुणके दीर्घ धामको मानती हैं। वह दोषहीनायें एक-एक तीस योजन (जाती) तुरन्त कर्तव्यको पूरा करती हैं ॥८॥

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।१२३

२२ जो धन्व (मरु) और छेदनीय (वन) हैं, कितने वे योजन हैं? हे वृषाकपि (अग्नि), सबसे नजदीकके घरोंमें तुम (अपने) घर जाओ ॥२०॥

—इन्द्राणी, १०।८६

१. एक, अर्ध, उभय—

२३. परासमके लिये वह और भी बड़ा, वह जरा-रहित एक धन प्रदान करता है। (महिमामें) इन्द्र द्यौ-पृथिवीसे बढ़कर है। उभय (दोनों) द्यौ-पृथिवी इनके अर्धके बराबर हैं ॥१॥

—भरद्वाज, ६।३०

२. दो, बीस—

२४ हे अग्नि, धनवान् पार्थवोंके समाद् चयमान-पुत्र अभ्यावर्तीने मुझे वधुओं-सहित दो रथके घोड़े और बीस गायें प्रदान कीं। उनकी दक्षिणा (औरोंसे) दुर्लभ है ॥८॥

—भरद्वाज, ६।२७

३. एक, द्वौ—

२५. त्वमेकस्य वृत्रहन्नविता द्वयोरसि।
उतेदृशे यथा वय॥५॥

—६।४५

४. प्रथम—

२६ दधिक्रावा प्रथमो वाज्यर्वाग्रे रथाना भवति प्रजानन्।
सविदान उषसा सूर्येणादित्येभिर्वसुभिरगिरोभि ॥५॥

—७।४४

५. त्रि, चतुर—

२७. प्रातारथो नवो योजि सस्निश्चतुर्युगस्त्रिकश सप्तरश्मि ।
दशारित्रो मनुष्य स्वर्षा स इष्टिभिर्मतिभी रह्यो भूत्॥१॥

—२।१८

६. प्रथम, द्वितीय, तृतीय—

२८. सास्मा अर प्रथम स द्वितीयमुतो तृतीय मनुष स होता।
अन्यस्या गर्भमन्य ऊजनन्त सो अन्येभि सचते जेन्यो वृषा॥२॥

. —२।१८

७ त्रि, चत्वार, दश—

२९. चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तो दश गर्भ चरसे धापयन्ते।
त्रिधावत परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि मद्यो अन्तान्॥४॥

—५।४७

३. एक, दो—

२५. हे वृत्रहन्ता, तुम एकके, दोके रक्षक हो, और ऐसोंके भी जैसे कि हम ॥५॥

—शयु, बृहस्पति-पुत्र, ६।४५

४. प्रथम—

२६ रथका घोडा दधिक्रा[1] जानते हुए वह उषा, सूर्य, आदित्यों, वसुओं, अंगिराओंके साथ मेल कर रथोंके आगे होता है ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।४४

५. तीन, चार, सात, नौ, दस—

२७ प्रात को चार धुरो, तीन कशा, सात लगामोंवाले नये रथको जोड़ा। दस पतवारोंवाला मनुष्योंका हितकर वह लालमाओं (यज्ञों) और स्तुतियों द्वारा वेगवान् हुआ ॥१॥

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।८१

६. प्रथम, द्वितीय, तृतीय—

२८ वह (इन्द्र) प्रथम, वह द्वितीय और तृतीय (वार) इसके लिये तैयार हुआ। वह मनुष्योंका होता (पुकारनेवाला) हुआ। दूसरे (ऋत्विक्) दूसरेके गर्भको उपजाते है। वह विजेता पराक्रमी अन्योंसे मिलता है ॥२॥

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।१८

७. तीन, चार, दस—

२९ क्षेम कामना करते चार (ऋत्विक् सूर्यको) धारण करते हैं। दस गर्भ (शिशु) को चलनेके लिये प्रेरित करते हैं। तीन धातुओंवाली (लोकों) वाली इस (सूर्य) की गौवें (किरणें), तुरन्त द्यौके अन्त तक विचरती हैं ॥४॥

—प्रतिरथ, ५।४७

---

[1] दिवोदासका पुरुवीर-विजेता घोड़ा।

८ पच

३० य पच चर्षणीरभि निषसाद दमेदमे । कविर्गृहपतिर्युवा ॥२॥
—७।१५

३१ इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पचसु । इन्द्र तानि त आवृणे ॥९॥
—३।३७

९. षट्, षष्ठि, शत—

३२ नि गव्यवो' नवो द्रुह्यवश्च षष्टि शता सुषुपु षट्सहस्रा ।
षष्टिर्वीरासो अधि षड दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ॥१४॥
—७।१८

१० सप्त, द्वा, चतु :—

३३ सोमारुद्रा धारयेथामसूर्य प्र वामिष्टयोरमश्नुवन्तु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना श नो भूत द्विपदे श चतुष्पदे ॥१॥
—६।७४

११ अष्ट, त्रि, सप्त—

३४ अष्टौ व्यख्यत् ककुभ पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।
हिरण्याक्ष सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥८॥
—१।३५

८. पांच—

३०. जो कवि, गृहस्वामी, युवा (अग्नि) पांचो जनोंके पास घर-घरमें बैठा ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।१५

३१. हे शतक्रतु इन्द्र, पाचो जनोमें[1] जो तुम्हारी इन्द्रिया (शक्तिया) है, उन्हें हम तुम्हारी मानते है ॥९॥

—विश्वामित्र, ३।३७

९. छ, साठ, सौ, हजार—

३२. गौ लूटने के इच्छुक साठ सौ हजार और छ्यासठ अनु और द्रुह्यु (वीर, मरकर) सो गये। (भक्तोंके लिये) यह सब इन्द्रके पराक्रमके काम है ॥१४॥ (१०।१७।१४)

—वसिष्ठ, ७।१८

१०. सात, दो, चार—

३३ हे सोम-रुद्र, तुम असुर-बल धारण करो। (हमारी) कामनायें शीघ्र तुम्हें प्राप्त होवें। घर-घरमें (अपने) सातो रत्नोंको रखते तुम (दोनो) हमारे दोपायोंके कल्याणकारी चौपायोंके कल्याणकारी होओ ॥१॥

—भरद्वाज, ६।७४

११. आठ, तीन, सात—

३४ उसने पृथिवीकी आठो दिशायें तीनो मरुस्थल और सातो नदिया प्रकाशित कीं। सुनहली आखोंवाला सविता देव दानियो (यजमान)के लिए उत्तम रत्न लिये आये ॥८॥ (१।१)

—हिरण्यस्तूप आंगिरस, १।३५

---

[1] आर्योंके पुरातन पांच कबीले—पुरु, द्रुह्यु, अनु, तुर्वश और यदु।

१८ अष्टादश, द्वा, चतु, षट्—

४१ आ द्वाभ्यं हरिभ्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिराषड्भिर्हूयमानः।
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयं सुमख मा मृधस्क ॥४॥

—२।१८

१९ विंशति त्रिंशत्, शत—

४२ आ विंशत्या त्रिंशत्या याह्यर्वाङा चत्वारिंशता हरिभिर्युजानः ।
आ पचाशता सुरथेभिरिन्द्रा षष्ठ्या सप्तया सोमपेय ॥५॥

आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङाशतेन हरिभिरुह्यमानः ।
अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वया परिषिक्तो मदाय ॥६॥

—२।१८

२० सहस्र, अयुत—

४३. चित्र इद्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु।
पर्जन्य इव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुता ददत् ॥१८॥

—८।२१

अध्याय १७
आर्य नारी

१. अदिति—

१. भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त।
अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि ॥४॥

१८. अठारह, दो, चार, छ—

४१ हे इन्द्र, पुकारे जाते तुम दो, घोड़ोंके साथ , चार, छ, आठ, दसके साथ सोमपानमें आओ। हे सुवीर, यह इतना (सोम) तैयार है, इसे बुरा न कहना ॥४॥

—गृत्समद, २।१८

१९. बीस, तीस, चालीस, पचास, साठ, सत्तर, अस्सी, नब्बे, सौ—

४२ हे इन्द्र, बीस, तीस, चालीस, घोड़ों जोते पास आओ। पचास, साठ, सत्तर, सुरथोंके साथ सोमपेयमें आओ ॥५॥

अस्सी, नब्बे, सौ घोड़ों द्वारा वहन किये जाते पास आओ। हे इन्द्र शुनहोत्रोंमें तुम्हारे लिए यह सोम (तैयार) है। तुम्हारे द्वारा पिया गया (यह) मदके लिए है ॥६॥

—गृत्समद, २।१९

२० हजार, दस हजार—

४३ चित्र ही राजा है, दूसरे राजक (छोटे राजा) हैं, जो कि सरस्वतीके पास रहते हैं। जैसे पर्जन्य वृष्टि द्वारा व्याप्त होता, वैसे चित्र हजार और दस हजार देता (व्याप्त) है ॥१८॥

—सोभरि कण्व-पुत्र, ८।२१

अध्याय १७

आर्य नारी

ऋग्वेदमें वास्तविक नारियाँ घोषा, लोपामुद्रा, विश्पला, विश्ववारा, नृदेवी ही हैं, बाकी काल्पनिक नारियाँ हैं पर काल्पनिकोंसे भी आर्य नारियोंके बारेमें कितनी ही बातें मालूम होती हैं।

१. अदिति—

१ उत्तानपाद (ऊपर पैरवाले) भू (वृक्ष) से भूमि उत्पन्न हुई, भूमिसे दिशाएँ हुईं। अदितिसे दक्ष उत्पन्न हुआ, और दक्षके पीछे अदिति ॥४॥

अदिर्हं तियजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव।
ता देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः॥५॥

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्वस्परि।
देवा उप प्रैत् परा सप्तभि मार्ताण्डमास्यत्॥८॥

—१०।७२

२ इन्द्र-माता—

२ इखयन्तीरपस्युव इन्द्र जातमुपासते। भेजानास सुवीर्यं॥१॥

त्वमिन्द्र वलादधि सहसो जात ओजस । त्व वृषन्वृषेदसि॥२॥

त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं विभर्षि वाह्वो । वज्र शिशान ओजसा॥४॥

—१०।१५३

३ इन्द्राणी—

३ वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्र देवममसत।
यत्रामदद् वृषाकपिरर्य॰ पुष्टेपु मत्सखा, विश्वस्मादिन्द्र उत्तर॥१॥

परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथि।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये॰॥२॥

किमय त्वा वृषाकपिश्चकार हरितो मृग।
यस्मा इरस्यसीदु न्वर्यो वा पुष्टिमद्वसु॰॥३॥

यमिम त्व वृषाकपि प्रियमिन्द्राभिरक्षसि।
श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्॰॥४॥

प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत्।
शिरो न्वस्य राविष न सुग दुष्कृते भुव॰॥५॥

किं सुबाहो स्वगुरे पृथुष्टो पृथुजाघने।
किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपि॰॥८॥

अवीरामिव मामय शरारुरभिमन्यते।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा॰॥९॥

हे दक्ष, अदितिने (तुम्हें) पैदा किया, जो कि तुम्हारी दुहिता है। उन अदितिके पीछे भद्र अमृत-बन्धु देवता पैदा हुए ॥५॥
अदितिके आठ पुत्र, जो शरीरसे पैदा हुए। सातके साथ वह पर देवोंके पास गई, आठवें मार्तण्डको छोड़ दिया ॥८॥

—बृहस्पति लोकनामा-पुत्र, १०।७२

२. इन्द्र-माता—

२ कर्मशील (इन्द्र-माताएँ) इन्द्रके जन्मके समय (उनके) सुवीर्यको ग्रहण करती पास आईं ॥१॥
हे इन्द्र, तुम सहन् (विक्रम), ओजके बलसे उत्पन्न हुए। हे पराक्रमी, तुम बली हो ॥२॥
हे इन्द्र, ओजसे तुम अपनी दोनों बाहोंमें तीक्ष्ण करते वज्रको सूर्यके साथ धारण करते हो ॥४॥

—इन्द्र-माता, १०।१५३

३ इन्द्राणी—

३. (लोगोंने यहाँ) सोम छानना छोड़ दिया। वह इन्द्रको देव नहीं मानते। जहाँ (मद-) तृप्तोंमें मेरा सखा अर्य (स्वामी) वृषाकपि (अग्नि) है। इन्द्र सबसे उत्तम है ॥१॥
(इन्द्राणी)—'हे इन्द्र, तुम व्याकुल हो वृषाकपिके पास दौड़ते हो, अन्यत्र सोमपान नहीं पाते ॥२॥
"क्या है, जो इस पीले (हरे) मृग वृषाकपिने तुम्हें बना दिया, जिसके लिए अर्य (स्वामी) तुम पुष्टिकारक धन देते हो ॥३॥
'हे इन्द्र, जिस इस प्रिय वृषाकपिकी तुम रक्षा करते हो, उसके कानमें वराह-कामी कुत्ता काटे ॥४॥
"मेरे लिए तैयार प्रिय वस्तुओंको (वृषा-)कपिने दूषित कर दिया, इसके सिरको काट लूँगी, दुष्कर्मीको सुख न होवे ॥५॥
(इन्द्र)—"सुबाहू, सुअंगुरी, दीर्घकेशी, पृथुजघना हे इन्द्राणी, तुम क्यों हमारे वृषाकपिपर क्रुद्ध हो ॥८॥
(इन्द्राणी)—"यह दुष्ट वृषाकपि मुझे अवीरा (नारी)-सी मानता है। परन्तु मैं वीरपुत्रा इन्द्र-पत्नी हूँ, मेरे सखा मरुत् हैं ॥९॥

सहोत्र स्म पुरा नारी समन वाव गच्छति।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नि महीयते० ॥१०॥

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रव ।
नह्यस्या अपर चन जरसा मरते पतिर० ॥११॥

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्य हवि प्रिय देवेषु गच्छति० ॥१२॥

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।
घसत्त इन्द्र उक्षण प्रिय काचित्कर हविर्० ॥१३॥

उक्ष्णो हि मे पचदश साक पचन्ति पचदश।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे० ॥१४॥

धन्व च यत् कृन्तत्र च कति स्वित्ता वि योजना।
नेदीयसो वृषाकपेस्तमेहि गृहा उत० ॥२०॥ (१६।२२)

—१०।८६

४ उर्वशी—

४ पुरूरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उक्षन्।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणो हृदयान्येता ॥१५॥

—१०।९५

५ अन्तरिक्षप्रा रजसो विमानीमुपशिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठ ।
उप त्वा राति सुकृतस्य तिष्ठान्निवर्तस्व हृदय तप्यते मे ॥१७॥

—१०।९५

"पहले हवन या युद्धके समय नारियां वहां जातीं। ऋतके विधाता, वीरपुत्रा इन्द्र-पत्नीकी पूजा होती है॥१०॥

(इन्द्र)—"इन नारियोंमें इन्द्राणीको मैंने सौभाग्यवती सुना है। दूसरोंकी तरह इसका पति जरा (बुढापे) से नहीं मरेगा॥११॥

"हे इन्द्राणी, अपने मित्र वृषाकपि (अग्नि) के बिना मैं सुखी नहीं हो सकता, जिसके द्वारा यह मिलनेवाला प्रिय हवि देवताओंके पास जाता है॥१२॥

(इन्द्राणी)—"हे धनवती सुपुत्रा सुवधुका वृषाकपि-पत्नी, इन्द्र तेरे बैलोंको प्रिय हविको भख जायेगा॥१३॥

"मेरे लिए (एक) बीसके साथ पन्द्रह (३५) बैलोंको पकाते हैं, और मैं खाता मोटा होता हूँ। मेरी दोनों कुक्षियोंको (भक्तजन) पूर्ण करते हैं॥१४॥

"जो धन्व (मरूत्) और छेदनीय (वन) है, वह कितने योजन तक है। हे वृषाकपि (अग्नि), सबसे नजदीकके घरोंमें तुम (अपने) घर जाओ॥२०॥ (१६।२२)

—इन्द्राणी, १०।८६

४. उर्वशी—

४. नहीं हे पुरूरवा, तू मत मर, मत गिर, न अशिव भेड़िये तुझे खायें। स्त्रियोंकी मित्रता (स्थायी) नहीं होती, उनके ये हृदय सालावृकों (घरनों) के होते हैं॥१५॥

—उर्वशी, १०।९५

५. (उषसा) महानतम प्रेमी आकाशको पूरनेवाली लोकोंको नापने-वाली उर्वशीको मैं प्रार्थना करता हूँ, मेरे पास मेरे सुकृतका दान पहुँचे। लौट आ, मेरा हृदय संतप्त हो रहा है॥१७॥ (७।७।१७)

—उर्वशी, १०।९५

५ घोषा कक्षीवान्-पुत्री—

६ पुराणा वा वीर्या प्रब्रवा जनेऽथो हासथुर्भिषजा मयोभुवा ।
ता वा नु नव्यावसे करामहे य नासत्या श्रदरिर्यथा दधत् ॥५॥

युव रथेन विमदाय शुन्ध्युव न्यूहथु पुरुमित्रस्य योषणा ।
युव हव वध्रिमत्या अगच्छत युव सुषुति चक्रथु. पुरन्धये ॥७॥

युव श्वेतपेदवेऽश्विनाश्वनवभिर्वाजैर्नवती च वाजिन ।
चर्कृत्य ददथुर्द्रावयत्सख भग न नृभ्यो हव्य मयोभुव ॥१०॥

ता वर्तिर्यात जयुषा वि पर्वतमपिन्वत शयवे धेनुमश्विना ।
वृकस्य चिद्वर्तिकामन्तरास्याद्युव शचीभिर्ग्रसितामसुचत ॥१३॥

एत वा स्तोममश्विनावकर्मातक्षाम भृगवो न रथ ।
न्यमृक्षाम योषणा न मर्ये नित्य न सूनु तनय दधाना ॥१४॥
—१०।३९

७. यो वा परिज्मा सुवृदश्विना रथो दोषामुषासो हव्यो हविष्मता ।
शश्वत्तमासस्तमु वामिद वय पितुर्न नाम सुहव हवामहे ॥१॥

एत वा स्तोममश्विनावकर्मातक्षाम भृगवो न रथ ।
न्यमृक्षाम योषणा न मर्ये नित्य न सूनु तनय दधाना ॥१४॥
—१०।३९

८. युवा ह घोषा पर्यश्विना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वा नरा ।
भूत मे अहन उत भूतमक्तवे श्वावते रथिने शक्तमर्वते ॥५॥

युव कवी ष्ठ पर्यश्विना रथ विशो न कुत्सो जरितुर्नशायथ ।
युवार्ह मक्षा पर्यश्विना मध्वासा भरत निष्कृत न योषणा ॥६॥

५. घोषा (कक्षीवान्-पुत्री)—

६. तुम दोनोंकी प्राचीन वीरताको मैं लोगोंके पास कहती हूँ, फिर तुम दोनो सुखद चिकित्सक हो, इसलिए नवीन सहायताके लिए तुम्हारी स्तुति करती हूँ, जिसमें कि हे नासत्यो, यह शत्रु श्रद्धा करे ॥५॥

तुम विमदके ब्याहनेके लिए पुरुमित्रकी कन्या शुन्ध्युको लाये। तुम वध्रिमतीकी पुकारपर आये। तुमने पुरन्धि (गर्भिणी वध्रिमती) का प्रसव सुखमय किया ॥७॥

हे अश्विनो, तुमने पेदुके लिए वेगोंसे वेगवान् निन्यानवे घोड़ों[illegible] गाय भागकी तरह मनुष्य-सुखद हवि दिया, [illegible] एक श्वेत अश्व जैसे [illegible]को ॥१०॥

हे अश्विनो, तुम स्यन्द पर्वत-विजेता (हमारे) घर आओ और शयुके लिए धेनु (दुधार गाय) बनाओ। वृक (भेड़िये) के मुखके भीतर पड़ी गई बटेरको तुमने युक्तिसे छुड़ाया था ॥१३॥

हे अश्विनो, जैसे भृगु लोग रथको गढ़ते हैं, वैसे तुम्हारे लिए इस स्तोम (गान) को मैंने बनाया। दामादको देनेके लिए जैसे कन्याको सजाते, जैसे पुत्र-पौत्रको नित्य धारण करते हैं, वैसे हमने किया ॥१४॥

—घोषा, १०।३९

७. हे अश्विनो, सर्वभूपर्यटक जो तुम्हारा सुनिर्मित रथ है, जिसे हविवाले (यजमान) प्रतिदिन, प्रतिरात्रि और प्रतिउषा पुकारते हैं। तुम्हारे पिताके सुन्दर पुकारे जानेवाले नामकी तरह तुम्हारे (नाम) का हम सदा आह्वान करते हैं ॥१॥

८. हे अश्वद्वय, मैं [illegible] राजदुहिता घोषा तुम दोनों नेताओंके पास आकर पूछती हूँ, "दिनमें मेरे पास हो या रातमें हो [illegible] [illegible] (पति) के [illegible] [illegible] ॥५॥

हे अश्विनो, [illegible] दोनों [illegible]। [illegible] [illegible] पुरुष [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] (उस) [illegible] [illegible]

युव ह भुज्यु युवमश्विना वश युव शिजारमुशनामुपा रथु ।
युवो रराव परि सख्यमासते युवोरहमवसा सुम्नमाचके ॥७॥

युव ह कृश युवमश्विना शयु युव विधन्त विववामुरुष्यथ ।
युव सनिभ्य स्तनयन्तमश्विनाप व्रजमूर्णुथं सप्तास्य ॥८॥
—१०।४०

९ न तस्य विद्म तदुपु प्र वोचत युवा ह यद्युवत्या क्षेति योनिपु ।
प्रियोस्रियस्य वृपभस्य रेतिनो गृह गमेमाश्विना तदुश्मसि ॥११॥
—१०।४०

१०. समानमु त्य पुरुहूतमुक्थ्य रथ त्रिचक्र सवना गनिग्मत ।
परिज्मान विदथ्य सुवृक्तिभिर्वय व्युष्टा उपसो हवामहे ॥१॥

प्रातर्युज नासत्याधितिष्ठथः प्रातर्यावाण मधुवाहन रथ ।
विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा कीरेश्चिद्यज्ञ होतृमन्तमश्विना ॥२॥

अध्वर्यु वा मधुपाणि सुहस्त्यमग्निध वा धृतदक्ष दमूनस ।
विप्रस्य वा यत् सवनानि गच्छथो त आयात मधुपेयमश्विना ॥३॥
—१०।४१

११. युव नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्व ददर्थुविश्वकाय ।
घोषायै चित् पितृपदे दुरोणे पति जूर्यन्त्या अश्विनावदत्त ॥७॥
—१।११७

६ जुहू—

१२ ते वदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषे कूपार. सलिलो मातरिश्वा ।
वीळुहरास्तप उग्रो मयोभूरापो देवी प्रथमजा ऋतेन ॥१॥

हे अश्विनो, तुमने भुज्युको, तुमने वशको, तुमने शिजारको और उशनाको उबारा था। जो दाता है, वह तुम्हारे सखित्वको पाता है, मैं तुम्हारी सहायताके साथ सुख चाहती हूँ ॥७॥

हे अश्विनो, तुमने कृशको, तुमने शयुको, तुमने सेवक (और) विधवाको बचाया। हे अश्विनो, दाताओंके लिए तुम मेघके कड़कने सप्तमुख वज्र (मेघ) को खोलते हो ॥८॥

९ वह बात हम नहीं जानते, उसे तुम बतला दो, कैसे युवा और युवती गृहोंमें रहते हैं। मैं स्त्री-प्रिय सुपुष्ट पराक्रमी तरुणके गृहमें जाऊँ, हे अश्विनो, (मेरी) उस कामनाको पूरी करो ॥११॥

—घोषा, १०।४०

१०. तीन चक्रोंवाला, बहुतों द्वारा पुकारा जाता, स्तुत्य, भूपर्यटक, यशीय दोनोंके सम्मिलित रथको उषाकालमें उठकर हम सुन्दर ऋचाओंसे प्रार्थना करते हैं ॥१॥

हे नासत्य (न-असत्य) अश्विद्वय, प्रात जोड़े गये, प्रातः चलनेवाले (उस) मधुवाहन रथपर चढ़ो, जिसके द्वारा यज्ञ करनेवाली प्रजाओंके पास जाते हो, हे नेताद्वय अश्विनो, गरीबोंके होता-युक्त यज्ञमें भी ॥२॥

हे अश्विद्वय, मधु-पाणि घृतदक्ष (दृढ़-शक्ति), गृहस्थित, सुदृढ ऋत्विक्के पास या जब विप्रके सवनो (यज्ञो) में जाओ, तो मधुपान में भी पहुंचो ॥३॥

—सुहस्त्य घोषा-पुत्र, १०।४१

११. हे दोनो नेताओ, तुम कृष्ण-पुत्र स्तोता विश्वकके लिए (नष्ट पुत्र) विष्णापूको लाये। तुमने पिता के घर बैठी हारपर खुजली घोषाको पति प्रदान किया ॥७॥

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।११७

६ गुह—

१२. उन प्रथमजों (पूर्वजों)—सूर्य, वायु, अनन्त जल, प्रज्वलित उग्र अग्नि, सुन्दर सत्य-उत्पन्न आप-देवियोंने ब्राह्मणके विरुद्ध पापके बारेमें कहा ॥१॥

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजाया पुन प्रायच्छदहृणीयमान ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ॥२॥

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन् ।
न दूताय प्रह्ये तस्थ एषा तथा राष्ट्र गुपित क्षत्रियस्न् ॥३॥

देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तपसे ये निषेदु ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥४॥

ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विष स देवाना भवत्येकमग ।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पति सोमेन नीता जुह्व न देवा ॥५॥

पुनर्वै देवा अददु पुनर्मनुष्या उत ।
राजान सत्य कृण्वाना ब्रह्मजाया पुनर्ददु ॥६॥

—१०।१०९

७. दक्षिणा—

१३ आविरभून्महि माघोनमेषा विश्व जीव तमसो निरमोचि ।
महि ज्योति पितृभिर्दत्तमागादुरु पन्था दक्षिणाया अदर्शि ॥१॥

उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदा सह ते सूर्येण ।
हिरण्यदा अमृतत्व भजन्ते वासोदा सोम प्र तिरन्त आयु ॥२॥

दैवी पूर्तिर्दक्षिणा देवयज्या न कवारिभ्यो नहि ते पृणन्ति ।
अथा नर प्रयतदक्षिणासोऽवद्यभिया बहव पृणन्ति ॥३॥

दक्षिणावान् प्रथमो हूत एति दक्षिणावान् ग्रामणीरग्रमेति ।
तमेव ऋषि तमु ब्रह्माणमाहुर्यज्ञन्य सामगामुक्थशास ।

सोमराजाने प्रथम आकृष्ट हो ब्रह्मपत्नीको फिर से (बृहस्पतिको) प्रदान किया। मित्र और वरुण उनके अनुगामी हुए। होता अग्नि हाथ पकड़कर उसे ले आया ॥२॥

"इसकी देहको हाथसे ही ग्रहण करना चाहिए, यह ब्रह्म-जाया है," यह सबने कहा। भेजे दूतके लिए वह नहीं हुई, जैसे क्षत्रिय का राष्ट्र रक्षित ॥३॥ —(११।३)

पुराने देवों और तपस्यामें बैठे उन सात ऋषियोंने इनके बारेमें कहा —ब्राह्मणकी भीमा पत्नीको ले भागना। (यह) परम व्योममें दुर्व्यवस्था स्थापित करती है॥४॥

बिना पत्नीके ब्रह्मचारी (रह) विचरता वह देवताओंका अंग होता है। सोम द्वारा लाई गई जुहू (पात्र) को जैसे देवोंने, वैसे ही (अपनी) पत्नी (जुहू) को बृहस्पतिने प्राप्त किया ॥५॥

देवोंने फिर उसे प्रदान किया, और फिर मनुष्योंने (प्रदान किया)। राजाओंने सच्चा करते ब्रह्मपत्नीको फिर प्रदान किया ॥६॥

—ऋ, १०।१०९

७. दक्षिणा—

१३ इन (मनुष्यों) में मघवा (धनवान्) सूर्यका महान् तेज आविर्भूत हुआ, उसने सारे जीवोंको अन्धकारसे निर्मुक्त किया। पितरों द्वारा दी गई बड़ी ज्योति आई। दक्षिणाका विस्तृत पथ दिखाई पड़ा ॥१॥

दक्षिणावाले (दानी) ऊँचे द्यौ लोकमें स्थान पाते हैं। जो अश्व दाता हैं, (वह) सूर्यके साथ (रहते हैं)। सोना देनेवाले अमरताको पाते हैं। हे सोम, वस्त्र देनेवाले पास आ आयुको बढ़ाते हैं ॥२॥

देवोंकी पूजावाली दक्षिणा दिव्य मूर्ति है। कंजूसोंको ये (देव) नहीं तृप्त करते। और जो बहुतेरे नर दक्षिणासे तत्पर दोषसे तृप्ति करते हैं ॥३॥

दक्षिणावान् (दानी) पहले निमन्त्रित होते हैं। दक्षिणावान् ग्रामणी श्रेष्ठ होता है। जिसने पहले (पहल) दक्षिणा दी, उसीको मैं जनोंका नृपति मानता हूँ ॥४॥

स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो य प्रथमो दक्षिणया रराध ॥६॥
दक्षिणाश्व दक्षिणा गा ददाति दक्षिणा चन्द्रमुत यद्धिरण्य।
दक्षिणान्न वनुते यो न आत्मा दक्षिणा वर्म कृणुते विजानन् ॥७॥

न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजाः।
इद यद्विश्व भुवन स्वश्चैतत् सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति ॥८॥

भोजा जिग्यु सुरभि योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्व या सुवासा।
भोजा जिग्युरन्त पेय सुराया भोजा जिग्युर्ये अहूता प्रयन्ति ॥९॥
—१०।१०७

८. निवावरी, सिकता—

१४ अभिक्रन्दन् कलश वाज्यर्पति पतिर्दिव शतधारो विचक्षण।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभि सिन्धुभिर्वृषा ॥११॥

अय मतवाञ्छकुनो यथा हितो व्ये ससार पवमान ऊर्मिणा।
तव क्रत्वा रोदसी अन्तरा कवे शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥१३॥

द्रापि वसानो यजतो दिविस्पृशमन्तरिक्षप्रा भुवनेष्वर्पित।
स्वर्जज्ञानो नभसाभ्यक्रमीत् प्रत्नमस्य पितरमाविवासति ॥१४॥
—९।८६

उसीको ऋषि, उसीको ब्रह्मा, उसीको यज्ञ-कर्ता, सामगायक, उक्थ (स्तुति) बोलनेवाला कहते हैं। वह शुक्र (अग्नि) के तीनों शरीरोंको जानता है, जिसने पहले दक्षिणासे आराधना की ॥६॥

दक्षिणा अश्वको, दक्षिणा गायको देती है, दक्षिणा चन्द्र (चाँदी) और सोना है, जो उसे देती है। दक्षिणा अन्नको देती है, जो कि हमारा आत्मा (शरीर) है। (यह) जानकर (आदमी) दक्षिणाको कवच बनाता है ॥७॥

भोज (भोजनदाता) न मरते, न नष्ट होते, न क्लेश पाते, न भोज व्यथित होते हैं। यह जो सारे भुवन और यह स्वर्ग है, उसको उन्हें दक्षिणा देती है ॥८॥

भोज (सबमें) पहले ही सुरभि निवास पाते हैं, भोज सुवस्त्र वधू पाते हैं, भोज आन्तरिक पेय सुराको पाते हैं। जो बिना बुलाये आक्रमण करते हैं, उन्हें भोज जीतते हैं ॥९॥

—दक्षिणा, १०।१०७

८. निवावरी, सिकता—

१४ द्यौपति, विचक्षण, शतधार सोम शब्द करता कलशमें आता है। (वह) सुवर्ण-वर्ण पराक्रमी मित्रों और मेषोंके (लोमों)से माँजा जाता मित्रके घरोंमें बैठता है ॥११॥

यह मेषलोममें छाना जाता तरंगित बेपर्वाह सोम पशुकी भाँति चलता है। हे रुचि इन्द्र, तुम्हारे मदमें द्यौ और पृथिवीके बीच शुचि सोम स्तुति द्वारा पूत होता है ॥१३॥

द्यौ-चुम्बी अन्तरिक्ष-पूरक अपि-महने, भुवनोंमें अर्पित रजनीय स्वर्ग-ज्ञाता (सोम) मेष द्वारा आ, अपने पुराने पितर (इन्द्र) की सेवा करता है ॥१४॥

—निवावरी, ९।८६

९. यमी वैवस्वती—

१५. ओचित् सखाय मख्या ववृत्या तिर पुरू चिदर्णव जगन्वान्।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधिक्षमि प्रतर दीध्यान ॥१॥

न ते सखा सख्य वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद्विपुरूपा भवाति।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥२॥

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित्यजस मर्त्यस्य।
नि ते मनो मनसि धीय्यस्मे जन्यु पतिस्तन्वमा विविश्या ॥३॥

न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृत रपेम।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभि परम जामि तन्नौ ॥४॥

यमस्य मा यम्य काम आगन्त्समाने योना सहशेय्याय।
जायेव पत्ये तन्व रिरिच्या वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ॥७॥

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामय कृणवन्नजामि।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पति मत् ॥१०॥

कि भ्रातासद्यदनाथ भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात्।
कामपूता वह्वेतद्रपामि तन्वा मे तन्व स पिपृग्धि ॥११॥

न वा उ ते तन्वा तन्व सपपृच्या पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्।
अन्येन मत् प्रमुद कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥१२॥

बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदय चाविदाम।
अन्या किल त्वा कक्ष्येव युक्त परिष्वजाते लिबुजेव वृक्ष ॥१३॥

९. यमी विवस्वान्-पुत्री—

१५. (यमी)—विस्तृत समुद्रमें आओ, सख्यके लिए (मैं) सखा चुनना चाहती हूँ। विधाताने विशेष ध्यान कर पृथिवीपर पिताकी सन्तान रक्खी ॥१॥

(यम)—"तेरा सखा (मैं) इस सख्य (प्रेम) को नहीं चाहता, क्योंकि तू सहोदरा होनेसे इसके अयोग्य है। विस्तृत द्यौके धारक, महानके पुत्र, असुर-वीर चारों ओर देख रहे हैं ॥२॥

(यमी)—"वे अमर लोग यह एक मर्त्य (मर्द) की सन्तान तुझसे चाहते हैं। मेरे मन में तू अपने मन को धारण कर, पत्नीका पति हो कर मेरे शरीर में प्रवेश कर ॥३॥

(यम)—"जिसे हमने पहले कभी नहीं किया, सत्यवादी होते कैसे हम झूठा बोलेंगे। जलके गन्धर्व और जलकी योषा (स्त्री) यह हमारा परम संबंध, यह हमारा बंधुत्व है। ॥४॥

(यमी)—"यमके प्रति मुझ यमीकी कामना एक घरमें साथ सोने के लिये हो आई है। मैं जायाकी तरह पतिके लिये शरीर खोलती हूँ। (आओ) मिलने रथके चक्कोंकी तरह (हम) मिलें ॥८॥

(यम)—आगे वह युग अवश्य आयेंगे, जब भगिनियां अभगिनी बनेंगी। (किसी) दूसरे वृषभ (नर-पुरुष) का तकिया अपने बाहुको बनाओ। हे सुभगे, मुझसे अन्यको पति चाहो ॥१०॥

(यमी)—(वह) "क्या भाई (है), यदि (उसके) होते (बहिन) अनाथ होवे? क्या बहिन जो नाश हो जावे? कामवश हो मैं यह बहुत बोल रही हूँ, (अपने) शरीर से मेरे शरीर को आलिंगन कर ॥११॥

(यम)—(अपने) शरीरसे तेरे शरीरको मैं नहीं लगने दूँगा, जो बहिनको अभिगमन करते (उन्हें) पापी कहते हैं। मुझसे भिन्नसे तू प्रमोद प्राप्त कर, हे सुभगे, तेरा भाई यह नहीं चाहता ॥१२॥

(यमी)—अफसोस है अकर्मण्य यम, मैं तेरे (भीतर) मन, हृदय नहीं पा सकी। जैसे वृक्षको लता जैसे कटिबंधकी तरह दूसरी (स्त्री) तुझे आलिंगन करेगी ॥१३॥

अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वां परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षं ।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविद सुभद्रा ॥१४॥
—१०।१०

१६ सोम एकेभ्य: पवते घृतमेक उपासते ।
येभ्यो मधु प्रधावति तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१॥

तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययु ।
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥२॥

ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यज ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ॥३॥
—१०।१५४

१० रात्रि—

१७ रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभि । विश्वा अधि श्रियो धित ॥१॥
निरु स्वसारमस्कृतोषस देव्यायती । अपेदु हासते तम ॥३॥

नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिण ।
नि श्येनासश्चिदर्थिन: ॥५॥

उप मा पेपिशत्तम कृष्ण यक्तमस्थित। उप ऋणेव यातय ॥७॥
—१०।१२७

११ लोपामुद्रा—

१८. पूर्वीरह शरद शश्रमाणा दोषावस्तोरुषसो जरयन्ती: ।
मिनाति श्रिय जरिमा तनूनामप्यूनु पत्नीर्वृषणो जगम्यु ॥१॥

ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्साक देवेभिरवदन्नृतानि ।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापु समूनु पत्नी० ॥२॥

(यम)—हे यमी, दूसरेका आलिंगन कर, दूसरा तुझे वृक्षको लताकी तरह आलिंगन करे। उसके मनको तू चाहे और वह तेरे साथ मंगलमय संबंध करे ॥१४॥

—यमी, १०।१०

१६ किन्हीं (पितरों) के लिये सोम छाना जाता है, कोई घृतका सेवन करते हैं। जिनके लिये मधु बहता है, हे उनके पास ही वह जाये ॥१॥
तपस्याके कारण जो दुर्धर्ष है, तपस्यासे जो स्वर्ग गये, जिन्होंने महान् तपस्या की, उनके पास ही वह जाये ॥२॥
जो युद्धोंमें, लड़ते जो शूर शरीर छोड़ते हैं, और जो सहस्र दक्षिणा देनेवाले हैं, उनके पास ही वह जाये ॥३॥

—यमी, १०।१५४

१०. रात्रि—

१७ रात्रि देवीने आते हुए नेत्रोंसे बहुत देखा। उसने सारी शोभाको धारण किया ॥१॥
देवीने आते हुए (अपनी) बहिन उषाको प्रतिष्ठापित किया और (उसने) तमको हटाया ॥३॥
ग्राम (घरों) में घुस गये, बटोही और पक्षी, (शिकार) मारने वाले बाज भी घुसे ॥५॥
वह मेरे पास आई, (यहाँ) काला अन्धकार स्पष्ट अवस्थित है। हे उषा, ऋणकी तरह (उसे) हटा ॥७॥

—रात्रि १०।१२७

११. लोपामुद्रा—

१८. (लोपामुद्रा)—"पहिले वर्षों दिन-रात, बुढ़ापा लानेवाली उषाओंमें मैं थकती रही। बुढ़ापा शरीर-शोभाको नष्ट कर देता है। पति पत्नीके पास (पहुँचें) जावें ॥१॥
"जो पुराने सत्यपालक थे, देवोंके साथ सत्य बोलते थे, उन्होंने भाग पर अन्त नहीं पाया। फिर०" ॥२॥

न मृषा श्रान्त यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव।
जयावेदत्र शतनीथमाजि यत् सम्यचा मिथुनावभ्यजाव ॥३॥

नदस्य मारुधत काम आगन्नित आ जातो अमुत कुतश्चित्।
लोपामुद्रा वृषण नीरिणाति धीरमधीरा धमति श्वसन्ते ॥४॥
—१।१७९

१२ वसुक्र-पत्नी—

१९ विश्वो ह्यन्यो अरिराजगाम ममेदह श्वशुरो नाजगाम।
जक्षीयाद् धाना उत सोम पपीयात् स्वाशित पुनरस्त जगायात् ॥१॥
—१०।२८

१३ वाक्—

२० अह रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वेदेवै ।
अह मित्रावरुणोभा विभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥

अहमेव स्वयमिद वदामि जुष्ट देवेभिरुत मानुषेभि ।
य कामये तन्तमुग्र कृणोमि त ब्रह्माण तमृषि त सुमेधा ॥५॥
—१०।१२५

१४ विवृहा—

२१ अक्षीभ्या ते नासिकाभ्या कर्णाभ्या छुबुकादधि।
यक्ष्म शीर्षण्य मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१॥

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्य कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्म दोषण्यमसाभ्या वाहुभ्या वि वृहामि ते ॥२॥

—१०।१६३

(अगस्त्य)—हम व्यर्थ नहीं थके, जो कि देव लोग (हमारी) रक्षा करते हैं। हम सारे भोगोंको पा रहे हैं। यहां (हम) सैकड़ों पायें, यदि दोनों ठीकसे प्रयास करें॥३॥
कामको मैंने रोका है, पर यहां-वहां कहींसे वह उत्पन्न होता है। लोपामुद्रा पतिका संगम करती है। उत्तान रहती वह अधीर धीर का चुंबन करती है॥४॥

—लोपामुद्रा, १।१७९

१२. वसुक-पत्नी—

१९. दूसरे सारे मित्र आये, (पर) मेरा ससुर यहां नहीं आया, कि वह भुना दाना खाता, और सोम पीता, अच्छी तरह खाकर पुन (अपने) घर जाता॥१॥

—वसुक-पत्नी, १०।२८

१३. वाक्—

२० मैं रुद्रों, वसुओंके साथ, मैं आदित्यों और सारे देवोंके साथ विचरण करती हूं। मैं मित्र और वरुण दोनोंको धारण करती हूं। मैं इन्द्र-अग्नि और दोनों अश्विनोंको (धारण करती हूं)॥१॥
मैं स्वयं ही देवताओं और मनुष्योंको पसंद यह कहती हूं, जिसे मैं चाहती हूं, उसे उग्र, उसे ब्रह्मा, उसे ऋषि उसे सुमेधा बनाती हूं॥५॥

—वाक् १०।१२५

१४. विवृहा—

२१ तेरी दोनों आंखोंसे, दोनों नासिकाओंसे, दोनों कानोंसे, ठुड्डीसे ऊपर, मस्तिष्कसे, जिह्वासे, शीर्षण्य यक्ष्म (रोग) को मैं दूर करता हूं॥१॥ (१६३।१)
तेरी ग्रीवासे, धमनियोंसे, हड्डियोंसे, जोड़ोंसे, दोनों कंधोंसे, दोनों बाहुओंसे, यक्ष्माको मैं दूर करता हूं॥२॥ (१६३।२)

—विवृहा, १०।१६३

१५ विश्पला—

२२ अभूदिद वयुनमोषु भूपता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिण ।
धिय जिन्वा धिष्ण्या विश्पल॰ वसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥१॥
—१।१८२

१६ विश्ववारा—

२३ समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत् प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया विभाति ।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवा ईळाना हविपा घृताची ॥१॥

अग्ने शर्धं महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
स जास्पत्य सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभितिष्ठा महासि ॥३॥
—५।२८

१७ शची पौलोमी—

२४ उदसौ सूर्यो अगादुदय मामको भग ।
अह तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विपासहि ॥१॥

अह केतुरह मूर्धाहमुग्रा विवाचनी ।
ममेदनु क्रनु पति सेहानाया उपाचरेत् ॥२॥

मम पुत्रा शत्रुहणोथो मे दुहिता विराट् ।
उताहमस्मि सजया पत्यौ मे श्लोक उत्तम ॥४॥
—१०।१५९

१८. शश्वती—

२५. अन्वस्य स्थुर ददृशे पुरस्तादनस्थ ऊरुरवरम्वमाण ।
शश्वती नार्यभिचक्ष्याह सुभद्रमर्य भोजन विभर्षि ॥३४॥
—८।१

१५. विश्पला—

२२. यह काम था। हे मनीषियो, खुश होओ, (अश्विनोका) घोड़ोवाला रथ आया। वह हृदयहारी, कमनीय, शुचिव्रत, द्यौकी सतान, सुकर्मा विश्पलाके हितू हैं॥१॥

—विश्पला, १।१८२

१६. विश्ववारा—

२३ प्रज्वलित अग्नि द्यौ लोकमें किरणोको फैलाता है, उषाके सामने विस्तृत शोभा देता है। हवि और नमस्कारके साथ देवोंको पूजती विश्ववारा (सब वरोंको लानेवाली) स्रुवा दिशाकी ओर जाती है ॥१॥

हे अग्नि, महान् सौभाग्यके लिये (शत्रुओंको) नाश करो। तुम्हारे प्रकाश उत्तम हो, दाम्पत्य (सम्बन्ध) को तुम सुनियमित करो। शत्रुता करनेवालोंके तेजको नष्ट करो॥३॥

—विश्ववारा, ५।२८

१७. शची पुलोमा-पुत्री—

२४. वह सूर्य उगा, (मानो) यह मेरा भाग्य उगा। उसे जानते मुझ विजयिनीने पतिको (अपने) वशमें कर लिया॥१॥

मैं केतु (ध्वज) हूँ, मैं मस्तक हूँ। मैं उग्र पत्नी हूँ, मुझ दयनाके इच्छाके अनुसार पति चले॥२॥

मेरे पुत्र शत्रुहन्ता हैं, और मेरी दुहिता रानी है। मैं सजया (जीतनेवाली) हूँ। पतिके पास मेरा उत्तम श्लोक (प्रशंसा) है॥३॥

—शची, पुलोमा-पुत्री, १०।१५९

१८. शश्वती—

२५ फिर अङ्गिरसकी स्त्री ... (आसङ्ग) सामने ... भारी ... देखकर कहा "हे नाथ (तुम) ... भोग धारण करते हो" ॥३४॥

—शश्वती, ८।१

१९. शिखण्डिनी काश्यपी—

२६ स नो मदाना पत इन्दो देवप्सरा असि।
सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव ॥५॥
सनेमि कृध्यस्मदा रक्षस क चिदत्रिण।
अपादेव द्वयुमहो युयोधि न ॥६॥

—९।१४०

२०. श्रद्धा कामायनी—

२७ श्रद्धयाग्नि समिध्यते श्रद्धया हूयते हवि ।
श्रद्धा भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥१॥
प्रिय श्रद्धे ददत प्रिय श्रद्धे दिदासत ।
प्रिय भोजेषु यज्वस्विद म उदित कृधि ॥२॥
यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे।
एव भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदित कृधि ॥३॥

—१०।१५१

२१. सरमा—देखो (६।१९)

२२ सार्पराज्ञी—

२८ मयोभूर्वातो अभि वातूस्रा ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्ता।
पीवस्वतीर्जीवधन्या पिबन्त्ववसाय पद्वते रुद्र मृळ ॥१॥
या देवेषु तन्वमैरयन्त यासा सोमो विश्वा रूपाणि वेद।
ता अस्मभ्य पयसा पिन्वमाना प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे रिरीहि ॥३॥

—१०।१६९

२३ सिकता—देखो निवावरी १७।८

२४ सुदेवी—

२९ याभि पत्नीर्विमदाय न्यूहथुराघ वा याभिररुणीरशिक्षत।
याभि सुदास ऊहथु सुदेव्य ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गत ॥१९॥

—१।११२

१९ शिखण्डिनी काश्यपी—

२६ वह हमारे मदोंके पति हे सोम, तुम देव-भोजन हो। सखाको सखाकी तरह (तुम हमारे लिये) अत्यन्त हित-ज्ञ होओ ॥५॥

२०. श्रद्धा कामायनी—

२७ श्रद्धासे अग्नि प्रज्वलित होता है, श्रद्धासे हवि होम की जाती है। ऐश्वर्यके शिरपर रहनेवाली श्रद्धाको मैं वचनसे जतलाती हूँ ॥१॥ हे श्रद्धे, देनेवालेका प्रिय करो। हे श्रद्धे, देनेकी इच्छावालेका प्रिय करो। भोज देनेवालो (भोजों) का प्रिय करो। यज्ञ करनेवालोंमें मेरे इस कथनको (पूरा) करो ॥२॥ जैसे देवताओंने, उग्र असुरोंमें (असुरोंको) श्रद्धा की, ऐसे ही भोजों और यज्ञकर्त्ताओंमें हमारे कथनको करो ॥३॥ —श्रद्धा, १०।१५१

१ सरमा—देखो ६।१६

१२ सार्पराज्ञी—

२८ सुखमय वायु गायोंपर बहे, वह बलदायक वनस्पतियोंको खायें, मोटा करनेवाले, आयु बढ़ानेवाले (जल) को पीयें। हे रुद्र, पैरोंवाली (गायों) के लिये भोजन सुखमय बनाओ ॥१॥ जो गायें अपने शरीरको देवोंके लिये देती हैं, जिनके सारे रूपोंको सोम जानता है, सन्तानवाली हों, हमें दूधसे पूर्ण करती उन (गायों) को हे इन्द्र, (हमारे) गोष्ठमें लाओ ॥२॥ —सार्पराज्ञी १०।१६०,

२३ सिकता—देखो निवावरी १७।८

२४ सुदेवी—

२९ हे अश्विद्वय, जिन महानताओं द्वारा विमदके लिये तुम कमनीय नारी लाये, जिनसे अरुणको दिया, जिनसे सुदासको लिये सुदेवीको तुम लाये, उन महानताओंके साथ आओ ॥१९॥ —कुत्स आङ्गिरस, १।११२

२५ सूर्या—

३० सत्येनोत्तभिता भूमि सूर्येणोत्तभिता द्यौः।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रिति ॥१॥

सोमेनादित्या वलिन सोमेन पृथिवी मही।
अथो नक्षत्राणामेपामपस्थे सोम आहित ॥२॥

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशसी न्योचनी।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृत ॥६॥

चित्तिरा उपबर्हण चक्षुरा अभ्यजनं।
द्यौर्भूमि कोश आसीद्यदयात् सूर्या पति ॥७॥

स्तोमा आसन् प्रतिधय कुरीर छन्द ओपश ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगव ॥८॥

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत् पत्ये शसन्ती मनसा सविता ददात् ॥९॥

मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुता छदि ।
शुक्रावनड्वाहावास्ता यदयात् सूर्या गृह ॥१९॥

शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहत ।
अनो मनस्मय सूर्यारोहत् प्रयती पति ॥१२॥

सूर्याया वहतु प्रागात् सविता यमवासृजत्।
अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्यो पर्युह्यते ॥१३॥

सुकिंशुक शल्मलि विश्वरूप हिरण्यवर्णं सुवृत सुचक्र।
आरोह सूर्ये अमृतस्य लोक स्योन पत्ये वहतु कृणुष्व ॥२०॥

उदीर्ष्वात पतिवती ह्येपा विश्वावसु नमसा गीर्भिरीळे।
अन्यामिच्छ पितृपद व्यक्ता स ते भागो जनुपा तस्य विद्धि ॥२१॥

२५. सूर्या—

३० सत्य द्वारा भूमि थामी गई, सूर्य द्वारा द्यौ थामा गया। ऋत (सत्य)
द्वारा देव आदित्य द्यौमें स्थित है, द्यौमें सोम आश्रय प्राप्त है॥१॥
सोमसे आदित्य वली है, सोमसे पृथिवी महान् है। और इन नक्षत्रोंके
पास सोम रक्खा गया है॥२॥
रैभी (ऋचायें) अनुदेयी (वधूके साथ अनुदान को जानेवाली सखी)
थी, नाराशंसी (ऋचायें) (वहूकी) दासी थी, सूर्याका बढ़िया वस्त्र
गाथासे परिष्कृत था॥६॥
जब सूर्या पतिके पास गई, तो चिन्तन तकिया था, चक्षु अंजन था।
द्यौ-पृथिवी कोश थे॥७॥
स्तोम चक्रके अरे थे, कुरीर छन्द ओपश (सीसफूल) था। सूर्याके
वर अश्विद्वय थे, अग्नि अगुआ था॥८॥
सोम व्याह-इच्छुक था, दोनों अश्विद्वय वर थे। जब पतिकी कामना
करनेवाली सूर्याको सविताने अश्विनोंको मनसे दिया॥९॥
जब सूर्या (पतिके) घर गई, तो मन इसका शकट था, और द्यौ इस
(आहार) थी। दोनों शुक्र (ग्रहके) दो बैल थे॥१०॥
जाती हुई तेरे चक्रोंके धुरेमें वायु पड़ा था। पतिके पास जाती सूर्या
मनोमय रथपर चढ़ी॥१२॥
सविताने जिसे प्रदान किया, वह सूर्याकी बगनके आगे-आगे चला।
मघा नक्षत्रोंमें बैल मारे गये, अर्जुनी-(फाल्गुनी) पूर्वा-उत्तरा में वह
व्याही गई॥१३॥ (१६।१७)
हे सूर्ये, नाना रूपों सुनहले, सुआच्छादित, किंशुक-शाल्मलिके सुन्दर
चक्रवाले (रथपर) चढ़। जाकर पतिके सुखमय अमृत लोक [illegible]
लिये बना॥२०॥
विश्वावसु (गन्धर्व) को नमस्कारपूर्वक वाणीसे मैं प्रार्थना करता
हूँ—तुम यहाँसे उठो। यह पतिवाली है। तुम पिताके घरमें बैठी [illegible]
[illegible] कन्याकी कामना करो, वह तुम्हारा भाग है। [illegible]
पतिको ढूँढ़ो॥२१॥

सुमगलीरिय वधूरिमा समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्वायाथास्त वि परेतन ॥२३॥

इहैव स्त मा वियौष्ट विश्वमायुर्व्यश्नुत।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥४२॥

इमा त्वमिन्द्र मीढ्व सुपुत्रा सुभगा कृणु।
दशास्या पुत्रानाधेहि पतिमेकादश कृधि ॥४५॥

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वा भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥४६॥

—१०।८५

अध्याय १८

भाषा और काव्य

§१. भाषा

१ भरद्वाज—

१ त्व ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता।
त्व सी वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै ॥१॥

अधा होता न्यसीदो यजीयानिळस्पद इषयन्नीळ्य सन्।
त त्वा नर प्रथम देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनुग्मन् ॥२॥

—६।१

२ रक्षोहा—

२. ब्रह्मणाग्नि सविदानो रक्षोहा बाधतामित।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥१॥

यह सुमंगली वधू है, आकर इसे तुम देखो। इसको सौभाग्य प्रदान कर अपने-अपने घरोंको जाओ ॥३३॥
दोनों (पति-पत्नी) यहीं रहें, न बिछुड़ें, सारी आयुको प्राप्त करें। पुत्र और नातियोंके साथ खेलते अपने घरमें प्रमुदित रहें ॥४२॥
हे सिंचन-समर्थ इन्द्र, इस (वधू) को सुपुत्रा सुभगा बनाओ। इसमें दस पुत्रोंको धारण करो, (और) पतिको ग्यारहवां बनाओ ॥४५॥
हे वधू, तू ससुरपर सम्राज्ञी हो, सासपर सम्राज्ञी हो। ननदपर सम्राज्ञी हो, देवरोंपर सम्राज्ञी हो ॥४६॥

—सूर्या, १०।८५

अध्याय १८

भाषा और कविता

§१ भाषा

१. भरद्वाज—

१ हे अग्नि, तुम इस बुद्धिके प्रथम मननकर्ता, अच्छा होता हो। हे पराक्रमी, तुम (हमारे भीतर) दुर्धर्ष सारे बल पैदा करो, (जिनसे) सारे दुश्मनोंको हम पराजित करें ॥१॥
स्तुति-योग्य होता, पूजनीय हो तुम पूज्यस्थानमें अब बैठे विराजो। महाधनकी इच्छा करते तुम्हें प्रधान देव मानते (हम) तुम्हारा अनुगमन करते हैं ॥२॥

—भरद्वाज, ६।१

२. रक्षोहा—

२ राक्षसहन्ता (अग्नि) (हमारे) यज्ञ (स्तुति, स्तुति) के साथ रत हो, हमारे तुम्हारे घरमें ना रोग, दोषनिवारणके दुर्भाग (रोग) को उसे बुझावें ॥१॥

यस्ते गर्भममीवादुर्णामा योनिमाशये।
अग्निष्ट ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥२॥

—१०।१६२

§२. छन्द

३. कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्य किमासीत् परिधि क आसीत्।
छन्द किमासीत् प्रउग किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ॥३॥

अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वोष्णिहया सविता स वभूव।
अनुष्टुभा सोम उक्थैर्महस्वान् वृहस्पतेर्वृहती वाचमावत् ॥४॥

विराणिमत्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भागो अह्न ।
विश्वान् देवान्जगत्या विवेश तेन चाक्लृप ऋषयो मनुष्या ॥५॥

—१०।१३०

३. रचना

१. वाणी—

४. इन्द्र वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजान दधिरे सहध्यै।
हर्यश्वाय वर्हया समापीन् ॥१२॥

—७।३१

२ सूक्त—

५. का ते अस्त्यरङ्कृति सूक्त. कदा नून ते मघवन् दाशेम।
विश्वा मतीरा ततने त्वा याधा म इन्द्र शृणवो हवेमा ॥३॥

—७।२९

जो तेरे गर्भमें रोग, योनिस्थानमें दुर्नामा (उपद्रव) है, ब्रह्म (ऋचा) के साथ अग्नि उसे अ-मांसभक्षी बना नष्ट कर दे ॥२॥

—रक्षोहा ब्रह्म-पुत्र, १०।१६२

§ २. छन्द

३ जब सारे देवोंने देव (प्रजापति) का यजन (भजन) किया, तब प्रमा (सीमा)-प्रतिमा क्या थी? क्या निदान (कारण), क्या घी था, परिधि (घेरा) क्या थी? छन्द क्या था? उक्थ (गान) क्या था ॥३॥

अग्निकी सहचरी गायत्री हुई, उष्णिक्के साथ सविता एक हुआ। सोम अनुष्टुप्से, उक्थो द्वारा तेजस्वी (सूर्य), बृहतीने बृहस्पतिके वाक्यको अवलम्ब दिया ॥४॥

विराट् मित्र-वरुणका अवलम्ब हुआ, इन्द्र और दिनके भागका यहां त्रिष्टुप् (आश्रय) हुआ। सारे देवोंमें जगतीने प्रवेश किया। उससे ऋषियों और मनुष्योंने यज्ञ किया ॥५॥

—यज्ञ प्रजापति-पुत्र, १०।१३०

§ ३. रचना

१. वाणी—

४ वाणीने अप्रतिहत-शोष, इन्द्रको ध्यानेके लिये गवाके वाले गात्र स्थापित किया। वृषभ (अन्नपति इन्द्र) के लिये स्तोत्रों बढ़ाओ ॥१२॥

—वसिष्ठ, ७।३१

२. सूक्त—

५. हे मघवन्, जब हम सूक्तों द्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम्हारी क्या तुष्टि होती है? तुम्हारे लिये सारी प्रशंसायें हम करते हैं। हे इन्द्र, मेरी स्तुतियोंको सुनो ॥३॥

—वसिष्ठ, ७।२९

६ प्र सा वाचि सुष्टुतिर्मघोनामिदं सूक्तं मरुतो जुषन्त।
आराच्चिद् द्वेषो वृषणो युयोत यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥
—७।५८

३ श्लोक—

७ मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः । गाय गायत्रमुक्थ्यं ॥१४॥
—१।३८

४ साम—

८ उप नो देवा अवसा गमन्त्वङ्गिरसां सामभिः स्तूयमानाः ॥२॥
—१।१०७

९ प्रदक्षिणि दभिगृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः ।
उभे वाचौ वदती सामगा इव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानुराजति ॥१॥
—२।४३

१० प्रस्तोपदुप गासिषच्छ्रवत् साम गीयमानं । अभि राधसा जुगुरत् ॥५॥
—८।७०

५ स्तोम—

११ अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात् ।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यं ॥२॥
—१।१०९

§४ काव्य

उपमा —

१२. ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ ।
ब्रह्मणा वे विदथ उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा ॥१॥

६. हे मरुतो, महानोका जो यह सूक्त है (इसे) स्वीकार करो। हे कामनावर्षी, शत्रुओंको दूर हटाओ, तुम स्वस्तिपूर्वक सदा हमारी रक्षा करो॥६॥ —वसिष्ठ, ७।५८

३. श्लोक—

७ मुखमें श्लोक बनाओ, मेघकी तरह (उसे) फैलाओ, गायत्र गान गाओ॥१४॥ —कण्व घोर-पुत्र, १।३८

४ साम—

८ सामो द्वारा स्तुति किये जाने देव सहायताके साथ हमारे पास आयें॥२॥ —कुत्स आंगिरस, १।१०७

९ जैसे ऋतुओंमें पक्षी बोलते हैं, जैसे दाहिनी ओर कवि स्तुति करते हैं। गायत्र और त्रैष्टुभको सामगायक, दोनो वाणियोंको बोलता वैसे अनुरंजन करता है॥१॥ —गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।४३

० स्तवन हो, गान हो, इन्द्र, गीयमान सामको सुने। वह धनसे हमारे ऊपर कृपा करे॥५॥ —कुसीदी कण्व-पुत्र, ८।७०

५. स्तोम—

११. हे इन्द्राग्नि, सुना है तुम दामाद और सालेसे भी ज्यादा देनेवाले हो। इसलिए सोमके प्रदानके समय तुम्हारे लिये मैं नवीन स्तोम रचना हूं॥२॥ —कुत्स आंगिरस, १।१

§४ काव्य

उपमा—

१२ (अग्निदेव) इसके लिये (सोमके) लिये.... तरह स्तुति .... पशुको बाधा दो, ... तरह निश्चित पुकारो .... हमारी तरह यसमें उत्स (गौ) .... हो, ... होओ॥१॥

प्रातर्यावाण रथ्येव वीरा'जेव यमा वरमा सचेथे।
मेने इव तन्वा शुभमाने दपतीव ऋतु विदा जनेपु ॥२॥

शृगेव न प्रथमा गन्तमर्वाक् शफाविव जर्भुराणा तरोभि ।
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रार्वाचा यात रथ्येव चक्रा ॥३॥

नावेव न पारयत युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव।
श्वानेव नो अरिपण्या तनूना खृगलेव विस्रस पातमस्मान् ॥४॥

वातेवाजुर्या नद्येव रीतिक्षी इव चक्षुपा यातमर्वाक्।
हस्ताविव तन्वे शभविष्ठा पादेव नो नयत वस्यो अच्छ ॥५॥

ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यत जीवसे न ।
नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥६॥

हस्तेव शक्तिमभिसन्ददी न क्षामेव न समजत रजासि।
इमा गिरो अश्विना युष्मयन्ती क्ष्णोत्रेणेव स्वधिति सशिशीत ॥७॥

एतानि वामश्विनो वर्धनानि ब्रह्म स्तोम गृत्समदासो अक्रन्।
तानि नरा जुजुपाणोपयात बृहद्वदेम विदथे सुवीरा ॥८॥

—२।३९

१३ कि देवेषु त्यज एनश्चकर्याग्ने पृच्छामि नु त्वामविद्वान्।
अक्रीळन् क्रीळन् हरिरत्तवे दन् विपर्वशश्चकर्त गामिवासि ॥६॥

—१०।७९

हे वीरो, प्रात जानेवाले रथियोंकी तरह तुम दोनों हो, दो जुड़वा बकरोंकी तरह, दो सुन्दरियोंकी तरह शरीरसे शोभायुक्त नूतन दम्पतीकी तरह जनोंके पास आओ ॥२॥

हे प्रधान (अश्विद्वय), सींगकी तरह, दो खुरोंकी तरह, हम प्रात हमारे पास आओ। हे शक्तिशाली, चकवाकोंकी तरह या दो रथियोंकी तरह हमारे पास आओ ॥३॥

नावोंकी तरह हमें तुम पार कर दो, रथकी नाभि, चक्र, अरोंकी तरह (हमें पार कर दो)। कुत्तोंकी तरह शरीरको हानिसे बचाओ, दो वैनाग्नियोंकी तरह हमें क्षतिसे बचाओ ॥४॥

तुम वायुकी तरह न जीर्ण होनेवाले, नदीकी तरह शीघ्रगामी, दो नेत्रोंकी तरह दर्शक हो, तुम हमारे पास आओ। दोनों हाथोंकी तरह तुम शरीरके सुखदाता, पैरोंकी तरह हमें श्रेष्ठ धनके लिए ले चलो ॥५॥

मुखमें ओष्ठोंकी तरह मधुर वचन बोलो, दो स्तनोंकी तरह जीनेके लिये हमें दूध पिलाओ। दो नासिकाओंकी तरह हमारे शरीरके रक्षक, दो कानोंकी तरह हमारे सुन्दर श्रोता बनो ॥६॥

दो हाथोंकी तरह हमें शक्ति प्रदान करो। द्यौ-पृथिवीकी तरह स्थानों-को मिलाओ। हे अश्विद्वय, ये वाणियां तुम्हें चाहती हैं, (इन्हें) शानकी तरह तेज करो ॥७॥

हे अश्विद्वय, गृत्समदोंने तुम्हारे [illegible] ये मन्त्र और स्तोम बनाये। हे नरो, उनका सेवन करते (हमारे) पास आओ। [illegible] हम सभामें (तुम्हारी) प्रशंसा करें ॥८॥

—ऋग्वेद २।३९

१३. हे अग्नि, हम देवोंके निकटमें तुमसे पास लिए [illegible] हों मैं तुमसे पूछता हूँ। [illegible] न [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पर-लोक [illegible] [illegible] [illegible] ॥७॥

—[illegible], १०।५९

१४ त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिविषन्छुक्र आतत ।
सूरो न हि द्युता त्व कृपा पावक रोचसे ।।६।।

अधा हि विक्ष्वीड्योसि प्रियो नो अतिथिः।
रण्व पुरीव जूर्य सूनुर्न त्रययाय्य ।।७।।

—६।२

१५ तिग्म चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमान परशुर्न जिह्वा द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ।।४।।

स इदस्तेव प्रति धादसिष्यन् छिशीत तेजोऽयसो न धा।

नि गावो गोष्ठे असदन्नि मृगासो अविक्षत ।
नि केतवो जनाना न्यदृष्टा अलिप्सत ।।४।।

—१।१९१ अगस्त्य

घृणा न यो ध्रजसापत्मना यन्ना रोदसी वसुना द सुपत्नी ।।७।।

धायोभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर्विद्युन्न दविद्योत्स्वेभि शुष्मै ।
शर्धो वा यो मरुता ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रभसानो अद्यौत् ।।८।।

—६।३

§५ कवि

१ वसिष्ठ—

१६ व्युषा आवो दिविजा ऋतेनाविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमगिरस्तमा पथ्या अजीग ।।१।।

एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृतास आगु ।
जनयन्तो दैव्यानि व्रतान्यापृणन्तो अन्तरिक्षा व्यस्थु ।।३।।

एषा स्या युजाना पराकात् पच क्षिती परि सद्यो जिगाति ।
अभिपश्यन्ती वयुना जनाना दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ।।४।।

१४ (हे अग्नि,) तुम्हारा दीप्तिमान् उज्ज्वल धूम द्युलोकमें विस्तृत फैला है। हे पावक, कृपालु हो (अपनी) द्युतिसे तुम सूर्यकी तरह प्रकाशते हो॥६॥

घरोंमें तुम हमारे पूज्य प्रिय अतिथि हो। गढ़में वृद्ध जैसे प्रसन्न, सूनुकी तरह रक्षा-इच्छुक हो॥७॥

—भरद्वाज, ६।२

१५ तीक्ष्ण इसका आकार है, महान् शरीर है, अश्वकी तरह मुँहसे तृण-काष्ठ खाता है, कुठारकी तरह जिह्वाको छोड़ता है, फलछीकी तरह काष्ठको जलाते भगाता है॥४॥

रात्रिका संक्षिप्त और सुन्दर वर्णन देखिये—

गायें गोष्ठमें बैठ गईं। मृग अपने स्थानोंमें प्रवेश कर गये। आदमियों-की आग बुझ गई। अदृष्ट चीजोंने मुझे लिप्त कर दिया॥८॥

—अगस्त्य, १।१९१

जो बिजलीकी तरह धारक जाती किरणों, और अपने बलसे स्वर्ग प्रकाशित होता है। मरुतोंके बाणशिल्पीकी तरह जो गया, सूर्यकी तरह दीप्तिमान् (यह अग्नि) वेगसे प्रकाशता है॥८॥

—भरद्वाज, ६।३

६५ कवि

१. वसिष्ठ—

१६ द्योपुत्री उषा जागी, (वह) सत्यसे अपनी महिमा प्रकाशित करती आई। अप्रिय द्रोही तमको दूर किया, श्रेष्ठतम अंगिरसोंने पथोंको जगाया॥१॥

उषासे यह ये विविध स्वर्गीय अमृत किये गये (और) विस्तृत धनोंको उत्पन्न करती अन्तरिक्षसे भरती रही॥३॥

सा दा द्योकी दुहिता, सुभगा नेत्री, उषा हमें (धन) देवे, जैसे गायोंको प्रेरणा करती, तुम भी धनी स्तोता सारे और फूलती है॥४॥

वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूना।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ॥५॥

प्रति द्युतानामरुषासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहन्त ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्न विधते जनाय ॥६॥

सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रै ।
रुजद्दृह्ळानि ददुस्रियाणा प्रति गाव उपस वावशन्त ॥७॥

नू गोमद्वीरवद्धेहि रत्नमुषो अश्वावत् पुरुभोजो अस्मे।
मा नो बर्हि पुरुषता निदे कर्यूय पात स्वस्तिभि सदा न ॥८॥

—७।७५

२. विश्वामित्र—

१७ उषो वाजेन वाजिनि प्रचेता स्तोम जुषस्व गृणतो मघोनि।
पुराणी देवि युवति पुरन्धिरनुव्रत चरसि विश्ववारे॥१॥

उषो देव्यमर्त्या विभाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णा पृथुपाजसो ये॥२॥

उष प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतु ।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्याववृत्स्व ॥३॥

—३।६१

३. वामदेव—

१८. इदमु त्यत् पुरुतम पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात्।
नून दिवो दुहितरो विभातीर्गातु कृणवन्नुषसो जनाया॥१॥

घोड़ियोंवाली विचित्र प्रभा-युक्त सूर्य-पत्नी वसुओं और धनपर शासन करती है। (जग-)जीर्ण करती, ऋषियोंसे प्रशंसित, ऋत्विजों द्वारा स्तुति की जाती धनी उषा प्रकाशित होती है ॥५॥
प्रकाशमान उषाको वहन करते विचित्र लाल अश्व दिखाई दे रहे हैं नाना रूपोंवाली (वह) शुभ्रा रथसे जाती (सेवक) जनके लिये रत्न देती है ॥६॥
वह सत्या सत्योंके साथ, महती महानोंके साथ, देवी देवोंके साथ, पूज्या पूजनीयोंके साथ, दृढ़ (दुर्गों) को भेदन करती, गौओंको (चारा) देती है। गायें उषाके लिये हुंकारती हैं ॥७॥
हे उषा, हमें तुम गो-युक्त, वीर-युक्त रत्न दो, अश्व-युक्त बहुत भोग दो। हमारे कुशको पुरुषोंकी निंदासे बचाओ। (देवताओ), तुम सदा स्वस्तिके साथ हमारी रक्षा करो ॥८॥

—वसिष्ठ, ७।७५

विश्वामित्र—

हे शक्तिसे शक्तिमती, ज्ञानवाली, मर्त्योंकी उषा, स्तुतिकर्ताके स्तोम (स्तुति) को ग्रहण करो। प्राचीन युवती, बहु वरणीया, सबके लिये वरणीया है देवि, (तुम) व्रतका अनुगमन करती हो। ॥१॥
हे उषा, अमर देवि, सुनहले रथवाली, (तुम) मधुरवाणी प्रेरित करती हो। सुवर्णवर्णा तुम्हें सुशिक्षित बहुत बलशाली अश्व ढोते हैं ॥२॥
हे उषा, तुम सारे भुवनोंके आगे ऊपर ध्वजा की तरह स्थित हो। हे नवीना, एक ही अंतर विचरण करती चक्रकी तरह पुनः पुनः घूमा ॥३॥

—विश्वामित्र, ३।६१

वामदेव—

[illegible] प्रकाशित हो रही है ॥१॥

अस्थुरु चित्रा उषस पुरस्तान्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रञ्छुचय पावका ॥२॥

उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्राधोदेयायोषसो मघोनी ।
अचित्रे अन्त पणय. ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥३॥

यूय हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वै परिप्रयाथ भुवनानि सद्य ।
प्रबोधयन्तीरुषस ससन्त द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीव ॥५॥

क्व स्विदासा कतमा पुराणी यया विधाना विदधुर्ऋभूणा।
शुभ यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति न विज्ञायन्ते सदृशीरजुर्या ॥६॥

—४।५१

१९. प्रतिष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसु । दिवो अदर्शि दुहिता ॥१॥

अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी। सखाभूदश्विनोरुषा ॥२॥

उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि। उतोषो वस्व ईशिषे ॥३॥

यावयद्द्वेषसन्त्वा चिकित्वित् सूनृतावरि। प्रति स्तोमैरभूत्स्महि ॥४॥

प्रति भद्रा अदृक्षत गवा सर्गा न रश्मय । ओषा अप्रा उरु ज्रय ॥५॥

आपप्रुषी विभावरि व्यावर्ज्योतिषा तम । उषो अनु स्वधामव ॥६॥

—४।५२

२०. देखो ७१६

२१ विधु दद्राण समने बहूना युवान सन्त पलितो जगार।
देवस्य पश्य काव्य महित्वा' द्या ममार स ह्य समान ॥५॥

—१०।५५

यज्ञोंमें गड़े यूपोंकी तरह सित पूर्वमें विचित्र उषायें उगीं। बाधक अंधकारके द्वारको खोलती वह दीप्त पवित्र प्रकाशित होती है ॥२॥
तमनाशिका, मघोनी (धनवती) उषायें धन देनेके लिये भोजोंको चेताती हैं। पणि लोग अन्धकारके मध्यमें जागे बिना बेहोश सोये रहें ॥३॥
हे उषा देवियो, सोये दोपाये-चौपाये जीवोंको जगाती सत्यके जुड़े अश्वोंके साथ तुरन्त भुवनोंके चारों ओर जाती हो ॥५॥
जिसने ऋभुओंके विधान बनाये, वह कौन उनमें पुरानी है? (जब) शुभ्र उषायें विचरण करती हैं, तो वह अजरा एकसमान (होनेसे) पहचानी नहीं जाती ॥६॥

—वामदेव, ४।५१

१९ वह प्रकाशित हर्षदा सुनायिका, अन्धकारनाशिनी, द्यौकी दुहिता अपनी बहिन (रात्रि) को हटाती दिखाई पड़ी ॥१॥
घोड़ी सी विचित्र लाल, गायोंकी माता, तेजस्वी उषा अश्विद्वयकी सखी हुई ॥२॥
हे उषा, तू अश्विद्वयकी सखी है, या गायों (किरणों) की माता, या तुम धनकी अधीश्वरी हो ॥३॥
द्वेषोंको हटाती सो, तेरे बारेमें सोचते, हे हर्षिणी, हम स्तोमों (स्तुतियों) से तुझे मिलनेके लिये जगते हैं ॥४॥
गायोंके झुंड सी (उगती) भद्र किरणें दिखाई दीं। उषाने अपने विस्तृत तेजसे (दिशाओं) को भर दिया ॥५॥
हे विभावरि (प्रकाशवती), (अपनी) ज्योतिसे भरते तूने तमको दूर किया। हे उषा, अपनी प्रकृतिसे रक्षा करो ॥६॥

—वामदेव, ४।५२

२०. देखो ७।६

२१ [illegible]
गया ॥५॥

—[illegible], १०।[illegible]

४ भौम—

२१. अच्छा वद तवस गीर्भिराभि स्तुहि पर्जन्य नमसा विवास । ·
कनिक्रदद्वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भं ॥१॥

वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्व बिभाय भुवन महावधात् ।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्य स्तनयन् हन्ति दुष्कृत ॥२॥

रथीव कशयाश्वा अभिक्षिपन्नाविर्दूतान् कृणुते वर्ष्या अह ।
दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्य कृणुते वर्ष्यं नभ ॥३॥

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्व ।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत पर्जन्य पृथिवी रेतसावति ॥४॥

यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति ।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपा स न पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥५॥

दिवो नो वृष्टि मरुतो ररीध्व प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धारा ।
अर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिचन्नसुर पिता न ॥६॥

अभिक्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परिदीया रथेन ।
दृति सु कर्ष विषित न्यच समा भवन्तूद्वतो निपादा ॥७॥

महान्त कोशमुदचा निषिच स्यदता कुल्या विषिता पुरस्तात् ।
घृतेन द्यावा पृथिवी व्युन्धि सुप्रपाण भवत्वघ्न्याभ्य ॥८॥
—५।८३

४. भौम—

२१ हे इन वाणियोंसे बलकी प्रशंसा करो, नमस्कारपूर्वक पर्जन्यकी स्तुति करो। दानशील गरजता वृषभ (पर्जन्य) ओषधियोंमें वीर्य धारण करता है॥१॥

वह वृक्षोंको नष्ट करता, मानो राक्षसोंको नष्ट करता है, महावधसे सारे भुवनको डराता है। वृष्टिवाले उससे निरपराध भी भागते हैं क्योंकि पर्जन्य शब्द करते दुष्टोंको मारते हैं॥२॥

रथीकी तरह चाबुकसे घोड़ोंको हाँकता, (वृष्टि-) दूतोंको बढ़ाता, जब पर्जन्य नभको वर्षा-युक्त करता है, तो दूरसे सिंहकी गर्जना उठती है॥३॥

वायु जोरसे बहते हैं, बिजलिया गिरती हैं, ओषधिया उगती हैं, आकाश भर जाता है। सारे प्राणियोंके लिये पृथिवी समर्थ होती है, जबकि पर्जन्य पृथिवीको (अपने) वीर्यसे सहायता करता है॥४॥

जिसके व्रत (कर्म) से पृथिवी नम्र होती है, जिसके व्रतसे खुरोंवाले पोषित होते हैं, जिसके व्रत से ओषधिया नाना रूपोंकी पैदा होती हैं, वह पर्जन्य हमें महाशरण प्रदान करे॥५॥

हे मरुतो, द्यौसे हमें वृष्टि प्रदान करो। वर्षा करनेवाले अश्व (मेघ) की धाराओंको बरसाओ। हे पर्जन्य, इस गर्जनेके साथ पास आओ। हमारा पिता असुर जलसे सेचन करे॥६॥

आवाज करो, गरजो, गर्भ धारण करो, जलवाले रथसे परिभ्रमण करो। चमड़े (मशक) को खोलो, बन्धन मुक्त करो (जिससे) ऊबड़-खाबड़ प्रदेश समान होवें॥७॥

महाकोश (मेघ) को ऊपर उठा सींचो, बन्धन-मुक्त सरितायें (नदिया) आगे बहें। जलसे द्यौ और पृथिवीको सिक्त करो, गौओंके लिये सुन्दर प्याऊ हो॥८॥

—भौम, ऋग्वेद, ५।८३

परिशिष्ट २

नाम-सूची[1]

---

१. अङ्क अध्याय, अनुच्छेद के हैं

[illegible]चि—५।७६ (की अस्थियोंसे इन्द्रने ९९ वृत्रोंको मारा) (देखो दध्यङ् भी)

[illegible]व्यङ्—५।७४ (अथर्वा और मनुके साथ), ९।११ (प्रियमेध, कण्व, अत्रि, मनु भी पूर्वज)

दभीति—५।५३ (के शत्रु दस्यु चुमुरि और धुनि) ८।२८ (के लिये ३० हजार दासोंको सुला दिया), ९।२३ (और तुर्वीति, कुत्स, ध्वसन्ति, पुरुषन्तिकी रक्षा की)

दशरथ—५।६१ (की ४० हजार लाल गायें ले जाते)

[illegible] राजा—५।२३, १०।१२ (दस राजाओं द्वारा वाचित सुदास और राजाओं द्वारा वाचित [illegible]), १०।१३।७ (अयज्वा दस त्रित्सु), १०।१४ (दस राजा युद्धक्षेत्रमें जमे) (ये दस राजा थे—१ तुर्वश, २ यक्षु, ३ मत्स्य, ४ भृगु, ५ द्रुह्यु, ६ पक्थ, ७ भलान, ८ अलिन, ९ विषाणी, १० शिव, जिन्होंने परुष्णीको पकड़ा)

दस्यु—३।५ (वृत्र), ३।१२ (अनास), ६।६ (पणि), ३।१७ (विश), ७।५ (के लिये मनुको रोक दिया), ८।७ [illegible] ८।६।११ (को नाश करने), [illegible] (अकर्मा, अमन्तु, अन्यव्रत, अमा-[illegible]), ८।११ (को तुर्वीतिके लिये [illegible]), ८।१[illegible] [illegible]वाया, पणीको मारे), ८।१[illegible] [illegible] मार कर आयको पुरोंको नष्ट [illegible]), ८।१३ (दस्युने [illegible]), ८।१४ [illegible] [illegible]िये), ८।१४

[illegible]दास—५।१७ (सुदास, पनिष्ठा), ५।२३ (दस राजा), १०।३ (में सुदासकी रक्षा वसिष्ठोंके ब्रह्म द्वारा इन्द्रने की), १०।१३ (में दस राजाओं द्वारा वाचित सुदास और त्रित्सु, दस राजा अयज्यु युद्धके लिये एकत्रित), १०।१४ (में शत्रु १ तुर्वश, २ यक्षु, ३ मत्स्य, ४ भृगु, ५ द्रुह्यु, ६ पक्थ, ७ भलान, ८ अलिन, ९ विषाणी, १० शिव थे जिनमें आयकी गायें त्रित्सुओंको मिलीं शत्रुओंने परुष्णीको पकड़ा, कवि चायमान गिर कर लेट गया), १०।१५ (में सुदासकी रक्षा इन्द्र-वरुणने की, श्वित्यञ्च, कवषी, त्रित्सु [illegible]), १०।१६ (में सुदासके लिये नदियोंको गाध और सुपार बनाया, त्रित्सुओंको मारा), १०।१७ (दोनों [illegible] २१ जनोंको गिराया, श्रुत कवषको पानीमें डुबाया, अनु द्रुह्युको मारा, में त्रित्सुओंके लिये अनुके [illegible] जीता, युधामन्यु [illegible] में ६० हजार और ६०६० गाय- [illegible] अनु और द्रुह्यु राजाके लिये गो [illegible] गये), १०।१८ (भेदको मारा), १०।२० (जो [illegible] पुरु, पक्थ [illegible] [illegible] मारे और सुदासकी [illegible] रक्षा की), १०।२१ [illegible] राजा २-३ (जिन [illegible] [illegible]

देवक—८।५३ (मान्यमानको इन्द्रने मारा, शवरको नष्ट किया), ९।१५ (मान्यमान और शवरको मारा)
देववात—९।२०।२ (और देवश्रवा भारत)
देवश्रवा—९।२०।२ (भारत देवश्रवा और देववात), ९।२०।३ (जनोंको वशमें करनेवाला), ९।२०।५ (की दृषद्वती, आपया, सरस्वतीमें धनकी प्रार्थना)
दैववात—२।९ (वृचीवत) (देखो सृंजय भी)
दौर्गह—९।३० (वध्यमानमें हमारे पितर सात ऋषियोंने त्रसदस्युसे यज्ञ कराया)
द्रुह्यु—१।५, २।११, १०, २।१२ (के ६६ हजार ६६ मरे), १०।१४ (दस राजाओंमें २ तुर्वश, ३ यक्षु, ४ मत्स्य, ५ भृगु, ६ पक्थ, ७ भलान, ८ अलिन, ९ विषाणी, १० शिव), १०।१७ (वृद्ध श्रुत कवषको पानीमें डुबाया, फिर द्रुह्युको वज्र-बाहुने मार भगाया), १०।१७।१४ (गाय-लुटेरे द्रुह्यु और अनुके ६० सौ और ६०६६ आदमी मर मार सो गये)
धुनि—२।१५।९ (दस्यु और चुमुरि दभीतिके लिये मारा), ८।१९ (और चुमुरि पिप्रु, शुष्ण, शम्बरको मारा)
ध्वसन्ति—९।५८।३ (पुरुषन्ति, तरन्त, [illegible], और दभीतिकी रक्षा की)
नमुचि—१।५३।७ (और [illegible], शुष्ण, अशुष, व्यंस, पिप्रु, रजिश्वाके वे साथ), ८।१४ (दासको मनुके लिये मारा), ८।१६,१७ (दास नमुचिका सिर काटा), ८।२२ (को मारा)
नर्य (तुर्वश)—२।५ (तुर्वश), ८।८५ (और कुत्स, श्रुतर्य भी), ९।१२ (और कुत्स, श्रुतर्यकी रक्षा की)
नववास्त्व—६।१९।८ (अंगिरस अयास्य)
नववास्त्व—८।११ (नववास्त्ववाला बृहद्रथ तुर्वीति)
नहुष—७।८ (की बलिहृत विश्), ७।९ (विश्पति), ७।१० (नहुष-पुत्र ययाति)
नैचाशाख—४।५ (कीकट देशमें)
पक्थ—२।१७, १८ १०।१४ (दस राजाओंमें २ तुर्वश, ३ यक्षु, ४ मत्स्य, ५ भृगु, ६ द्रुह्यु, ७ भलान, ८ अलिन, ९ विषाणी, १० शिव), १२।१५ (की रक्षा अश्विनोंने की)
पणि—१।२ (जिनकी निधि [illegible]), ५।३४ (ने [illegible], [illegible]), ५।३८ ([illegible] गायें [illegible]), ६।१, २ ([illegible]), ५।३ (पणियोंको मारो) ६।८५ ([illegible] [illegible], [illegible]), ६।६ ([illegible] न [illegible]), ६।७ ([illegible] गायोंको [illegible]) ६।८ ([illegible] निधि [illegible]), ६।९ ([illegible]) ६।१० ([illegible]), ६।११ ([illegible]), ७।१२ ([illegible]

परिशिष्ट ३

शब्द-सूची[1]

---

१ इस पुस्तक के अध्याय, अनुच्छेद के यहां अक दिये है।

परिशिष्ट ४

देवता-सूची

अग्नि (-देवता)—१५।११ (पुष्टि-कारक होता), १५।१२, १३ (सहस्र सूनु), १५।१३ (युवा अद्रोघवाक्), १५।१४ (व्रतपा, नाकस्पर्शी, विशो का राजा वैश्वानर, को पश्चिमसे लाये), १५।१५ (हव्यवाह विश्पति), १५।१६ (वैश्वानर स्वविद = स्वर्ग-ज्ञाता, रयिर, कुशिक आहू वाता, कुशिको द्वारा युग-युगमें सेवित), १५।१७ (राजा, रुद्र, होता, सत्य-यज), १५।१९ (दृपद्वती आपया, सरस्वतीमें धनयुक्त), १५।२, १५।५, १५।६, १५।७-९, १८।१ (प्रथम, दर्शनीय, होता इळस्पद)

अग्नीषोम—५।७८ (अग्नि-सोम)

अज—१५।५ (एक पैरोवाला देवता)

अदिति—१५।२, १५।३ (आदित्य भी), १५।५ (आदित्य), १५।७ (आदित्य), १७।१ (अदितिसे दक्ष और दक्षसे अदिति जनमे)

अद्रि—५।५ (=देवता)

अपानपात्—१५।५ (=देवता)

अप्या—१५।५ (=पानीके देवता)

अप्सरस —५।१९

अमृत—४।२९, १७।१५।३ (देवता)

अमृतबन्धु—१७।१ (देवता)

अरण्यानी—१५।१९ (नही मारती, स्वादु फलदायक, विना किसानके बहुअन्नवाली, मृगोकी माता)

अर्यमा—१५।२ (सु-मगल), १५।८

अश्विनी—२।१७, १५।५, ६, १७।७ (तुम दोनो के लिए मैंने स्तोम बनाया, जैसे भृगु रथको बनाते हैं), १७।८ (कवि कुत्सकी तरह विशो=प्रजाको पानेवाले, भुज्यु, वश, सिजार उशनाके उपकारक, कृश, शयुके उपकारक), १७।१० (नासत्य सवेरे मधुवाहन रथपर चढते हैं), १७।११ (उन्होने कृष्णिय विश्वको विष्णापू दिया, पीहरमें बैठी झुराती घोपाको पति दिया) (देखो नासत्य भी)

असुर—१७।१५ (के वीर, महस्पुत्र द्यौके धर्ता)

अहिर्बुध्न्य—१५।५

आप (देवी)—१५।२० (सुखमय, शिवतम रस, माता, देवी), १६।३ (आपो देवी)

इन्द्र—४।३१ (स्थूल-गर्दन), ६।१९।३ (जैसा), १५।५ (वसुओके साथ), १५।६, १५।७, १५।२२ (शिप्रवान्, वृषभ, गोत्रभिद्, वज्रभृत्), १५।२३ (त्राता, अविता, सुहव = अच्छी तरह पुकारा जानेवाला, शूर, शक्र,